नारद पुराण

(प्रथम खण्ड)



लेखक

आचार्य श्रीराम शर्मा

चारों वेद, १०८ उपनिषद, षट् दर्शन २० स्मृतियाँ
और अठारह पुराणों के भाष्यकार।



प्रकाशक—

संस्कृति संस्थान

बरेली (उ०प्र०)

प्रकाशक :

डा० चमनलाल गौतम
संस्कृति संस्थान,
बरेली

*

लेखक :

आचार्य श्रीराम श

*

प्रथम संस्करण
१९७१

*

मुद्रक
विनोदकुमार मिश्र
राजेश्वरी प्रिंटिंग प्रेस,
आर्यसमाज रोड, मथुरा

*

मूल्य
सात रुपया पचास पैसे

भूमिका

यथा भूमिं समाश्रित्य सर्वे जीवन्ति जन्तवः।
तथा भक्तिं समाश्रित्य सर्वकार्याणि साधयेत्॥

'नारद पुराण' का यह श्लोक उसके सिद्धान्त और विशेषताओं पर अच्छी तरह प्रकाश डालता है। वह विष्णु भक्ति प्रधान रचना है। उसमें आदि से अन्त तक विविध कथाओं द्वारा यही प्रतिपादित किया है कि संसार में सबसे अधिक महिमा भक्ति की है और उसका अवलम्बन करने वाला सदैव लोक और परलोक में कल्याण का भागी होता है। भक्ति-मार्ग की श्रेष्ठता में तो कोई सन्देह नहीं। ज्ञान-मार्ग और कर्म-मार्ग पर तो अध्ययन और मननशील विद्वान्, बुद्धिमान व्यक्ति ही भली प्रकार चल सकते हैं। सामान्य स्तर का जो जन समुदाय अधिक संख्या में पाया जाता है, वह न तो उन सिद्धान्तों के वास्तविक मर्म को समझ सकता है और न व्यावहारिक रूप में उनका पालन कर सकता है। परमात्मा के अशरीरी क्रियाकलाप उसकी समझ में नहीं आ सकते। वह यह कल्पना कर सकने में भी असमर्थ रहता है कि निराकार परमेश्वर किस प्रकार करोड़ों पदार्थों और जीव जन्तुओं से भरे इस संसार की रचना कर देता है?

इसका कारण यही कि उसकी मोटी बुद्धि सूक्ष्म पदार्थों का रहस्य समझने में असमर्थ रहती है। आत्म शक्ति, संकल्प-शक्ति, विचारों की शक्ति जैसे अति सूक्ष्म विषयों को समझने की बात तो दूर, वह *विद्युत-शक्ति और एटमशक्ति जैसी प्रत्यक्ष प्राकृतिक सूक्ष्म शक्तियों की*

कार्य-प्रणाली के रहस्य को भी नहीं जान पाता। ऐसे व्यक्तियो को यह समझाना कि यह समस्त ससार भगवान का ही स्वरूप है और इसमे जो करोडो पदार्थ और कार्य दिखाई पडते हैं वे सब "माया" अथवा हमारी बुद्धि और नेत्रो के भ्रम हैं, एक असम्भव सी बात है। इसलिए उनको परमात्मा, उसकी सृष्टि और मनुष्य के कर्तव्य-कर्म के सम्बन्ध मे जो कुछ बताया जा सकता है, उसका आधार स्थूल ही होना आवश्यक है। इसीलिये हमारे देश के प्राचीन मनीषियो ने भगवान की मूर्ति बनाकर उसके माध्यम से ध्यान और उपासना का विधान बनाया। जब तक मूर्तियो की कल्पना और निर्माण नही हुआ तब तक नेत्रो से दिखाई पडने वाली यज्ञाग्नि को ही उपासना और पूजा का माध्यम माना जाता था। कारण यही था कि ऐसे किसी प्रत्यक्ष उपकरण को सामने देखकर ही सामान्य बुद्धि का व्यक्ति उसके प्रति अपनी मानसिक भावना को प्रेरित कर सकता है और उसकी श्रेष्ठता को स्वीकार करके उसे अपना भक्तिभाजन बना सकता है।

भक्ति का स्वरूप और उसकी महिमा—

यही कारण है कि जहा शैव-पुराणो मे विशेष रूप से योग तथा तंत्र साधना को विशेष महत्व दिया गया है, वहाँ वैष्णव पुराणो–जैसे भागवत, विष्णु, नारद आदि मे भक्ति को ही सर्वोच्च तथा सवश्रेष्ठ कहा गया है। इसके मुख्य अङ्ग पूजा, उपासना, नाम-स्मरण, भजन, कीर्तन आदि माने गय हैं। निम्न स्तर के सकाम भावना वाले व्यक्तियो को आकर्षित करन के लिय सामान्य व्रत, उपवास, तीर्थयात्रा, मन्दिर निर्माण या जीर्णोद्धार आदि बातो का महत्व बहुत बढा-चढा कर बताया गया है। ऐसी बातो पर आजकल के नवशिक्षित व्यक्ति विश्वास करने को तैयार नही होग। हम भी उनको अक्षरश मान लन का आग्रह नही करत। पर जिस प्रकार बालको को सुनाई जाने वाली काल्पनिक और भय

कहानियों से भी लाभकारी शिक्षायें प्राप्त हो सकती हैं, उसी प्रकार पौराणिक कथाओं में मनुष्यों को अनेक सद्कर्मों की प्रेरणा मिलती है। पुराणकारों ने भी यह नहीं कहा है कि मनुष्य भक्ति करने के साथ दुष्ट कर्म भी करता रहे, फिर भी उसका कल्याण ही होगा। उन्होंने प्रायः यही उपदेश दिया है कि भगवान की भक्ति करने से दुष्ट प्रवृत्तियाँ स्वयमेव छूट जायेंगी और मनुष्य में साधुता के गुण उत्पन्न हो जायेंगे। "नारद पुराण" के आरम्भ में ही कह दिया गया है कि "भगवान की प्रसन्नता के लिए वेद शास्त्रों द्वारा बतलाये सद्-अनुष्ठानों को करना आवश्यक है। मनुष्य निष्काम हो या सकाम उसे विधिपूर्वक कर्म अवश्य करने चाहिये। सदाचार परायण ब्राह्मण अपने ब्रह्म तेज के साथ वृद्धि को प्राप्त होता है। यदि वह भगवान के चरणों में भक्ति रखता है तो उस पर विष्णु भगवान बहुत प्रसन्न होते हैं।" इससे आगे चल कर भक्ति की जो महिमा और प्रणाली बतलाई है उससे यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है—

हरिभक्तिः परानृणां कामधेनूपमा स्मृता।
तस्यां सत्यां पिबन्त्यज्ञाः संसारं गरलं ह्यहो॥

"भगवान की भक्ति मनुष्यों के लिये कामधेनु के समान कल्याण-कारी मानी गई है। पर कितने आश्चर्य की बात है कि अज्ञानी जन उसे त्याग कर सांसारिक मोहरूपी विष को ग्रहण करते हैं।" मनुष्य को सद्कर्मों का अनुष्ठान सदैव श्रद्धा और भक्ति की भावना में ही करना चाहिये जैसे सूर्य का प्रकाश समस्त जीवों को कर्मरत करने में कारण रूप होता है, उसी प्रकार समस्त सिद्धियों का आधार भक्ति ही होती है। जैसे जल सम्पूर्ण लोकों का जीवन कहा गया है वैसे समस्त महान लाभ भक्ति के द्वारा ही प्राप्त होते हैं। जैसे सब जीव-जन्तु पृथ्वी का आश्रय लेकर जीवन धारण करते हैं, उसी प्रकार भक्ति का सहारा लेकर सब कार्यों का साधन करना चाहिये। श्रद्धालु पुरुष को धर्म का

लाभ होता है, श्रद्धालु ही धन पाता है, श्रद्धा से ही कामनाओं की सिद्धि होती है, तथा श्रद्धालु पुरुष ही मोक्ष का अधिकारी बन सकता है। दान, तपस्या अथवा बहुत दक्षिणा वाले यज्ञ भी यदि भक्ति से रहित हो, तो उनके द्वारा भगवान संतुष्ट नहीं होते। मेरु पर्वत के बराबर सुवर्ण की करोड़ो सहस्र राशियों का दान भी यदि बिना श्रद्धा-भक्ति के किया तो वह निष्फल होता है। बिना भक्ति के जो तपस्या की जाती है, वह केवल शरीर को सुखाना मात्र है। बिना भक्ति जो हविष्य हवन किया जाता है, वह राख में डाली हुई आहुति के समान है। श्रद्धाभक्ति के साथ मनुष्य जो कुछ थोड़ा सा भी सत्कर्म करता है, वह उसे अनन्त काल तक अक्षय सुख देने वाला होता है।"

इस प्रकार पुराणों ने भक्ति को जो महत्व दिया है वह दिखा-वटी पूजा-उपासना अथवा दान-पुण्य के आधार पर प्राप्त नहीं हो सकता। उसका सारतत्त्व हार्दिक श्रद्धा और निष्काम परोपकार की भावना ही होता है। पौराणिक उपाख्यानों और रामायण आदि में बड़े-बड़े पापियों के अन्त समय में राम कह लेने से मुक्ति प्राप्त होने की बात लिखी है। पर साथ ही यह भी लिखा है—

जनम-जनम मुनि जतन कराहीं।
अन्त राम कहि आवत नाहीं॥

इसका आशय यही है कि उन "पापी" कहे जाने वाले व्यक्तियों को तभी सद्गति प्राप्त होती है जब अन्त समय में ही किसी घटनावश उनकी जीवनधारा बदल जाती है और उनके भीतर छिपा भक्ति का झरना फूट उठता है।

कुछ भी हो इसमें सन्देह नहीं कि भक्ति मार्ग लोक और परलोक के साधनों के लिए सबसे सरल और प्रभावशाली है। विशेष रूप से जो लोग ज्ञान मार्ग के गहन तत्त्व को समझ सकने में असमर्थ हैं और कर्मकाण्डों के लिये जिनके पास पर्याप्त साधन नहीं हैं, उनका सर्वश्रेष्ठ

सम्वत्तभक्ति ही है। यह वास्तव मे ऐसी कामधेनु है जिससे मनुष्य अल्प-साधनो और अल्प प्रयत्न द्वारा ही बहुत बडी सिद्धियाँ पा सकता है। पर इसके लिये हृदय की सचाई और शुद्धता अनिवार्य है। जैसे छोटा शिशु माता पर पूर्ण रूप से भरोसा रखता है और उसके लिये किसी प्रकार का अविश्वास का भाव कभी उसके हृदय मे आ ही नही सकता, इसी प्रकार जो लोग अन्त करण मे भगवान को अपना सच्चा सहायक और रक्षक समझ लेते हैं और उनके आदेशानुसार सदाचार के मार्ग पर चलते हैं, वे ही सच्चे भक्त माने जा सकते हैं और भगवद्-भक्ति उन्ही की भव सकटो मे रक्षा करती है।

पर यह मार्ग उनके लिये नही है जो इसे केवल दलीलो तर्कों से जानना और प्राप्त करना चाहते हैं। उनके लिये ऋषियो ने ज्ञान-मार्ग बतला दिया है, जिसकी पहुँच आधुनिक विज्ञान से भी ऊँची है। रह गये आधुनिक शिक्षा का गुमान रखने वाले आलोचक उनके लिये तो प्राचीन शास्त्र की सभी बातें और सिद्धात "निकम्मे" जान पडते हैं और सभी "मार्गों" मे दोष ही दोष दिखलाई पडते है। ऐसे सज्जन महात्मा गाँधी के कथनानुसार उस "गटर-इन्सपेक्टर" के समान हैं जिनका कार्य सर्वत्र गन्दगी ढूँढना ही है। हम कभी इस बात से इनकार नही करते कि पुराणो मे "कथा-व्यासनो" ने सैकडो भले बुरे कथानक, उपाख्यान समय-समय पर जोड दिये है,जिनमे से कुछ वास्तव मे 'भ्रष्ट' भी कहे जा सकते हैं। पर साथ ही पुराणो मे सैकडो उपयोगी, यथार्थ लाभकारी बातें भी हैं, उनकी ओर से आँखें बन्द कर लेना कोई बुद्धिमानी अथवा प्रशसा की बात नही। हम अपनी 'पुराण-सीरीज' का सम्पादन इसी दृष्टि कोण मे कर रहे हैं और सन्तोष का विषय है कि पाठकों ने इसे पूरी तरह अपनाया है।

समन्वय की प्रवृत्ति--

पर भक्ति-मार्ग का अनुयायी होने पर भी "नारदपुराण"

की नीति समन्वयवादी है और इसमे अध्यात्म-योग तथा ज्ञान-योग की भी महिमा भली प्रकार बतलाई गई है। मुक्ति प्राप्त करने के सम्बन्ध मे कहा है।

"योग मे स्थित होने पर साधक ब्रह्म मे लीन होकर फिर अपने स्वरूप से च्युत नही होता। मन ही मनुष्यो के बन्धन और मोक्ष का कारण है। विषयो मे आसक्त होने पर वह बन्धन का कारण होता है और विषयो से दूर हट कर वही मोक्ष का द्वार बन जाता है। इसलिये ज्ञानी वही कहा जायगा जो मन को विषयो से हटा कर परमेश्वर का चिन्तन करे। जैसे चुम्बक अपनी शक्ति से लोहे को खींचकर अपने मे संयुक्त कर लेता है, उसी प्रकार ब्रह्म चिन्तन करने वाले साधक के चित्त को परमात्मा अपने स्वरूप मे लीन कर लेता है। आत्मज्ञान के उपायभूत जो यम-नियम आदि साधन है, उनकी अपेक्षा रखने वाली मन की विशिष्ट गति को ही 'योग' कहा जाता है। जिसका योग इस प्रकार की विशेषता वाले धर्म से युक्त होता है वह योगी "मुमुक्षु' कहलाता है। पहले पहल योग का अभ्यास करने वाला योगी युञ्जान' कहलाता है। जब उसे परमात्मा की प्राप्ति हो जाती है तब वह विनिष्पन्न-समाधि' (युक्त) कहा जाता है। ऐसा "विनिष्पन्न समाधि" योगी अपनी योगाग्नि से समस्त कर्म राशियो को भस्म कर डालता है। योगी को चित्त से ब्रह्मचर्य, अहिंसा, सत्य, अस्तेय तथा अपरिग्रह का निष्काम भाव से सेवन करना चाहिये। इनके साथ ही शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय तथा परमात्मा मे सलग्नता का पालन करे। इनका पूर्ण रूप से सेवन करने से ही मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है।

इसी प्रकार जडभरत द्वारा सौवीर नरेश को ज्ञान योग का उपदेश कराते हुए कहा है—"राजन्! सिर और हाथ-पैर आदि लक्षणो वाला यह शरीर आत्मा से पृथक ही है, इसलिये 'अहं' (मैं) शब्द का प्रयोग इसके लिये कैसे किया जा सकता है? यदि मुझसे भिन्न

कोई और भी सजातीय आत्मा हो तोभी 'यह मैं हूँ और यह अन्य है,'—ऐसा कहना उचित हो सकता था। पर जब सब शरीरो मे एक ही आत्मा विराजमान है तब 'आप कौन हैं और मैं कौन हूँ' इत्यादि प्रश्न-वाक्य व्यर्थ ही है। महाराज! 'तुम राजा हो, यह पालकी है, ये सामने पालकी ढोने वाले खडे हैं और यह समस्त देश आपके अधिकार मे है'—ऐसा जो कहा जाता है, वह वास्तव मे यथार्थ नही है। वृक्ष से लकडी उत्पन्न हुई और उससे यह पालकी बनी, जिस पर तुम बैठते हो। यदि इसे 'पालकी' ही कहा जाय तो इसका 'वृक्ष' नाम अथवा 'लकडी' नाम कहा चला गया? यह तुम्हारे सेवकगण ऐसा नही कहते कि महाराज पेड पर चढे हैं अथवा 'लकडी' पर सवार है, सब कोई पालकी मे बैठा हुआ ही कहते हैं। किन्तु पालकी क्या है—लकडियो का समुदाय। अगर इसमे से लकडियो के समुदाय को अलग करदें तो फिर खोजो तुम्हारी पालकी कहाँ है?

यही न्याय (सिद्धान्त) तुम्हारे और मेरे ऊपर भी लागू होता है। पुरुष, स्त्री, गाय, बकरी, घोडा हाथी, पक्षी और वृक्ष आदि लौकिक नाम कर्मजनित विभिन्न शरीरो के लिये ही रखे गये हैं। पर यह आत्मा न देवता है, न मनुष्य है, न पशु है और न वृक्ष ही है। ये सब काल्पनिक है। जो वस्तु परिणाम आदि के कारण होने वाली किसी नई संज्ञा को कालान्तर मे भी प्राप्त नही होती, वही वस्तु पारमार्थिक है। विचार करो वह क्या है? तुम सबके लिए राजा हो, अपने पिता के लिये पुत्र हो, शत्रु के लिये शत्रु हो, पत्नी के लिए पति और पुत्र के लिये पिता हो। अब मैं तुम्हे क्या समझूँ। इस प्रकार आत्म-तत्त्व सब से पृथक होकर ही स्थित है और उसे 'अहं" इस नाम से नही बताया जा सकता।

इसी प्रकार आगे चल कर श्रेय और परमार्थ की व्याख्या करते हुए बतलाया गया है कि "जो मनुष्य देवता की आराधना करके धन-

सम्पति चाहता है, पुत्र अथवा राज्य की अभिलाषा करता है, उसके लिये ये सब वस्तु 'श्रेय' हैं, इन्हे परमार्थ नही कहा जायगा। स्वर्ग-लोक रूप फल देने वाला जो यज्ञ आदि कर्म किया जाता है, वह भी श्रेय है। इन सबसे बढ कर श्रेय योग साधन द्वारा परमात्मा से सयोग प्राप्त करना है। इस प्रकार के श्रेय-कर्म अनेको है, पर इनमे से किसी को परमार्थ नही कहा जा सकता। उदाहरणार्थ यदि धन परमार्थ होता तो धर्म के लिये उसका त्याग क्यो किया जाता ? यज्ञो मे जिस समिधा, घृत, कुशा का प्रयोग किया जाता है वे सब विनाशशील है, इसलिये उनके द्वारा जो क्रिया की गई वह भी कभी अविनाशी नही हो सकती। इसलिये परमार्थ केवल उस आत्म-ज्ञान को ही कहा जा सकता है जब मनुष्य को यह निश्चय हो जाता है कि आत्मा एक, व्यापक, सम, शुद्ध, निर्गुण और प्रकृति से परे है, उसमे जन्म और वृद्धि आदि विकार नही है, वह सर्वत्र व्यापक तथा परम ज्ञानमय है, वह अपने और दूसरे शरीरो मे विद्यमान रहते हुए भी एक ही है, तभी उसे परमार्थ-ज्ञानी कहा जा सकता है, जो इस अद्वैत तत्व को जान लेता है और वैसा ही आचरण करता है वही परमार्थी है।"

इस प्रकार "नारद-पुराण" मे भक्ति को सर्वसाधारण के लिये श्रेष्ठ और सुलभ बतलाते हुए भी योग और अद्वैत-ज्ञान जैसे साधनो की उपेक्षा नही की है। उसकी मान्यता यही है कि ऐसा अद्वैत ज्ञान सर्वोच्च है पर उस तक करोडो मे से कोई एक विरले ही पहुँच सकते हैं। ससार के समस्त सम्बन्धो तथा भले-बुरे, छोटे-बडे के भेदो को भूल कर जीवन-यापन कर सकना सर्व साधारण के लिये कभी सभव नही, पर धर्म की, श्रेय की आवश्यकता उनको भी है। इसलिये पुराणकार ने "भक्ति" को सर्वोत्तम मार्ग समझा है जिसमे मनुष्य सब सासारिक कार्यों को यथाशक्ति करता हुआ उन्हे भगवदर्पण करता रहता है, इससे उसकी स्वार्थ बुद्धि दबी रहती है और वह सब को एक ही

भगवान की सन्तान समझकर सेवा और परोपकार के मार्ग पर चलने का प्रयत्न करता रहता है। इस मार्ग में जब उसकी अधिक वृद्धि हो जाती है, तब वह भी उसी लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है जिसे योगी और ज्ञानी अपना अभिप्रेत मानते हैं। इस प्रकार पुराणकार ने जिस समन्वय की भावना का प्रतिपादन किया है, वह निस्सन्देह प्रशंसनीय है।

शैवागम का परिचय—

"नारद पुराण" पूर्ण रूप से वैष्णव पुराण है, फिर भी उसमें "शैवागम" का परिचय और भगवान शिव की महिमा का वर्णन इसी समन्वयात्मक प्रवृत्ति का परिचायक है। हमने कितने ही पुराणों में ऐसे भी वर्णन देखे हैं जिनमें अपने इष्ट देव के अतिरिक्त अन्य देवों को हीन सिद्ध करने की चेष्टा की गई है। ऐसी ही मनोवृत्ति के कारण लोगों में प्रतिस्पर्धा और अन्त में द्वेष बुद्धि उत्पन्न होती है, जिसका परिणाम धार्मिक क्षेत्र में आक्षेप और निन्दा, कुत्सा की गन्दगी फैलने के सिवाय और कुछ नहीं निकलता। पर "नारदपुराण" में ऐसी भावना का चिन्ह भी नहीं है। जिस प्रकार गोस्वामी तुलसीदास ने श्रीरामचन्द्रजी को अपना प्रमुख इष्टदेव मानते हुये भी शिवजी के प्रति आन्तरिक भक्तिभाव प्रकट किया है और रामचन्द्रजी के मुख से ही यह कहलाया है कि "जो शिवजी से विरोध रखता है और मेरे प्रति भक्ति रखता है ऐसा मनुष्य मुझे स्वप्न में भी स्वीकार नहीं हो सकता।' उसी प्रकार "नारदपुराण" में भी काशी-क्षेत्र तथा शिव पूजा का वर्णन करते हुए कहा है—

''काशीपुरी तीर्थों में उत्तम तीर्थ और क्षेत्रों में उत्तम क्षेत्र है। समस्त देवता उसका सेवन करते हैं। काशी के गुणों के विषय में यहाँ बहुत कहने से क्या लाभ, जो काशी का नाम भी लेते हैं, उनसे धर्म, अर्थ काम और मोक्ष—ये चारों पुरुषार्थ दूर नहीं रहते। शिवलिङ्ग

सम्पति चाहता है, पुत्र अथवा राज्य की अभिलाषा करता है, उसके लिये ये सब वस्तु 'श्रेय' हैं, इन्हे परमार्थ नही कहा जायगा। स्वर्ग-लोक रूप फल देने वाला जो यज्ञ आदि कर्म किया जाता है, वह भी श्रेय है। इन सबसे बढ कर श्रेय योग साधन द्वारा परमात्मा से सयोग प्राप्त करना है। इस प्रकार के श्रेय-कर्म अनेको हैं, पर इनमे से किसी को परमार्थ नही कहा जा सकता। उदाहरणार्थ यदि धन परमार्थ होता तो धर्म के लिये उसका त्याग क्यो किया जाता? यज्ञो मे जिस समिधा, घृत, कुशा का प्रयोग किया जाता है वे सब विनाशशील है, इसलिये उनके द्वारा जो क्रिया की गई वह भी कभी अविनाशी नही हो सकती। इसलिये परमार्थ केवल उस आत्म ज्ञान को ही कहा जा सकता है जब मनुष्य को यह निश्चय हो जाता है कि आत्मा एक, व्यापक, सम, शुद्ध, निर्गुण और प्रकृति से परे है, उसमे जन्म और वृद्धि आदि विकार नही है, वह सर्वत्र व्यापक तथा परम ज्ञानमय है, वह अपने और दूसरे शरीरो मे विद्यमान रहते हुए भी एक ही है, तभी उसे परमार्थ-ज्ञानी कहा जा सकता है, जो इस अद्वैत तत्व को जान लेता है और वैसा ही आचरण करता है वही परमार्थी है।"

इस प्रकार "नारद-पुराण" मे भक्ति को सर्वसाधारण के लिये श्रेष्ठ और सुलभ बतलाते हुए भी योग और अद्वैत-ज्ञान जैसे साधनो की उपेक्षा नही की है। उसकी मान्यता यही है कि ऐसा अद्वैत ज्ञान सर्वोच्च है पर उस तक करोडो मे से कोई एक बिरले ही पहुँच सकते हैं। ससार के समस्त सम्बन्धो तथा भले बुरे, छोटे-बडे के भेदो को भूल कर जीवन-यापन कर सकना सर्व साधारण के लिये कभी सभव नही, पर धर्म की, श्रेय की आवश्यकता उनको भी है। इसलिये पुराण-कार ने "भक्ति" का सर्वोत्तम मार्ग समझा है जिसमे मनुष्य सब सासा-रिक कार्यों को यथाशक्ति करता हुआ उन्हे भगवदार्पण करता रहता है, इससे उसकी स्वार्थ बुद्धि दबी रहती है और वह सब को एक ही

यद्यपि सम्कृत भाषा के पुराणो मे भी अनेक स्थलो पर ऐसे वर्णन पाये जाते हैं, पर इस सम्बन्ध मे हम सब से अधिक श्रेय गो० तुलसीदास जी का ही मानते हैं जिन्होंने रामायण मे आदि से अन्त तक भगवान शिव को परमोच्च पदवी प्रदान की है और भगवान विष्णु का सर्वाधिक प्रिय उन्ही को माना है। हमे यह कहने मे भी कुछ सकोच नही कि इस विषय मे वैष्णव पुराणो न अधिक उदारता दिखलाई है। शैव पुराणो मे "स्कन्द पुराण" इस क्षेत्र म अग्रगण्य है जिसने अपने विशाल कलेवर मे एक स्वतन्त्र "वैष्णव खण्ड" का समावेश किया है और जगन्नाथ, अयोध्या, मथुरा आदि वैष्णव क्षेत्रो का सविस्तार वर्णन किया है। "कूर्म पुराण" को भी शैव माना जाता है, पर उसम कही विष्णु क प्रति उपेक्षा अवज्ञा का भाव प्रकट नही किया गया है। इस प्रकार की साम्प्रदायिक सहिष्णुता का परिणाम हमेशा हितकारी ही होता है और उससे धर्म की वृद्धि तथा समाज का कल्याण निश्चित रूप से होता है।

गगा और गायत्री क प्रति भी पुराणकार ने आन्तरिक श्रद्धा और भक्ति प्रकट की है। गगा की महिमा विश्वव्यापी है और गायत्री को भी सभी ज्ञानी जनो ने मत्रराज स्वीकार किया है। इसी लिये गगा, गायत्री, गीता और गौ को हिन्दू धर्म तथा सस्कृति की आधार शिला कहा गया है। गगा की महिमा कहते-कहत ता पुराणकार थकते ही नहीं। अन्त मे यह कह दिया है—

नास्ति गगा सम तीर्थं नास्ति मानृसमो गुरु ।
नास्ति विष्णु सम देवम् नास्ति तत्त्व गुरो परम्।।

गगा स बढकर कोई तीर्थ नही है, क्योकि वह लोगो को परलोक क सुधारन का ही विश्वास नहीं दिलाती वरन् इस लोक म भी मानसिक शान्ति और शारीरिक स्वास्थ्य प्रदान करक कितना ही का कष्टो

साक्षात् श्री हरि रूप है और श्री हरि साक्षात् शिवलिङ्ग रूप हैं। इन दोनो मे थोडा भी अन्तर नही है। जो यह भेद करता है उसकी बुद्धि खोटी है। अज्ञान के समुद्र मे डूबे हुए पापी मनुष्य ही भगवान विष्णु और शिव मे भेद करते हैं। जो सम्पूर्ण जगत के स्वामी और कारणो के भी कारण, वे भगवान् विष्णु ही प्रलय-काल मे रुद्र रूप धारण कर लेते हैं। इसी प्रकार भगवान रुद्र ही विष्णु रूप से सम्पूर्ण जगत का पालन करते है। वे ही ब्रह्माजी के रूप में ससार की सृष्टि करते हैं, तथा अन्त मे हर रूप से वे ही तीनो लोको का सहार करते हैं। जो मनुष्य भगवान विष्णु, शिव तथा ब्रह्माजी मे भेद बुद्धि करता है वह अत्यन्त भयकर नरक मे जाता है।"

यद्यपि वर्तमान समय मे हमको इन बातो मे कोई विशेष महत्व प्रतीत नही होता, पर अबसे हजार-डेढ हजार वर्ष पूर्व देश की धर्मनीति ही नही वरन् समाजनीति और राजनीति का निर्णय भी इन्ही भावनाओ पर आधारित था। शैव और वैष्णव अपने-अपने सम्प्रदायो के नाम पर एक दूसरे पर शाब्दिक आक्षेप—गाली-गलौज ही नही करते थे, वरन् वे प्राय आपस मे भिड भी जाते थे, जिसमे सैकडो व्यक्तियो की प्राणहानि होती थी और अनेक निर्दोष व्यक्ति भी कष्ट पाते थे। यह सघर्ष इससे भी प्राचीन समय मे उपस्थित हो गया था। जिसकी स्मृति दक्ष प्रजापति और शिवजी के खुले युद्ध के रूप के वर्णन मे मौजूद है। बाद मे यह मनोवृत्ति कुम्भ जैसे धार्मिक मेलो मे प्रकट होने लगी जिनमे शैवो और वैरागियो के सैनिक सगठन आपस मे लड जाते थे। इस प्रकार यह साम्प्रदायिक वैमनस्य की भावना सैकडो-हजारो वर्षों से हिन्दू-समाज को छिन्न-भिन्न और कमजोर करती चली आती थी। अन्त मे जब अनुभव होने पर विद्वानो ने इस त्रुटि को समझा तो उन्होंने विष्णु और शिव मे सामञ्जस्य स्थापित करने का प्रयत्न किया।

यद्यपि संस्कृत भाषा के पुराणों में भी अनेक स्थलों पर ऐसे वर्णन पाये जाते हैं, पर इस सम्बन्ध में हम सब से अधिक श्रेय गो० तुलसी-दास जी का ही मानते हैं जिन्होंने रामायण में आदि से अन्त तक भगवान शिव को परमोच्च पदवी प्रदान की है और भगवान विष्णु का सर्वाधिक प्रिय उन्ही को माना है। हमें यह कहने में भी कुछ सकोच नहीं कि इस विषय में वैष्णव पुराणों ने अधिक उदारता दिखलाई है। शैव-पुराणों में "स्कन्द पुराण" इस क्षेत्र में अग्रगण्य है जिसने अपने विशाल कलेवर में एक स्वतन्त्र "वैष्णव खण्ड" का समावेश किया है और जगन्नाथ, अयोध्या, मथुरा आदि वैष्णव क्षेत्रों का सविस्तार वर्णन किया है। "कूर्म पुराण" को भी शैव माना जाता है, पर उसमें कही विष्णु के प्रति उपेक्षा अवज्ञा का भाव प्रकट नहीं किया गया है। इस प्रकार की साम्प्रदायिक सहिष्णुता का परिणाम हमेशा हितकारी ही होता है और उससे धर्म की वृद्धि तथा समाज का कल्याण निश्चित रूप से होता है।

गगा और गायत्री के प्रति भी पुराणकार ने आन्तरिक श्रद्धा और भक्ति प्रकट की है। गगा की महिमा विश्वव्यापी है और गायत्री को भी सभी ज्ञानी जनों ने मत्रराज स्वीकार किया है। इसी लिये गगा, गायत्री, गीता और गौ को हिन्दू धर्म तथा सस्कृति की आधार शिला कहा गया है। गगा की महिमा कहते-कहते तो पुराणकार थकते ही नहीं। अन्त में यह कह दिया है—

नास्ति गगा सम तीर्थं नास्ति मातृसमो गुरु.।
नास्ति विष्णु सम देवम् नास्ति तत्त्व गुरो परम्॥

गगा से बढकर कोई तीर्थ नहीं है, क्योंकि वह लोगों को परलोक के सुधारने का ही विश्वास नहीं दिलाती वरन् इस लोक में भी मान-सिक शान्ति और शारीरिक स्वास्थ्य प्रदान करके कितनों ही का कष्टों

से उद्धार करती है। गायत्री वेदमाता है, जिसकी साधना करने से मनुष्य को धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारो फल प्राप्त होते हैं। विद्वानो के मतानुसार गायत्री की उपासना करने वाले भी 'वैष्णव' ही कहे जा सकते हैं क्योंकि चारो वेदो का लक्ष्य भी विष्णु स्वरूप परब्रह्म ही होता है।

सामान्य धर्म का पालन--

पर इस प्रकार की देवोपासना और साम्प्रदायिक क्रिया-कर्म से बढ़ कर वे कर्तव्य और व्यवहार हैं जो मनुष्य को प्रतिदिन अन्य व्यक्तियो के सम्पर्क मे आकर करने पडते हैं। यदि कोई व्यक्ति मन्दिर मे बैठकर घटा-आध घटा पूजा पाठ करता है, पर लोगो के सज्जनता के कार्यों मे सहयोग नही देता, विपत्तिग्रस्त भाइयो की सेवा सहायता को तैयार नही होता तो उसकी उपासना-पूजा व्यर्थ ही समझनी चाहिये। भगवान की पूजा और आराधना का वास्तविक उद्देश्य यही है कि मनुष्य के हृदय मे श्रेष्ठ और सज्जनता के भाव उत्पन्न हो और वह अपने दैनिक व्यवहारो मे इस बात का ध्यान रखे कि उससे अन्य लोगो को प्रसन्नता हो। इस बात को 'नारदपुराण' मे बहुत स्पष्ट रूप से कहा गया है—

सर्वलोक हितैषित्व मगल प्रियवादिता।
अनायासो मनोहर्षस्तितक्षा नातिमानिता।
सामान्य सर्व वर्णाणा मुनिभि· परिकीर्तितम्॥

"सब लोगो का हित चाहना, सबका मङ्गल साधन करना, प्रिय वचन बोलना, किसी को कष्ट न पहुँचाना, मन को प्रसन्न रखना, सहनशील होना, व्यर्थ का घमण्ड न करना—यही ऋषियो ने सब मनुष्यो का सामान्य धर्म बतलाया है।" इसका पालन करके प्रत्येक व्यक्ति, चाहे वह किसी वर्ण का हो मुनियो के समान माननीय हो जाता है।

इसके विपरीत आचरण करने वाला नागरिकता के भी अयोग्य माना जाना चाहिए। प्राचीन समय मे समाज का सगठन वर्ण-धर्म के आधार पर किया गया था और प्रत्येक व्यक्ति को समाज के प्रति अपने कर्तव्यो का पालन करना पडता था। जो इसमे ढील करता या अथवा ऐसा व्यवहार करता था जिससे अन्य लोगो का अकल्याण हो, समाज की शान्ति भग हो, उसमे विश्रृखलता उत्पन्न हो, तो ऐसे व्यक्ति को दडित किया जाता था, या उसे समाज से बाहर समझा जाता था। प्राचीन समय मे गाँवो और कस्वो तक का नागरिक जीवन ऐसा सगठित और अनुशासन युक्त था कि उसमे रहकर कोई व्यक्ति मनमाने ढग से कार्य नही कर सकता था। इसमे उसको समाज हितकारी मार्ग पर ही चलना पडता था।

वर्तमान समय को यद्यपि हम उन्नतिशील मानते हैं और उद्योग धन्धो की वृद्धि तथा वैज्ञानिक उपकरणो के व्यवहार के आधार पर यह कहने लगत हैं कि अब मनुष्यो का जीवन पहले की अपेक्षा बहुत सुख-सुविधापूर्ण हो गया है, पर वास्तव मे बात ऐसी नही है। इस समय समाज की व्यवस्था नियम तथा कर्तव्य पालन के बजाय धन तथा सम्पत्ति पर आधारित हो गयी है। जो जितना ही अधिक धन सम्पन्न होगा वह उतना ही समाज की परवाह किये बिना स्वेच्छापूर्वक रह सकेगा। सर्व साधारण म ऐसी कहावतें प्रसिद्ध हो गयी हैं कि 'पैसा हो तो शेरनी का दूध भी मिल सकता है" अथवा "सर्वगुण कचन माश्रयन्ति" (सब प्रकार के गुण सुवर्ण द्वारा ही प्राप्त किये जा सकते हैं। हम नही समझत कि जब सदाचार और विद्या के बजाय धन को मनुष्य की उत्कृष्टता की कसौटी बना दिया गया तो मानव सभ्यता और सस्कृति की उन्नति कैसे मानी जा सकती है। धन तो मनुष्य भले बुरे कैसे भी उपाया म प्राप्त कर सकता है अथवा वह उसे जुआ, लाटरी कही पडा हुआ आदि के रूप म भी मिल सकता है। पर इसमे उसम

सद्गुणो की वृद्धि कैसे होगी ? हम तो प्रायः यही देखते हैं कि इस प्रकार अनायास धन पाजाने वाले प्रायः तरह-तरह के दुर्व्यसनों मे फँस जाते हैं और अनेक प्रकार के कुकर्म करने लगते हैं। इसलिये प्राचीन ज्ञानी जनो ने "धर्म" अथवा मानव कर्तव्य के जितने भी लक्षण बतलाये हैं उनमे धन की अधिकता को कही स्थान नही दिया गया है। "श्रीमद्-भागवत्" मे धर्म के निम्न तीस लक्षण लिखे हैं—

सत्य दया तप शौच तितिक्षेक्षा शमो दमः।
अहिंसा ब्रह्मचर्य च त्यागा' स्वाध्याय आर्जवम्॥
सतोष' समदृक् सेवा ग्राम्येहो परम. शनैः।
नृणा विपर्यये हेक्षा मौनमात्म विमर्शनम्॥
अन्नाद्यदि सविभागो भूतेभ्यश्च यथार्हतः।
तेष्वात्म देवता बुद्धि. मुतरा नृपु पाडव॥
श्रवण कीर्तन चास्य स्मरण महताम् गतेः।
सेवेज्यावनतिर्दास्यं सख्यमात्मसमर्पणम्॥
नृणामय परो धर्म' सर्वेषा समुदाहृतः।
त्रिशल्लक्षणवान् राजन् सर्वात्मा ये न तुष्यति॥

"सत्य, दया, तपस्या, शौच, तितिक्षा, उचित अनुभव का विचार, मन का सयम, इन्द्रियो का सयम, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, त्याग, स्वाध्याय, सरलता, सन्तोष, समदर्शी महात्माओ की सेवा, धीरे-धीरे सासारिक भोगो की चेष्टा से निवृत्ति, मनुष्य के अभिमान, पूर्ण प्रयत्नो का फल उलटा ही होता है—ऐसा विचार, मौन, आत्मचिन्तन, प्राणियो को अन्न आदि का यथायोग्य विभाजन, सब जीवो मे आत्मा तथा अपने इष्टदेव का भाव, भगवान का श्रवण, कीर्तन, सेवा, पूजा, नमस्कार, दास्यभाव, सख्य-भाव और आत्म समर्पण। ये सभी मनुष्यो के परम धर्म हैं। इनके पालन से सर्वात्मा भगवान प्रसन्न होते हैं।"

पाठक देखेगे कि इन तीस लक्षणो मे कही भी धन का उल्लेख

नहीं है और भगवान की भक्ति का नाम भी अन्त में आया है। वास्तव में जिसने आरम्भ ही मे एक सज्जन व्यक्ति के सामान्य गुणो—सत्य, दया, क्षमा, सहनशीलता सयम, सन्तोप, परोपकार आदि का अभ्यास नहीं किया वह भगवान् की भक्ति क्या करेगा ? और भगवान भी ऐसे मनुष्य को क्या अपनायेंगे ? फिर जो व्यक्ति उपर्युक्त सब धर्मों का यथोचित रीति से पालन करेगा उसे जीवन निर्वाह के लायक साधन स्वयम् ही मिल जायेंगे। अगर कम भी मिलें तो वह यह देखकर सतोप रखेगा कि ससार मे करोडो व्यक्ति ऐसे भी मौजूद हैं जिनको उतना भी प्राप्त नहीं है।

"भगवद् गीता" मे भी समस्त वर्णों के धर्मों का वर्णन इसी से मिलता जुलता किया गया है—

शमो दमस्तप शौच क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञान विज्ञानमास्तिक्य ब्रह्म कर्म स्वभावजम् ॥
शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्य युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्र कर्म स्वभावजम् ॥
कृषि गौरक्ष्य वाणिज्य वैश्य कर्म स्वभावजम्।

"शम, दम, शौच, क्षमा, सरल, स्वभाव, ज्ञान-विज्ञान ब्राह्मणों के स्वाभाविक धर्म हैं। शौर्य, तेज, धैर्य, चतुरता, युद्ध से पराङ्मुख न होना, दान, सुशासन क्षत्रियो के धर्म नहीं हैं। खेती, गोपालन, वाणिज्य आदि वैश्यो के धर्म हैं।"

गीता मे तो पूजा पाठ का नाम भी नहीं लिया है। इसका आशय यही है कि जो मनुष्य सचाई के साथ अपने उत्तरदायित्व का पालन कर देता है, वही वास्तविक भगवान की पूजा और उपासना है। उसके पूरा करने के बाद अगर समय मिले और रुचि हो तो मन्दिरो के दर्शन, भगवान की स्तुति और भजन भी किये जा सकते हैं। पर अपने पारिवारिक, सामाजिक राष्ट्रीय और मानवीय कर्तव्यों को त्याग कर

केवल पूजापाठ मे लग रहना और उसी आधार पर अपने को धार्मिक या भगवद्-भक्त समझ लेना एक बहुत बडी गलती या आत्म वचना है। इस तथ्य का निरूपण करते हुए लोकमान्य तिलक ने 'गीता रहस्य' मे कहा है।

"कुछ लोगो की ऐसी समझ हो गयी है कि सच्चा भगवद् भक्त वही है, जो सासारिक कर्मों को छोड कर विरक्त हो, केवल भक्ति मे ही निमग्न हो जावे। इस सम्बन्ध मे हम यह बतलाना चाहते है कि भक्तिमार्ग वालो का 'ब्रह्म' सगुण भगवान माना गया है। जब वह सारे ससार का सचालन कर्ता है और समय-समय पर अवतार लेकर साधु-जनो की रक्षा और दुष्टो को दण्ड देने का कार्य किया करता है, तो उसके भक्तो को उसका अनुकरण करके कर्म करते रहना आवश्यक है या नही ? हनुमानजी श्रीराम के बडे भक्त थे, पर क्या उन्होने रावण आदि दुष्टो को नष्ट करने का कर्तव्य-कर्म त्याग दिया था। इसी प्रकार भीष्म पितामह की गणना परम भगवद्-भक्तो मे की जाती है, पर क्या वे आजन्म राज्य-रक्षा का कार्य नही करते रहे ? यह सच है कि जब भक्ति द्वारा परमेश्वर का ज्ञान हो जाता है, तब भक्त मे स्वय अपने हित के लिये कोई कामना या वासना शेष नही रह जाती। परन्तु इससे दया,करुणा कर्तव्यनिष्ठा आदि श्रेष्ठ मनोवृत्तियो का नाश नही होसकता, बल्कि वे और भी अधिक शुद्ध हो जाती है। ऐसी दशा मे यह प्रश्न तो उठता ही नही कि कर्म करे या नही। वरन् भगवान का यथार्थ भक्त तो वही है जिसके मन मे ऐसा अभेद भाव उत्पन्न हो जाय—

"जिसका कोई न हो हृदय से उसे लगावे,
प्राणिमात्र के लिये प्रेम की ज्योति जगावे।
सबमें विभु को व्याप्त जान सबको अपनावे,
है बस ऐसा वही भक्त की पदवी पावे॥'

सच्चे दान का स्वरूप–

दान की प्रशंसा पुराणों में बहुत अधिक पाई जाती है। पर्वों, व्रतों और संस्कार आदि के अवसरों पर तो दान देना आवश्यक माना ही जाता है, पर अन्य समय भी जब कोई याचक सामने आजाय तो उसको विमुख लौटाना बड़ा हीनता का कार्य समझा जाता है। पुराणों में अपनी हड्डियों का दान करने वाले दधीचि, सम्पूर्ण राज्य का दान करने वाले कर्ण और पुत्र को सिंह के भक्षणार्थ दे डालने वाले मोरध्वज का अत्यन्त भावपूर्ण शैली में वर्णन किया गया है। यहाँ दान की महिमा इतनी अधिक बतलाई गई है कि उसके फल से लोक-परलोक की सब विभूतियां अनायास प्राप्त हो जाती हैं। पर साथ ही यह भी शर्त है कि सत्पात्र को दिया गया दान ही उत्कृष्ट परिणाम उत्पन्न करता है, कुपात्र और अपात्र को दिया गया दान निरर्थक हो जाता है। कभी तो दान का ऐसा दुरुपयोग होता है कि उसके कारण दाता को और भी अधोगति का भागीदार बनना पड़ता है। 'नारद पुराण' में अनुचित दान के सम्बन्ध में चेतावनी देते हुये लिखा है—

"सदाचारी ब्राह्मण दान का श्रेष्ठ पात्र है। पर जो ब्राह्मण क्रोधी, दम्भाचार परायण, तथा अपने कर्म का त्याग करने वाला हो, उसको दिया हुआ दान निष्फल होता है। जो परायी स्त्री में आसक्त, पराये धन का लोभी तथा ज्योतिष का धन्धा करने वाला हो वह भी दान का पात्र नहीं होता। जिसके मन में दूसरों के दोष देखने का दुर्गुण भरा है, जो हिंसक, दुष्ट और रस का विक्रय करने वाला है, उसको दिया दान व्यर्थ होता है। जो गीत गाकर जीविका चलाता है, जिसकी स्त्री व्यभिचारिणी है, जो दूसरों को कष्ट देने वाला है, जो स्याही से निर्वाह करता है, जो देव पूजा की नौकरी करता है, समूचे गाँव का पुरोहित है, धावन (हरकारा) का काम करता है रसोइये का काम

करता है, कविता द्वारा लोगो की झूंठी प्रशंसा करता है, चिकित्सा का पेशा करता है, अभक्ष भक्षण करता है उसको दिया दान व्यर्थ होता है। जो भगवान के नाम-जप को बेचता है, सध्या-कर्म को त्यागने वाला है, दूषित दान ग्रहण करता है, दिन मे मैथुन करता है, जो अत्यन्त दुष्ट है, शराबी, मासखोर, स्त्री लम्पट, अत्यन्त लोभी, चोर और चुगली खाने वाला है, उसको दिया हुआ दान निष्फल होता है। जो कोई भी पाप परायण हो, सज्जन पुरुषो द्वारा सदा निन्दित हो, उनसे न तो दान लेना चाहिये और न उन्हे देना ही चाहिये।"

यदि इन नियमो का मिलान वर्तमान स्थिति से किया जाय तो सब बाते उल्टी ही दिखाई पडती है। आजकल जो साधु-सन्यासी, पडा पुजारी, ब्राह्मण और पडित दान ले रहे हैं वे प्राय सुलफा, गाजा, तम्बाकू, भाग आदि का नशा करने वाले ही होते हैं। उनमे क्रोधी, कामी लोभी, दम्भी व्यक्तियो की ही सख्या अधिक होती है। कपट, ठगी, झूंठ, चुगलखोरी आदि के दुर्गुण भी उनमे कम नहीं होते। फिर ऐसे लोगो को दान देने से दाता का क्या भला हो सकता है ? इसलिये दान वही कल्याणकारी कहा जा सकता है जो सत्पात्र को, सत्कर्म के लिये, सद्भावना से दिया जाय। दान लेने वाला यदि सत्पात्र भी मिल जाय, पर दान दाता की मनोभावना शुद्ध न हो तब भी उसकी गणना उत्तम दान मे नही हो सकती। इस सम्बन्ध मे पुराणकार ने कहा है—

"जो ब्राह्मण सत्कर्म मे लगा हो उसे स्वयम् प्रयत्न करके दान देना चाहिए। जो दान श्रद्धापूर्वक तथा भगवान को समर्पण पूर्वक दिया गया हो एवम् जो उत्तम पात्र के याचना करने पर दिया गया वह सर्वोत्तम है। इहलोक तथा परलोक के लाभ का उद्देश्य रखकर जो दान सुपात्र को दिया जाता है वह मध्यम माना गया है। जो दम्भ से, दूसरो की हिंसा के लिये, अविधिपूर्वक, क्रोध से, अश्रद्धा से

और अपात्र को दिया जाता है, वह दान अधम माना गया है।"
"भगवद् गीता" में भी दान के विषय में ऐसी ही मान्यता प्रकट की गई है—

> यज्ञ दान तप कर्म न त्याज्य कार्यमेव तत्।
> यज्ञो दान तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्॥
> एतान्यपि तु कर्माणि सङ्ग त्यक्त्वा फलानि च।
> कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चित मतमुत्तमम्॥
> अश्रद्धया हुत दत्त तपस्तप्त कृत च यत्।
> असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह॥

अर्थात्—"यज्ञ, दान, तप और कर्म का त्याग न करना चाहिए क्योंकि ये सब बातें श्रेष्ठ पुरुषों के लिये भी कल्याणकारी है। पर इन कर्मों को भी बिना आसक्ति रखे, फलाशा का त्याग करके, कर्त्तव्य भावना से करते रहना चाहिये। साथ ही यह भी समझ लेना चाहिये कि जो यज्ञ, दान अथवा तप अश्रद्धापूर्वक किया जाता है, वह 'असत्' है और लोक अथवा परलोक में कहीं भी कल्याणकारी नहीं होता।"

दान, सत्कर्म अवश्य है, और उससे समाज का हित होता है, पर उसी दशा में जब उसे जरूरतमन्द को बिना किसी स्वार्थ या लाभ की भावना के दिया जाता है। हम इसको केवल आत्म-कल्याण का हेतु ही नहीं मानते वरन् अप्रत्यक्ष रूप से इसके द्वारा समाज में सम्पत्ति का सतुलन भी बना रहता है। धन का केन्द्रीकरण होना समाज के लिये कभी हितकर नहीं माना जा सकता, क्योंकि इससे बहुसख्यक लोगों में कष्ट और असन्तोष की वृद्धि होती है और उससे अन्त में समाज की शक्ति भङ्ग होती है। इसलिये जिस प्रकार आजकल कानून द्वारा अधिक सम्पत्ति वालों पर तरह-तरह के टैक्स लगा कर उनकी सम्पत्ति को सार्वजनिक हित के कार्यों में व्यय किया जाता है, उसी प्रकार प्राचीन समाज विधान के ज्ञाताओं ने दान

की प्रेरणा ही थी, जिससे धन एक जगह एकत्रित न होकर समाज में वितरित होता रहे। हम हिन्दू और बौद्ध शास्त्रों में ऐसे सैंकड़ों धनी व्यक्तियों का वर्णन पढ़ते हैं जिन्होंने अपनी लाखों अथवा करोड़ों की सम्पत्ति लोक कल्याण अथवा धर्म-कर्म के लिये दे दी। यहाँ हर्ष जैसे राजा भी हो चुके हैं जो अपनी आय में से बचे धन को प्रति वर्ष दान के रूप में अभावग्रस्त लोगों में बाँट देते थे। वर्तमान समय में जब कि लोगों को कानून द्वारा अपना धन देने को बाध्य किया जाता है तब वे तरह-तरह की चालाकियाँ करके कम से कम देने का प्रयत्न करते हैं। पर प्राचीन समय में जब उनको दान की प्रेरणा दी जाती थी तब वे स्वेच्छा से अपना धन देते थे जिससे सर्व साधारण में भी बेईमानी और धूर्तता के बजाय उदारता और त्याग की भावना बढ़ती थी। इस दृष्टि से उचित रीति से किये दान को आत्मा को शुद्ध बनाने के अतिरिक्त समाज में सामञ्जस्य और सतुलन का साधन भी माना जा सकता है।

गृहस्थ धर्म के विशेष नियम

यद्यपि देश-काल में परिवर्तन हो जाने से अब गृहस्थ जनों के रहन-सहन और व्यवहार में बहुत अन्तर पड़ गया है, तो भी 'नारद पुराण' में इस सम्बन्ध में जो नियम बतलाये हैं उनमें से कितने ही अब भी उपयोगी हैं। उदाहरण के लिये उन्होंने ब्रह्मचर्य आश्रम की अवधि पूर्ण करके गृहस्थ आश्रम में प्रविष्ट होने वाले व्यक्ति के लिये 'उत्तम कुल में उत्पन्न, रूप, लावण्य से युक्त, सद्‌गुणवती, सुशीला तथा धर्म परायण कन्या' के साथ विवाह करने की सम्मति दी है जो उचित ही है। साथ ही उन्होंने विवाह-सम्बन्ध करने के लिये अयोग्य कन्याओं के जो कितने ही लक्षण बतलाये हैं वे विशेष रूप से ध्यान देने योग्य हैं—

'जो कन्या रोगिणी हो अथवा किसी विशेष रोग से युक्त कुल में उत्पन्न हुई हो, जिसके केश बहुत अधिक हों या बहुत कम हों, जो

सर्वथा केश रहित हो, जो बहुत बोलने वाली हो, उससे विद्वान् पुरुष विवाह न करे। जो बहुत क्रोध करने वाली, बहुत नाटी या बहुत बढे शरीर वाली, अति कुरूपा, किसी अङ्ग से हीन या अधिक अङ्ग वाली, उन्मादिनी और चुगली करने वाली हो अथवा जो कुबडी हो, उससे भी विवाह न करे। जो सदा दूसरो के घर मे रहती हो, झगडालू हो, मति-भ्रान्त हो, निष्ठुर स्वभाव वाली हो, बहुत खाने वाली हो, जिसके दांत और ओठ मोटे हो, जिसकी नाक से घुर्राहट की आवाज आती हो और जो धूर्त हो, विद्वान् पुरुष उससे भी विवाह न करे। जो छल कपट करने वाली हो, जो बहुत घमंडी और बगुला-वृत्ति वाली (ऊपर से साधु और भीतर से दुष्ट) हो उससे भी विवाह करना उचित नहीं है।'

पुराणकार ने जिस प्रकार की लडकियो को विवाह के लिये अनुपयुक्त बतलाया है अब भी जानबूझ कर और सुविधा रहते पर उनसे विवाह करने को कोई तैयार नहीं होता। पर एक अन्तर अवश्य है कि जहाँ 'नारद पुराण' मे स्वभावगत दोषो पर ज्यादा जोर दिया है वहाँ आजकल बाहरी रूप रङ्ग और बनाव चुनाव की दृष्टि से ही अधिक छानबीन की जाती है। इस समय क्या पुरुषो मे और क्या स्त्रियो मे चरित्र की शुद्धता, पवित्रता, नैतिकता आदि की नजाय फैशन, सजावट बातूनीपन और शान शौकत को ही अधिक महत्व दिया जाने लगा है। इससे गृहस्थी के सुख और स्थिरता मे ही कमी नहीं आई है वरन् सामाजिक सुव्यवस्था, सहयोग और सङ्गठन मे भी कमी पडती जाती है। क्योंकि ऊपर लिखी प्रवृत्तियां मनुष्य के व्यक्तिगत लाभ और आराम की मनोवृत्ति को बढावा देती हैं और जब अधिक जनसख्या इन बातो को अपना लेती है तो उनमे हानि-कारक प्रतिस्पर्धा और अनैतिक साधनो से अपने लक्ष्य को पूरा करने की भावना जड पकड लेती है। ऐसा समाज जिसके सदस्य अपने-

अपने स्वार्थ को समष्टि की सुख-सुविधा की अपेक्षा प्रधानता दें उन्नत और सुखी नही बन सकता ।

आगे चलकर सामान्य नागरिको के लिये खाने, पीने, पहिनने और शिष्टाचार के जो नियम बतलाये हैं, उनमे से बहुत सी बातें अब भी अशिक्षित वर्ग के बहुसख्यक लोगो मे पाई जाती हैं, पर नवीन शिक्षा प्राप्त लोगो को वे अजीब ही लगेंगी । कहा गया है कि 'गृहस्थ व्यक्ति दो यज्ञोपवीत, दुपट्टा (बडा अँगोछा), सोने के कुण्डल और धोती जोडा रखे । उबटना, चन्दन, तेल लगाता रहे । केश, नाखून आदि कटाता हुआ पवित्र रहे और छडी लाठी तथा जल-पात्र रखे । स्वच्छ पगडी, छाता और जूता पहिने, पुष्पमाला धारण करे, सुगन्धित वस्तु का व्यवहार करे । ऐसा वेश रखे जो सबको भला जान पडे । सदा स्वाध्याय करता रहे, अपने धर्म के अनुसार आचरण करता रहे, दूसरो का अन्न खाने और दूसरो की निन्दा करने से बचे । पैर पर पैर न रखे, झूँठे पदार्थों को न लाघे, दोनो हाथो से सिर को न खुजावे । द्विज और देवालय के बायीं ओर होकर चले । देव पूजन, आचमन, स्नान, व्रत, श्राद्ध आदि मे खुले केश अथवा चोटी न रखे । एक ही वस्त्र न पहिने रहे, गधा आदि खराब सवारी पर न चढे और निरर्थक वाद-विवाद न करे । व्यभिचार और चुगली से बचे और गौ, पीपल, अग्नि और पर्वत इनका बायीं ओर लेता चले ।

'असूया, मत्सरता और दिन का सोना त्याग दे । दूसरे के पापों का वर्णन न करे अपने पुण्य को किसी से न कहे । अपने नाम, नक्षत्र तथा धन बल आदि का जिक्र किसी के सामने न करे । दुष्टों के साथ निवास न करे, शास्त्र के विरुद्ध चर्चा न सुने तथा मद्य, जुआ और गाने-बजाने मे आसक्ति न रखे । गीली हड्डी, जूठी वस्तु, पतित, मुर्दा और कुत्ते को छूकर वस्त्र सहित स्नान करे । चिता, चिता की लकडी, यूप (पशुओ को मारने का स्तम्भ)

चाडाल का स्पर्श कर लेने पर वस्त्र सहित स्नान करे । दीपक, खाट और शरीर की छाया, केश, वस्त्र और चटाई का जल, तथा बकरी, बिल्ली तथा झाड़ू की धूल, इन सबसे बचे क्योंकि ये सब प्रारब्ध का हरण करते हैं। सूप की हवा, शव-दाह का धुआँ, शूद्रा स्त्री के पति से दूर रहे तथा नाखून तथा बाल का दाँतो से चबाना, नङ्गा होकर सोना त्याग दे। सिर मे लगाने से बचे तेल को शरीर मे न लगावे, अपवित्र (बाजार से लाये) पान को न खाय, बाँयें हाथ अथवा केवल मुख स जल न पिए। गुरु की छाया पर पैर न रखे, उनकी आज्ञा भी कभी न टाले, योगी, यती, ज्ञानी पुरुषो की कभी निन्दा न करे। साय, प्रात उपासना, हवन आदि अवश्य करे।"

प्राचीन समय के लोग दैनिक जीवन मे जिन बातो को अनुचित, हानिकारक अथवा सामान्य शिष्टाचार के विपरीत समझते थे उनका यह काफी विस्तृत विवरण है। स्मृतियो मे और भी बहुत सी बातें त्याज्य बतलाई है। वर्तमान समय मे रहन सहन की परिस्थितियो मे अन्तर पड जाने से इनमे से अनेक बातों का अनावश्यक अथवा वहम समझा जाता है। इस समय के शिक्षित व्यक्ति छुआछूत की बातो का एक ढकोसला मानने लगे हैं और अस्पृश्यता को हटाने के लिये कानून द्वारा भी प्रयत्न किया जाताहै। पर इसमे विचारणीय विषय यह है कि जन्म से किसी को शूद्र, अस्पृश्य या चाण्डाल आदि मान लेना तो प्रत्यक्ष मे अनुचित है, पर जो व्यक्ति किसी गन्दे पेशे का करने के कारण प्राय गन्दी हालत मे रहते हैं, उनसे दूर रहने के नियम को बुरा नहीं कहा जा सकता। उदाहरण के लिये जो वधिक या कसाई पशुओ को काटने और उनका माँस बेचने का कार्य करते हैं,अथवा जो मृत पशुओ के चाम और उनका चमडा आदि निकालने का काम करते हैं, उनके वस्त्रो तथा हाथ, पैर आदि मे इन पदार्थों का कुछ अश लगा ही रहता है। उनसे पृथक रहना स्वच्छता की दृष्टि से आवश्यक मानना चाहिये। इसमे

नीच ऊँच का प्रश्न उठाना ठीक नही । इसी प्रकार गीली हड्डी, पशु वधके स्तम्भ, मुर्दा जैसी जैसी वस्तुओ के स्पर्श से मन मे घृणा उत्पन्न होती है । उस अवसर पर स्नान करके ग्लानि को मिटा देना अनुचित नही कहा जा सकता ।

कुछ बाते वहम की तरह लगती है पर विचार करने से उनके पालन मे कोई दोष नही जान पडता । दीपक, खाट और शरीर की छाया अपने ऊपर न पडने देना, केश, वस्त्र और चटाई से टपकते जल को अशुद्ध मानना, बकरी, बिल्ली तथा झाडू की धूल से बचना चाहे सौभाग्य या दुर्भाग्य का कारण न हो पर स्वास्थ्य और स्वच्छता की निगाह से इनका पालन अनुचित नही कहा जा सकता । हाँ इसमे जो 'कुत्ते को छूकर स्नान करने की बात लिखी है, वह कितने ही आधुनिक 'बाबुओ' और "मिस्टरो" को अनुचित लग सकती है । क्योकि वे छोटे कुत्तो को प्राय गोदमे लेते रहते हैं । पर हमको समझ लेना चाहिये कि पुराणकार का आशय ऐसे विशेष कुत्ता से नही है, वरन् रास्ते मे घूमने वाले 'गन्दे कुत्तो से है' ।

यह भी आवश्यक नही कि हम इस प्रकार के समस्त नियमो का पालन अवश्यमेव करे । देशकाल की परिस्थितियाँ बदल जाने से बहुत से नियम हमको कोई दूसरा उपाय न होने से त्यागने ही पडते हैं । उदाहरणार्थ पहले पैदल अथवा बैलगाडी आदि पर यात्रा करनेका चलन था । उस समय लोग दोपहर या सायङ्काल को किसी पडाव पर ठहर कर अपना भोजन आप बनाते थे । उसके लिये स्वयम् कुएँ से पानी खीच कर भूमि को झाड कर तथा जल छिडक कर शुद्धतापूर्वक भोजन की व्यवस्था की जाती थी । ऐसा भोजन शास्त्रीय विधि के अनुसार शुद्ध तथा स्वास्थ्यदायक हो सकता था । पर आजकल यात्रा का प्रधान साधन रेल या मोटर बस बन गई है । इन सवारियो मे बैठने लायक स्थान पाने के लिये भी संघर्ष करना पडता है, तब उनमे से उतर कर

भोजन बनाना और खाना सम्भव कैसे हो सकता है ? रेलवे स्टेशन पर तो हमको आँखों से यह देखते हुये कि वहाँ के खाद्य पदार्थ नीचे दर्जे के लोगों द्वारा बनाए और स्वच्छता की दृष्टि से असन्तोषजनक हैं, लाचार होकर उन्ही को उचित से ज्यादा मूल्य देकर खरीदना और काम में लाना पड़ता है ।

शहरों में भी परिस्थितिवश होटलों और भोजन की दुकानों का प्रचार निरन्तर बढ़ता जाता है और उनमे सभी जातियों और श्रेणियों के लोग काम करते है । उनमे भोजन करने वालों के लिये छुआछूत के प्राचीन नियमो का पालन करना किसी प्रकार सम्भव नही होता । बिस्कुट, डबलरोटी, टास्ट आदि जैसी नई खाद्य वस्तुओं को तो मशीनो द्वारा बड़े-बड़े कारखानों मे बनाया जाता है जहाँ सैकड़ो व्यक्ति बिना जाति या धर्म के भेदभाव के नौकर रख लिये जाते हैं । इस लिये अब भोजन करते समय हमेशा खाद्य पदार्थों के भले या बुरे स्रोत अथवा कार्यकर्ताओं के श्रेष्ठ अथवा जघन्य चरित्र का पता चला सकना प्रायः असम्भव है । इस अवस्था मे एक मात्र मार्ग यही रह जाता है कि हम स्वयम् तन, मन, धन की दृष्टि से शुद्ध रहें और किसी प्रकार का बुरा काम न करें । आप भला तो जग भला वाली कहावत यहां भी चरितार्थ हो सकती है ।

ज्योतिष और मंत्र विद्या—

ज्योतिष और मन्त्र-शास्त्र का विवेचन "नारदपुराण" की एक प्रसिद्ध विशेषता है । इसमे गणित [सिद्धान्त], जातक [होरा] और संहिता तीनों शाखाओं का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है । गणित-ज्योतिष तो सर्वमान्य है और पश्चिमीय वैज्ञानिक भी उसी के द्वारा सूर्य, चन्द्र, मंगल, शुक्र आदि ग्रहों की गति का ठीक ठीक हिसाब लगाकर उन तक अपने अन्तरिक्ष-यानों को पहुँचाने में सफल हो सके हैं। चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण, सूर्योदय और सूर्यास्त का समय आदि का निर्णय भी गणित ज्योतिष द्वारा किया जाता है जो बिल्कुल ठीक निकलता है।

"जातक-शाखा" का सम्बन्ध व्यक्तियो की भाग्य गणना और उनके जीवन में घटित होने वाले भावी परिवर्तनो तथा विशेष घटनाओ से माना गया है। सर्व साधारण को ज्योतिष की इसी शाखा का विशेष परिचय है और बाजार मे बैठ कर लोगो का राशिफल और भाग्य-फल बतलाने वाले 'ज्योतिषी" इसी के आधार पर हिसाब लगाया करते है। हमारे देश मे इसको "फलित ज्योतिष" भी कहते है। तीसरी शाखा "संहिता" मे देशव्यापी घटनाओ, वर्षफल, तिथि, दिन, नक्षत्र, योग, करण, मुहूर्त आदि के सम्बन्ध मे विचार किया जाता है। पचागो की रचना इसी के आधार पर की जाती है और भारतीय-समाज मे प्रचलित षोडश-संस्कारो के समय का निर्णय इसी के द्वारा किया जाता है।

ज्योतिष-शास्त्र एक बहुत प्राचीन विद्या है। वैदिक काल मे यज्ञो के कालनिर्णय मे उसका प्रयोग किया जाता था और राज्य तथा राष्ट्र सम्बन्धी सभी कार्य उसी के द्वारा उत्तम मुहूर्त का निश्चय करके किये जाते थे। इस कार्य के लिये केवल भारतीय राजा ही ज्योतिषियो को अपने दर्बारो मे नही रखते थे, वरन मिश्र, यूनान और रोम जैसे पश्चिमीय देशो के बादशाह और राष्ट्रपति भी इस विद्या पर पूरा विश्वास रखते थे और युद्ध, विग्रह, संधि, सैन्य-सचालन का काल निर्णय ज्योतिषियो के मतानुसार ही किया जाता था। 'बाइबिल' मे अनेक स्थानो पर भविष्य वक्ताओ का जिक्र आता है। पाठको को यह जान कर आश्चर्य होगा कि इस विज्ञान युग मे भी, जो दूसरा विश्व युद्ध सन् १९३९ से १९४५ तक वायुयानो और एटम बमो से लड़ा गया, सैन्य-सचालन मे ज्योतिषियो की सलाह ली जाती थी। जर्मनी के मुख्य कर्ता-धर्ता हिटलर को, जो संयोगो की बदौलत भिखारी से अधिनायक (डिक्टेटर) बन गया था, ज्योतिष पर विश्वास था। वह युद्ध-संचालन सम्बन्धी अपने सभी निर्णय ज्योतिष विभाग की सलाह से करता

था। इस विभाग मे पाच ज्योतिषी काम करते थे जिनका प्रधान विलियम क्राफ्ट था जो हिटलर का बडा विश्वासपात्र था।

जब अपने गुप्तचरो द्वारा इस रहस्य का पता इङ्गलैण्ड के अधिकारियो को लगा तो वहाँ के प्रधान मन्त्री मि० चर्चिल ने सोचा कि चाहे यह एक नई बात है और शायद मजाक ही हो पर इसमे फायदा क्यो न उठाया जाय। बस इगलैण्ड के सेना विभाग ने भी अपने देश मे लुई डी० व्होल नामक ज्योतिषी को खोज निकाला जो वास्तव मे हगरी का निवासी था, पर अब कई वर्ष से लन्दन मे आकर रहने लग गया था। उसने कुछ समय तक जर्मनी मे रह कर हिटलर के ज्योतिषी विलियम क्राफ्ट के साथ काम किया था और वह उसकी ज्योतिष विधियो को अच्छी तरह जानता था। डी०व्होल को अगरेजी सेना विभाग मे भर्ती करके कप्तान का पद दे दिया गया और उसने लगातार कई वर्ष तक हिटलर के युद्ध सम्बन्धी निर्णयो का भेद अगरेज सेनापतियो का बतलाकर जर्मनी की पराजय मे पर्याप्त सहयोग दिया।

ज्योतिष विद्या मे कहाँ तक सचाई है और ज्योतिषी लोग जो भाग्यफल या भविष्यफल बताया करते हैं वे कितने अशो मे सत्य अथवा असत्य सिद्ध होते हैं, इस विषय मे अधिक विवेचना करना यहाँ अप्रासङ्गिक होगा। हम केवल इतना ही कहना चाहते हैं कि हमारे देश मे ही नहीं विदेशो मे भी अभी बहुसख्यक लोगो का ज्योतिष विद्या पर विश्वास है और अच्छे समझदार और शिक्षित व्यक्ति भी किसी ज्योतिषी या हस्तरेखाज्ञाता को सामने देखकर अपना भविष्य फल पूछने का लोभ सम्वरण नहीं कर पाते। इस दृष्टि से 'नारद पुराण" का यह "त्रिस्कन्ध ज्योतिष वर्णन" वाला प्रकरण विशेष महत्वपूर्ण है। इसमे गणित ज्योतिष के वर्णन मे विभिन्न प्रकार के अकगणित, रेखा-गणित, क्षेत्र गणित आदि का जो सूक्ष्म रहस्य बतलाया गया है उससे लेखक की विद्वता प्रमाणित होती है। जातक और सहिता विभाग मे बतलाई गई विधिया भी स्पष्ट और सरल हैं जिनसे सभी श्रेणी के कम या अधिक पढ़े लिखे व्यक्ति लाभ उठा सकते हैं।

मन्त्र-शास्त्र का तो हमारे देश मे अब भी बहुत अधिक प्रचार है और बड़े-बड़े विद्वान् भी उसकी सचाई मे विश्वास करते हैं। यहाँ हजारो ऐसे व्यक्ति मिल सकते हैं जिनकी सफलता का मुख्य आधार किसी मंत्र का जप करना बतलाया जाता है। विद्या-प्राप्ति, धन लाभ, विवाह और सन्तान प्राप्ति, मुकदमा आदि मे विजय इत्यादि सब कार्यों के लिये मन्त्रो का प्रयोग बतलाया गया है और लोग उसे बड़ी श्रद्धा और उत्साह से करते भी हैं, "नारदपुराण" मे "मन्त्र" शब्द के 'म' का अर्थ मनन अथवा सर्वज्ञता तथा 'त्र' का त्राण [रक्षा] बतलाया गया है। तदनुसार मंत्र वह शक्ति है जिससे मनुष्य विविध प्रकार की सासारिक सफलतायें प्राप्त कर सकता है और अपनी रक्षा मे भी समर्थ हो सकता है। वैसे वर्तमान समय मे प्रचलित अधिकाश मन्त्र शाक्त और तांत्रिक मत के देखने मे आते हैं, पर 'नारदपुराण" वैष्णव आम्नाय का है, इसलिये इसके सभी मंत्र विष्णु, राम-सीता, कृष्ण, हनुमान से सम्बन्धित हैं। ये मन्त्र सकाम हैं, जिनका अनुष्ठान किसी भौतिक लाभ की इच्छा से किया जाता है। सभव है कि जो व्यक्ति दृढ श्रद्धा और एकाग्रनिष्ठा से इनका विधिवत् अनुष्ठान करते हैं उनको वैसा लाभ होता हो, फिर भी आध्यात्मिक विषयो मे निष्काम भावना रखना ही सर्वोत्तम है। इस सम्बन्ध मे एक विद्वान का निम्न कथन विचारणीय है—

"जो पुरुष किसी वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा से भगवान को भजता है, उसका ध्येय वह वस्तु है, भगवान नहीं है। वह वस्तु साध्य है, और भगवान तथा उनकी भक्ति साधन है। यदि किसी कारणवश उसके अभीष्ट की प्राप्ति मे देर होगी तो वह भगवान की भक्ति छोड़ सकता है। अतएव सकाम भाव से की हुई उपासना एक प्रकार से काम्य वस्तु की ही उपासना है, भगवान की नहीं। इस बात को समझ कर भगवान की उपासना निष्काम प्रेम भाव से, केवल भगवान की प्रसन्नता के लिये ही करनी चाहिए।

'इसके अतिरिक्त यह बात भी है कि सकाम अनुष्ठान का फल

प्रतिबन्धक की प्रबलता अथवा सरलता के अनुसार विलम्ब से या शीघ्र होता है। एक आदमी को किसी विशेष वस्तु या स्थिति की आवश्यकता है। वह उसके लिये सकाम उपासना करता है। यदि उस वस्तु या स्थिति की प्राप्ति में बाधक पूर्व जन्म का कर्म बहुत अधिक प्रबल होता है, तो एक ही अनुष्ठान से अभीष्ट फल नहीं मिलता, बार-बार अनुष्ठान करने पड़ते हैं। आजकल के सकामी पुरुषों में इतना धैर्य हो सकता, अतएव वे देवता में ही अविश्वास कर बैठते हैं, तथा उसकी अवज्ञा करने लगते हैं, जिससे लाभ के बदले उलटी हानि हो जाती है।"

वास्तव में भक्ति के सम्बन्ध में कुछ सम्प्रदाय वालों ने बहुत भ्रांति उत्पन्न करदी है। वे लोगों को यही बतलाते हैं कि भगवान का वर्णन करने, तीर्थों में स्नान करने और एकादशी आदि के व्रत करने से सद्गति मिलना अवश्यम्भावी है। चाहे उसने कैसे भी पाप क्यों न किये हों इसमें पुराणकारों का दोष भी कम नहीं है। उन्होंने अपनी कथाओं का प्रभाव जमाने के लिये जगह-जगह लिखा है कि अमुक व्यक्ति जन्म भर पाप करता रहा, पर अन्त समय किसी प्रकार व्रत या तीर्थ स्नान कर लेने से ही उसे उत्कृष्ट गति प्राप्त हो गई। "वाराह पुराण" में कुब्जाम्रक तथा कोकामुख आदि तीर्थ-क्षेत्रों में मरने से ही सर्पिणी, चील, गृद्ध, शृगाल आदि जीवों को राजा और धनवानों की योनि में सद्गति प्राप्ति होने की बात बतलाई गई है।

इसी तरह के अतिशयोक्तिपूर्ण कथनों के कारण अनेक लोगों को पुराणों पर शंका और अश्रद्धा हो जाती है। पर जैसा हम बराबर कहते आये हैं वे पुराणों को उपदेशात्मक धर्म कथाओं अथवा उपाख्यानों के रूप में पढ़ें तो ऐसी कोई समस्या उत्पन्न होने की आशंका नहीं रहती। हमने पुराणों में से ऐसे वर्णनों को कम करने की यथाशक्ति चेष्टा की है, जिससे उनकी उपयोगिता बढ़ी है और प्रचार भी होने लगा है। यदि पाठक ऐसा बुद्धिसङ्गत भाव रखकर पुराणों को पढ़ेंगे तो उनसे बहुत से कल्याणकारी उपदेश मिल सकेंगे।

—श्रीराम शर्मा, आचार्य

विषय-सूची

नारद पुराण

।। सूत-ऋषि संवाद वर्णन ।।

ॐ नारायण नमस्कृत्य नर चैव नरोत्तमम्।
देवी सरस्वती चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥
वन्दे वृन्दावनासीनमिन्दिरानन्दमन्दिरम्।
उपेन्द्र सान्द्रकारुण्य परानन्द परात्परम् ॥१
ब्रह्मविष्णुमहेशाख्य यस्याशा लोकसाधका ।
तमादिदेव चिद्रूप विशुद्ध परम भजे ॥२
शौनकाद्या महात्मान ऋषयो ब्रह्मवादिन ।
नैमिषाख्ये महारण्ये तपस्तेतुर्मुमुक्षव ॥३
जितेन्द्रिया जिताहारा सन्त सत्यपराक्रमा ।
यजन्त परया भक्त्या विष्णुमाद्य सनातनम् ॥४
अनीर्ष्या सर्वधर्मज्ञा लोकानुग्रहतत्परा ।
निर्म्ममा निरहकारा परस्मिन्नतमानसा ॥५
न्यस्तकामा निवृजिना शमादिगुणसयुता ।
कृष्णाजिनोत्तरीयास्ते जटिला ब्रह्मचारिण ॥६
गृणन्त परम ब्रह्म जगच्चक्षु समोजस ।
धर्मशास्त्रार्थतत्त्वज्ञास्तेपुर्नैमिषकानने ॥७

ग्रन्थ के आरम्भ म सब प्रथम विघ्न विनाशनार्थ मङ्गलाचरण किया जाता है। भगवान् श्री नारायण—नरो म परम श्रेष्ठ नर—
वाणी की देवी सरस्वती को प्रणाम करके फिर जय शब्द का उच्चारण

करना चाहिए। भगवान् वेद व्यास देव के लिये प्रणाम है। अपने ललित केलि के स्थल वृन्दावन मे विराजमान, श्री लक्ष्मीदेवी को आनन्द प्रदान करने के मन्दिर स्वरूप, इन्द्रदेव के अनुज (उपेन्द्र नाम वाले) वामन अवतार धारण करने वाले, अत्यधिक करुणा के केन्द्र, परमाधिक आनन्द के स्वरूप एव पर से भी पर सर्वोत्तम एव सर्व शिरोमणि भगवान् विष्णु की वन्दना करते हैं ॥१॥ जिस परम ब्रह्म की प्रभा का सृजन करने के ही कारण से 'ब्रह्मा' यह नाम हो गया है, प्रजा का का पूर्ण परिपालन करने के कारण से 'विष्णु' यह नाम पड गया है तथा सृष्टि का सहार करने के कारण से 'शिव' यह नाम हो गया है। इस सम्पूर्ण लोक के साधन करने के वास्ते जिसके अश से इन्द्र वरुण आदि प्रतिष्ठित हुए हैं उन्ही आदिदेव परम विशुद्ध चित्स्वरूप भगवान् का मैं भजन करता हूँ ॥२॥ ब्रह्म के विषय मे वाद करने वाले शौनक आदि महान् आत्मा वाले ऋषि वृन्द मुक्ति प्राप्त करने की इच्छा से नैमिष अरण्य मे तपश्चर्या किया करते थे ॥३॥ वे लोग अपनी इन्द्रियो को विषयो की ओर न जाने देकर भोजन पर भी विजय प्राप्त कर सत्यस्वरूप पराक्रम से सुसम्पन्न होकर अत्यधिक भक्ति की भावना से आदि देव श्री सनातन विष्णु भगवान् की अर्चना कर रहे थे ॥४॥ ये लोग परम गनम्वी थे और किसी से डाह नही किया करते थे। धर्म के दश प्रकार के धृति, क्षमा आदि समस्त धर्मों को अच्छी तरह से जानते थे। ससार मे जो भी अधिकारी योग्य प्राणी थे उन पर सर्वदा अनुग्रह करने के लिये तत्पर रहा करते थे। उनकी ममता किसी भी वस्तु पर नही थी और न वे ममत्व को जताते ही थे। उनके हृदय मे अहङ्कार तो नाम मात्र को भी नही था और सदा उनका हृदय परब्रह्म मे ही रमण किया करता था ॥५॥ सभी प्रकार के सङ्कल्पो का उन्होंने परित्याग कर दिया था। वे लोग पूर्णतया पापो से रहित और शम, दम आदि सद्गुणों से भूपित थे। उनके मस्तक पर जटाऐ थी और वे ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने वाले कृष्ण मृग के चर्म को धारण किया

करते थे ॥६॥ सम्पूर्ण लोक के चक्षु सूर्य के समान तेजस्वी निरन्तर वेदों का स्वाध्याय करते हुए धर्मशास्त्र के तत्व का मर्म जानने वाले वे मुनिगण उस नैमिषारण्य में तपस्या कर रहे थे ॥७॥

यजैर्यज्ञपतिं केचिज्ज्ञानैर्ज्ञानात्मकं परे ।
केचिच्च परया भक्त्या नारायणमपूजयन् ॥८
एकदा ते महात्मानः समाजं चक्रुरुत्तमा ।
धर्मार्थकाममोक्षाणामुपायाञ्ज्ञातुमिच्छव ॥९
षड्विंशतिसहस्राणि मुनीनामूर्ध्वरेतसाम् ।
तेषां शिष्यप्रशिष्याणां सख्या वक्तुं न शक्यते ॥१०
मुनयो भावितात्मानो मिलितास्ते महौजसः ।
लोकानुग्रहकर्तारो वीतरागा विमत्सराः ॥११
कानि क्षेत्राणि पुण्यानि कानि तीर्थानि भूतले ।
कथं वा प्राप्यते मुक्तिर्नृणां तापार्तचेतसाम् ॥१२
कथं हरौ मनुष्याणां भक्तिरव्यभिचारिणी ।
केन सिद्धयति च फलं कर्मणास्त्रिविधात्मनः ॥१३
इत्येवं प्रष्टुमात्मानमुद्यतान् प्रेक्ष्य शौनकः ।
प्राञ्जलिर्वाचमाहेदं विनयावनतः सुधीः ॥१४

कतिपय मुनिगण यज्ञों के यजन करने के द्वारा यज्ञों के स्वामी भगवान् श्रीविष्णु का पूजन किया करते थे उनमें कुछ ऐसे थे जो ज्ञान शास्त्र की चर्चा से ज्ञान स्वरूप वाले ईश्वर की उपासना किया करते थे और सुदृढ भक्ति की भावना से श्री नारायणदेव की पूजा किया करते थे ॥८॥ एक बार उन सब महानुभावों ने मिलकर एक परमोत्तम सम्मेलन किया था। उस सम्मेलन में धर्म अर्थ काम और मोक्ष चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति के लिए उपायों को जानने की इच्छा रखने वाले छब्बीस सहस्र ऊर्ध्वरेता मुनिगण सम्मिलित हुए थे। उस सम्मेलन में इन मुनियों के शिष्य प्रशिष्य भी सब आये थे जिनकी संख्या अगणित

थी । ६।। ससार के प्राणियो पर अनुकम्पा करने की इच्छा वाले—राग द्वेष और मात्सर्य जैसे सब अवगुणो से रहित पवित्र हृदय वाले, अत्यन्त ओजस्वी सम्मेलन मे सम्मिलित हुए मुनिवृन्दो को इस भूतल मे कौन कौन क्षेत्र एव तीर्थ पवित्र है तथा आधिभौतिक, आध्यात्मिक और आधिदैविक तापो के कारण होने वाले सन्तापो से सन्तप्त चित्त वाले प्राणियो को मुक्ति किस रीति से प्राप्त हो सकती है एव मनुष्यो की श्री विष्णु भगवान् के चरणो मे अनन्य भक्ति किस विधि से हो सकती है तथा नित्य और नैमित्तिक काम्य कर्मों का फल कैसे प्राप्त हो सकता है—इत्यादि अनेक प्रश्नो को पूछकर अपनी जिज्ञासा शान्त करने के लिए समुद्यत देखकर परम विनयशील और महान् बुद्धिमान श्री शौनकजी हाथ जोड कर कहने लगे थे ।।११—१४।।

आस्ते सिद्धाश्रमे पुण्ये सूत पौराणिकोत्तम ।
यजन्मखैर्बहुविधैर्विश्वरूप जनार्दनम् ।।१५
स एतदखिल वेत्ति व्यासशिष्यो महामुनि ।
पुराणसहितावक्ता शान्तो वै रोमहर्षणि ।।१६
युगे युगेऽल्पकान् धर्मात् निरीक्ष्य मधुसूदन ।
वेदव्यासस्वरूपेण वेदभाग करोति हि ।।१७
वेदव्यासमुनि साक्षान्नारायण इति द्विजा ।
शुश्रूम सर्वशास्त्रेषु सूतस्तु व्यासशासित ।।१८
तेन सशासित सूतो वेदव्यासेन धीमता ।
पुराणानि स वेत्त्येव नान्यो लोके तत पर ।।१९
स पुराणार्थविल्लोके स सर्वज्ञ स बुद्धिमान् ।
स शान्तो मोक्षधर्मज्ञ कर्मभक्तिकलापवित् ।।२०
वेदवेदाङ्गशास्त्राणा सारभूत मुनीश्वरा ।
जगद्धितार्थं तत्सर्वं पुराणेप्रूक्तवान् मुनि ।।२१
ज्ञानार्णवो व सूतस्तत्सर्वंत्वार्थकोविद ।
तस्मात्तमेव पृच्छाम इत्यूचे शौनको मुनीन् ।।२२

महा महर्षि प्रवर श्री शौनकजी ने कहा—पुराणों के प्रवक्ताओं में परम श्रेष्ठ श्री सूतजी सिद्धाश्रम में रहते हैं। वहाँ पर वे संसार में व्यापक भगवान जनार्दन का विविध भाँति के यज्ञों के द्वारा यजन किया करते हैं ॥१५॥ समस्त पुराणों के प्रवक्ता महर्षि लोमहर्षण के आत्मज अत्यधिक शान्ति से सम्पन्न श्री कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास जी के प्रिय शिष्य महामुनि वे इन सभी बातों को भली भाँति पूर्णतया जानते हैं ॥१६॥ स्वयं श्रीविष्णु भगवान् ही युग २ में धार्मिक तत्वों का अधिक ह्रास देखकर वेदव्यासजी के स्वरूप में आकर वेदों की संहिताओं का विभाग किया करते हैं ॥१७॥ हे द्विजगणो ! समस्त शास्त्रों में हमने यही श्रवण किया है कि श्री वेदव्यास मुनि साक्षात् भगवान् नारायण के ही अवतार हैं। "द्विबाहुरपरो हरि" अर्थात् यह दो भुजाओं वाले दूसरे हरि भगवान् ही हैं और सूतजी उन्हीं व्यासदेव जी के प्रमुख शिष्य हैं ॥१८॥ इसलिये अपने गुरु श्री व्यासदेवजी से शिक्षा प्राप्त करते हुए सूतजी जिस प्रकार का उत्तम ज्ञान पुराणों का रखते हैं वैसा या उनसे अधिक पुराणों का महान् ज्ञाता इस संसार में अन्य कोई भी नहीं हो सकता है ॥१९॥ ये सूतजी इस संसार में इस समय पुराणों के यथार्थ अभिप्राय को समझते हैं और वे पुराणों की समस्त बातों के मर्मज्ञ मनीषी हैं तथा परम बुद्धिमान, अत्यधिक शान्त, मोक्ष-धर्म के समुचित जानकार एवं कर्मकाण्ड और भक्ति-मार्ग को पूर्णतया जानने वाले भी हैं ॥२०॥ हे मुनिगण ! मन्त्र भाग और ब्राह्मण भाग स्वरूप वेद, ज्योतिष, मीमांसा, न्याय आदि वेद के अङ्गों का सम्पूर्ण सार संसार के हित को सिद्ध करने के लिये महामहर्षि श्री व्यासदेव जी ने पुराणों में ही सब कुछ कह कर बता दिया है। ज्ञान के जलनिधि श्री सूतजी उन समस्त तत्वों के अर्थ एवं अभिप्राय को समझने में बहुत ही कुशल हैं। इसलिए अब उन सूतजी से यही सब बातें पूछना उचित है। इस प्रकार से शौनकजी ने उन समुपस्थित समस्त मुनियों से यही कहा था ॥२१।२२॥

ततस्ते मुनयः सर्वे शौनकं वाग्विदां वरम् ।
समाश्लिष्य सुसम्प्रीता साधु साध्विति चाब्रुवन् ॥२३
अथ ते मुनयो जग्मुः पुण्यं सिद्धाश्रमं वने ।
मृगव्रजसमाकीर्णं मुनिभिः परिशोभितम् ॥२४
मनोज्ञभूरुहलताफलपुष्पविभूषितम् ।
युक्तं सरोभिरच्छोदैरतिथ्यातिथ्यसंकुलम् ॥२५
ते तु नारायणं देवमनन्तमपराजितम् ।
यजन्तमग्निष्टोमेन ददृशू रोमहर्षणिम् ॥२६
यथार्हमर्चितास्तेन सूनेन प्रथितौजसः ।
तस्यावभृथमीक्षन्तस्तत्र तस्थुर्मखालये ॥२७
अधरावभृथस्नातं सूतं पौराणिकोत्तमम् ।
पप्रच्छुस्ते सुखासीनं नैमिषारण्यवासिनः ॥२८

उस समय समस्त मुनिगण परम प्रसन्न होगये थे और वक्ताओं में श्रेष्ठ शिरोमणि श्री शौनकजी से आलिङ्गन कर कहने लगे 'साधु-साधु' ॥२६॥ इसके पश्चात् वे सब मुनिवृन्द वन में स्थित पवित्र सिद्धों के आश्रम की ओर चल दिये थे। वह सिद्धों का आश्रम हिरनों के समूहों से भरा हुआ था। उसमें मुनिगण के विराजमान होने से परम शोभा हो रही थी। अति सुन्दर लता और वृक्ष, फल और पुष्प आदि से वह परम शोभा से सम्पन्न दिखाई देता था। वहाँ स्वच्छ एवं परिपूर्ण सरोवर विद्यमान थे और वहाँ की कुटियों में अतिथियों का स्वागत सत्कार सदा होता रहा करता था ॥२४-२५॥ वहाँ पर मुनिगण ने श्री सूतजी का दर्शन प्राप्त किया था जो अग्निष्टोम यज्ञ के यजन के द्वारा अनन्त, अपराजित भगवान् नारायण की अर्चना में व्यस्त हो रहे थे ॥२६॥ श्री सूतजी ने उन समागत ओजस्वी मुनियों का समुचित स्वागत-सत्कार किया था। वे सब मुनिगण यज्ञ के अव-भृथ अर्थात् यज्ञान्त स्नान की प्रतीक्षा करते हुए वहाँ विराजमान

हो गये थे ॥२७॥ ने अवभृथ स्नान करने के पश्चात् पौराणिकों में परम श्रेष्ठ श्री सूतजी से सुख पूर्वक उपविष्ट होजाने पर उन मुनियों से वार्त्तालाप का आरम्भ किया था ॥२८॥

वय त्वतिथय प्राप्ता आतिथेयास्तु सुव्रत ।
ज्ञानदानोपचारेण पूजयास्मान् यथाविधि ॥२९
दिवौकसो हि जीवन्ति पीत्वा चन्द्रकलामृतम् ।
ज्ञानामृत भूसुरास्तु मुने त्वन्मुखनि सृतम् ॥३०
येनेदमखिल जात यदाधार यदात्मकम् ।
यस्मिन्प्रतिष्ठित तात यस्मिन् वा लयमेष्यति ॥३१
केन विष्णु प्रसन्न स्यात् स कथ पूज्यते नरैः ।
कथ वर्णाश्रमाचारश्चातिथे पूजन कथम् ॥३२
सफल स्याद्यथा कर्म मोक्षोपाय कथ नृणाम् ।
भक्त्या कि प्राप्यते पुभिस्तथा भक्तिश्च कीदृशी ॥३३
वद सूत मुनिश्रेष्ठ सर्वमेतदमशयम् ।
कस्य नो जायते श्रद्धा श्रोतु त्वद्वचनामृतम् ॥३४
शृणुध्वमृषय सर्वे यदिष्ट वो वदामि तत् ।
गीत सनकमुख्यैस्तु नारदाय महात्मने ॥३५
पुराण नारदोपाख्यमेतद्वेदार्थसम्मितम् ।
सर्वपापप्रशमन दुष्टग्रहनिवारणम् ॥३६

ऋषियों ने कहा—हे सुव्रत ! हम लोग अतिथि सत्कार को प्राप्त करने के पात्र अतिथि आपकी सेवा में उपस्थित हुए हैं। अब आप हम लोगों का आतिथ्य ज्ञान के प्रदान स्वरूप भेट के द्वारा ही कृपा कर करिए ॥२९॥ देवगण तो चन्द्र की कलाओं से क्षरण करते हुए अमृत का पान करके सदा जीवित रहा करते हैं। हे मुनिवर ! हम तो ब्राह्मण हैं सो आपके मुख से क्षरने वाले ज्ञान पीयूष का ही पान करके जीवित रहने की आशा लेकर यहाँ प्राप्त हुए हैं ॥३०॥

आप यह बताइये कि जिनसे यह संसार उत्पन्न हुआ है, जिनका अवलम्ब ग्रहण कर यह सम्पूर्ण संसार टिका है, जो इसमे आत्मा रूप से व्याप्त है और यह सम्पूर्ण विश्व जिनमे प्रतिष्ठित है। हे तात! यह सब विश्व अन्त में जिसमें आकर लीन हुआ करता है वह भगवान् विष्णु किस रीति से प्रसन्न हुआ करते हैं और मनुष्यो का उनका समर्चन किस विधि मे करना चाहिए? वर्णों और आश्रमों का वास्तविक स्वरूप कैसा होता है तथा स्वनिवास भूमि पर समागत अतिथियो का स्वागत-सत्कार किस प्रकार से करना चाहिए ॥२९।३२॥ मानवो द्वारा किया हुआ कार्य कैसे सफल हुआ करता है और मानवो को मोक्ष की प्राप्ति करने का उपाय किस तरह से करना चाहिए। भगवान् की भक्ति से क्या प्राप्त हुआ करता है? उस भक्ति का स्वरूप कैसा होता है ॥३३॥ हे मुनिश्रेष्ठ सूतजी! आपसे यही प्रार्थना है कि इन हमारे द्वारा किये गये प्रश्नो का उत्तर इस रीति से समझाते हुए प्रदान कीजिए कि फिर हमारे हृदय मे कोई भी सन्देह शेप न रहे। ऐसा कौन सा जीवात्मा होगा जो आपके वचनामृत का पान करने मे श्रद्धालु न होवे? अर्थात् ऐसा कोई भी नहीं है ॥३४॥ श्री सूतजी ने उत्तर दिया—हे समस्त ऋषिगण! आपके मन में जो भी कुछ बाते है उनको मैं बतलाऊँगा उसका आप लोग श्रवण करे। एक बार सनकादि महापुरुषो ने श्री देवर्षि नारद जी से वेद सम्मत नारदोपाख्यान नाम वाले पुराण को कहा था। यह पुराण सभी प्रकार के पापो का विनाश करने वाला और दुष्टग्रहो के कुफलो को दूर भगा देने वाला है ॥३५-३६॥

दु स्वप्ननाशन धर्म्यं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्।
नारायणकथोपेत सर्वकल्याणकारणम् ॥३७

धर्मार्थकाममोक्षाणा हेतुभूत महाफलम्।
अपूर्वपुण्यफलद शृणुध्व सुसमाहिता. ॥३८

महापातकयुक्तो वा युक्तो वाप्युपपातकैः ।
श्रुत्वैतदार्ष्यं दिव्यं च पुराणं शुद्धिमाप्नुयात् ॥३९
यस्यैकाध्यायपठनाद् वाजिमेधफलं लभेत् ।
अध्यायद्वयपाठेन राजसूयफलं तथा ॥४०
ज्येष्ठमासे पूर्णिमायां मूलर्क्षे प्रयतो नरः ।
स्नात्वा च यमुनातोये मथुरायामुपोषितः ॥४१
अभ्यर्च्य विधिवत् कृष्णं यत्फलं लभते द्विजाः ।
तत्फलं समवाप्नोति अध्यायत्रयपाठतः ॥४२

इस पुराण की महिमा कहाँ तक बतलाई जावे । यह दुःस्वप्न के फल को दूर कर देने वाला है । यह धर्म प्रदायक और मोक्ष रूपी फल का प्रदाता है एवं भगवान नारायण की कथा से पूर्ण यह सभी प्रकार के कल्याणों का देने वाला है ॥३७॥ यह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन पुरुषार्थ चतुष्टय के हेतु रूप है । परमोत्तम फल के देने वाला और पुण्य का अपूर्व फल प्रदायक है । अब आप सब लोग इसका ही परम समाहित होकर श्रवण करिए ॥३८॥ जो पुरुष ब्रह्म हत्या, मदिरापान, गुरुतल्पगमन आदि महान् पातकों से दूषित है तथा लहसुन का भक्षण और शराब पीने वाली स्त्री से समागम आदि अनेक उप पातकों से भ्रष्ट हो गया है वह भी इस ऋषि प्रणीत पुराण का श्रवण कर परम पवित्र एवं शुद्ध हो जाया करता है ॥३९॥ इस प्रमुख पुराण की केवल एक अध्याय का पाठ करने से अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त हुआ करता है तथा दो अध्यायों के पाठ से राजसूय यज्ञ का फल मिला करता है । अभिप्राय यही है कि इस ग्रन्थ में कहे हुए धर्मों का समाचरण करने से समस्त पातकों-महापातकों और उपपातकों से शुद्धि के साथ साथ अश्वमेध और राजसूय यज्ञों से यजन करने के बराबर फल भी प्राप्त हो जाता है ॥४०॥ जो पुरुष मूल नक्षत्र से समन्वित ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा के दिन परम सावधानी के साथ

मथुरा मे श्री यमुना मे स्नान करके तथा व्रत करके सविधि श्रीकृष्ण का अर्चन करने पर जो फल प्राप्त करता है। हे द्विजगण ! वही फल इस पुराण के तीन अध्यायो के पठन या श्रवण से प्राप्त हो जाया करता है ।।४१।४२।।

तत्प्रवक्ष्यामि व सम्यक् शृणुध्व गदतो मम ।
जन्मायुतार्जितै पापैर्मुक्त कोटिकुलान्वित ।।४३
ब्रह्मण पदमासाद्य तत्रैव प्रतितिष्ठति ।
श्रुत्वास्य तु दशाध्यायान् भक्तिभावेन मानव ।।४४
निर्वाणमुक्ति लभते नात्र कार्या विचारणा ।
श्रेयसा परम श्रेय पवित्राणामनुत्तमम् ।।४५
दु स्वप्ननाशन पुण्य श्रोतव्य यत्नतो द्विजा ।
श्रद्धया सहितो मर्त्य श्लोक श्लोकार्धमेव वा ।।४६
पठित्वा मुच्यते सद्यो महापातकराशिभि ।
सतामेव प्रवक्तव्य गुह्याद् गुह्यतर यत ।।४७

हे द्विजश्रेष्ठो ! मैं अब इसी परम पावन पुराण का वर्णन आप लोगो के समक्ष मे करता हूँ आप लोग सावधान होकर भली भाँति मुझ से श्रवण करे। भक्ति भावना से इस पुराण के दश अध्यायो के पाठ से दश सहस्रो जन्मो मे किये हुए पापों से मुक्ति पाकर अपने कोटिश कुलो के साथ मुक्त होकर ब्रह्माजी के लोक मे सीधा चला जाया करता है और वह वहीं पर निवास किया करता है ।।४३-४४।। इस पुराण के श्रवण करने वालो को निर्वाण मुक्ति प्राप्त होती है। इसमें कुछ भी विचार या सशय की बात नही है। यह परम श्रेयस्कर, अत्यधिक पवित्र तथा दु स्वप्नो का विनाश करने वाला पुराण है। हे द्विजगण ! इस पुराण को बहुत यत्न के साथ सुनना चाहिए। जो कोई मनुष्य श्रद्धा के साथ यदि इसके एक या आधे श्लोक का भी पाठ कर लेता है तो वह इसमे वर्णन किए जाने वाले सब धर्मों का पालन कर लेता

है और सुवर्ण आदि की चोरी प्रभृति महा पातकों के समुदाय से विमुक्त होजाया करता है। यह पुराण परम गोपनीय वस्तु है। अतएव इसका श्रवण भी सज्जन पुरुषों को ही करना चाहिए ॥४५॥ ॥४६॥४७॥

वाचयेत् पुरतो विष्णो पुण्यक्षेत्रे द्विजान्तिके।
ब्रह्मद्रोहपराणां च दम्भाचारयुतात्मनाम् ॥४८
जनाना वकवृत्तीना न ब्रूयादिदमुत्तमम्।
त्यक्तकामादिदोषाणा विष्णुभक्तिरतात्मनाम् ॥४९
सदाचारपराणा च वक्तव्य मोक्षसाधनम्।
सर्वदेवमयो विष्णु स्मरतामार्तिनाशन. ॥५०
सद्भक्तिवत्सलो विप्रा भक्त्या तुष्यति नान्यथा।
अश्रद्धयापि यन्नाम्नि कीर्तितेऽथ स्मृतेऽपि वा ॥५१
विमुक्त पातकैर्मर्त्यो लभते पदमव्ययम्।
ससारघोरकान्तारदावाग्निर्मधुसूदन ॥५२
स्मरता सर्वपापानि नाशयत्याशु सत्तमा.।
सदर्थद्योतकमिद पुराणं श्राव्यमुत्तमम् ॥५३
श्रवणात् पठनाद्वापि सर्वपापविनाशकृत्।
यस्यास्य श्रवणे बुद्धिर्जायते भक्तिसयुता ॥५४
स एव कृतकृत्यस्तु सर्वशास्त्रार्थकोविद।
यर्दाजत तप पुण्य तन्मन्ये सफल द्विज ॥५५
यदस्य श्रवणे भक्तिरन्यथा न हि जायते।
सत्कथासु अवर्तन्ते सज्जना ये जगद्धिता ॥५६

किसी भगवान् विष्णु के मन्दिर में, पवित्र तीर्थ स्थल में किसी विद्वान् गुवक्ता ब्राह्मण से इसकी कथा कहनवानी चाहिए। जो ब्राह्मणों से द्रोह करने वाले हों, वे केवल प्रदर्शन कर ढोंग दिखाने के लिये ही धर्म का आचरण करें, बगुला भगत हों अर्थात् ऊपर से शुद्ध और—

और मन मे कुछ अन्य ही विचार रखने वाले धूर्त हो उनके सामने ऐसे उत्तम पुराण का वर्णन कभी नही करना चाहिए। यह तो मोक्ष का साधन पुराण है। इसे तो जो सदाचारी और कामादि दोषो से रहित विष्णु भक्त पुरुष हों उन्ही को इसका श्रवण कराना चाहिये। भगवान् विष्णु तो सदा भक्ति करने ही से प्रसन्न हुआ करते है। वे सद्भक्ति पर स्नेह करने वाले हैं इसलिये अन्य किन्ही बातो या साधनो से ऐसे परम प्रसन्न नही होते है मनुष्य के हृदय मे भले ही श्रद्धा न भी हो तो भी भगवान विष्णु के नामो का कीर्तन या उनके गुण एव लीलाओ का स्मरण करने मात्र से समस्त पातकों से बच कर वह अव्यय पद का प्राप्त कर लिया करता है। मधु नामक दैत्य का वध करने वाले प्रभु इस ससार रूपी (पाप पूर्ण) भयङ्कर जङ्गल के लिये दावाग्नि के ही तुल्य हैं ॥४८—५२॥ हे परम श्रेष्ठ पुरुषो! ये भगवान् स्मरण करने वाले मनुष्यो के समस्त पापो का नाश कर दिया करते हैं। उन भगवान् श्री विष्णु की अनुकम्पा का लाभ जिस प्रकार से हो उन्ही उपायो को यह नारद पुराण बताता है। इसीलिये यह परमोत्तम पुराण है और सब के श्रवण करने तथा कराने के योग्य है ॥५३॥ इस श्रेष्ठ पुराण के अध्ययन करने तथा इसको पढाने एव सुनने-सुनाने से सभी पापो का विनाश हो जाया करता है। जिसकी बुद्धि मे भक्ति की भावना से इसके श्रवण करने की बात बैठ जाती है वह सभी शास्त्रो या तात्पर्यार्थ समझने मे चतुर पुरुष कृतकृत्य ही होजाता है। हे द्विज-गण! उसने जो कुछ भी तपश्चर्या और पुण्य किया है उसको मैं सफल हुआ ही समझता हूँ ॥५४-५५॥ कारण यही है कि इस पुराण की सुनने की श्रद्धा-भक्ति बैसे कभी भी हो ही नही सकती है। जो मनुष्य इस ससार के हित के सम्पादन करने की इच्छा करते हैं। ऐसे सज्जन मनुष्यो की ही सत्कथाओं की ओर प्रवृत्ति हुआ करती है।

निन्दाया कलहे वापि ह्यमन्त पापतत्परा।
पुराणेष्वर्थवादत्व ये वदन्ति नराधमा. ॥५७

तैरर्जितानि पुण्यानि क्षयं यान्ति द्विजोत्तमाः ।
समस्तकर्मनिर्मूलसाधनानि नराधमः ॥५८
पुराणान्यर्थवादेन ब्रुवन्नरकमश्नुते ।
अन्यानि साधयन्त्येव कार्याणि विधिना नरः ॥५६
पुराणानि द्विजश्रेष्ठाः साधयन्ति न मोहिताः ।
अनायासेन य. पुण्यानीच्छतीह द्विजोत्तमाः ॥६०
श्रोतव्यानि पुराणानि तेन वै भक्तिभावतः ।
पुराणश्रवणे बुद्धिर्यस्य पुस. प्रजायते ॥६१
पुरार्जितानि पापानि तस्य नश्यत्यसंशयम् ।
पुराणे वर्तमानेऽपि पापपाशेन यन्त्रितः आदरेणा-
न्यगाथासु सक्तबुद्धि पतत्यधः ॥६२

जो महापापी एवं सज्जनता के सद्गुणों से रहित हुआ करते हैं वे सदा निन्दा और कलह में ही फँसे रहा करते हैं । ऐसे जो नराधम हैं कि वे सर्वदा पुराणों में अर्थवाद को ही भरा हुआ बताया करते हैं । तात्पर्य यह है कि पुराणों को कल्पित कहानियों का भण्डार कह कर मिथ्या कहते हैं । हे द्विजोत्तमो ! उन लोगों के जो भी कुछ संचित पुण्य हैं वे सब नष्ट हो जाया करते हैं । जो पुराण समस्त कर्मों को निर्मूल कर मोक्ष जैसे परम पुरुषार्थ के साधन हैं उन पुराणों को जो मिथ्या कहते हैं वे नरकगामी हुआ करते हैं । मनुष्य अन्य कर्मों को तो विधि के साथ सिद्ध करने में लगे रहा करते हैं किन्तु मोह में ग्रस्त बने रहने के कारण हे द्विजगण ! जो कर्म पुराणों में वर्णित किये गये हैं उनको कभी करना ही नहीं चाहते हैं । हे द्विजगण ! बिना किसी झंझट के पुण्यों को प्राप्त करने की इच्छा रखता हो उसे चाहिए कि भक्ति भाव के साथ पुराणों का श्रवण करे । जो मनुष्य पुराणों के श्रवण करने का निश्चय किया करता है उसके पूर्व के संचित सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं । पुराणों के विद्यमान रहते हुए भी जो मनुष्य

और मन मे कुछ अन्य ही विचार रखने वाले धूर्त हो उनके सामने ऐसे उत्तम पुराण का वर्णन कभी नही करना चाहिए। यह तो मोक्ष का साधन पुराण है। इसे तो जो सदाचारी और कामादि दोषो से रहित विष्णु भक्त पुरुष हो उन्ही को इसका श्रवण कराना चाहिये। भगवान् विष्णु तो सदा भक्ति करने ही से प्रसन्न हुआ करते हैं। वे सद्भक्ति पर स्नेह करने वाले हैं इसलिये अन्य किन्ही बातो या साधनो से ऐसे परम प्रसन्न नही होते है मनुष्य के हृदय मे भले ही श्रद्धा न भी हो तो भी भगवान विष्णु के नामो का कीर्तन या उनके गुण एव लीलाओ का स्मरण करने मात्र से समस्त पातको से बच कर वह अव्यय पद को प्राप्त कर लिया करता है। मधु नामक दैत्य का वध करने वाले प्रभु इस ससार रूपी (पाप पूर्ण) भयङ्कर जङ्गल के लिये दावाग्नि के ही तुल्य हैं ॥४८—५२॥ हे परम श्रेष्ठ पुरुषो! वे भगवान् स्मरण करने वाले मनुष्यो के समस्त पापो का नाश कर दिया करते हैं। उन भगवान् श्री विष्णु की अनुकम्पा का लाभ जिस प्रकार से हो उन्ही उपायो को यह नारद पुराण बताता है। इसीलिये यह परमोत्तम पुराण है और सब के श्रवण करने तथा कराने के योग्य है ॥५३॥ इस श्रेष्ठ पुराण के अध्ययन करने तथा इसको पढाने एव सुनने-सुनाने से सभी पापो का विनाश हो जाया करता है। जिसकी बुद्धि मे भक्ति की भावना से इसके श्रवण करने की बात बैठ जाती है वह सभी शास्त्रो का तात्पर्यार्थ समझने मे चतुर पुरुष कृतकृत्य ही होजाता है। हे द्विज-गण! उसने जो कुछ भी तपश्चर्या और पुण्य किया है उसको मैं सफल हुआ ही समझता हूँ ॥५४-५५॥ कारण यही है कि इस पुराण की सुनने की श्रद्धा-भक्ति वैसे कभी भी हो ही नही सकती है। जो मनुष्य इस ससार के हित के सम्पादन करने की इच्छा करते हैं। ऐसे सज्जन मनुष्यो की ही सत्कथाओ की ओर प्रवृत्ति हुआ करती है।

निन्दाया कलहे वापि ह्यसन्त. पापतत्परा।
पुराणेष्वर्थवादत्व ये वदन्ति नराधमा. ॥५७

तैरर्जितानि पुण्यानि क्षय यान्ति द्विजोत्तमाः ।
समस्तकर्मनिर्मूलसाधनानि नराधमः ॥५८
पुराणान्यर्थवादेन ब्रुवन्नरकमश्नुते ।
अन्यानि साधयन्त्येव कार्याणि विधिना नरः ॥५९
पुराणानि द्विजश्रेष्ठाः साधयन्ति न मोहिताः ।
अनायासेन यः पुण्यानीच्छतीह द्विजोत्तमाः ॥६०
श्रोतव्यानि पुराणानि तेन वै भक्तिभावतः ।
पुराणश्रवणे बुद्धिर्यस्य पुंसः प्रजायते ॥६१
पुरार्जितानि पापानि तस्य नश्यत्यसंशयम् ।
पुराणे वर्तमानेऽपि पापपाशेन यन्त्रितः आदरेणा-
न्यगाथासु सक्तबुद्धिः पतत्यधः ॥६२

जो महापापी एवं सज्जनता के सद्गुणों से रहित हुआ करते हैं वे सदा निन्दा और कलह में ही फँसे रहा करते हैं। ऐसे जो नराधम हैं कि वे सर्वदा पुराणों में अर्थवाद को ही भरा हुआ बताया करते हैं। तात्पर्य यह है कि पुराणों को कल्पित कहानियों का भण्डार कह कर मिथ्या कहते हैं। हे द्विजोत्तमो ! उन लोगों के जो भी कुछ संचित पुण्य हैं वे सब नष्ट हो जाया करते हैं। जो पुराण समस्त कर्मों को निर्मूल कर मोक्ष जैसे परम पुरुषार्थ के साधन हैं उन पुराणों को जो मिथ्या कहते हैं वे नरकगामी हुआ करते हैं। मनुष्य अन्य कर्मों को तो विधि के साथ सिद्ध करने में लगे रहा करते हैं किन्तु मोह में ग्रस्त बने रहने के कारण हे द्विजगण ! जो कर्म पुराणों में वर्णन किये गये हैं उनको कभी करना ही नहीं चाहते हैं। हे द्विजगण ! बिना किसी प्रयास के पुण्यों को प्राप्त करने की इच्छा रखता हो उसे चाहिए कि भक्ति भाव के साथ पुराणों का श्रवण करे। जो मनुष्य पुराणों के श्रवण करने का निश्चय किया करता है उसके पूर्व के संचित सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं। पुराणों के विद्यमान रहते हुए भी जो मनुष्य

पापो के जाल मे बँधे रहा करते हैं और व्यर्थ की अन्य वातो मे बुद्धि लगाये रहते हैं उनका निश्चय ही अध पतन हुआ करता है ॥५७—६२॥

सत्सङ्गदेवार्चनसत्कथासु हितोपदेशे निरतो मनुष्य ।
प्रयातिविष्णो परम पद यद्देहावसानेऽच्युततुल्यतेजा ॥६३
तस्मादिद नारदनामधेय पुण्य पुराण शृणुत द्विजेन्द्रा ।
यस्मिञ्छ्रुते जन्मजरादिहीनो नरो भवेदच्युतनिष्ठचेता ।.६४
वर वरेण्य वरद पुराण निजप्रभाभावितसर्वलोकम् ।
सकल्पितार्थप्रदमादिदेव स्मृत्वा व्रजेन्मुक्तिपद मनुष्य ॥६५
ब्रह्मेशविष्ण्वादिशरीरभेदैर्विश्व सृज्यत्ति च पाति विप्रा ।
तमादिदेव परम परेशमाधाय चेतस्युपयाति मुक्तिम् ॥६६
यो नाम जात्यादिविकल्पहीन पर पराणा परम परस्माद् ।
वेदान्तवेद्य स्वजनप्रकाश समीड्यते सर्वपुराणवेदै ॥६७
तम्मात्तमीश जगता विमुक्तिमुपासनायालमज मुरारिम् ।
पर रहस्य पुरुषार्थहेतु स्मृत्वा नरो याति भवाब्धिपारम्॥६८

जो लोग साधुओं की सङ्गति, दवो का यजन और परम श्रेष्ठ कथा तथा हितकारी उपदेश देने में सलग्न रहता है वह मनुष्य इस पार्थिव शरीर के पात हो जाने पर अच्युत भगवान् के सदृश तेज सम्पन्न होकर सीधा श्री विष्णु भगवान् के परम पद को प्राप्त किया करता है ॥६३॥ इसलिये हे द्विजवरो ! आप सब लोग परम पावन इस नारद पुराण का श्रवण करिए। इसके सुनने का ऐसा प्रभाव है कि इसका श्रोता भगवान् अच्युत मे अपना चित्त लगा दिया करता है और फिर इस चित्त की भगवच्चरण म सलग्नता के कारण से जन्म-मरण और वार्धक्य के बारम्बार आवृत्ति होने के सम्पूर्ण झझट से मुक्त हो जाता है ॥६४॥ यह परम श्रेष्ठ पुराण है और यह वरण करने के योग्य साक्षात् वरदान देने वाला है। इस पुराण की प्रदीप्त प्रभा से

सम्पूर्ण लोक भावित रहा करते हैं। मनोवाञ्छित (धर्म, काम, मोक्ष आदि) प्रयोजनों को पूर्ण कर देने वाले आदिदेव विष्णु भगवान् का भजन करने से मनुष्य छुटकारा पा जाता है और उसकी मुक्ति होजाया करती है ॥६५॥ हे विप्रवरो ! जो सर्व शक्तिमान् भगवान् ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि के स्वरूपों में भिन्न २ शरीरों से इस समस्त विश्व का उद्भव, पालन और संहार किया करते हैं। उस परमेश्वर आदि देवेश्वर को अपने हृदय में स्थापित कर लेने से निश्चय ही मनुष्य की मुक्ति हो जाती है ॥६६॥ जो भगवान् नाम, जाति, रूप आदि के विकल्प से रहित है, जो सूक्ष्मातिसूक्ष्म एवं परमाणिक सूक्ष्म है जो श्रेष्ठ शिरोमणियों से भी परम श्रेष्ठतम है, जिनका ज्ञान वेदान्त के ग्रन्थों के परिशीलन से प्राप्त होता है जो परम प्रिय भक्तों के हित-सम्पादन के लिए बारम्बार प्रकट हुआ करते हैं और जिनका समस्त वेद और पुराण पूजन किया करता है ॥६७॥ उन जन्म से रहित भगवान् मुरारि जगदीश्वर की ही सदुपासना मुक्ति के लिये पर्याप्त साधन है। इन धर्मादि पुरुषार्थ चतुष्टय के हेतुभूत, परम रहस्य एवं अत्यधिक गोप्य भगवान् का स्मरण करने से प्राणी इस महान् घोर संसार रूपी सागर से पार हो जाया करता है ॥६८॥

वक्तव्यं धार्मिकेभ्यस्तु श्रद्धवानेभ्य एव च।
मुमुक्षुभ्यो यतिभ्यश्च वीतरागेभ्य एव च ॥६६
वक्तव्यं पुण्यदेशे च सभाया देवतागृहे।
पुण्यक्षेत्रे पुण्यतीर्थे देवब्राह्मणसन्निधौ ॥७०
उच्छिष्टदेशे वक्तार आख्यानमिदमुत्तमम्।
पच्यन्ते नरके घोरे यावदाभूतसम्प्लवम् ॥७१
मृषा शृणाति यो मूढो दम्भी भक्तिविवर्जित।
सोऽपि तद्वन्महाघोरे नरके पच्यतेऽक्षये ॥७२
नरो य सत्कथामध्ये सम्भाषा कुरुतेऽन्यत।
स याति नरकं घोरं तदेकाग्रमना भवेत् ॥७३

श्राता वक्ता च विप्रेन्द्रा एष धर्म. सनातन ।
असमाहितचित्तस्तु न जानाति सि किञ्चन ॥७४
तत एकमना भूत्वा पिवेद्धरिकथामृतम् ।
कथ सभ्रान्तचित्तस्य कथास्वाद. प्रजायते ॥७५

इस गोपनीय पुराण के सुनने के अधिकारी भी परम धार्मिक-श्रद्धालु-मुमुक्षु-सन्यासी और रागादि रहित पुरुष ही होते हैं। अतएव ऐसी योग्यता के पात्र उनको ही यह पुराण सुनना चाहिए अर्थात् इनके अतिरिक्त इसके सुनने के अधिकारी नही हैं। इस पुराण की कथा ऐसे ही किसी परमोत्तम स्थल मे कहनी चाहिये जो या तो देवालय हो, या सभामण्डप हो, या पवित्र क्षेत्र एव तीर्थ हो। इसकी कथा देवों और ब्राह्मणो के समक्ष मे कहना चाहिए ॥६९॥७०॥ जो कोई कथा वाचक मनुष्य इस परम श्रेष्ठ पुराण की कथा किसी अपवित्र स्थान मे कहते हैं वे वहाँ प्रलय काल तक घोर नरक मे कष्ट भोगा करते है ॥ ७१ ॥ जो दम्भ मे भर कर महामूढ भक्ति के भाव से शून्य हो और विना भाव के व्यर्थ ही इस पुराण को सुनता है वह भी अक्षय महान् घोर नरक मे निवास कर पीडित होता है ॥७२॥ जो कोई श्रोता कथा के बीच मे अन्य चर्चायें किया करते हैं वे भी घोर नरक मे गिरते है, अतएव कथा का श्रवण चित्त की एकाग्रता से ही करना चाहिए ॥७३॥ हे विप्र शिरोमणियो ! यह धर्म सनातन है चाहे कोई श्रोता है या प्रवक्ता हो यदि उनका हृदय समाहित नही होता है तो उसका कुछ भी ज्ञान नहीं बढता है और श्रवण जो असावधानी मे किया है वह शून्य ही होजाता है ॥७४॥ अतएव सदा अपने मन को एकाग्र करके ही हरि की कथारूपी पीयूष का पान करना चाहिए। जिसका चित्त अस्थिर और चलायमान है उनको कथा के सुनने का कुछ भी स्वाद नहीं आता है ॥७५॥

किं सुखं प्राप्यते लोके पुंसा सम्भ्रातचेतसा ।
तस्मात् सर्वं परित्यज्य कामं दुःखस्य साधनम् ॥७६
समाहित मना भूत्वा कुर्यादच्युतचिन्तनम् ।
येन केनाप्युपायेन स्मृतो नारायणोव्ययः ॥७७
अपि पातकयुक्तस्य प्रसन्नः स्यान्न संशयः ।
यस्य नारायणे भक्तिर्विभौ विश्वेश्वरेऽव्यये ।
तस्य स्यात्सफलं जन्म मुक्तिश्चैव करे स्थिता ॥७८
धर्मार्थकाममोक्षाख्यपुरुषार्था द्विजोत्तमाः ।
हरिभक्तिपराणा वै सम्पद्यन्ते न संशयः ॥७९

क्या सर्वदा अस्थिर चित्त वाले पुरुष को कभी कोई सुख प्राप्त होता है ? अर्थात् कभी भी नहीं मिलता है इसीलिये सब प्रकार की इच्छाओं को और सकल्पों को त्यागकर इस दुःखदाता चित्त को ही भगवच्चरणों मे यत्नपूर्वक लगा देना चाहिये ॥७६॥ परम सावधान हृदय से भगवान् विष्णुदेव का ध्यान करे। चाहे किसी भी प्रकार से उस अविनाशी नारायण की आराधना की जावे वे ऐसे दयालु हैं कि पातकी पुरुष पर प्रसन्न ही होते हैं ॥७७॥ जिस पुरुष की उस अविनाशी व्यापक विश्वेश्वर भगवान् विष्णुदेव मे सुदृढ भक्ति होती है उसका जन्म धारण करना ही सफल हो जाया करता है और मुक्ति तो फिर अपने ही मुट्ठी मे आ जाती है ॥७८॥ हे श्रेष्ठतम विप्रो ! श्री हरि की भक्ति मे तत्पर पुरुषों को धर्मार्थकाम मोक्ष पुरुषार्थ चतुष्टयप्राप्त हो ही जाता है ॥७९॥

॥ सनक-नारद संवाद और विष्णु स्तुति ॥

वथ सनत्कुमारस्तु नारदाय महात्मने ।
प्रोक्तवान् सकलान् धर्मान् कथं तौ मिलितावुभौ ॥१

कस्मिन् स्थाने स्थितौ सूत तावुभौ ब्रह्मवादिनौ ।
हरिगीनसमुद्गाने चक्रतुस्तद्वदस्व नः ॥२
सनकाद्या महात्मानो ब्रह्मणो मानसाः सुताः ।
निर्ममा निरहङ्कारा सर्वे ते ह्यूर्ध्वरेतसः ॥३
तेषां नामानि वक्ष्यामि सनकश्च सनन्दनः ।
सनत्कुमारश्च विभुः सनातन इति स्मृतः ॥४
विष्णुभक्ता महात्मानो ब्रह्मध्यानपरायणाः ।
सहस्रसूर्यसंकाशा सत्यसन्धा मुमुक्षवः ॥५
एकदा मेरुशृङ्गं ते प्रस्थिता ब्रह्मणः सभाम् ।
दृष्ट्वा मार्गेऽथ ददृशुर्गंगां विष्णुपदीं द्विजाः ॥६
तां निरीक्ष्य समुद्युक्ताः स्नातुं सीताजलेऽभवन् ।
एतस्मिन्नन्तरे तत्र देवर्षिर्नारदो मुनिः ॥७
आजगाम द्विजश्रेष्ठा दृष्ट्वा भ्रातॄन् स्वकाग्रजान् ।
तान् दृष्ट्वा स्नातुमुद्युक्तान् नमस्कृत्य कृताञ्जलिः ॥८

महर्षिगणों ने कहा—सनत्कुमारजी ने महात्मा देवर्षि श्री नारद जी से इन सब धर्मों का वर्णन किस तरह से किया था और इन दोनों का सम्मिलन वहाँ किस कारण से हुआ था ? ॥१॥ हे सूत जी ! आप यह भी बतलाइये कि इन दोनों ब्रह्मवादियों ने जो भगवत् चर्चा की थी वह विष्णुदेव के गुणों का गान किस स्थान पर विराजमान होकर किया था ? ॥२॥ श्री सूतजी ने कहा—श्री सनकादि महापुरुष श्री ब्रह्माजी के मानस पुत्र हैं । उनमें न तो किसी प्रकार का ममत्व है और न अहं बुद्धि ही है । ये सब ऊर्ध्वरेता महानुभाव हैं ॥३॥ अब हम इन चारों के परम शुभ नामों को भी आपको बतलाते हैं—सनक—सनन्दन—सनत्कुमार और विभु सनातन ये चारों के चार नाम हैं । ये चारों ही भगवान् के परम भक्त महान् आत्माओं वाले थे तथा सर्वदा ब्रह्म के ध्यान में निरत रहा करते

थे ये सहस्रो सूर्य के सद शअज्ञानान्धकार के नाशक, सत्य प्रतिज्ञ और मुमुक्षु हैं ॥ ५ ॥ हे द्विजगण ! एक समय की घटना है वे ब्रह्माजी की सभा में गमन करने के वास्ते अपने इच्छित मेरु शृङ्ग की ओर चल दिये थे। मार्ग में उन्होंने श्री विष्णुदेव के चरण कमल से प्रकट हुई भागीरथी गङ्गा का दर्शन करके उस घाट पर इनकी पद्धति के तुल्य वहन करने वाली गङ्गा में अवगाहन के लिये प्रस्तुत हुए थे। हे द्विजवरो ! उसी समय में वहाँ पर देवर्षि नारदजी आगये थे। उन्होने अपने ज्येष्ठ भाइयों को स्नान करने को उद्यत हुए देखा तो उनको हाथ जोड़ कर प्रणाम किया था ॥७॥८॥

गृणन् नामानि सप्रेमभक्तियुक्तो मधुद्विप ।
नारायणच्युतानन्त वासुदेव जनार्दन ॥६
यज्ञेश यज्ञपुरुष कृष्ण विष्णो नमोऽस्तु ते ।
पद्माक्ष कमलाकान्त गङ्गाजनक केशव ।
क्षारोदशायिन् देवेश दामोदर नमोऽस्तु ते ॥१०
श्रीराम विष्णो नरसिंह वामन प्रद्युम्न संकर्षण वासुदेव ।
अजानिरुद्धामलरुङ् मुरारे त्वं पाहि नः सर्वभयादजस्रम् ॥११
इत्युच्चरन् हरेर्नाम नत्वा तान् स्वाग्रजाम् मुनीन् ।
उपासीनश्च तैः सार्धं सस्नौ प्रीतिसमन्वितः ॥१२
ते चापि तु सीतायां जले लोकमलापहे ।
स्नात्वा सन्तर्प्य देवर्षिपितॄन् विगतकल्मषा ॥१३
उत्तीर्य सन्ध्योपास्त्यादि कृत्वाचारं स्वकं द्विजा ।
यथा प्रचक्रु विविधा नारायणगुणाश्रिता ॥१४

इसके अनन्तर बहुत ही भक्तिभाव के साथ मधुदैत्य के वध करने वाले उनके शत्रु भगवान् के निम्नलिखित नामों का उच्चारण करने लगे। उन्होंने कहा—हे नारायण ! हे अच्युत ! हे अनन्त ! हे वासुदेव ! आपको (हमारा) प्रणाम है। हे यज्ञ पुरुष ! हे यज्ञेश !

हे कृष्ण ! हे विष्णो ! आपको (हम सबका) प्रणाम है ॥६॥१०॥ हे कमल पत्राक्ष ! हे लक्ष्मीकान्त ! हे गङ्गाजनक ! हे केशव ! हे क्षीरोदि शायिन् ! हे देवेश ! हे दामोदर ! आपकी सेवा में हमारा सबका प्रणाम समर्पित है ! हे श्रीराम ! हे प्रद्युम्न ! हे सङ्कर्षण ! हे वासुदेव ! विष्णो ! नरसिंह ! वामन ! अज ! अनिरुद्ध ! निर्मल कान्ति सम्पन्न ! आप ही विश्व के पदार्थ जगत में व्याप्त है ऐसे आप हमारी सभी तरह के भयों से रक्षा करें ॥११॥ इस रीति से देवर्षि नारदजी ने श्री हरि भगवान् के नामों का उच्चारण करके अपने ज्येष्ठ भाई मुनियों को प्रणाम किया था और फिर उन्ही के साथ अवगाहन करके वहीं पर बैठ गये थे ॥१२॥ हे द्विजगणो ! सनकादि भी सांसारिक मल को धो डालने वाले भागीरथी के जल में स्नान करके देवर्षि पितृगण का तर्पण करने लगे और फिर जल से बाहिर आकर उन पापरहित मुनिगण ने अपना सन्ध्योपासनादि नित्यकर्म सम्पादित करके नारायण के गुणों से पूरित अनेक कथायें कहना आरम्भ कर दिया था ॥१३।१४॥

कृतक्रियेषु मुनिषु गङ्गातीरे मनोरमे ।
चकार नारदः प्रश्नं नानाख्यानकथान्तरे ॥१५
सर्वज्ञाः स्थ मुनिश्रेष्ठा भगवद्भक्तितत्परा ।
यूयं सर्वे जगन्नाथा भगवन्तः सनातनाः ॥१६
लोकोद्धारपरान् युष्मान् दीनेषु कृतसौहृदान् ।
पृच्छे ततो वदत मे भगवल्लक्षणं बुधाः ॥१७
यत्पादमखिलं जातं जगत् स्थावरजङ्गमम् ।
गङ्गा पादोदरा यस्य स कथं ज्ञायते हरिः ॥१८
कर्म च त्रिविधं सपन्नं जायते नृणाम् ।
ज्ञानस्य लक्षणं ब्रूत तपसश्चापि मानद ॥१९
अतिथेः पूजनं वापि येन विष्णुः प्रसादति ।

एवमादीनि गुह्यानि हरितुष्टिकराणि च ।
अनुगृह्य च मा नाथा तत्त्वतो वक्तुमर्हथ ॥२०
नम पराय देवाय परस्मात् परमाय च ।
परावरनिवासाय सगुणायागुणाय च ॥२१

इसी समय मे जब कि ये लोग नित्य कर्म को पूर्ण करके विविध श्री हरि कथाओ का प्रवचन कर रहे थे श्री नारद ने प्रश्न किया था ॥१५॥ उन्होंने यह पूछा था— हे परम श्रेष्ठ मुनिजनो ! यह तो परम निश्चित है कि आप सभी सर्वज्ञ हैं और सर्वदा भगवद्भक्ति मे सलग्न रहा करते है । सम्पूर्ण ऐश्वर्य—वीर्य—यश—श्री—ज्ञान—वैराग्य इन छै (षडैश्वर्य अर्थात् भग) से सम्पन्न है और भगवान् हैं । षडैश्वर्य स्वरूप भग से युक्त हैं । आप सनातन और जगन्नाथ हैं ॥१६॥ हे विद्वज्जनो ! आप तो सर्वदा सासारिक प्राणियो के उद्धार मे लगे रहने वाले हैं । आप सदा दीनो पर सुहृद् भाव रखा करते हैं। आप ऐसे एक परम महान् विशिष्ट महापुरुष हैं आप मेरे प्रश्नका समाधान करते हुये भगवान् के लक्षण का वर्णन करिये ॥१७॥ जिनसे यह चराचर सम्पूर्ण विश्व समुत्पन्न हुआ है । गङ्गा जिनके पावन चरणो का जल है वे श्री हरि का ध्यान किस प्रकार से होता है ॥१८॥ इस ससार मे मनुष्यो के जो नित्य, नैमित्तिक और काम्य इन तीनो प्रकार के कर्म किस विधि से सफल हुआ करते हैं । हे मानद! आप कृपया मुझको ज्ञान और तप का वास्तविक स्वरूप समझाइये ॥१९॥ अतिथि के अर्चन का क्या विधान होता है ? यह बतलाइये क्योंकि इसके करने से श्रीहरि बहुत प्रसन्न हो जाते हैं । इसी प्रकार श्री हरि के प्रसन्न कर देने वाली परम गुप्त बातें मुझ पर अनुग्रह करके ठीक ठीक समझाइये ॥२०॥ इस पर श्री शौनकजी ने कहा— प्रकृति से परे, श्रेष्ठो से भी परम श्रेष्ठ देव । उत्कृष्ट एव निकृष्ट

साधकों में आत्मा रूप से निवास करने वाले सगुण एवं निर्गुण भगवान् के लिये प्रणाम है ॥२१॥

अमायायात्मसज्ञाय मायिने विश्वरूपिणे ।
योगीश्वराय योगाय योगगम्याय विष्णवे ॥२२
ज्ञानाय ज्ञानगम्याय सर्वज्ञानैकहेतवे ।
ज्ञानेश्वराय ज्ञेयाय ज्ञात्रे विज्ञानसम्पदे ॥२३
ध्यानाय ध्यानगम्याय ध्यातृपापहराय च ।
ध्यानेश्वराय सुधिये ध्येयध्यातृस्वरूपिणे ॥२४
आदित्यचन्द्राग्निविधातृदेवा. सिद्धाश्च यक्षासुरनागसघा' ।
यच्छक्तियुक्तास्तमज पुराण सत्य स्तुतीश सतत नतोऽस्मि॥२५
यो ब्रह्मरूपी जगता विधाता स एव पाता द्विजविष्णुरूपी ।
कल्पान्तरुद्राख्यतनुः स देवः शेतेऽड घ्रिपानस्तमज भजामि ।२६
यन्नामसङ्कीर्तनतो गजेन्द्रो ग्राहोग्रबन्धान्मुमुचे स देव ।
विराजमान. स्वपदे पराख्ये त विष्णुमाद्य शरण प्रपद्ये ॥२७
शिवस्वरूपी शिवभक्तिभाजा यो विष्णुरूपी हरिभावितानाम् ।
सङ्कल्पपूर्वात्मकदेहहेतुस्तमेव नित्य शरण प्रपद्ये ॥२८

माया के प्रलेप रहित (ब्रह्म.) आत्मा नाम वाले मायोपाधिधारी ईश्वर विश्व के स्वरूप में वर्तमान-योगीश्वर-योगात्मक और योग के द्वारा ही प्राप्त होने वाले भगवान् विष्णु के लिये प्रणाम है ॥२२॥ स्वयं ज्ञान के स्वरूप वाले, ज्ञान के द्वारा ही प्राप्त होने वाले, सम्पूर्ण ज्ञान के अनन्य कारणस्वरूप, जानने के योग्य, ज्ञाता, विज्ञान के सम्पत्ति स्वरूप भगवान के लिए प्रणाम है ॥२३॥ ध्यानात्मक, ध्याता, ध्यान से प्राप्त होने वाले ध्याता के पापको दूर भगा देने वाले, ध्यान के ईश्वर, सद्बुद्धि ध्येय सर्व ब्रह्ममय जगद् भगवान् के लिए प्रणाम है ॥२४॥ चन्द्र, सूर्य, अग्नि और विधाता, सिद्ध, असुर, यक्ष तथा नागों के समुदाय जिसकी शक्ति से सम्पन्न होने के

कारण ही अपना कार्य पूर्ण कर सकते हैं। उन जन्म रहित पुराण पुरुष, सत्य स्वरूप, स्तुतियो के स्वामी, सनातन भगवान् को मैं प्रणाम करता हूँ ॥२५॥ जो ब्रह्मस्वरूप से इस संसार के विधाता हैं वे ही द्विज विष्णु के रूप से इस संसार का पालन किया करते हैं और वे ही कल्प के अन्त में रुद्र का स्वरूप बनाकर इसका संहार करते हैं। उन चरणांगुष्ठ का पयपान कर शयन करते हुए पान करने वाले उत्पत्ति से रहित भगवान का मैं भजन करता हूँ ॥२६॥ गजराज जिनके पवित्र नाम का कीर्तन करने से ग्राह के परम भयङ्कर बन्धन से मुक्त हो गया था उन परम पद पर विराजमान आदि देव भगवान् विष्णु की शरण मैं ग्रहण करता हूँ ॥२७॥ जो शिव के स्वरूप की भक्ति करने वालो के लिए शिव स्वरूप में विद्यमान है और हरि का ध्यान करने वाले पुरुषो के लिए विष्णु के स्वरूप में वर्तमान हैं। अपने भक्तो की भावना के तुल्य स्वरूप के कारण से ही जो इस प्रकार के शरीर धारण किया करते हैं उन नित्य परमात्मा की मैं शरण ग्रहण करता हूँ ॥२८॥

य केशिहन्ता नरकान्तकश्च बालो भुजाग्रेण दधार गोत्रम् ।
देव च भूभारविनोदशील त वासुदेव सतत नतोऽस्मि ॥२९
लेभेऽवतीर्योग्रनृसिंहरूपी यो दैत्यवक्ष कठिन शिलावत् ।
विदार्य सरक्षितवान् स्वभक्त प्रह्लादमीश तमज नमामि॥३०
व्योमादिभिर्भूषितमात्मसज्ञ निरञ्जन नित्यमयेयतत्त्वम् ।
जगद्विधातारमकर्मक च पर पुराण पुरुष नतोऽस्मि ॥३१
ब्रह्मेन्द्ररुद्राग्निमरुन्मनुष्यगन्धर्वयक्षासुरदेवाद्यैः ।
स्वमूर्तिभेदै स्थित एक ईशस्त-मादिमात्मानमह भजामि ॥३२
यतो भिन्नमिद सर्वं समुद्भूत स्थित च वै ।
यस्मिन्नेष्यति पश्चाच्च तमस्मि शरण गत ॥३३
य स्थितो विश्वरूपेण सङ्गीवात्र प्रतीयते ।

असङ्गी परिपूर्णश्च तमस्मि शरणं गतः ॥३४
हृदि स्थितोऽपि यो देवो मायया मोहितात्मनाम् ।
न ज्ञायेत परः शुद्धस्तमस्मि शरणं गत. ॥३५

जो केशी नामक दैत्य का बध करने वाले हैं जो महान अत्याचारी नरकासुर का सहार करने वाले हैं,और भक्तो की रक्षा हेतु जिनने बचपन में ही अपने हाथ की छोटी-सी अगुली पर ही गोवर्धन पर्वत को उठा लिया था और जो भूमडल के भार को हटाने के लिए विनोदपूर्ण स्वभाव वाले हैं, उन्ही वसुदेवजी और देवकी के पुत्र भगवान् की मैं शरण लेता हूँ ॥२९॥ जिन प्रभु ने परम भयकर नृसिंह रूप मे प्रकट होकर पाषाण के तुल्य कठोर हिरण्यकश्यपु दैत्य का हृदय अपने नखो से विदीर्ण करके अपने भक्त प्रह्लाद की रक्षा की थी उन उत्पत्ति से रहित भगवान को मैं प्रणाम करता हूँ ॥३०॥ आकाश आदि की अनेक उपमाओ से विभूषित आत्मा की सज्ञा वाले, नित्य निरजन, अप्रमेय तत्व से युक्त, जगत् के विधाता, कर्मों के फलादि बन्धन से शून्य-परम प्राचीन पुरुष भगवान् को मैं प्रणाम करता हूँ ॥३१॥ ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, अग्नि वायु, मनुष्य, गन्धर्व, असुर, देव-वृन्द आदि अपनी ही मूर्त्ति के भेदो से जो एक आदि आत्मा ईश्वर विराजमान हैं उनका मैं सेवन करता हूँ॥ ३२॥ यह सम्पूर्ण विश्व की रचना का प्रयत्न जिनसे पृथक् है और समस्त प्रपच जिनसे ही प्रकट हुआ है—जिनमे स्थित है और पीछे जिनमे ही लीन हो जाया करता है उन्ही भगवान् की मैं शरण ग्रहण करता हूँ ॥३३॥ जो इस विशाल विश्व के स्वरूप मे विराजमान होने के कारण से लिप्त से प्रतीत होते हैं किन्तु वास्तविकता से वह सदा निर्लेप और परि-पूर्ण हैं उन्ही परम प्रभु भगवान् की मैं शरण ग्रहण करता हूँ ॥३४॥ जो परम विशुद्ध परमात्मा समस्त प्राणीमात्रो के अन्तःकरण मे वर्तमान रहते हैं तथापि चित्त की माया से मोहित होने के कारण से

ही लिये पत्थर के तुल्य परम कठोर हिरण्यकशिपु के वक्ष स्थल को विदीर्ण कर दिया था उन नृसिह भगवान् को मैं प्रणाम करता हूँ ।३६। जिनने अपने दो ही पदो से इस समस्त भूमण्डल को नापकर विरोचन के पुत्र महाबली दैत्यराज बलि से छीन कर ब्रह्मलोक का सम्पूर्ण राज्य देवगण को दे दिया था । उस अजित वामन भगवान् की मैं शरण लेता हूँ ।। ४० ।। जिन्होने हैहय वश वाले कार्त्तवीर्य अर्जुन के अपराध करने पर इक्कीस बार क्षत्रियो का सहार किया था, उन जमदग्नि ऋषि के पुत्र परशुराम को मैं प्रणाम करता हूँ ।।४१।। जिन्होने त्रेता मे राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न इन चार स्वरूपो मे प्रकट होकर वानरो की सेना बना कर राक्षसो की सेना का सहार किया था उन श्री राघवेन्द्र प्रभु को मैं प्रणाम करता हूँ ।।४२।।

मूर्तिद्वय समाश्रित्य भूभारमपहृत्य च ।
सजहार कुल स्व यस्त श्रीकृष्णमह भजे ।।४३
भूम्यादिलोकत्रितय सतृप्तात्मानमात्मनि ।
पश्यन्ति निर्मल तमीशान भजाम्यहम् ।।४४
युगान्ते पापिनोऽशुद्धान् भित्वा तीक्ष्णसुधारया ।
स्थापयामास यो धर्मं कृतादौ त नमाम्यहम् ।।४५
एवमादीन्य कानि यस्य रूपाणि भूसुरा ।
न शक्यं परिसख्यातु कोटयब्दैरपि त भजे ।।४६
महिमान तु यन्नाम्न पर गन्तु मुनीश्वर ।
देवासुराश्च मनव कथ त क्षुल्लको भजे ।।४७
यन्ना श्रवणेनापि महापातकिनो नरा ।
पवित्रता प्रपद्यन्ते त कथ स्तौमि चाल्पधी ।।४८
यथाकथञ्चिद्यन्नाम्नि कीर्तिते वा श्रुतेऽपि वा ।
पापिनस्तु विशुद्धा स्यु शुद्धा मोक्षमवाप्नुयु ।।४९

जिन प्रभु ने कृष्ण और बलराम दो स्वरूपों को धारण करके पृथ्वी का भार उतारा था और अन्त में आपने यादव कुलका भी संहार करा दिया था उन भगवान् श्री कृष्ण की मैं शरण ग्रहण करता हूँ ।।४३।। जिनको भूलोक आदि तीनों भुवन निर्मल विशुद्ध अपने स्वरूप में तृप्त देखा करते हैं उन प्रभु का ही मैं भजन करता हूँ ।।४४।। जो इस घोरतम कलियुग के अन्त में दुष्ट पापियों का तीक्ष्ण धार वाली तलवार से संहार करके सत्ययुग के आरम्भ काल में धर्म की स्थापना किया करते हैं उन्हीं भगवान की सेवा में मैं अपना प्रणाम समर्पित करता हूँ ।।४५।। हे विप्रो भगवान के इस तरह से अनेकों ही स्वरूप हैं जिनकी गणना करोड़ों वर्षों में भी नहीं की जा सकती है ऐसे भगवान् का मैं भजन किया करता हूँ ।।४६।। बड़े से बड़े देवगण और महर्षि मनु भी जिनके नाम की महिमा का पार नहीं पा सकते हैं उनका मुझ जैसे क्षुद्र जीव क्या भजन स्मरण कर सकता है ।।४७।। जिनके शुभ परम पावन नाम का श्रवण मात्र करने ही से महा पातकी मनुष्य भी अशुचिता का त्याग कर पवित्र हो जाया करते हैं उन प्रभु की मैं अल्प बुद्धि वाला क्या स्तुति कर सकता हूँ ।।४८।। जिन भगवान् के नाम का जैसे-तैसे भी कीर्त्तन करके या श्रवण करके महान् पापी एक दम विशुद्ध हो जाया करते हैं और शुद्ध होकर वे मोक्ष पद को प्राप्त कर लिया करते हैं ।।४६।।

आत्मन्यात्मानमाधाय योगिनो गतकल्मषा ।
पश्यन्ति य ज्ञानरूप तमस्मि शरण गत ।।५०
साख्या सर्वेषु पश्यन्ति परिपूर्णात्मक हरिम् ।
तमादिदेवमजर ज्ञानरूप भजाम्यहम् ।।५१
सर्वसत्त्वमय शान्त सर्वद्रष्टारमीश्वरम् ।
सहस्रशीर्षक देव वन्दे भावात्मक हरिम् ।।५२
यद्भूत यच्च वै भाव्य स्थावर जङ्गम जगत् ।

✓दशागुल योऽत्यतिष्ठत्तमीशमजर भजे ॥५३
अणोरणीयासमज महतश्च महत्तरम् ।
गुह्याद्गुह्यतम देव प्रणमामि पुन पुन ॥५४
ध्यात स्मृत पूजितो वा श्रु त प्रणमितोऽपि वा ।
स्वपद यो ददातीशस्त वन्दे पुरुषोत्तमम् ॥५५
इति स्तुवन्त परम परेश हर्षाम्बुसरुद्धविलोचनास्ते ।
मुनीश्वरा नारदसयुतास्तु सनन्दनाद्या प्रमुद प्रजग्मु ॥५६
य इद प्रातरुत्थाय पठेद्वै पौरुष स्तवम् ।
सर्वपापविशुद्धात्मा विष्णुलोक स गच्छति ॥५७

निष्पाप योगीजन अपने चित्त को आत्मा मे सलग्न करके जिस ज्ञानस्वरूप ईश्वर का साक्षात्कार किया करते हैं उसी ईश्वर की मैं शरण को ग्रहण करता हूँ ॥५०॥ सांख्यवादी लोग हरि को सबमे परिपूर्ण देखा करते हैं उन्ही आदि देव, अजर, अमर और ज्ञानस्वरूप ईश्वर की शरण मैं ग्रहण करता हूँ ॥५१॥ सर्व सत्त्वमय, शान्त-स्वरूप, सबके द्रष्टा, सहस्रों शिर वाले भावात्मक श्रीहरि की मैं वन्दना करता हूँ ॥५२॥ जो भूत और भविष्यत् काल के स्वरूप वाले हैं, जो स्थावर (अचर) और जङ्गम (चर) सम्पूर्ण जगत् मे दश अगुल प्रमाण मूर्ति मे विद्यमान रहा करते हैं उन जरा रहित भगवान् विष्णु का मैं भजन करता हूँ ॥५३॥ जो सर्वत्र व्यापक होने के कारण से अणु से भी अणु है तथा सूक्ष्म से भी सूक्ष्म हैं और महान् से भी महान् हैं तथा गुह्य से भी परम गुह्य हैं। उन देव को मैं बारम्बार सादर प्रणाम समर्पित करता हूँ ॥५४॥ जो दयालु भगवान् केवल ध्यान करने पर, स्मरण करने पर, श्रद्धा से यजन करने पर, सुनने और प्रणाम मात्र करने पर अपने लोक का निवास प्रदान कर दिया करते हैं उन्ही परम कारुणिक पुरुषोत्तम भगवान की मैं वन्दना करता हूँ ॥५५॥ हे मुनीश्वरो ! देवर्षि श्री नारद जी इस रीति से परेश परमात्मा का

आदि की सृष्टि आदि काल मे जिस प्रकार की थी उस सृष्टि की रचना का वर्णन आप मेरे समक्ष मे कीजिए ॥१॥ श्री महा महर्षि सनकजी ने कहा—भगवान् नारायण अनन्त, अक्षर, निरञ्जन और सर्वव्यापी हैं। यह सम्पूर्ण स्थावर और जङ्गम जगत उनसे ही व्याप्त है ॥२॥ स्वकीय तेज से ही प्रकाशित होने वाले जगन्मय महाविष्णु देव ने इस सृष्टि के आदि काल मे गुणगान के भेद होने के अनुसार तीन मूर्तियो की रचना की थी ॥३॥ हे मुनिवर ! उस देवेश्वर ने अपने दक्षिण अङ्ग से प्रजापति ब्रह्मा जी को प्रकट किया था तथा अपने मध्याङ्ग से इस विश्व का सहार करने वाले ईशान रुद्रदेव को प्रकट किया था ॥४॥ इस सम्पूर्ण विश्व का पालन एव संरक्षण करने के लिए अपने ही बांये अङ्ग से अविनाशी विष्णु को समुत्पन्न किया था। उन अजर अमर आदिदेव को ही कोई शिव नाम से पुकारते हैं। कोई महाविष्णु और कोई सदा सत्य (विष्णु) ब्रह्म कहा करते हैं। इन्ही भगवान् विष्णु देव की सर्वश्रेष्ठ शक्ति का ही प्रभाव है कि इस जगत् का उसी से सब कार्य चलता रहता है वही भाव और अभावात्मक विद्या इस नाम से कही जाती है ॥६॥ जिस समय मे यह विश्व विष्णु भगवान् से भिन्न प्रतीत होता है उस समय मे वह शक्ति अविद्या के रूप मे सिद्ध होकर दुःख का कारण हो जाया करती है ॥७॥

ज्ञातृज्ञेयाद्युपाधिस्ते यदा नश्यति नारत ।
सर्वकभावना बुद्धिः सा विद्येत्यभिधीयते ॥८
एव माया महाविष्णोर्भिन्ना ससारदायिनी ।
अभेदबुद्धया दृष्टा चेत् ससारक्षयकारिणी ॥६
विष्णुशक्तिसमुद्भूतमेतत् सर्वं चराचरम् ।
यस्माद्भिन्नमिदं सर्वं यच्चेङ्गं यच्च नेङ्गति ॥१०
उपाधिभिर्यथाकाशो भिन्नत्वेन प्रतीयते ।
अविद्योपाधियोगेन तथेदमखिलं जगत् ॥११

यथा हरिर्जगद्व्यापी तस्य शक्तिस्तथा मुने ।
दाहशक्तिर्यथाङ्गारे स्वाश्रय व्याप्य तिष्ठति ॥१२
उमेति केचिदाहुस्ता शक्ति लक्ष्मी तथा परे ।
भारतीत्यपरे चैना गिरिजेत्यम्बिकेति च ॥१३
दुर्गेति भद्रकालीति चण्डी माहेश्वरीत्यपि ।
कौमारी वैष्णवी चेति वाराह्यैन्द्री च शाम्भवी ॥१४

हे नारद ! जिस समय में ज्ञाता और ज्ञेय की उपाधि विनष्ट हो जाती है और फिर सब को एक विचारने की बुद्धि उत्पन्न होजाया करती है वही अभेदमयी अवस्था विद्या कही जाती है ॥८॥ इस तरह से माया को विष्णु से भिन्न देखा जावे तो वह इस संसार में डालने वाली होती है और उसी को अभेद बुद्धि, ब्रह्म बुद्धि देखा जावे तो यह संसार का क्षय करने वाली हुआ करती है ॥९॥ यह सम्पूर्ण चराचरात्मक जगत् भगवान् विष्णु की शक्ति से ही प्रकट हुआ है और यह सम्पूर्ण जड़ जङ्गम जगत जो भी कुछ है वह सब विष्णु से भिन्न नहीं है ॥१०॥ घर, भवन, मठ आदि अनेक उपाधियों से यह आकाश भी मठाकाश प्रभृति भिन्न २ दिखाई देता है ऐसे ही अविद्या रूपी उपाधि के योग से यह सम्पूर्ण जगत् भिन्न दीख पड़ता है किन्तु वास्तव में यह यह सभी कुछ विष्णुमय है ॥११॥ हे मुनिवर ! जिस प्रकार से श्रीहरि जगत् में व्यापक हैं उसी भाँति उनकी शक्तियाँ भी जगद व्यापिनी होती हैं । देखने में आता है कि अग्नि की दाह शक्ति के स्वरूप को कोई लक्ष्मी तो कोई उमा एवं सरस्वती कहा करते हैं । कोई २ इसी को गिरिजा अथवा जगदम्बा भी कहते हैं ॥१३॥ इसी शक्ति को कोई २ दुर्गा, भद्रकाली, माहेश्वरी, चण्डी, कौमारी, वैष्णवी, ऐन्द्री, वाराही और शाम्भवी कहा करते हैं ॥१४॥

ब्राह्मीति विद्याविद्येति मायेति च तथा परे ।
प्रकृतिश्च परा चेति वदन्ति परमर्षय ॥१५

शेषशक्ति परा विष्णोर्जगत्सर्गादिकारिणी ।
व्यक्ताव्यक्तस्वरूपेण जगद्व्याप्य व्यवस्थिता ॥१६
प्रकृतिश्च पुमाश्चैव कालश्चेति त्रिधिस्थितिः ।
सृष्टिस्थितिविनाशानामेक कारणता गतः ॥१७
येतदमखिल जात ब्रह्मरूपधरेण वै ।
तस्मात् परतरो देवो नित्य इत्यभिधीयते ॥१८
रक्षा करोति यो देवो नित्य इत्यभिधीयते ॥१६
रक्षा करोति यो देवो जगता परतः पुमान् ।
तस्मात् परतर यत्तदव्यय परम पदम् ॥२०
अक्षरो निर्गु णः शुद्ध परिपूर्ण : सनातनः ।
यः परः कालरूपाख्यो योगिध्येय. परात्पर ॥२१
परमात्मा परानन्दः सर्वोपाधिविवर्जित. ।
ज्ञानैकवेद्य परम. सच्चिदानन्दविग्रह. ॥२२

कतिपय लोग इसी शक्ति को ब्राह्मी विद्या और अविद्या माया कहते है । कुछ श्रेष्ठ ऋषिगण इस को परा तथा प्रकृति कहा करते हैं ॥१५॥ यह भगवान् विष्णु की परम श्रेष्ठ परा शक्ति ही इस विश्व की रचना आदि का कार्य किया करती है और यह प्रकट एव अव्यक्त रूप से इस जगत् मे व्याप्त होकर स्थित रहा करती है ॥१६॥ एक भगवान् विष्णु ही सविधि जगत मे स्थित होकर प्रकृति-पुरुष और काल के रूप से जगत् की सृष्टि, स्थिति और सहार के कारण हुआ करते हैं ॥१७॥ कारण यह है कि ब्रह्म के स्वरूप को धारण करने वाले परमात्मा ही से यह सम्पूर्ण विश्व प्रादुर्भूत हुआ है । अतएव यह परम श्रेष्ठ शिरोमणि देव नित्य कहे जाया करते हैं ॥१८॥ यही देव रक्षा किया करते है अतएव नित्य कहे जाया करते हैं ॥१६॥ जो देव पर भेद बुद्धि से जगत् की रक्षा किया करते हैं इसी कारण से वे परम श्रेष्ठतम अव्यय परम पद होते हैं ॥२०॥ जो निर्गुण, अक्षर शुद्ध परि-

पूर्ण और सनातन हैं योगीजन काल के स्वरूप से जिस परम श्रेष्ठ का ध्यान किया करते हैं वह परमानन्द स्वरूप परमात्मा समस्त उपाधियों से रहित है और वे एकमात्र ज्ञान के द्वारा ही जाने जाया करते हैं और वे सच्चिदानन्द विग्रह वाले हैं ॥२१॥२२॥

> योऽसौ शुद्धोऽपि परमोह्यहङ्कारेण सयुत ।
> देहीति प्रोच्यते मूढैरहोऽज्ञानविडम्बनम् ॥२३
> स देव परम शुद्ध सत्त्वादिगुणभेदत. ।
> मूर्तित्रय समापन्न सृष्टिस्थित्यन्तकारणम् ॥२४
> योऽसौ ब्रह्मा जगत्कर्ता यन्नाभिकमलोद्भव ।
> स एवानन्दरूपात्मा तस्मान्नास्त्यपरो मुने ॥२५
> अन्तर्यामी जगद्व्यापी सर्वसाक्षी निरञ्जन ।
> भिन्नाभिन्नस्वरूपेण स्थितो वै परमेश्वर ॥२६
> यस्य शक्तिर्महामाया जगद्विस्रम्भधारिणी ।
> विश्वोत्पत्तेर्निदानत्वात्प्रकृति प्रोच्यते बुधै. ॥२७
> आदिसर्गे महाविष्णोर्लोकान्कर्त्तुं समुद्यत ।
> प्रकृति पुरुषश्चेति कालश्चेति त्रिधा भवेत् ॥२८

परमात्मा का स्वरूप परम शुद्ध है तथापि अहङ्कार से संयुक्त होने के कारण मूढ़ पुरुष उसको देहधारी समझा करते हैं। यह केवल अज्ञान की ही एक विडम्बना मात्र है ॥२३॥ वे परम शुद्ध भगवान विष्णुदेव ही सत्वादि तीनों गुणों के द्वारा, ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन तीन स्वरूपों की मूर्तियाँ धारण करके इस जगत् की सृष्टि, स्थिति और संहार का कारण हुआ करते हैं ॥२४॥ हे मुनिवर ! इस जगत् का सृजन करने वाले ब्रह्माजी जिन भगवान् की नाभि कमल से समुत्पन्न हुए हैं वही परमानन्द स्वरूप विष्णु ही हैं यहाँ कि उन से श्रेष्ठ अन्य कोई हो ही नहीं सकता है ॥२५॥ वे भगवान परम ईश्वर, सर्वान्तर्यामी, जगत व्यापी, सर्व साक्षी तथा निरञ्जन हैं। वे उपाधियों के

भेद होने के कारण सब से भिन्न और निरुपाधि स्वरूप से अभिन्न स्वरूप मे स्थित रहते हैं ।।२६।। उन की महामाया शक्ति से इस जगत् में विश्वास हुआ करता है और इस विश्व की उत्पत्ति का वही मूल कारण है अतएव विद्वान् लोग उसको 'प्रकृति'—इस नाम से कहा करते है ।।२७।। जिस समय मे सृष्टि का आदि काल या और महाविष्णुदेव इस विश्व की रचना करने के लिए उद्यत हुए थे । उस समय मे वे ही प्रकृति और पुरुष कारण के स्वरूप से तीन स्वरूप वाले भागो मे बँट गये थे ।।२८

पश्यन्ति भावितात्मानो य ब्रह्मेत्यभिसञ्ज्ञितम् ।
शुद्ध यत्परम धाम तद्विष्णो परम पदम् ।।२६
एव शुद्धोऽक्षरोऽनन्त कालरूपी महेश्वर ।
गुणरूपी गुणाधारो जगतामादिकृद्विभु ।।३०
प्रकृति क्षोभमापन्ना पुरुषाख्ये जगद्गुरौ ।
महान्प्रादुरभूद्बुद्धिस्ततोऽह समवर्त्तत ।।३१
अहङ्काराच्च सूक्ष्माणि तन्मात्राणीन्द्रियाणि च ।
तन्मात्रेभ्यो हि जातानि भूतानि जगत. कृते ।।३२
आकाशवाय्वग्निजलभूमयोऽब्जभवात्मज ।
यथाक्रम कारणतामेकैकस्योपयान्ति च ।।३३
ततो ब्रह्मा जगद्धाता तामसानसृजत्प्रभु ।
तिर्यग्योनिगताञ्जन्तून्पशुपक्षिमृगादिकान् ।।३४
तमप्यसाधक मत्वा देवसर्गं सनातनात् ।
ततो वै मानुप सर्गं कल्पयामास पद्मज ।।३५

जिनका अन्त करण परम पवित्र है, वे लोग जिसका ब्रह्म के स्वरूप मे देखा करते हैं, जो परम विशुद्ध धाम है वही भगवान विष्णुदेव का परम पद होता है । इस रीति से यह समझ लेना चाहिये कि विभु, शुद्ध, अक्षर, अनन्त काल स्वरूपधारी महेश ही गुणो के रूप वाली

एव गुणो का आश्रय होकर आदि काल मे इस जगत् का सृजन किया करते हैं ।।२६-३०।। जगत् गुरु पुरुष नामधारी मे क्षोभ होने पर ही प्रकृति उत्पन्न या प्रादुर्भूत हुआ करती है। उस प्रकृति से महत् उत्पन्न होता है, महत् से बुद्धि और बुद्धि मे अहङ्कार की उत्पत्ति हुआ करती है ।।३१।। इस अहङ्कार से सूक्ष्म तन्मात्रायें समुत्पन्न हुआ करती हैं, इन्द्रियाँ होती है और जगत् के लिये उन तन्मात्राओं से ही भूतो की उत्पत्ति हुआ करती है ।।३२।। हे ब्रह्मपुत्र ! इन भूतो मे भी आकाश, वायु, अग्नि, जल ये सभी क्रमश एक-एक के कारण अर्थात् उत्पादक हुआ करते हैं और उसी क्रम मे ये लीन भी हो जाया करते है ।।३३।। इन आकाशादि पाँच महाभूतो की रचना करने के पीछे इस जगत् के धाता ब्रह्माजी ने तिर्यक योनियो मे रहने वाले पशु पक्षी आदि तमोगुण प्रधान प्राणियो की सृष्टि की थी ।।३४।। किन्तु जब ब्रह्माजी ने देखा कि इनकी सृष्टि से सृजन के कार्य का साधन सम्पन्न सम्पन्न नही हो सकता है तब फिर उन्होंने देवगणो की रचना की थी और सनातन पुरुष से ही मिलने वाली मनुष्यो की सृष्टि की थी ।।३५

ततो दक्षादिकान्पुत्रान्सृष्टिसाधनतत्परान् ।
एभि पुत्रैरिद व्याप्त सदेवासुरमानुषम् ।।३६
भूर्भुवश्च तथा स्वश्च महश्चैव जनस्तथा ।
तपश्च सत्यमित्येव लोका सत्योपरि स्थिता ।।३७
अतल वितल चैव सुतल च तलातलम् ।
महातल च विप्रेन्द्र ततोऽधश्च रसातलम् ।।३८
पाताल चेति सप्तैव पातालानि क्रमादध ।
एष सर्वेषु लोकेषु लोकनाथाश्च सृष्टवान् ।।३९
कुलाचलान्नदीश्चापी तत्तल्लोकनिवासिनाम् ।
वर्तनादीनि सर्वाणि यथायोग्यमकल्पयत् ।।४०
भूमेर्मध्यगो मेरु सर्वदेवसमाश्रय. ।

लोकालोकश्च भूम्यन्ते तन्मध्ये सप्त सागराः ।।४१
द्वीपाश्च सप्त विप्रेन्द्र द्वीपे द्वीपे कुलाचला. ।
वाह्या नद्यश्च विख्याता जनाश्चामरसन्निभा. ।।४२

इसके अनन्तर दक्ष आदि मानस पुत्रो की सृष्टि की थी जो उनकी रचना के कार्य मे साधन होकर तत्पर होगये थे। उन्ही पुत्रो के द्वारा सन्तान-प्रसन्तान के स्वरूप से समस्त देव, असुर और मनुष्यो का समुदाय से यह भगवान व्याप्त हो रहा है ।।६६।। इसके पश्चात् फिर ब्रह्माजी ने भू, भुवः, स्व॰, मह, जन, तप और सत्य इन सात लोको की रचना की थी, जो कि सत्य पर प्रतिष्ठित हैं ।।३७।। हे विप्रेन्द्र ! फिर अतल, वितल, सुतल, महातल और इसके भी अधोभाग मे रसातल तथा उसके भी नीचे पाताल लोक की रचना की थी। ये सभी क्रम से एक के नीचे एक हैं और नीचे होने के कारण सात पाताल कहे जाते हैं। इसके उपरान्त विधाता ने इन सब लोको के स्वामियो की रचना की थी ।।२७-३६।। इसके अनन्तर ब्रह्मा ने कुलाचल नदी तथा प्रत्येक लोक के लायक वर्तन, व्यापार और जीविका आदि की जैसी जहाँ होनी चाहिये उसी के अनुसार रचना की थी ।।४०।। इस भूमण्डल के मध्य मे मेरु पर्वत है इसी पर्वत पर समस्त देवगणो का निवास रहता है। इस भूलोक के अन्त मे लोकालोक पर्वत है और इस भूलोक मे सात समुद्र है ।।४१।। हे विप्रवर ! इस लोक मे सात द्वीप हैं और प्रत्येक द्वीप मे कुल पर्वत स्थित हैं। इनके बाहिर के भाग मे परम प्रसिद्ध नदियाँ भी हैं और यहाँ पर निवास करने वाले मनुष्य देवो के ही सदृश हुआ करते हैं ।।४२

जम्बूप्लक्षाभिधानौ च शाल्मलश्च कुशस्तथा ।
क्रौञ्चशाको पुष्करश्च ते सर्वे देवभूमय. ।।४३
एते द्वीपा समुद्रैस्तु सप्तसप्तभिरावृता ।
लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिक्षीरजलै. समम् ।।४४

एते द्वीपा समुद्राश्च पूर्वस्मादुत्तरोत्तरा. ।
ज्ञेया द्विगुणविस्तारा लोकालोकाच्च पर्वतात् ॥४५
क्षारोदधेरुत्तर यद्धिमाद्रेश्चैव दक्षिणाम् ।
ज्ञेय तद्भारतवर्षं सर्वकर्मफलप्रदम् ॥४६
अत्र कर्माणि कुर्वन्ति विविधानि तु नारद ।
तत्फल भुज्यते चैव भोगभूमिधनक्रमात् ॥४७
भारते तु कृत कर्म शुभ वाशुभमेव च ।
तत्फल क्षयि विप्रन्द्र भुज्यतेऽन्यत्र जन्तुभि. ॥४८
अद्यापि देवा इच्छन्ति जन्म भारतभूतले ।
सञ्चिता सुमहत्पुण्यमक्षय्यमल शुभम् ॥४६

उन सात द्वीपो के नाम जम्बूद्वीप, प्लक्ष द्वीप, शाल्मल, कुश, क्रौञ्च, शाक और पुष्कर द्वीप हैं। ये सभी द्वीप देवभूमि कहे जाते हैं ॥४३॥ ये सातो द्वीप सात समुद्रों से घिरे स्थित हैं। इन सातों समुद्रों के नाम भी क्षार (लवण) सागर, इक्षु, सुरा, घृत, दधि और क्षीर (दूध) तथा जल के नाम से प्रसिद्ध हैं और इनमें सुरा आदि ही पृथक् पृथक् भरा हुआ है। ये सब द्वीप और सागर क्रमश एक दूसरे के आगे २ ही स्थित रहते हैं। इसका विस्तार भी एक दूसरे का क्रम से दुगुना रहा करता है। यह लोकालोक पर्वत तक स्थित हैं ॥४४-४५॥ लवण समुद्र के उत्तर दिग्भाग मे तथा हिमाचल पर्वत के दक्षिण दिग्भाग मे भारतवर्ष है। यह भारतवर्ष सब प्रकार के कृत कर्मों का फलदाता वर्ष है ॥४६॥ हे नारद ! इस भारतवर्ष मे मनुष्य नित्य-नैमित्तिक और काम्य (कामना से युक्त) इन तीनो प्रकार के कर्मों को किया करते हैं क्योकि यही कर्मक्षेत्र या कर्मों के करने की भूमि है। वे सभी भोग भूमि तथा धन के स्वरूप मे उन कर्मों का फलो का भी उपभोग किया करते हैं ॥४७॥ हे विप्र शिरोमणे ! इस भारतवर्ष की भूमि मे जो भी शुभाशुभ कर्म सम्पन्न किया जाया करता है उसका

मान् ही होता है और प्राणी उनको स्वर्ग एव नरक आदि दूसरे लोकों मे आकर भोगा करते है ।।४८।। इसी कारण से देवगण आज तक भी इस भारत देश की भूमि म जन्म ग्रहण करने के लिये परम इच्छुक रहा करते हैं। कारण यही है कि इस भारत मे बहुत बडे अक्षय निमल एव परम शुभ पुण्य एव फल का सचय किया जा सकता है ।।४६

कदा लभामहे जन्म वर्षभारतभूमिषु ।
कदा पुण्येन महता यास्याम परम पदम् ।।५०
दानैर्वा विविधैर्यज्ञैस्तपोभिर्वाथवा हरिम् ।
जगदीश समेष्यामो नित्यानन्दमनामयम् ।।५१
यो भारतभुव प्राप्य विष्णुपूजापरो भवेत् ।
न तस्य सदृशोऽन्योऽस्ति त्रिषु लोकेषु नारद ।।५२
हरिकीतनशीलो वा तद्भक्ताना प्रियोऽपि वा ।
शुश्रूषुर्वापि महत स वेद्यो दिविजैरपि।।५३
हरिपूजारतो नित्य भक्त पूजारतोऽपि वा ।
भक्तोच्छिष्टान्नसेवी च याति विष्णो पर पदम् ।।५४
नारायणेति कृष्णेति वासुदेवेति यो वदेत् ।
अहिंसादिपर शान्त सोऽपि वन्द्य सुरोत्तमै ।।५५
शिवेति नीलकण्ठेति शङ्करेतिच य स्मरेत् ।
सर्वभूतहितो नित्य सोऽभ्यर्च्यो दिविजै स्मृत ।।५६

इसी कारण से देवगण यही सोच करते हैं कि कौन सा ऐसा सुसमय होगा कि हम लोग भारत म जन्म ग्रहण करेंगे और वहाँ पर परम पुण्यमय कर्मों का करके परम पद प्राप्ति का लाभ लेंगे ।।५०।। देवगणों का सदा यही चिन्तन बना रहा करता है कि यद हम अनेक प्रकार के दान, यज्ञ और तपश्चर्या भारत म करें फिर नित्यानन्द स्वरूप—अनामय जगत् के ईश्वर भगवान् विष्णु को प्राप्त करेंगे ।

क्यो कि स्वर्गादि लोक तो केवल भोग भूमि मात्र हैं। कर्मभूमि तो यह भारत देश ही है ।।५१।। हे नारद ! जो प्राणी इस परम पवित्र भारत की धरातल मे जन्म ग्रहण कर भगवान् विष्णु के अर्चन मे तत्पर रहता है उसकी समानता रखने वाला त्रैलोक्य मे अन्य कोई भी नही हो सकता है ।।५२।। जो श्री हरि के कीर्तन करने के स्वभाव वाला होता है और जो विष्णु के भक्तो का प्यारा होता है एव अपने बडो की सेवा करने की इच्छा रखता है उस मनुष्य की देवगण भी वन्दना किया करते हैं ।।५३।। भगवान् विष्णुदेव की अर्चना मे परायण होकर विष्णु-भक्त होता हुआ पूजा मे तत्पर और भक्त के उच्छिष्ट अन्न अर्थात् शेष का जो सेवन करता है वह विष्णु के पद को प्राप्त करता है ।।५४।। जो अहिंसा आदि धर्म के गुणो मे सदा तत्पर रहकर शम प्रभृति का पूर्ण-तया परिपालन किया करता है और नारायण, कृष्ण, वासुदेव आदि भगवान के परम पुनीत नामो का कीर्तन करता है उस की भी देवगण पूजा किया करते है ।।५६

गुरुभक्त. शिवध्यानी स्वाश्रमाचारतत्पर: ।
अनसूयु. शुचिर्दक्षो य: सोऽप्यर्च्य. सुरेश्वरै: ।।५७
ब्राह्मणाना हितकर: श्रद्धावान्वर्णधर्मयो. ।
वेदवादरतो नित्य स ज्ञेय. पङ्क्तिपावन. ।।५८
अभेददर्शी देवेशे नारायणशिवात्मके ।
सर्वं यो ब्रह्मणा नित्यमस्मदादिषु का कथा ।।५९
गोषु क्षान्तो ब्रह्मचारी पर निन्दाविवर्जित: ।
अपरिग्रहशीलश्च देवपूज्य: स नारद ।।६०
स्तेयादिदोषविमुख: कृतज्ञ: सत्यवाक् शुचि: ।
परोपकारनिरत: पूजनीय: सुरासुरै: ।।६१
वेदार्थश्रवणे बुद्धि: पुराणश्रवणे तथा ।
सत्सङ्गेऽपि च यस्यास्ति सोऽपि वन्द्य सुरोत्तमै: ।।६२

एतमादीन्यनेकानि कर्माणि श्रद्धयान्वित ।
करोति भारते वर्षे सम्बन्धीऽस्माभिरेव च ॥६३

जो मनुष्य अपने बडो का परम भक्त होता है, शिवदेव का ध्यान किया करता है जो वर्णाश्रम धर्मों का पूर्णतया परिपालन करने वाला है, जो किसी भी प्राणी से द्रोह नही किया करता है, पवित्र एव चतुर होता है उस की देवराज इन्द्रदेव पूजा किया करते हैं ॥५७॥ जो मनुष्य ब्राह्मणो का सदा हित सम्पादन किया करता है—जो वर्णाश्रम के धर्मो मे श्रद्धा रखता है जो सर्वदा वैदिक सिद्धान्तों का विचार रखता है उसको पंक्ति पावन समझना चाहिये ॥५८॥ जिसकी देवेश्वर नारायण और देवों मे महान् श्री शिव मे अभेद दृष्टि हुआ करती है, जो सब मे ब्रह्म की सम्पन्नता को देखा करता है उस मनुष्य की गणना हम लोगो मे क्या हो सकती है वह तो हम सब से भी परम श्रेष्ठ होता है ॥५९॥ हे नारद ! गौओ पर सर्वदा दया की भावना रखने वाला, ब्रह्मचर्य का पालक, दूसरो की निन्दा से रहित, दान ग्रहण न करने वाला पुरुष होता है वह देवगणो का भी परम पूज्य होजाया करता है ॥६०॥ चोरी आदि के महान् दोषो से रहित, कृतज्ञ, सत्य भाषण करने वाला, परम पवित्र और सर्वदा परोपकार करने मे तत्पर रहने वाला व्यक्ति देवताओ के द्वारा भी पूजनीय हुआ करता है तथा इसकी देवगण ही नहीं असुर भी अर्चना किया करते हैं ॥६१॥ जो वैदिक सिद्धान्तो के श्रवण करने मे और उनको समझने के लिए उत्सुकता रखता है और पुराणो के श्रवण मे भी उत्कण्ठा रखता है तथा सत्पुरुषों की सङ्गति म जिस की लगन लगी रहती है उस पुरुष की बडे २ देवगण भी वन्दना किया करते हैं ॥६२॥ इस रीति स इस भारत भूमि म मनुष्य श्रद्धा के साथ विविध भाँति के सत्कर्म कर सकता है और सत्कर्मो के कारण से ही उसका हम देवो से भी सदा सम्बन्ध बना रहा करता है ॥६३

एतेष्वन्यतमो विप्र नात्मान तारयेत्तु य ।
स एव दुष्कृतिर्मूढो नास्त्यन्योऽस्मादचेतन ॥६४
सप्राप्य भारते जन्म सत्कर्मसु पराङ्मुख ।
पीयूष कलश मुक्त्वा विषभाण्डमुपाश्रित ॥६५
श्रुतिस्मृत्युदितैर्द्धर्मैर्नात्मान पावयेत्त य ।
स एवात्मविघाती स्यात्पापिनामग्रणीर्मुने ॥६६
कर्भूमि समासाद्य य न धर्मं समाचरेत् ।
स च सर्वाधम प्रोक्तो वेदविद्भिर्मुनीश्वर ॥६७
शुभ कर्म समुत्सृज्य दुष्कर्माणि करोति य ।
कामधेनु परित्यज्य अर्कक्षीर स मार्गति ॥६८
एव भारतभूभाग प्रशसन्ति दिवौकस ।
ब्रह्माद्या अपि विप्रेन्द्र स्वभोगक्षयभीरव ॥६९
तस्मात्पुण्यतम ज्ञेय भारत वर्षमुत्तमम् ।
देवाना दुर्लभ वापि सर्वकर्मफलप्रदम् ॥७०

हे विप्रवर ! जो यहाँ पर जन्म पाकर भी किसी भी एक कर्म का सम्पादन न कर अपनी आत्मा को ससारिक बन्धन के भय से विमुक्त नही करता है वह महान् दुष्कर्मी एव अत्यन्त ही मूढ है । उसके समान अन्य कौन जड हो सकता है जिसे यहाँ जन्म पाकर भी आत्म-कल्याण करने का सुयोग न बन सके ॥६४॥ जो इस महा महिमामयी भारत की धरा मे जन्म ग्रहण करके भी सत्कर्मों से परागमुखता रहा करता है वह पीयूष से पूर्ण कलश का त्याग कर विषपात्र को ही अपने मुख मे डालना चाहता है ॥ ६५ ॥ जो वेद और स्मृतियो मे बताये हुए धर्म कर्मों से अपनी आत्मा को निर्मल, निष्पाप और पवित्र नही करता है वह हे मुनिवर ! आत्मा का ही घात करने वाला और महा पापियों का सरदार समझना चाहिए ॥६६॥ हे मुनीश्वर ! जो मनुष्य इस

कर्म भूमि भारतवर्ष मे जन्म ग्रहण करके भी वेदविहीन धर्मों का समाचरण नही करता है वेद के ज्ञाता मनीषियो ने उसको सबसे निकृष्टतम एव अधम बताया है ॥६७॥ जो मनुष्य परम शुभ कर्मों का त्याग करके दुष्कर्मो के करने मे ही अपनी प्रवृत्ति रखता है उसे ऐसा ही समझ लेना चाहिये जैसे कोई प्राप्त हुई कामधेनु को छोड कर आक के दूध की खोज कर रहा हो ॥६८॥ हे मुनीन्द्र ! अपने कृत कर्मो के भोग के क्षय होने से भयभीत होने वाले ब्रह्मा प्रभृति देवगण भी इस तरह से इस भारतवर्ष की प्रशसा किया करते हैं ॥६९॥ इसलिये इस भारतभूमि को अवश्य ही परम पुण्य पूर्ण समझना चाहिए। यह देवो को भी परम दुर्लभ एव सभी कर्मों का प्रदान करने वाली भूमि है। अन्य लोक तो केवल भोग करने के ही क्षेत्र होने के कारण कुछ भी फल देन मे असमर्थ हुआ करते हैं ॥७०॥

अस्मिन्पुण्ये च भूभागे यस्तु सत्कर्मसूद्यत ।
न तस्य सदृश कश्चित्त्रिपु लोकेपु विद्यते ॥७१
अस्मिञ्जातो नरो यस्तु स्वकर्मक्षपणोद्यत ।
नररूपपरिच्छन्न स हरिर्नात्र सशय ॥७२
पर लोकफल प्रेप्सु कुर्यात्कर्माण्यतन्द्रित ।
निवेद्य हरये भक्त्या तत्फल ह्यक्षय स्मृतम्॥७३
विरागी चेत्कर्मफलेप्वपि किञ्चिन्न कारयेत् ।
अर्पयेत्सुकृत कर्म प्रीयतामिति मे हरि ॥७४
आब्रह्मभुवनाल्लोका पुनरुत्पत्तिदायका ।
फलागृध्नु कर्मणा तत्प्राप्नोति परम पदम्॥७५
वेदादितानि कर्माणि कुर्यादीश्वरतुष्टये ।
यथाश्रम त्यक्तकाम प्राप्नोति पदमव्ययम् ॥७६
निष्कामो वा सकामो वा कुर्यात्कर्म यथाविधि ।
स्याश्रमाचारशून्यश्च पतित प्रोच्यते बुधै ॥७७

जो मनुष्य इस महान् पुण्यमय भूमण्डल मे आकर सदा सत्कर्म करने के लिये समुद्यत रहा करते हैं उसकी समता रखने वाला त्रैलोक्य मे भी अन्य कोई भी नहीं होता है ।। ७१ ।। जो मनुष्य इस पुण्यमयी भारतवर्ष की भूमि मे अपना जन्म पाकर अपने कृतकर्मो को क्षीण करने के लिये उद्यत रहता है उसको मनुष्य के स्वरूप मे रहने वाला समावृत साक्षात् श्री हरि ही समझना चाहिये ।। ७२ ।। तन्द्रा और आलस्य से रहित होकर जो परलोक के फल की कामना करते हुये कर्म करता है वह भक्तिभाव से भगवान् विष्णु की प्रसन्नता के लिये कार्य करें तो उसका फल अक्षय हुआ करता है ।।७३।। जो कर्मों के फल पाने मे राग से रहित हो और कर्मों के फल प्राप्त करने की कुछ भी इच्छा न करे और यही भावना रक्खे कि मेरे इस कर्म से भगवान् प्रसन्न होवें ऐसा कहकर अपने कर्मको भगवान् के ही चरणो मे समर्पित कर देवे ।।७४।। ब्रह्म लोक पर्यन्त सभी लोक कर्मों के फल को प्रदान करने वाले एव पुनर्जन्म देने वाले होते हैं । किन्तु जो मनुष्य अपने कृतकर्मों का फल प्राप्त करना ही नहीं चाहता है उसी को पुनरावर्तन शीलता से रहित परम प्रतिष्ठित पद प्राप्त हुआ करता है ।।७५।। भगवान् को परम प्रसन्न करने के लिये कर्मों का सम्पादन करना चाहिये । जो फलाभिलाषा को पूर्णतया परित्याग करके अपने आश्रम के अनुकूल कर्म किया करता है ।।७६।। चाहे कोई भी कर्म कामना से रहित हो या सकाम हो उनका सम्पादन सदा शास्त्रोक्त विधान के अनुसार ही करना चाहिए । जो अपने आश्रम के नियत आचार का परिपालन पूर्ण रूप से नहीं करता है विद्वान् लोग उसको पतित कहा करते हैं ।।७७।।

सदाचारपरो विप्रो वर्द्धते ब्रह्मतेजसा ।
तस्य विष्णुश्च तुष्ट. स्याद्भक्तियुक्तस्य नारद ।
भारते जन्म सप्राप्य नात्मान तारयेत्, य. ।
पच्यते निरये घोरे स त्वाचन्द्रार्कतारकम् ।।७८

वासुदेवपरो धर्मो वासुदेवपर तपः ।
वासुदेवपर ज्ञान वासुदेवपरा गति. ॥८०
वासुदेवात्मक सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ।
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्त तस्मादन्यन्न विद्यते ॥८१
स एव धाता त्रिपुरान्तकश्च स एव देवासुरयज्ञरूप ।
स एव ब्रह्माण्डमिद ततोऽन्यन्न किंचिदस्ति व्यतिरिक्तरूपम् ८२
यस्मात्पर नापरमस्ति किंचिद्यस्मादणोयान्न तथा महीयान् ।
व्याप्त हि तेनेदमिद विचित्र त देव-देव प्रणमेत्समीड्यम्॥८३

हे नारद ! जो ब्राह्मण सद् आचरण करने वाला है उसका ब्रह्मतेज सर्वदा बढता ही रहा करता है और ऐसे भक्तिमान् पुरुष पर भगवान श्री विष्णु परम प्रसन्न रहा करते हैं और उनकी प्रसन्नता का होना ही मानव जीवन की परम सार्थकता है ॥७८॥ जो मनुष्य इस देव दुर्लभ परम पावन भारत की भूमि मे जन्म ग्रहण करके भी अपनी आत्मा का उद्धार नही किया करता है वह इस भूमण्डल मे चन्द्र, सूर्य विराजमान रहा करते है उस सुदीर्घकाल तक अत्यन्त घोर दु ख प्राप्त करता रहा करता है ॥७९॥ जो धर्म तथा तप-ज्ञान और सद्गति है इन सबका भगवान् विष्णु से ही सम्बन्ध होता है ॥८०॥ यहाँ पर ब्रह्मा जी से आरम्भ करके एक जड, ठूँठ तक सबका स्वरूप चाहे कोई स्थावर हो या जगम हो भगवान् का ही स्वरूप समझना चाहिये क्योंकि उन प्रभु के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नही है ॥ ८१ ॥ जितने भी ब्रह्मा—शिव आदि देवगण हैं तथा यक्ष और असुर वृन्द हैं और यह समस्त ब्रह्माण्ड जो भी कुछ है उन्ही का विभिन्न स्वरूप मे दिखाई देने वाला रूप होता है क्योंकि उनसे भिन्न तो अन्य कही भी कुछ होता ही नही है ॥८२॥ जिस भगवान से न कोई पर है—न अपर ही है। न जिन प्रभु से कोई छोटा है और न बडा है—यह अनेक प्रकार का सम्पूर्ण जगत् उनके ही विभिन्न स्वरूपो से

व्याप्त है उन्हीं परम पूजा करने के योग्य देव को प्रणाम करना चाहिये ॥८३॥

मृकण्डु मुनि को भगवान् का वर देना

श्रद्धापूर्वा सर्वधर्मा मनोरथफलप्रदा ।
श्रद्धया साध्यते सर्वं श्रद्धया तुष्यते हरि ॥१
भक्तिर्भक्त्यैव कर्त्तव्या तथा कर्माणि भक्तित ।
कर्मश्रद्धाविहीनानि न सिध्यन्ति द्विजोत्तमा ॥२
यथाऽऽलोको हि जन्तूना चेष्टाकारणता गत ।
तथैव सवसिद्धीना भक्ति परमकारणम् ॥३
यथा समस्तलोकाना जोवन सलिल स्मृतम् ।
तथा समस्तसिद्धीना जीवन भक्तिरिष्यते ॥४
यथा भूमि समाश्रित्य सर्वे जीवन्ति जन्तव ।
तथा भक्ति समाश्रित्य सर्वकार्य्याणि साधयेत् ॥५
श्रद्धावाँल्लभते धर्म्मं श्रद्धावानर्थमाप्नुयात् ।
श्रद्धया साध्यते काम श्रद्धावान्मोक्षमाप्नुयात् ॥६
न दानैर्न तपोभिर्वा यज्ञैर्वा बहुदक्षिण ।
भक्तिहीनैर्मुनिश्रेष्ठ तुष्यते भगवान्हरि ॥७

महा महर्षि श्री सनकाचार्य ने कहा—यदि सम्पूर्ण धर्म्म-कृत्य यदि परम श्रद्धा के सहित किये जाते हैं तो वे सब मनोरथों का अवश्य ही सफल किया करते हैं। श्रद्धा ही से सब कुछ सिद्ध हुआ करता है। बिना श्रद्धा के चाहे सभी कुछ किया जावे निष्फल है। श्रद्धा ही ऐसी है जिसके रहने से भगवान् भी प्रसन्न हो जाया करते हैं। ॥१॥ भगवान् की भक्ति के सभी कार्य श्रद्धा पूर्वक करे क्योंकि जो कर्म श्रद्धा से रहित होते हैं उनके करने से कुछ भी सिद्धि नहीं हुआ करती है ॥२॥ जिस प्रकार से समस्त प्राणियों की चेष्टा का कारण प्रकाश होता है ठीक उसी भाँति भक्ति भी समस्त कर्मों की सिद्धि प्राप्ति करने का परम कारण है। जैसे प्रकाश होने पर सब कर्म

कर्म किये जा सकते हैं वैसे ही भक्तिपूर्वक ही सम्पूर्ण कर्म सिद्धिप्रद होते हैं ।।३।। जिस तरह से जल सभी लोकों का जीवन है उसी तरह से भक्ति भी समस्त शक्तियों का जीवन होती है इसके बिना सभी कर्म निष्प्राण होते हैं।।४।। जिस प्रकार से इस पृथ्वी का समाश्रय ग्रहण करके ही समस्त प्राणिवृन्द जीवित रहा करते हैं उसी प्रकार से भक्ति का आश्रय ग्रहण करने पर ही सब कर्मों की सिद्धियाँ प्राप्त हुआ करती है । अतः भक्ति का आश्रय अवश्य ही ग्रहण करना चाहिये ।।५।। भक्ति और श्रद्धा की महान् महिमा है । श्रद्धा रखने वाला मनुष्य ही धर्म की प्राप्ति किया करता है—श्रद्धा से सब कामनायें सिद्ध होती हैं और जो परम श्रद्धालु होता है उसी को मोक्ष जैसे परम पद की प्राप्ति होती है ।। ६ ।। हे मुनीन्द्र ! दान-तपश्चर्या और अनेक प्रकार की अत्यधिक दक्षिणा से समन्वित यज्ञ आदि यदि भक्ति की भावना से रहित होकर किये जाते हैं तो उनसे चाहे वे कितने ही उच्चस्तर पर क्यों न किये जावें भगवान् विष्णु कभी भी प्रसन्न नहीं हुआ करते हैं ।।७।।

मेरुमानसुवर्णाना कोटिकोटिसहस्रशः ।
दत्ता चाप्यर्थनाशाय यतो भक्तिविवर्जितः ।।८
अभक्त्या यत्तपस्तप्तं केवलं कायशोषणम् ।
अभक्त्या यद्धुतं हव्यं भस्मनि न्यस्तहव्यवत् ।।६
यत्किञ्चित्कुरुते कर्म्म श्रद्धयाऽप्यणुमात्रकम् ।
तन्नाम जायते पुंसा शाश्वतं प्रीतिदायकम् ।।१०
अश्वमेधसहस्रं वा कर्म्म वेदोदितं कृतम् ।
तत्सर्वं निष्फलं ब्रह्मन्यदि भक्तिविवर्जितम् ।।११
हरिभक्तिः परा नृणां कामधेनूपमा स्मृता ।
तस्यां सत्यां पिवन्त्यज्ञाः संसारगरलं ह्यहो ।।१२
असारभूते संसारे सारमेतदजात्मज ।
भगवद्भक्तसङ्गश्च हरिभक्तिस्तितिक्षुता ।।१३

अमूयोपेतमनसा भक्तिदानादिकर्म्म यत् ।
अवेहि निष्फल ब्रह्म स्तेषा दूरतरो हरि ॥१४

कोई भी दानशील पुरुष करोडो और सहस्रो सुमेरु पर्वत के बराबर भी सुवर्ण का दान करे और उस दान के प्रदान करने मे श्रद्धा का भाव न हो तो वह सब इतना विशाल दान देना भी निरर्थक एव फल से शून्य ही हुआ करता है ॥८॥ भक्ति भाव से रहित होकर जो तपस्या की जाती है उससे केवल अपने शरीर का कष्ट देना मात्र ही होता है किन्तु उसकी फल सिद्धि कुछ भी नही होती है इसी प्रकार से भक्ति शून्य होकर अग्नि मे हवि डाली जाती है और होम किया जाता है वह केवल भस्म मे हवि के डाल देने के ही समान है ॥९॥ श्रद्धा के साथ थोडा-सा भी कोई कर्म्म किया जाता है तो उससे मनुष्यो को सदा प्रसन्नता हुआ करती है ॥१०॥ हे ब्रह्मन् ! वेदोक्त सहस्रो यज्ञ एव अश्वमेध भी किया जावे और उनके करने मे श्रद्धा का अभाव हो तो वे समस्त कर्म निष्फल ही हुआ करते है ॥११॥ इस ससार मे मनुष्यो के कल्याण करने के लिये और सभी मनोवाछित फल प्रदान करने के वास्ते श्री हरि भगवान् की भक्ति को कामधेनु के तुल्य बतलाया गया है। उसके रहते हुए अनजान प्राणी इस ससार-रूपी विष का पान किया करते हैं ॥१२॥ हे ब्रह्मपुत्र नारद ! इस सार शून्य ससार म भगवान् के भक्तो की सङ्गति—भगवान् की भक्ति और सहनशीलता य ही सार पदाथ हैं ॥१३॥ जिसके मन मे कुढन होती है और रात दिन दूसरा को देख कर जलते रहते हैं उनके दान और भक्ति आदि समस्त कर्म निष्फल ही समझने चाहिये । ह ब्रह्मन् ! यह निश्चय ही समझो कि व अन्तर्यामी भगवान् ऐसे प्राणियो स बहुत ही दूर रहा करत हैं ॥१४॥

परश्रियाभितप्ताना दम्भाचाररतात्मनाम् ।
मृषा तु कुर्वता कर्म तेषा दूरतरो हरि ॥१५

पृच्छता च महाधर्म्मान्वदता वै मृषा च तान् ।
धर्मेष्वभक्तिमनसा तेषा दूरतरो हरि ॥१६
वेदप्रणिहितो धर्म्मो वेदो नारायण पर. ।
तत्राश्रद्धापरा ये तु तेषा दूरतरो हरि ॥१७
यस्य धर्म्मविहीनानि दिनान्यायान्ति यान्ति च ।
स लोहकारभस्त्रेव श्वसन्नपि न जीवति ॥१८
धर्मार्थकाममोक्षाख्या पुरुषार्था सनातना. ।
श्रद्धावता हि सिध्यन्ति नान्यथा ब्रह्मनन्दन ॥१९
स्वाचारमनतिक्रम्य हरिभक्तिपरो हि य ।
स याति विष्णुभवन यद्वै पश्यन्ति सूरय. ॥२०
कुर्वन्वेदोदितान्धर्म्मान्मुनीन्द्र स्वाश्रमोचितान् ।
हरिध्यानपरो यस्तु स याति परम पदम् ॥२१

दूसरो की लक्ष्मी के वैभव से अपने हृदय में सन्ताप करने वाले, केवल दम्भ के लिये सदाचार का प्रदर्शन करने वाले मिथ्याचारियो से भगवान् बहुत दूर ही रहा करते हैं ॥१५॥ जिनके अन्त करण मे तो धर्म करने की भक्ति बिल्कुल ही नही होती है और केवल दिखावे के लिये ही धर्म की चर्चा किया करते हैं और जिज्ञासा किया करते हैं और मिथ्या ही धर्म का वर्णन किया करते है ऐसे पाखडियो के समीप मे भगवान् कभी भी फटकते नही हैं क्योंकि वे तो उनके असली रूप को स्वय जानते हैं ॥ १६ ॥ धर्म का प्रसार वेदो से ही होता है क्योकि वेद के द्वारा धर्म का स्वरूप जाना जाता है या यो समझिये कि वेद ही साक्षात् नारायण हैं । ऐसे वेदो पर जो श्रद्धा नही रखते हैं उनसे भी भगवान् बहुत दूर रहा करते हैं ॥१७॥ जो धर्म से रहित रहकर ही यहाँ जन्म लेता है और इस ससार से चल बसता है उसका जीवन निरर्थक ही रहता है और उसका श्वास लेना भी लुहार की धौंकनी के ही समान होता है यानी

वह जीवित रहता हुआ भी मुर्दे के ही समान होता है ॥१८॥ हे ब्रह्म नन्दन ! जो श्रद्धा वाले मनुष्य होते हैं उन्हीं को धर्म—अर्थ—काम और मोक्ष ये चारों पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं। श्रद्धा के अभाव में इनकी सिद्धि कभी नहीं हो सकती है ॥१६॥ जो मनुष्य धर्म का उल्लंघन न करके सदा श्री हरि भक्ति में ही मग्न रहा करता है वह सीधा विष्णु लोक को चला जाया करता है। ज्ञानी पुरुष ही उस लोक में जाते हैं ॥२०॥ हे मुनीन्द्र ! जो अपने आश्रम के अनुसार विहित वेदोक्त कर्मों को सम्पन्न करके विष्णु भगवान की भक्ति में परायण रहता है वही परम पद की प्राप्ति किया करता है ॥२१॥

आचारप्रभवो धर्मो धर्म्मस्य प्रभुरच्युत ।
आश्रमाचारयुक्तेन पूजित सर्वदा हरि ॥२२
य स्वाचारपरिभ्रष्ट साङ्गवेदान्तगोऽपि वा ।
स एव पतितो ज्ञेयो यत कर्मबहिष्कृत ॥२३
हरिभक्तिपरो वाऽपि हरिध्यानपरोऽपि वा ।
भ्रष्टो य स्वाश्रमाचारात्पतित सोऽभिधीयते ॥२४
वेदो वा हरिभक्तिर्वा भक्तिर्वापि महेश्वरे ।
आचारात्पतित मूढ न पुनाति द्विजोत्तम ॥२५
पुण्यक्षेत्राभिगमन पुण्यतीर्थनिषेवणम् ।
यज्ञो वा विविधो ब्रह्म स्त्यक्ताचार न रक्षति ॥२६
आचारात्प्राप्यते स्वर्ग आचारात्प्राप्यते सुखम् ।
आचारात् प्राप्यते मोक्ष आचारात्किं न लभ्यते ॥२७
आचाराणा तु सर्वेषा योगाना चैव सत्तम ।
हरिभक्तेरपि तथा निदान भक्तिरिष्यते ॥ २८

सदाचार से ही धर्म प्रकट हुआ करता है और धर्म के स्वामी साक्षात् भगवान् अच्युत ही हैं। जो अपने आश्रम के अनुकूल धर्म का पूर्ण परिपालन किया करता है वह मनुष्य सदा ही भगवान पर अर्चन किया करता है ॥२२॥ जो भ्रष्टाचरण वाला होता है वह भले ही

साग वेदो और वेदान्त ग्रन्थों को पढा हुआ होता है तो भी उसको कर्मों से बहिष्कृत और महान् पतित ही समझना चाहिये ।।२३।। आश्रम के धर्म का भी बडा महत्व है जो आश्रम धर्म से भ्रष्ट हो भले ही विष्णु की भक्ति मे सलग्न रहता हो और विष्णु के ध्यान मे निमग्न हो किन्तु पतित ही कहलाता है ।।२४।। हे द्विजोत्तम ! वेदो का ज्ञान या परायण, श्री हरि भगवान् की भक्ति अथवा शिव की भक्ति आचार से भ्रष्ट पुरुष को कभी पवित्र नही बना सकती है ।।२५।। जो आचार से भ्रष्ट मनुष्य होता है उसकी रक्षा पवित्र तीर्थस्थल, पवित्र तीर्थों का सेवन और विविध प्रकार के यज्ञो का यजन भी नही कर सकते हैं ।।२६।। आचार की बहुत बडी महिमा है इससे स्वर्ग का निवास प्राप्त होता है । आचार से परम सुख की प्राप्ति भी हुआ करती है । आचार से ही मोक्ष प्राप्त होजाता है । ऐसी कौन सी बात है जो इस सदाचार से प्राप्त नही हो सकती है अर्थात् सभी कुछ मिल जाता है ।।२७।। सम्पूर्ण सदाचारो का तथा योग की समस्त क्रियाओ का एव भगवान् की भक्ति की आदि कारण भक्ति ही होती है ।।२८

भक्त्यैव पूज्यते विष्णुर्वाञ्छितार्थफलप्रदः ।
तस्मात्समस्तलोकाना भक्तिर्मातेति गीयते ।।२६
जीवन्ति जन्तव सर्वे यथा मातरमाश्रिता. ।
तथा भक्ति समाश्रित्य सर्वे जीवन्ति धार्म्मिकाः ।।३०
स्वाश्रमाचारयुक्तस्य हरिभक्तिर्यदा भवेत् ।
न तस्य त्रिपु लोकेपु सदृशोऽस्त्यजनन्दन ।।३१
भक्त्या सिध्यन्ति कर्माणि कर्मभिस्तस्यते हरिः ।
तस्मिस्तुष्टे भवेज्ज्ञान ज्ञानान्मोक्षमवाप्यते ।।३२
भक्तिस्तु भगवद्भक्तसगेन खलु जायते ।
तत्सङ्ग प्राप्यते पुम्भि सुकृतै पूर्वसंचितै ।।३३
वर्णाश्रमाचाररता भगवद्भक्तिलालसाः ।
कामादिदोषनिर्मुक्तास्ते सन्ता लोकशिक्षकाः ।।३४

सत्सङ्ग परमो ब्रह्मन्न लभ्येताकृतात्मनाम् ।
यदि लभ्येत विज्ञेय पुण्य जन्मान्तरार्जितम् ॥३५

मनोवाछित पुरुषार्थ के फल प्रदान करने वाले भगवान् श्री विष्णु की भक्ति भाव के सहित पूजा की जाया करती है। इसलिये भगवद्भक्ति सब लोकों की जननी कही जाती है ।२६॥ जिस प्रकार से अपनी माता का आश्रय पाकर सभी प्राणी जीवित रहा करते हैं और अपना जीवन सुख पूर्वक व्यतीत किया करते हैं ठीक उसी भाति भक्ति का समाश्रय ग्रहण करने पर सब प्राणियों को भी सुख मिलता है ॥३०॥ जो वर्णों और आश्रमो का पालन करने वाले मनुष्य हैं उनमे यदि भगवान की भक्ति भी हो जाय तो फिर हे ब्रह्म पुत्र ! उनकी समता रखने वाला त्रैलोक्य मे भी कोई नही हो सकता है ॥३१॥ भक्ति के करने से समस्त कर्मों की सिद्धि हुआ करती है और उन कर्मों के द्वारा भगवान् की जब प्रसन्नता का लाभ हो जाया करता है और ज्ञान सुलभ हो जाता है क्योंकि ज्ञान के बिना मुक्ति नही हुआ करती है ॥३२॥ भगवान की भक्ति की प्राप्ति भगवद्भक्तो के सङ्ग से होती है। यह भगवद्भक्तो की सङ्गति पूर्व जन्म मे सञ्चित किये हुए कर्मों की श्रेष्ठता से ही प्राप्त होती है ॥३३॥ वर्णाश्रम धर्म का पालन करने वाले तथा भगवान् की भक्ति की प्राप्ति की लालसा वाले तथा काम क्रोधादि दोषों से रहित समस्त लोकों के शिक्षक अर्थात् धर्म के उपदेशक हो सकते हैं ॥३४॥ हे ब्रह्मन् ! सत्पुरुषों का सङ्ग परम श्रेष्ठ होता है। यह शुद्ध हृदय वालों को ही मिलता है जिनका अन्त करण पवित्र नही है उनको यह कभी भी प्राप्त ही नही हो सकता है। जिनको यह सत्पुरुषों की सङ्गति का लाभ हो जावे तो इसे पूर्व जन्म के पुण्यों का ही फल समझना चाहिए ॥३५॥

पूर्वार्जितानि पापानि नाशमायान्ति यस्य वै ।
सत्सङ्गतिर्भवेत्तस्य नान्यथा घटते हि सा ॥३६

रविर्हि रश्मिजालेन दिवा हन्ति वहिस्तम ।
सन्त सूक्तिमरीच्योघैश्चान्तर्ध्वान्त हि सर्वदा ॥३७
दुर्लभा पुरुपा लोके भगवद्भक्तिलालसा ।
तेपा सङ्गो भवेद्यस्य तस्य शान्तिर्हि शाश्वती ॥३८
किलक्षणा भागवताह्ते च किं कर्म्म कुर्वते ।
तेपा लोको भवेत्कीदृक्तत्सर्वं ब्रूहि तत्त्वत ॥३६
त्व हि भक्तो रमेशस्य देवदेवस्य चक्रिण ।
एतन्निगदितु शक्तस्त्वत्तो नास्त्यधिकोऽपर ॥४०
शृणु ब्रह्मन्पर गुह्य मार्कण्डेयस्य धीमत ।
यमुवाच जगन्नाथो योगनिद्राविमोचित ॥४१
योऽसौ विष्णु पर ज्योतिर्देवदेव सनातन ।
जगद्रूपी जगत्कर्त्ता शिवब्रह्मास्वरूपवान् ॥४२

जिस व्यक्ति के पूर्व जन्म के पाप नष्ट हो जाया करते हैं उसी को सत्सङ्ग की प्राप्ति हुआ करती है इसका पाना पूर्व जन्म के पुण्यो का ही फल समझना चाहिए अन्यथा सत्पुरुपा की सङ्गति कभी भी प्राप्त नही हुआ करती है ॥३६॥ सूर्यदेव तो अपनी किरणो के प्रकाश के द्वारा दिन के समय म केवल बाहिर फैले हुए अन्धकार का ही विनाश किया करते हैं किन्तु सन्त पुरुप तो अपने सद्वचना के द्वारा हृदय के भी अन्धकार को दूर कर दिया करते हैं। सन्तो के वचनरूपी किरणो के प्रकाश का प्रभाव हृदय म व्याप्त अज्ञानान्धकार पूर्ण रूप से नष्ट हुआ करता है ॥३७॥ इस ससार मे भगवान की भक्ति की लालसा रखने वाले पुरुपा का प्राप्त होना अत्यन्त दुर्लभ है। ऐसे भगवान् के भक्ता का सङ्ग सौभाग्य स जिस को भी प्राप्त हो जाता है उसको सर्वदा क लिये शान्ति प्राप्त हो जाया करती है ॥३८॥ देवर्पि श्री नारदजी न कहा—ह भगवान् ! कृपया यह बतलाइय कि भगवान् के भक्ता का क्या लक्षण होता है ? ये भगवद्भक्त क्या काम किया करते

हैं ? उनको किन लोगो की प्राप्ति हुआ करती है ? ये सभी बातें आप स्पष्ट रूप से समझाने की कृपा करे ।।३९।। आप तो देवो के भी देव सुदर्शन चक्र के धारण करने वाले रमा के स्वामी भगवान् के परम भक्त हैं इसलिये आपसे अधिक इस का ज्ञाता अन्य कोई भी नही है और न इन बातो का वर्णन ही और कोई करने को क्षमता ही रखता है ।।४०।। नारदजो के इन वचनो को सुनकर श्री सनकदेव ने कहा—हे ब्रह्मन् ! परम बुद्धिमान श्री मार्कण्डेय ऋषि का एक अत्यन्त गोपनीय वृत्तान्त का श्रवण करो जो भगवान् ने अपनी योगनिद्रा से जागने पर कहा था ।।४१।। यह जो विष्णुदेव हैं यह परम ज्योति सनातन देवो के देव हैं। यह समस्त जगत् इनका ही एक स्वरूप है। ये इस जगत् के कर्ता हैं, शिव और ब्रह्मा के रूपो में यही हैं ।।४२

युगान्ते रौद्ररूपेण ब्रह्माण्डग्रासतृ हित ।
जगत्येकार्णवीभूते नष्टे स्थावरजङ्गमे ।।४३
भगवानेव शेषात्मा शेते वटदले हरि ।
असंख्याताब्जजन्मार्चराभूपिततनूरुह ।।४४
पादाङ्गुष्ठाग्रनिर्यातगङ्गाशीताम्बुपावन ।
सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरो देवो ब्रह्माण्डग्रासतृ हित ।।४५
वटच्छदे शयानोऽभूत्सर्वशक्तिसमन्वित ।
तस्मिन्स्थाने महाभागो नारायणपरायण ।
मार्कण्डेय स्थितस्तस्य लीला पश्यन्महेशितु ।।४६
तस्मिन्काले महाघोरे नष्टे स्थावरजङ्गमे ।
हरिरेव स्थित इति मुने पूर्व हि शुश्रुम ।।४७
जगत्येकार्णवीभूते नष्टे स्थावरजङ्गमे ।
सर्वग्रस्तेन हरिणा किमयं सोऽवशोपित ।।४८
पर कौतूहल ह्यत्र वर्त्ततेऽतीव सूत न ।
हरियोगिसुधापाने कस्यालस्य प्रजायते ।।४९

यह प्रलय होने के अवसर पर रुद्र रूप से इस समस्त ब्रह्माण्ड का ग्रास करके बढ जाया करते है और वही भगवान् जिस समय में स्थावर जङ्गम यह सम्पूर्ण जगत नाश को प्राप्त होकर एक सागर के रूप वाला रह जाया करता है उस समय मे भगवान विष्णु के स्वरूप में एक वट के पत्र पर शयन किया करते हैं। इन भगवान के रोम कूपो मे अगणित ब्रह्माड सुशोभित रहा करते हैं और इनके चरण के अङ्गुष्ठ से गङ्गा की धारा निकला करती है। वही उस ब्रह्माड का ग्रास करके वृद्धि को प्राप्त हुए देव सूक्ष्माति सूक्ष्म होकर समस्त शक्तियो से सुसम्पन्न होकर वट पत्र पपशयन किया करतेहै उसी स्थल पर नारायण में परायण महान भाग वाले मार्कण्डेय जी उन महेश्वर देव की लीला को देखते हुए विराजमान थे ॥४३-४६॥ ऋषिगणो ने कहा—हे मुनिवर! हमने ऐसा ही श्रवण किया है कि उस प्रलयकालीन महान घोर अवसर मे जब कि यह चराचर जगद् विनष्ट हो जाता है। एक मात्र श्री हरि ही शेप रहा करते है।४७। जिस समय मे यह जगद् एक सागर के स्वरूप मे बदल कर बन गया था और स्थावर-जङ्गम स्वरूप सम्पूर्ण विश्व विनष्ट हो गया था उस समय मे भगवान ने सभी का ग्रास कर लिया था तो उन्ही भगवान ने इन मार्कंडेयजी को किस कारण से छोड़ दिया था जो कि यहाँ पर यह विराजमान थे ॥४८॥ हे सूतजी! इस विपय मे हमारे हृदय मे बडा भारी कुतूहल उत्पन्न हो गया है। भगवान विष्णुदेव के कथामृत का पान करने के लिये किस को आलस्य हो सकता है? अतएव इस कथा का सविस्तार वर्णन करने की कृपा कीजिए ॥४९

आसीन्मुनिर्महाभागो मृकुण्डुरिति विश्रुतः।
शालग्रामे महातीर्थे सोऽतप्यत महातपा. ॥५०
युगानामयुत ब्रह्मन्गृणन्ब्रह्म सनातनम्।
निराहारः क्षमायुक्तः सत्यसन्धो जितेन्द्रियः ॥५१

आत्मवत्सर्वभूतानि पश्यन्विषयनिःस्पृहः ।
सर्वभूतहितो दान्तस्तताप सुमहत्तप. ॥५२
तत्तप.शङ्किता सर्वे देवा इन्द्रादयस्तदा ।
परेश शरण जग्मुर्नारायणमनामयम् ॥५३
क्षीराब्धेरुत्तर तीर सप्राप्य त्रिदिवौकस ।
तुष्टुवुर्देवदेवेश पद्मनाभ जगद्गुरुम् ॥५४
नारायणाक्षरानन्त शरणागतपालक ।
मृकण्डुतपसा त्रस्तान्पाहि न शरणागतान् ॥५५
जय देवाधिदेवेश जय शखगदाधर ।
जयो लोकस्वरूपाय जयो ब्रह्माण्ड हेतवे ॥५६

श्री सूतजी ने कहा—मृकण्डु नामधारी एक परम प्रसिद्ध मुनि हुए थे। वे महा भगवान थे और उन महा तपस्वी ने शालग्राम नामक तीर्थ मे तप किया था ॥५०॥ हे ब्रह्मन्! उन्होंने दश सहस्र युगो तक निराहार रह कर ही क्षमा धारण कर, सत्य प्रतिज्ञ वाले होकर अपनी समस्त इन्द्रियों को वश मे करके सनातन ब्रह्म भगवान विष्णु का कीर्तन किया था ।५१। उस महर्षि ने सासारिक विषयों से बिल्कुल ही स्पृहा रहित होकर, समस्त प्राणियो मे अपने ही समान देखते हुए और सब जीवधारियों की भलाई मे सदा तत्पर रहकर अपनी इन्द्रियों का दमन करते हुए बहुत ही घोर तपश्चर्या की थी ॥५२॥ उनकी इस प्रकार की अत्युग्र तपस्या से शङ्का हृदय मे कर के देवराज इन्द्रादि सब देवगण अनामय भगवान श्री नारायण की शरण मे प्राप्त हुए थे ॥५३॥ वे देवगण क्षीरसागर के उत्तर तीर पर स्थित होकर पद्मनाभ जगत् के गुरु देव देवेश्वर श्री नारायण का स्तवन करने लगे थे ॥५४॥ देवगण ने प्रार्थना की थी हे नारायण देव! हे अक्षर! हे अनन्त! हे शरणागतों के पालन करने वाले! हम सब लोग इस महर्षि मृकुण्ड तपश्चर्या से बहुत ही भयभीत हो रहे हैं। अब हम सब आपके

चरणो की शरण मे आकर प्राप्त होगये हैं। आप ही इस समय मे हमारी रक्षा करें ॥५५॥ हे देवाधिदेवेश्वर ! आपकी सदा जय हो ! हे शख, चक्र और गदा को धारण करने वाले प्रभो ! आप की जय हो। यह सम्पूर्ण ससार जिनका ही एक स्वरूप है उन परात्पर प्रभु की जय हो, जो इस समस्त ब्रह्माड का कारण है उन भगवान की जय हो ॥५६

नमस्ते देवदेवेश नमस्ते लोकपावन ।
नमस्ते लोकनाथाय नमस्ते लोकसाक्षिणे ॥५७
नमस्ते ध्यानगम्याय नमस्ते ध्यानहेतवे ।
नमस्ते ध्यानरूपाय नमस्ते ध्यानसाक्षिणे ॥५८
केशिहन्त्रे नमस्तुभ्य मधुहन्त्रे परात्मने ।
नमो भूम्यादिरूपाय नमश्चैतन्यरूपिणे ॥५६
नमो ज्येष्ठाय शुद्धाय निर्गु णाय गुणात्मने ।
अरूपाय स्वरूपाय बहुरूपाय ते नमः ॥६०
नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च ।
जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नम. ॥६१
नमो हिरण्यगर्भाय नमो ब्रह्मादिरूपिणे ।
नम सूर्यादिरूपाय हव्यकव्यभुजे नम ॥६२
नमो नित्याय वन्द्याय सदानन्दैकरूपिणे ।
नम स्मृतार्तिनाशाय भूयो भूयो नमो नम ॥६३॥

हे देवो के भी देवेश्वर ! आपकी सेवा मे हम सबका प्रणाम है। हे लोको को पावन करने वाले ! आपके लिये प्रणाम है। लोको के स्वामी भगवान् विष्णु के लिये हमारा प्रणाम है—लोको के साक्षी स्वरूप प्रभु की सेवा मे हमारा प्रणाम समर्पित है ॥ ५७ ॥ ध्यान के द्वारा ही प्राप्त होने वाले भगवान के लिये प्रणाम है। जिनके कारण से ही ध्यान किया जाता है उन श्री भगवान् की सेवा में हमारा प्रणाम है—जो ध्यानात्मक हैं और ध्यान के साक्षी हैं

उन प्रभु के लिये प्रणाम है ॥५८॥ हे भगवन् ! आपने मधु और केशी नाम वाले दैत्यों का वध कर जगत् का कल्याण किया है ऐसे आपके लिये प्रणाम है—चैतन्य रूप वाले श्री भगवान् के लिये बार-म्बार प्रणाम है ॥५९॥ ज्येष्ठ—शुद्ध—निर्गुण - गुणात्मा—नीरूप स्वरूप और अनेक रूपों से समन्वित आप श्री भगवान की सेवा मे हमारा प्रणाम है ॥६०॥ ब्रह्मण्य देव ! गौ और ब्राह्मणों का सर्वदा हित करने वाले भगवान् के लिये प्रणाम है इस सम्पूर्ण जगत् के हित का सम्पादन करने वाले प्रभु के लिये प्रणाम है—परब्रह्म श्रीकृष्ण गोविन्द की सेवा मे हम सबका बारम्बार प्रणाम है ॥६१॥ हिरण्य-गर्भ ब्रह्मा आदि के स्वरूप को धारण करने वाले—सूर्यादि के रूप में संस्थित—हव्य-कव्य के भोग करने वाले अग्नि मे व्याप्त श्री परमात्मा प्रभु के लिये प्रणाम है ॥ ६२ ॥ नित्य ही वन्दना करने के योग्य सर्वदा आनन्दमय स्वरूप वाले—स्मरण करने पर सबके महा दु:खों का विनाश करने वाले भगवान् के लिये हमारा अनेक बार प्रणाम है ॥ ६३ ॥

एव देवस्तुति श्रुत्वा भगवान्कमलापतिः ।
प्रत्यक्षतामगात्तेषा शखचक्रगदाधरः ॥६४
विकचाम्बुजपत्राक्ष सूर्य्यकोटिसमप्रभम् ।
सर्वालङ्कारसयुक्त श्रीवत्साङ्कितवक्षसम् ॥६५
पीताम्बरधर सौम्य स्वर्णयज्ञोपवीतिनम् ।
स्तूयमानं मुनिवरै पार्षदप्रवरावृतम् ॥६६
त दृष्ट्वा देवसघास्ते तत्तेजोहृततेजसः ।
नमश्चक्रुर्मुदायुक्ता अष्टांगैरवनि गताः ॥६७
ततः प्रसन्नो भगवान्मेघगंभीरनिस्वनः ।
उवाच प्रीणयन्देवान्नतानिन्द्रपुरोगमान् ॥६८
जाने वो मानसं दु:खं मृकण्डुतपसोद्गतम् ।

युष्मान्न बाधते देवा स ऋषि सज्जनाग्रणी ॥६६
सपद्भि सयुता वापि विपद्भिश्चापि सज्जना ।
सर्वथान्य न बाधन्ते स्वप्नेऽपि सुरसत्तमा ॥७०

इस प्रकार की देवगण द्वारा की हुई स्तुति का श्रवण कर कमला के स्व मी भगवान विष्णुदेव शख चक्र और गदादि अपने अमोघ आयुधो को धारण करके उन देवो के समक्ष मे प्रत्यक्ष होकर प्रकट होगये थ ॥६४॥ भगवान् के खुले हुये नेत्र कमल दल के समान सुन्दर थे और उनकी प्रभा करोडो सूर्यो के समान थी वे समस्त आभरणो स विभूषित थे और उनके वक्षस्थल पर श्रीवत्स का चिन्ह था ॥ ६५ ॥ वे पीताम्बर को धारण करने वाले थे और परम सौम्य सुवण का यज्ञोपवीत धारण किये हुये थे । उन प्रभु की परम श्रेष्ठ शिरोमणि मुनिगण स्तुति कर रहे थे तथा पार्षदो मे परम प्रधान उनके चारो ओर स्थित थ ॥ ६६॥ उन दयामय प्रभु का दशन करके उस समय मे समस्त देवगणो के समुदाय का तज फीका पड गया था । सब देवो ने भूमि पर गिर कर भगवान् की साष्टाग प्रणाम किया था ॥६७॥ उसी समय मे भगवान् प्रसन्न होकर इन्द्रादि सब देवताओ को प्रसन्न करते हुये मेघ के समान अतीव गम्भीर वाणी से कहने लगे थे ॥६८॥ हे देवगणो ! आप लोगो के मन मे इन मृकुण्डु महर्षि की तपस्या के कारण से जो सन्ताप होरहा है उसको मैं भली भाति समझ रहा हूँ । हे देवताओ ! यह ऋषि आपको किसी भी प्रकार की पीडा नही देंगे । ये तो बहुत ही अधिक सज्जन हैं ॥ ६९ ॥ हे श्रेष्ठ देवगणो ! यह नियम है कि जो महानुभाव परम सज्जन हुआ करते हैं वे अपने समीप मे सम्पत्ति हो या विपत्ति हो स्वप्न म भी वे कभी दूसरो को पीडा नही दिया करते हैं ॥७०॥

सतत बाध्यमानोऽपि विषयाख्यैररातिभि ।
अविद्यायात्मनो रक्षामन्यान्द्वेष्टि कथ सुधी ॥७१
तापत्रयाभिधानेन बाध्यमानो हि मानव ।

अन्य पीडयितु शक्तः कथ भवति सत्तम ॥७२
कमणा मनसा वाचा बाधते य सदा परान् ।
निरय कामादिभिर्युक्तो मूढधी प्रोच्यते तु स ॥७३
यो लोकहितकृन्मर्त्यो गतासूया विमत्सर ।
नि शङ्क प्रोच्यते सद्भिरिहामुत्र च सत्तमा ॥७४
सशङ्क सवदा दु खी नि शङ्क सुखमाप्नुयात् ।
गच्छध्व स्वालय स्वस्था पीडयिष्यति वो न स ॥७५
भवता रक्षकश्चाह विहरध्व यथासुखम् ।
इति दत्त्वा वर तेषामतसीकुसुमप्रभ ॥७६
पश्यतामेव देवाना तत्रैवान्तरधीयत ।
तुष्टात्मान सुरगणा ययुनाक यथागतम्॥७७

विषयरूपी शत्रुओ से पीडित होता हुआ बुद्धिमान् पुरुष अपनी रक्षा न कर दूसरा का कष्ट दे सकता है ? ॥७१॥ आध्यात्मिक आधिदैविक और आधिभौतिक इन तीन प्रकार के तापो से स्वय पीडा को प्राप्त करने वाला सज्जन मनुष्य क्या दूसरा के साथ पीडा पहुँचा कर खिलवाड कर सकता ? ऐसा कभी भी सम्भव ही नही है ॥ ७२ ॥ जो मन-वाणी और कम के द्वारा सदा दूसरा को पीडित किया करता है और सर्वदा कामादि म फँसा रहा करता है वह मूढ बुद्धि वाला कहा जाया करता है ॥७३॥ जो मनुष्य सदा इस प्रकार का हित किया करता है और असूया एव मत्सरता स रहित होता है उसको सज्जन लोक म और परलोक म नि शङ्क कहा करते हैं ॥७४॥ जो पुरुष शङ्का से युक्त होता है वह सवदा दु खित रहा करता है । व ऋष ि आप लोगो को कोई भी पीडा नही पहुँचायेंगे । अतएव आप लोग अपने २ निवास स्थानो को चले जाइये ॥७५॥ मैं तो सवदा आप लोगो की सुरक्षा करने को तत्पर रहा ही करता हूँ । अतएव आप लोग स्वच्छा या सुख म साथ विहार करते रहिये । इस रीति से उन देवो को वर

दान देकर अलसी के पुष्प के समान नीलकान्ति वाले भगवान् वहीं पर देवगणों के देखते ही अन्तर्हित होगये थे। उस समय में समस्त देव गण परम सन्तुष्ट होकर अपने स्वर्गलोक को वापिस लौट कर चले गये थे ॥७६।७७

मृकण्डोरपि तुष्टात्मा हरिः प्रत्यक्षतामगात्।
अरूपं परमं ब्रह्म स्वप्रकाशं निरञ्जनम् ॥७८
अतसीपुष्पसंकाशं पीतवाससमच्युतम्।
दिव्यायुधधरं दृष्ट्वा मृकण्डुर्विस्मितोऽभवत् ॥७९
ध्यानादुन्मील्य नयने अपश्यद्धरिमग्रतः।
प्रसन्नवदनं शान्तं धातारं विश्वतेजसम् ॥८०
रोमाञ्चितशरीरोऽसावानन्दाश्रुविलोचनः।
ननाम दण्डवद्भूमौ देवदेवं सनातनम् ॥८१
अश्रुभिः क्षालयंस्तस्य चरणौ हृत्पसम्भवैः।
शिरस्यञ्जलिमाधाय स्तोतुं समुपचक्रमे ॥८२
नमः परेशाय परात्मरूपिणे परात्परस्मात्परतः पराय।
अपारपाराय परानुकर्त्रे नमः परेभ्यः परपारणाय ॥८३
यो नामजात्यादिविकल्पहीनः शब्दादिदोषव्यतिरेकरूपः।
बहुस्वरूपोऽपि निरञ्जनो यस्तमीशमीड्यं परमं भजामि ॥८४

इसके उपरान्त भगवान् विष्णु देव तपश्चर्या करने वाले मृकण्डु पर भी अपने चित्त में परम प्रसन्न होकर उनके समक्ष में भी उपस्थित होकर प्रकट होगये थे। रूप से रहित—निरंजन—स्वप्रकाश परब्रह्म को अलसी के पुष्प के तुल्य वर्ण वाले—पीताम्बरधारी दिव्य आयुधों से समन्वित अच्युत प्रभु को विष्णु के दिव्य स्वरूप में अव स्थित देखकर मृकण्डु महर्षि को अत्यधिक विस्मय हुआ था ॥७८।७९॥ उस समय में मृकण्डु महर्षि ने ध्यान से अपने दोनों नेत्रों को खोला तो प्रसन्न मुख वाले परम शान्त स्वरूप वाले—धाता विश्व तेजा भगवान्

विष्णु को अपने समक्ष मे स्थित देखा था ॥८०॥ उस समयमे भगवान् के दर्शन प्राप्त कर मृकन्डु ऋषि को हर्षातिरेक के कारण रोमाच हो गया था और अमन्दानन्द से उनके दोनो नेत्रो मे अश्रु भर आये थे। ऐसी ही दशा मे रहते हुये मृकडु ने भूमि मे झुक करके भगवान् विष्णु के लिये दन्डवत् प्रणाम किया था ॥८१॥ हर्षातिरेक से बहते हुए आंखो के आसुओ से भगवान के चरणो को प्रक्षालित कर दिया था। इसके पश्चात् वे अपना मस्तक नीचे की ओर नवाकर हाथो को जोड कर भगवान् के स्तवन करने की अपने मन मे इच्छा की थी ॥ ८२ ॥ मृकन्डु ने कहा—हे परेश्वर! परात्परूपी सूक्ष्म से भी सूक्ष्म-श्रेष्ठो से भी परम श्रेष्ठ- जिनका पार नही पाया जा सकता है-सर्वदा दूसरो पर अपनी अनुकम्पा करते रहने वाले, भक्तो को शत्रुओ से बचाकर दूसरी पार लगा देने वाले भगवान् आपकी सेवा मे मेरा शतश प्रणाम है ॥८३॥ जो नाम जाति आदि के विकल्प से रहित हैं, जो शब्दादि के दोषो से व्यतिरेक स्वरूप हैं, जो अनेक रूप होने पर भी सदा निर-ञ्जन हैं उन्ही परम पूजनीय भगवान का मैं भजन किया करता हूँ ॥८४॥

वेदान्तवेद्य पुरुष पुराण हिरण्यगर्भादिजगत्स्वरूपम् ।
अनूपमक्त भजनानुकम्पिण भजामि सर्वेश्वरमादिमीड्यम् ॥८५
पश्यन्ति य वीतसमस्तदोषा ध्यानैकनिष्ठा विगतस्पृहाश्च ।
निवृत्तमोहा परम पवित्र नतोऽस्मि ससारनिवर्त्तक तम् ॥८६
स्मृतार्तिनाशन विष्णु शरणागतपालकम् ।
जगत्सेव्य जगद्धाम परेश करुणाकरम् ॥८७
एव स्तुत स भगवान्विष्णुस्तेन महर्षिणा ।
अवाप परमा तुष्टि शखचक्रगदाधार ॥८८
अथालिङ्गच मुनि दवश्चतुर्भिर्दीर्घबाहुभि ।
उवाच परम प्रीत्या वर वरय सुव्रत ॥८६

प्रीतोऽस्मि तपसानेन स्तोत्रेण च तवानघ ।
मनसा यदभिप्रेत वर वरय सुव्रत ॥६०
देवदेव जगन्नाथ कृतार्थोऽस्मि न सशय ।
त्वद्दर्शनमपुण्याना दुर्लभ च यत. स्मृतम् ॥६१

वेदान्त शास्त्र के द्वारा जानने मे आने वाले हिरण्यगर्भ, पुराण-पुरुष आदि जगत् के स्वरूप मे स्थित-अनुपम-अपने भक्तो पर महती कृपा करने वाले सब के स्वामी परम पूजनीय उन आपका ही मैं भजन करता हूँ ॥८५॥ जिनका सभी दोषो से रहित, एक मात्र ध्यान मे ही परायण, स्पृहा से रहित और महा मोह से शून्य पुरुष ही दर्शन प्राप्त कर सकते हैं उन परम पवित्र ससार से निवृत्ति कर देने वाले भगवान की सेवा मे मेरा बारम्बार प्रणाम समर्पित है॥८६॥ स्मरण करने पर पीडा को तुरन्त ही विनष्ट कर देने वाले, शरण मे समागत प्राणियो का परिपालन करने वाले, सम्पूर्ण जगत् जिनकी सेवा मे निरत रहा करता है, जगत् के तेज स्वरूप करुणा के निधान उन परमेश्वर भगवान विष्णुदेव को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ८७ ॥ जिस समय मे उन मृकण्डु महर्षि ने इस रीति से स्तवन किया था उस समय मे शङ्ख-चक्र-गदा के धारण करने वाले भगवान विष्णु परम प्रसन्न होगये थे ॥८८॥ उस समय मे अपनी लम्बी चारो भुजाओ को फैला कर उन्होने मृकण्डु मुनि का समालिङ्गन किया था और अत्यधिक प्रेम के साथ कहने लगे—हे सुव्रत ! मैं प्रसन्न हूँ तुम वर की याचना करो ॥८६॥ भगवान् ने कहा—हे निष्पाप ! मैं आपके इस उग्र तपस्या से और इस स्तुति से बहुत ही अधिक तुम पर प्रसन्न होगया हूँ इसलिये हे सुव्रत ! अब जो भी आपके मनमे अभीष्ट हो वही वरदान मुझमे प्राप्त कर लो ॥६६॥ इस प्रकार से भगवान् के कहने पर मृकण्डु ने कहा—हे जगत् के नाथ ! हे देवो के भी देवेश्वर ! मैं तो आपके अति दुर्लभ दर्शन प्राप्त करके ही कृतार्थ हो

गया हूँ क्योंकि जो पुण्यहीन होते हैं उनको आपका यह साक्षात् दर्शन प्राप्त करना ही बहुत दुर्लभ होता है ।।६१।।

ब्रह्माद्या य न पश्यन्ति योगिनः संशितव्रताः ।
धर्मिष्ठा दीक्षिताश्चापि वीतरागा विमत्सराः ।।६२
तं पश्यामि परं धाम किमतोऽन्यं वरं वृणे ।
एतेनैव कृतार्थोऽस्मि जनार्दन जगद्गुरो ।।६३
यन्नामस्मृतिमात्रेण महापातकिनोऽपि ये ।
तत्पदं परमं यान्ति तं दृष्ट्वा किमुताच्युत ।।६४
सत्यमुक्तं त्वया ब्रह्मन्प्रीतोऽस्मि तव पण्डित ।
मद्दर्शनं हि विफलं न कदाचिद्भविष्यति ।।६५
विष्णुर्भक्तकुटुम्बीति वदन्ति विबुधाः सदा ।
तदेव पालयिष्यामि मज्जनो नानृतं वदेत् ।।६६
तस्मात्त्वत्तपसा तुष्टो यास्यामि तव पुत्रताम् ।
समस्तगुणसंयुक्तो दीर्घजीवी स्वरूपवान् ।।६७
मम जन्म कुले यस्य तत्कुलं मोक्षगामि वै ।
मयि तुष्टे मुनिश्रेष्ठ किमसाध्यं जगत्त्रये ।।६८
इत्युक्त्वा देवदेवेशो मुनेस्तस्य समीक्षत ।
अन्तर्दधे मृकण्डुश्च तपसः सन्यवर्तत ।।६९

जिस भगवान् का दर्शन ब्रह्मा आदि देवगण, योगी, प्रशंसनीय व्रत धारण करने वाले परम धार्मिक, दीक्षित, रागद्वेष से शून्य और मात्सर्य से रहित जन भी नहीं प्राप्त कर सकते हैं या बहुत ही कठिनता से प्राप्त कर पाते हैं ।।६२।। उन परम धाम भगवान् का दर्शन मैं इस समय में प्राप्त कर रहा हूँ । इससे अधिक मैं कौन सा वरदान आप से माँगूँ ? हे इस जगत् के गुरुदेव ! हे जनार्दन प्रभो ! मैं तो इतने से ही परम कृतार्थ हो गया हूँ ।।६३।। इस जगत् में महान् पातकी भी जिनके नाम का स्मरण करके परम पद को प्राप्त कर लिया करते

हैं, तो हे अच्युत देव ! उनको साक्षात् प्राप्त कर लेने पर अन्य क्या शेष रह जाता है जिसे मैं माँगूँ ॥६४॥ उस समय मे भगवान ने कहा--हे ब्रह्मन् ! आप ने इस समय मे जो भी कुछ कहा है वह बिल्कुल सत्य है। हे महापण्डित ! मै तुम पर बहुत ही प्रसन्न हूँ किन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि मेरा यह दर्शन कभी निष्फल नही हुआ करता है ॥६५॥ अन्य देवगण कहा करते हैं कि विष्णु भगवान भक्तो के सदा कुटुम्ब वाले होते है। मैं भी उसी के अनुसार पालन करूँगा क्यो कि मेरे भक्तगण कभी मिथ्या भाषण नही किया करते हैं ॥६६॥ इसीलिये मैं आपके इस तप से सन्तुष्ट होकर परम स्वरूपवान, दीर्घजीवी, सर्वगुण सम्पन्न आपका पुत्र बनूँगा ॥६७॥ यह समझ लो कि जिस कुल मे मेरा जन्म होता है वह पूर्ण कुल मोक्ष प्राप्त कर लिया करता है। हे मुनि श्रेष्ठ ! मेरी सन्तुष्टता हो जाने पर इस त्रिलोकी कोई भी वस्तु असम्भव नही रहा करती है।।६८॥ इस प्रकार से उन देवेश्वर भगवान के कहने पर ब्रह्म देवेश्वर उन महर्षि के समक्ष से अन्तर्धान हो गये थे और फिर मृकण्डु महर्षि भी अपनी तपश्चर्या से निवृत्त हो गये थे ॥६६॥



॥ मार्कण्डेय की कथा और वर प्राप्ति ॥

ब्रह्मन्कस्य स भगवान्मृकण्डो पुत्रता गत ।
किं चकार च तद् ब्रूहि हरिर्भार्गववशज ॥१
श्रूयते च पुराणेषु मार्कण्डेयो महामुनि ।
अपश्यद्वैष्णवी माया चिरञ्जीव्यस्य सप्लवे ॥२
शृणु नारद वक्ष्यामि कथामेता सनातनीम् ।
विष्णुभक्तिसमायुक्ता मार्कण्डेयमुनिं प्रति ॥३
तपसोऽन्ते मृकण्डुस्तु भार्यामुद्वाह्य सत्तम ।

गार्हस्थ्यमकरोद्दृष्ट शान्तो दान्त कृतार्थक ॥४
तस्य भार्या शुचिर्दक्षा नित्य पतिपरायणा ।
मनसा वचसा चापि देहेन च पतिव्रता ॥५
काले दधार सा गर्भं हरितेजोंशसभवम् ।
सुषुवे दशमासान्ते पुत्र तेजस्विन परम् ॥६
स ऋषि परमप्रीतो दृष्ट्वा पुत्र सुलक्षणम् ।
जातक कारयामास मङ्गल विधिपूर्वकम् ॥७

देवर्षि श्री नारदजी ने कहा—हे ब्रह्मन् ! भगवान् मृकण्डु महर्षि के पुत्र किस प्रकार से वन गये थे ? और विष्णुदेव ने भृगु के वश मे जन्म ग्रहण करके क्या-क्या चरित करके दिखाये थे ? आप उन सबका वर्णन इस समय मे हमारे सामने करने की कृपा कीजिए ॥१॥ पुराणो मे ऐसी कथायें हैं और उनमे सुना जाता है कि मार्कण्डेय महामुनि चिरजीवी हैं और उन्होने महाप्रलय मे भी भगवान की इस वैष्णवी माया के साक्षात् दर्शन किये थे ॥२॥ सनकजी ने कहा—हे नाथ ! मैं विष्णु की भक्ति से परिपूर्ण मार्कन्डेयजी की इस परम प्राचीन कथा को आपको बतलाता हूँ ॥३॥ तपस्या के पश्चात् परम श्रेष्ठ - शान्त - दान्त मृकण्डु मुनि ने अतिशय कृतार्थ होकर अपनी पत्नी से विवाह किया था और परम प्रसन्नता से गार्हस्थ्य धर्म को चलाने लगे थे ॥४॥ मृकण्डु महर्षि की भार्या परम पवित्र और चतुर थी । वह सदा पति सेवा मे तत्पर रहा करती थी और मन वाणी तथा देह से पूर्णतया पतिव्रता पत्नी थी ॥५॥ समय के सम्प्राप्त होने पर उस भार्या ने श्री हरि के तेज के अ श से समन्वित गर्भ को धारण किया था । फिर दश मासो के समाप्त होने पर परम पूर्ण तेज से युक्त पुत्र का प्रसव किया था ॥६॥ उस महर्षि ने परम सुलक्षणो से युक्त उस अपने पुत्र को देखकर अधिक प्रसन्नता प्राप्त की थी और शास्त्रोक्त विधि के साथ उसका जातकम संस्कार कराया था ॥७॥

स बालो ववृधे तत्र शुक्लपक्ष इवोडुपः ।
ततस्तु पञ्चमे वर्षे उपनीय मुदान्वितः ॥८
शिक्षा चकार विप्रेन्द्र वैदिकी धर्मसंहिताम् ।
नमस्कार्या द्विजा. पुत्र सदा दृष्ट्वा विधानतः ॥६
त्रिकालं सूर्यमभ्यर्च्य सलिलाञ्जलिदानतः ।
वैदिक कर्म कर्तव्य वेदाध्ययनपूर्वकम् ॥१०
ब्रह्मचर्येण तपसा पूजनीयो हरिः सदा ।
निषिद्धं वर्जनीय स्याद् दुष्टसंभाषणादिकम् ॥११
साधुभिः सह वस्तव्य विष्णुभक्तिपरैः सदा ।
न द्वेषः कस्यचित्कार्यः सर्वेषा सितमाचरेत् ॥१२
इज्याध्ययनदानानि सदा कार्याणि ते सुत ।
एव पित्रा समादिष्टो मार्कण्डेयो मुनीश्वरः ॥१३
चचार धर्मं सतत सदा सचिन्तयन्हरिम् ।
मार्कण्डेयो महाभागो दयावान्धर्मवित्सलः ॥१४

वह होनहार बालक शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा के समान ही वृद्धि प्राप्त करने लगा था । फिर जब पाँचवें वर्ष मे प्रवेश करने लगा तो मृकण्डु महर्षि ने उस बालक का उपनयन संस्कार करा दिया था। हे विप्रेन्द्र ! उपवीत होजाने पर उसको वैदिक कर्म संहिता की शिक्षा का आरम्भ कर दिया था । महर्षि ने अपने उस पुत्र से कहा—हे पुत्र ! ब्राह्मणो को जब भी देखो उसी समय मे उनको समादर पूर्वक प्रणाम अवश्य ही करनी चाहिये ॥६॥ तीनों कालो मे भी सूर्य को अर्घ वेदो के अध्ययन आदि के वैदिक कर्मों को करना चाहिये ॥१०॥ ब्रह्मचर्य व्रत को धारण कर तपश्चर्या के द्वारा सर्वदा विष्णु का पूजन करना परमावश्यक है । दुष्ट पुरुषों के साथ सम्भाषण करने आदि निषिद्ध कर्मों का परित्याग कर देना चाहिये ॥११॥ भगवान् विष्णुदेव के जो

भक्त सायुज न हो सदा उनके ही साथ मे रहकर सत्सङ्ग करे—किसी से भी द्वेष भाव न रक्खे और सदा सब जानियो के हित का सम्पादन करना चाहिये ।।१२।। मृकण्डु ऋषि ने कहा—हे पुत्र ! सद, वेदों का पाठ—यज्ञो का यजन और दान करत रहना चाहिये । अपने पूज्य पिताजी की इस प्रकार से आज्ञा प्राप्त करके मुनीश्वर मार्कण्डेयजी ने सर्वदा भगवान् विष्णु का ध्यान करते हुये धर्म का पूर्ण आचरण करना आरम्भ कर दिया था । वह मार्कण्डेय महा भाग्यवान् और दयावान् तथा धर्म वत्सल हुये थे ।।१३।१४।।

आत्मवान्सत्यसन्धश्च मार्तण्डसदृशप्रभ ।
वशी शान्तो महाज्ञानी सर्वतत्त्वार्थकोविद ।।१५
तपश्चचार परममच्युतप्रीतिकारणम् ।
आराधितो जगन्नाथो मार्कण्डेयेन धीमता ।।१६
पुराणसंहिता कर्त्तु दत्तवान्वरमच्युत ।
मार्कण्डेयो मुनिस्तस्मान्नारायण इति स्मृत ।।१७
चिरजीवी महाभक्तो देवदेवस्य चक्रिण ।
जगत्येकार्णवीभूते स्वप्रभाव जनार्द्दन ।।१८
तस्य दर्शयितु विप्रास्त न महृतवान्हरि ।
मृकण्डुतनयो धीमान्विष्णुभक्तिसमन्वित ।।१९
तस्मिन्जले महाघोरे स्थितवाञ्छीर्णपत्रवत् ।
मार्कण्डेय स्थितस्तावद्यावच्छेते हरि स्वयम् ।।२०
तस्य प्रमाण वक्ष्यामि कालस्य वदत श्रृणु ।
दशभि पञ्चभिश्चैव निमेषै परिकीर्तिता ।।२१
काष्ठा तत्त्रिंशतो ज्ञेया कला पद्मजनन्दन ।
तत्त्रिंशतो क्षणो ज्ञेयस्तै षड्भिर्घटिका स्मृता ।।२२

वह मार्कण्डेय मुनि बड़े ही आत्मज्ञानी सत्यप्रतिज्ञ करने वाले सूर्य के तुल्य कान्ति से सम्पन्न वशी और इन्द्रियों को जीतने वाले—महान् ज्ञानी और समस्त तत्त्वों को समझ लेने मे परम चतुर हुये थे

॥१५॥ इसके पश्चात् परम मेधावी उस महा मुनि मार्कण्डेयजी ने भगवान् अच्युत देव को प्रसन्न करने के लिये तपश्चर्या करके जगत् के स्वामी भगवान् विष्णु की समाराधना प्रारम्भ करदी थी ॥१६॥ उस समय मे भगवान् ने उनको प्रसन्न होकर एक पुराण की संहिता की रचना करने का वरदान प्रदान किया था। इसी कारण से यह महा-मुनि मार्कंडेय नारायण नाम से कहे जाते है ॥१७॥ यह चिरञ्जीवी हैं और देवो के भी देव भगवान विष्णुदेव के परम भक्त हैं। हे विप्रो! इस समस्त विश्व के महा प्रलय के काल मे सागरस्वरूप मे केवल जलाकार हो जाने पर भी जनार्दन श्री हरि भगवान् ने उनको अपना प्रभाव दिखा देने की इच्छा से संधृत नही किया था अर्थात् अन्य सबके समान अपने मे लीन नही किया था। बुद्धि सम्पन्न विष्णु के भक्त मृकण्डु के पुत्र उस महा घोर जल मे एक टूटे हुये पत्र के ही समान रहे थे। जिस समय तक भगवान् श्री हरि वहा पर शेष शय्या पर शयन करते रहे थे तभी पर्यन्त महामुनि मार्कण्डेय भी वहा पर स्थित होकर विद्यमान रहे थे ॥१८।१९।२०॥ उस काल का परि-माण मैं आपको बतलाता हैं। पन्द्रह वार निमिष अर्थात् पलक मारने के समय की एक रात होती है। हे नारद! तीस काष्ठाओ की एक कला हुआ करती है और तीस कलाओ का एक क्षण होता है और ▪ क्षणो की एक घडी (घटिका) हुआ करती है ॥२१।२२॥

तद्द्वयेन मुहूर्त्त स्याद्दिन तत्त्रिंशत भवेत् ।
त्रिंशद्दिनैर्भवेन्मास पक्षद्वितयसयुत ॥२३
ऋतुर्मासद्वयेन स्यात्तत्त्रयेणायन स्मृतम् ।
तद्द्वयेन भवेदब्द स देवाना दिन भवेत् ॥२४
उत्तर दिवस प्राहू रात्रिर्वै दक्षिणायनम् ।
मानुषेणैव मासेन पितृणा दिनमुच्यते ॥२५
तस्मात्सूर्येन्दुसयोगे ज्ञातव्य कल्पमुत्तमम् ।
दिव्यैर्वर्षसहस्रै र्द्वादशभिर्दैवत युगम् ॥२६

दैवे युगसहस्रे द्वे ब्राह्म. कल्पो तु तौ नृणाम्
एकसप्ततिसंख्यातैर्दिव्यैर्मन्वन्तर युगै. ॥२७
चतुर्दशभिरेतैश्च ब्रह्मणो दिवस मुने ।
यावत्प्रमाण दिवस तावद्रात्रि प्रकीर्तिता ॥२८

दो घडियो के समय को एक मुहूर्त काल कहा जाता है और तीस मुहूर्तों का एक दिन होता है तथा तीस दिन का एक मास होता है जिस मास मे १५-१५ दिन के कृष्ण और शुक्ल दो पक्ष हुआ करते हैं ॥२३॥ दो मास की एक ऋतु हुआ करती है । तीन ऋतुओं का एक अयन होता है तथा दो अयनो का जिसका नाम उत्तरायण और दक्षिणायन है एक वर्ष हुआ करता है । यही वर्ष देवताओ का एक दिन हुआ करता है जिसको दिव्य दिन के नाम से कहा जाता है ॥२४॥ उत्तरायण को देवताओ का दिन कहा जाता है और दक्षिणायन को रात्रि कहा करते हैं । जो मनुष्यो का एक मास होता है वह पितृगण का एक दिन होता है ॥२५॥ इससे उत्तम कल्प वही कहा जाता है जिससे चन्द्र और सूर्य का सयोग अमावस्या को होता है । इस अमावस्या के दिन मे श्राद्धतया पिडो का दान उत्कृष्ट माना जाता है । बारह सहस्र दैव वर्षों का एक दैव युग माना जाया करता है ॥२६॥ दो सहस्र दैव युगो का मनुष्यो का ब्राह्म कल्प हुआ करता है । जिस समय मे इकहत्तर दिव्य युग (मनुष्यो की चतुर्युगी) व्यतीत होजाया करती है तो उस समय मे एक मन्वन्तर हुआ करता है ॥२७॥ हे मुनिवर ! ऐसे जब चौदह मन्वन्तर समाप्त होजाते हैं तब ब्रह्माजी का एक दिन होता है और जितना बडा दिन होता है उतनी रात्रि भी हुआ करती है ॥२८॥

नाशमायाति विप्रेन्द्र तस्मिन्काले जगत्त्रयम् ।
मानुषेण सहस्रेण यत्प्रमाण भवेच्छृणु ॥२६
चतुर्युगसहस्राणि ब्रह्मणो दिवस मुने ।

तद्वन्मासो वत्सरश्च ज्ञेयस्तस्यापि वेधस ॥३०
परार्द्धद्वयकालस्तु तन्मतेन भवेद्द्विजा ।
विष्णोरहस्तु विज्ञेय तावद्रात्रि प्रकीर्तिता ॥३१
मृकण्डुतनयस्तावत्स्थित सजीर्णपर्णवत् ।
तस्मिन्घोरे जलमये विष्णुशक्त्य पबृ हित ।
आत्मान परम ध्यायन्स्थितवान्हरिसन्निधौ ॥३२
अथ काले समायाते योगनिद्राविमोचित ।
सृष्टवान्ब्रह्मरूपेण जगदेतच्चराचरम् ॥३३
सहृत तु जल वीक्ष्य सृष्ट विश्व मृकण्डुज ।
विस्मित परमप्रीतो ववन्दे चरणौ हरे ॥३४
सिरस्यञ्जलिमाधाय मार्कण्डेयो महामुनि ।
तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभि सदानन्दैकविग्रहम् ॥३५

हे विप्रेन्द्र ! उसी समय मे यह त्रिभुवन विनष्ट हो जाया करता है। अब मनुष्यों के सहस्र के प्रमाण से पूरा वृत्तान्त श्रवण करो ॥२६॥ हे मुनिवर ! जिस प्रकार से एक सहस्र चतुर्युगो का ब्रह्माजी का एक दिन होता है वैसे ही ब्रह्माजी का मास और वर्ष भी समझ लेना चाहिये ॥३०॥ हे द्विजगणो ! ऐसे दो परार्ध (५०) की ब्रह्माजी की आयु हुआ करती है। विष्णु भगवान् का यह एक दिन होता है। इतनी बड़ी विष्णु देव की रात्रि कही जाती है ॥३१॥ मृकण्डु महर्षि के पुत्र मार्कण्डेयजी भगवान् विष्णु की शक्ति से बलशाली होकर एक जीर्ण पात्र के तुल्य इतने समय तक उस परम घोर जलमय स्थान म रहे थे और चराचर परमात्मा का ध्यान करते हुये भगवान् विष्णु के ही समीप म मासन विराजमान रहे थे ॥३२॥ फिर जब भगवान् विष्णुदेव समय के समाप्त होने पर अपनी उस योग निद्रा से समुत्थित हुये तो उस समय म उन्ह ही ब्रह्मा का स्वरूप धारण किया और इस चराचर ससार की रचना की थी ॥३३॥ उस समय मे उस महान्

विस्तृत जल को सहृत हुआ और इस सम्पूर्ण विश्व को रचा हुआ देख कर मृकण्डु महर्षि के पुत्र मार्कण्डेय ऋषि ने देखा तो इनको बहुत विस्मय उत्पन्न हो गया था और प्रसन्न होकर इनने श्री हरि के चरणो की वन्दना की थी ॥३४॥ मुनि श्रेष्ठ मार्कण्डेयजी ने अपना मस्तक झुकाकर और हाथ जोडकर उस सच्चिदानन्द भगवान् विष्णुदेव का परम अभीष्ट वचनो के द्वारा स्तवन करने लगे थे ॥३५॥

सहस्रशिरसं देव नारायणमनामयम् ।
वासुदेवमनाधारं प्रणतोऽस्मिजनार्दनम् ॥३६
अमेयमजर नित्य सदानन्दैकविग्रहम् ।
अप्रतवर्यमनिर्दश्य प्रणतोऽस्मि जनार्दनम् ॥३७
अक्षर परम नित्य विश्वाक्ष विश्वसम्भवम् ।
सर्वतत्त्वमय शान्त प्रणतोऽस्मि जनार्दनम् ॥३८
पुराण पुरुष सिद्ध सर्वज्ञानैकभाजनम् ।
परात्परतर रूप प्रणतोऽस्मि जनार्दनम् ॥३९
पर ज्योति' पर धाम पवित्र परम पदम् ।
सर्वेकरूपं परम प्रणतोऽस्मि जनार्दनम् ॥४०
त सदान्दनचिन्मात्र पराणा परम पदम् ।
सर्वं सनातन्ध श्रेष्ठं प्रणतोऽस्मि जनार्दनम् ४१
सगुण निर्गुण शान्त मयातीत सुमायिनम् ।
अरूप बहुरूपं त प्रणतोऽस्मि जनार्दनम् ॥४२
यन तदभगवान्विश्व सृजत्यवति हन्ति च ।
तमादिदेवमीशान प्रणतोऽस्मि जनार्दनम् ॥४३

महामुनि मार्कण्डेयजी ने कहा—मैं समस्त ससार मे व्यापक होने के कारण सहस्रो शिर वाले अनामय स्वरूप अपने ही आधार पर स्थित भगवान जनार्दन देव को सादर प्रणाम करता हूँ ॥३६॥ जो भगवान् जनार्दन अजर-अप्रमेय-नित्य-सर्वदा आनन्द से परिपूर्ण—

तर्क के अविषय और निर्देश करने के अयोग्य हैं उनकी सेवा में मेरा प्रणाम अर्पित है ॥३७॥ जो भगवान् अच्युत परम नित्य और इस विस्तृत विश्व के आधार हैं और यह सम्पूर्ण विश्व जिससे समुत्पन्न हुआ है उन सर्वतत्त्वों से परिपूर्ण परम शान्तिमय भगवान् जनार्दन को मैं प्रणाम करता हूँ ॥३८॥ परम पुराण पुरुष-समस्त ज्ञान के एक मात्र आधार-सिद्धि-उत्कृष्ट से भी परमोत्कृष्ट स्वरूप वाले भगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ ॥३९॥ परम श्रेष्ठ ज्योतिर्मय स्वरूप वाले, परम धाम वाले, परमोत्कृष्ट पद से समन्वित-सर्वशस्वरूप जनार्दन भगवान की सेवा में मैं प्रणाम करता हूँ ॥४०॥ सच्चिदानन्द भगवान, बड़े से भी बड़े, रक्षा करने वाले, सर्वस्वरूप, सनातन श्रेष्ठ भगवान् को मैं सादर प्रणाम करता हूँ ॥४१॥ ब्रह्मा, विष्णु और शिव के स्वरूप में स्थित सगुण ब्रह्म के स्वरूप में निर्गुण परात्पर, परम शान्त और मायावान् और रूप रहित तथा अनेक स्वरूपों से युक्त भगवान जनार्दन को मैं प्रणाम करता हूँ ॥४३॥

परेश परमानन्द शरणागतवत्सल ।
त्राहि मां करुणासिन्धो मनोतीत नमोऽस्तु ते ॥४४
एवं स्तुवन्तं विप्रेन्द्र मार्कण्डेयं जगद्गुरुम् ।
उवाच परया प्रीत्या शङ्खचक्रगदाधरः ॥४५
लोके भागवता ये च भगवद्भक्तमानसाः ।
तेषां तुष्टो न सन्देहो रक्षाम्येताश्च सर्वदा ॥४६
अहमेव द्विजश्रेष्ठ नित्यं प्रच्छन्नविग्रहः ।
भगवद्भक्तरूपेण लोकान्रक्षामि सर्वदा ॥४७
किंलक्षणा भागवता जायन्ते केन कर्मणा ।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं कौतूहलपरो यतः ॥४८
लक्षणं भागवतानां शृणुष्व मुनिसत्तम ।
वक्तुं तेषां प्रभावं हि शक्यते नाब्दकोटिभिः ॥४९

जो महान् शक्ति सम्पन्न इस सम्पूर्ण विश्व की रचना किया करते हैं, इसका परिवर्तन एवं रक्षण करते हैं और अन्त में इसका विनाश भी किया करते हैं उन आदि देव सर्वोपरि विराजमान भगवान् विष्णु को प्रणाम करता हूँ ।।४३।। हे परमात्मन् ! हे परमानन्दमय परमेश्वर ! हे शरण में समागतों पर प्यार करने वाले ! आप मन वाणी के अगोचर हैं । हे करुणा के सागर ! आप मेरी रक्षा करिए— मैं आपकी सेवा में अपना सादर प्रणाम् अर्पित करता हूँ ।।४४।। जिस समय में इस रीति से जगत् के गुरु विप्रेन्द्र मार्कण्डेय जी ने स्तवन किया था उस समय में शंख चक्र गदा आयुधों के धारण करने वाले भगवान उन से अत्यधिक प्रसन्न होकर कहने लगे थे ।।४५।। श्रीभगवान ने कहा—हे द्विजश्रेष्ठ ! इस जगतीतल में भगवान के चरणों की सेवा में अपना मन रमाते हैं उन पर मैं विशेष प्रसन्न रहा करता हूँ और सर्वदा उनकी रक्षा करने की मुझे चिन्ता रहती है । मैं स्वय अपने स्वरूप को छिपाकर एक भगवान के भक्त के रूप में होकर सदा मनुष्यों की सुरक्षा किया करता हूँ ।।४६-४७।। श्री मार्कण्डेयजी ने भगवान से पूछा था कि भगवान के भक्तों का कैसा स्वरूप होता है और किन २ कर्मों के द्वारा उनकी पहिचान हुआ करती है ? मुझे हृदय में इस बात का बड़ा भारी कुतूहल है । आप ही के मुखारविन्द से मैं इस विषय की जिज्ञासा को श्रवण कर के शान्त करना चाहता हूँ ।।४८।। श्री भगवान ने कहा—हे मुनि सत्तम ! आपकी ऐसी ही अभिलाषा है तो अब आप मुझ से भगवद्भक्तों के लक्षणों को सुनिये । वैसे भगवान् के भक्तों का प्रभाव ऐसा है जो करोड़ो वर्षों में भी वर्णन नहीं किया जा सकता है ।।४६।।

ये हिता. सर्वजन्तूना गतासूया अमत्सरा. ।
वशिनो निस्पृहाः शान्तास्ते वै भागवतोत्तमा. ।।५०
कर्म्मणा मनसा वाचा परपीडा न कुर्वते ।

अपरिग्रहशीलाश्च ते वै भागवता स्मृता ॥५१
सत्कथाश्रवणे येपा वर्तते सात्त्विकी मतिः ।
तद्भक्तविष्णुभक्ताश्च ते वै भागवतोत्तमा ॥५२
मातापित्रोश्च शुश्रूपा कुर्वन्ति ये नरोत्तमा ।
गङ्गाविश्वेश्वरधिया ते वै भागवतोत्तमा ॥५३
ये तु देवार्च्चनरता ये तु तत्साधका स्मृता ।
पूजाहष्ट्वा नुमोदन्ते ते वै भागवतोत्तमा ॥५४
व्रतिना च यतीना च परिचर्यापराश्च ये ।
वियुक्तपरनिन्दाश्च ते वै भागवतोत्तम ॥५५
सर्वपा हितवाक्यानि ये वदन्ति नपोत्तमा ।
ये गुणग्राहिणो लोके ते वै भागवता स्मृता ॥५६

जो भगवद्भक्त होते हैं वे सर्वदा समस्त प्राणियो के हित का कार्य किया करते हैं । उनमे कभी भी असूया और मात्सर्य दोष नाम् मात्र को भी नही होता है, उनका चित्त सदा उनके वश मे रहा करता है। भगवान् के भक्त कभी भी कोई इच्छा नही रक्खा करते हैं और शम परायण हुआ करते हैं। ऐसे ही लोगो को भगवद्भक्तो मे परम श्रेष्ठ समझ लेना चाहिए ॥५०॥ जो अपने मन से, वचना से और कर्मों के द्वारा कभी भी दूसरो को पीडा नही दिया करते हैं और जो किसी के द्वारा हुए दान को ग्रहण नही किया करते हैं वे सच्चे और उत्तम भगवान् के भक्त होते हैं ॥५१॥ जिन लोगो में सत्वगुण वाली बुद्धि होती है और वह सदा परम श्रेष्ठ भगवान की कथा का श्रवण करने मे ही लगी रहा करती है वे विष्णु के चरणो मे ही भक्ति किया करते हैं तथा भक्तो का महान् समादर उनके हृदय मे सदा रहा करता है ऐसे लोग उत्तम भगवान के भक्त कहे जाया करते हैं ॥५२॥ जो लोग अपनी माता की गङ्गा की बुद्धि से और पिता की सदाशिव की बुद्धि से निरन्तर सेवा किया करते हैं वे परम श्रेष्ठ भगवान के भक्त होते हैं ॥५३॥

जो लोग सदा देव-यजन करने में सलग्न रहा करते हैं और देवार्चन करने की साधना रखते हैं और पूजा का सर्वदा अनुमोदन किया करते हैं उनकी गणना भी परम श्रेष्ठ भक्तों में होती है ॥५४॥ जिनका समय सदा व्रतधारियों एवं सन्यासियों की सेवा में व्यतीत हुआ करता है और भूल कर भी दूसरों की निन्दा नहीं किया करते हैं उनको परम श्रेष्ठ भगवान के भक्तों में समझना चाहिए ॥५५॥ जो सदा सब में हित की ही चर्चा किया करते हैं तथा जो प्राणियों का आदर सत्कार करने वाले होकर गुणों का ग्रहण किया करते हैं वे लोग भगवद्भक्त कहे आया करते हैं ॥५६॥

आत्मवत्सर्वभूतानि ये पश्यन्ति नरोत्तमा ।
तुल्या शत्रुषु मित्रेषु ते वै भागवतोत्तमा ॥५७
धर्मशास्त्रप्रवक्तार सत्यवाक्यरताश्च ये ।
सता शुश्रूषयो ये च ते वै भागवतोत्तमा ॥५८
व्याकुर्वते पुराणानि तानि शृण्वन्ति ये तथा ।
तद्वक्तरि च भक्ता ये ते वै भागवतोत्तमा ॥५९
ये गोब्राह्मणशुश्रूषा कुर्वते सतत नरा ।
तीर्थयात्रापरा ये च ते वै भागवतोत्तमा ॥६०
अन्येषामुदय दृष्ट्वा येऽभिनन्दन्ति मानवा ।
हरिनामपरा ये च ते वै भागवतोत्तमा ॥६१
आरामारोपणरतास्तडागपरिरक्षका ।
कासारकूपकर्तारस्ते वै भागवतोत्तमा ॥६२
ये वै तडागकर्तारो देवसद्मानि कुर्वते ।
गायत्रीनिरता ये च ते वै भागवतोत्तमा ॥६३

जो मनुष्य प्राणीमात्र को अपने ही समान समझ कर वैसा ही व्यवहार किया करते हैं तथा शत्रु मित्र भाव उनके हृदय में नहीं होता उनकी दृष्टि में शत्रु हो चाहे मित्र हो एक समान होते हैं और कभी भी

किसी से राग-द्वेष का भाव नही रखते है उनको परम श्रेष्ठ भक्त समझना चाहिए ।।५७।। जो लोग धर्मशास्त्रो की व्याख्या किया करते हैं, सदा सत्य-भाषण करने वाले और सत्पुरुषो की सेवा मे तत्पर रहा करते हैं वे मेरे श्रेष्ठ भक्त कहे जाया करते हैं ॥५८॥ पुराणो की व्याख्या जो स्वयं किया करते है तथा श्रवण किया करते है तथा पुराणो की कथा का प्रवचन करने वाले मे परम श्रद्धा का भाव रखते है वे लोग श्रेष्ठ भक्त होते हैं ॥५९॥ जो मनुष्य सर्वदा गौ और विप्रो की सेवा किया करते है और तीर्थो की यात्रा किया करते है उनको श्रेष्ठ भगवद्भक्त जानना चाहिए ।।६०।। जो सदा श्री हरि नाम का कीर्त्तन करने मे सलग्न रहते हैं तथा जिनका मन दूसरो की अभिवृद्धि देखकर परम प्रसन्न हुआ करता है वह परम श्रेष्ठ भगवान् का भक्त होता है ।।६१।। जो उद्यान लगाया करते हैं तालाब और बावडी खुदवा कर उनका निर्माण कराया करते हैं वे श्रेष्ठ भक्त होते हैं ।।६२।। जो सरोवरो का निर्माण कराते हैं तथा देवालयो का निर्माण कराते हैं तथा देवालयो का कराते हैं एव जो गायत्री देवी की जाप एव उपासना मे परायण रहते हैं वे मेरे परम श्रेष्ठ भक्त हुआ करते हैं ।।६३।।

येऽभिनन्दन्ति नामानि हरेः श्रुत्वातिहर्षिता. ।
रोमाञ्चितशरीराश्च ते वै भागवतोत्तमाः ।।६४
तुलसीकानन दृष्ट्वा ये नमस्कुर्वते नरा. ।
तत्काष्ठाङ्कितकण्ठा ये ते वै भागवतोत्तमाः ।।६५
तुलसीगन्धमाघ्रायसन्तोषं कुर्वते तु ये ।
तन्मूलमृत्तिका ये च ते वै भागवतोत्तमाः ।।६६
आश्रमाचारनिरतास्तथैवातिथिपूजका ।
ये च वेदार्थवक्तारस्ते वै भागवतोत्तमा ।।६७
शिवप्रिया. शिवासक्ता. शिवपादार्च्चने रताः ।

त्रिपुण्ड्रधारिणो ये च ते वै भागवतोत्तमा ॥६८
व्याहरन्ति च नामानि हरे शम्भोर्महात्मन ।
रुद्राक्षालकृता ये च ते वै भागवतोत्तमा ॥६९
ये यजन्ति महादेव क्रतुभिर्बहुदक्षिणैं ।
हरिं वा परया भक्त्या ते वै भागवतोत्तमा ॥७०

जिनका मन भगव नामो का कीर्त्तन श्रवण करके उसका अभिनन्दन किया करते हैं और भगवान के नामोच्चारण करने मे तथा नाम श्रवण करने मे रोमाञ्च हो जाया करते हैं व भगवान के भावुक भक्त कहे जाते है ॥६४॥ जिनके कण्ठ मे सदा तुलसी की कण्ठी या माला रहती है और जो तुलसी के वन को देखकर परम प्रसन्नता का अनुभव करते हुए प्रणाम करते हैं उनका यह भगवद्भक्त समझना चाहिये ॥६५॥ जो तुलसी की सुगन्ध को तथा तुलसी पौधा की जड की मृत्तिका की गन्ध को सूँघकर परम सन्तोष का लाभ प्राप्त किया करते वे मेरे परम श्रेष्ठ भक्त होते हैं ॥६६॥ जो सदा अपन आश्रम के नियमो का पूर्णतया परिपालन किया करते है जिस भी आश्रम मे हो समागत अतिथियों का आतिथ्य एव अर्चन परम प्रसन्न मन से किया करत हैं तथा वदार्थ का कथन किया करते हैं वे श्रेष्ठ भक्त होते हैं ॥६७॥ जो भगवान शिव की भक्ति करते हुए उनके परम प्रिय होत है तथा शिव के चरणो की पूजा मे आसक्त और सदा सलग्न रहते हैं और जो त्रिपुण्ड धारण किया करते हैं वे मेरे परम भक्त कहे जात हैं क्यो कि शिव की कृपा के बिना भक्ति नही हुआ करती है अत शिवभक्त मेरे सच्चे भक्त होते हैं ॥६८॥ जो विष्णु या शिव नामो का कीर्त्तन किया करते हैं और रुद्राक्ष माला धारण किया करते हैं वे मेरे श्रेष्ठ भक्त होते हैं ॥६९॥ जो विविध भाँति की विपुल दक्षिणा वाले यज्ञ का यजन कर श्री शकर भगवान का अथवा विष्णु का भक्ति भाव से पूजन किया करते हैं वे मेरे श्रेष्ठ भक्त होत हैं ॥७०

विदितानी च शास्त्राणि परार्थ प्रवदन्ति ये ।
सर्वत्र गुणभाचो ये ते वै भागवताः स्मृताः ॥७१
शिवे च परमेशे च विष्णौ च परमात्मनि ।
समबुद्धया प्रवर्त्तन्ते ते वै भागवताः स्मृताः ॥७२
शिवाग्निकार्यनिरताः पञ्चाक्षरजपे रता ।
शिवध्यानरता ये च ते वै भागवतोत्तमा ॥७३
पानीयदाननिरता येऽन्नदानरतास्तथा ।
एकादशीव्रतरता ते वै भागवतोत्तमाः ॥७४
गोदाननिरता ये च कन्यादानरताश्च ये ।
मदर्थं कर्म्मकर्त्तारस्ते वै भागवतोत्तमाः ॥७५
एते भागवता विप्र केचिदत्र प्रकीर्तिताः ।
मयाऽपि गदितु शक्या नाब्दकोटिशतैरपि ॥७६
तस्मात्त्वमपि विप्रेन्द्र सुशीलो भव सर्वदा ।
सर्वभूताश्रयो दान्तो मैत्रो धर्म्मपरायणः ॥७७

जो समस्त शास्त्रो के तत्वो को जान कर अन्य लोगो को समझाया करते हैं और सर्वत्र गुणो का सेवन करने वाले हैं वे परम भाग- कहे जाया करते हैं ॥७१॥ जो परमेश शिव और परमात्मा विष्णु इन दोनो मे कोई भेद बुद्धि न रखकर अभेद भावना से इन दोनो की उपासना किया करते हैं वे मेरे सच्चे भक्त होते हैं ॥७२॥ जो "नमः शिवाय" पञ्चाक्षरी मन्त्र के जाप के द्वारा शिव की तुष्टि के लिये हवन किया करते हैं तथा पञ्चाक्षरी उपयुक्त मन्त्र का जाप किया करते हैं और भगवान शिव के ध्यान मे मग्न एव सदा सलग्न रहा करते हैं वे श्रेष्ठ भक्त होते हैं ॥७३॥ जो सदा अन्न और जल का दान दिया करते हैं तथा एकादशी तिथि का व्रतोपवास किया करते हैं वे मेरे परम श्रेष्ठ भक्त होते हैं ॥७४॥ जो गौओ का दान और कन्याओ के दान किया करते हैं तथा ऐसे ही अनेक शुभ कर्म केवल भगवान की

प्रीति के लिये ही किया करते हैं वे भगवान के परम श्रेष्ठ भक्त कहे जाया करते हैं ॥ ७५ ॥ हे विप्र ! यहाँ पर हमने सक्षेप मे कुछ भगवद्भक्तो के लक्षणो का वणन कर दिया है किन्तु वैसे तो भक्तो के लक्षण इतने अधिक है कि करोडो वर्षो मे भी उनका वर्णन नही किया जा सकता है ॥७६॥ हे विप्रश्रेष्ठ ! इसलिये मैं तुमको यही उपदेश देता हूँ कि तुम को भी सदा सुशील रहना चाहिए। समस्त प्राणियो का आश्रय दान करो। अपनी इन्द्रियो को कुमार्ग मे गमन करने से उनका दमन करते रहो। सब के साथ मैत्री का भाव एव व्यवहार रक्खो तथा सर्वदा धर्म मे तत्पर रहना चाहिये ॥७७॥

पुनर्युगान्तपर्य्यन्त धर्म्म सर्व समाचरन् ।
मन्मूर्तिध्याननिरत पर निर्वाणमाप्स्यसि ॥७८
एव मृकण्डुपुत्रस्य स्वभक्तस्य कृपानिधि ।
दत्त्वा वर स देवेशस्तत्रैवातरधीयत ॥७९
मार्कण्डेयो महाभागो हरिभक्तिरत सदा ।
चचार परम धर्ममीजे च विधिवन्मखैः ॥८०
शालग्रामे महाक्षेत्रे तताप परम तप ।
ध्यानक्षपितकर्मा तु पर निर्वाणमाप्तवान् ॥८१
तस्माज्जन्तुपु सर्वेषु हितकृद्धरिपूजक ।
ईप्सित मनसा यद्यत्तत्तदाप्नोत्यसशयम् ॥८२
एतत्सर्व निगदित त्वया पृष्ट द्विजोत्तम ।
भगवद्भक्तिमाहात्म्य किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥८३

तुम्हारा कर्तव्य है कि इस महा प्रलय होने के समय तक सभी धर्म धर्म के अनुकूल करके मेरे ध्यान म मग्न रहा करो। तुम्हारा मोक्ष निश्चित रूप से हो जायगा। इसमे तनिक भी सशय नही है ॥७८॥ इस रीति से देवेश्वर भगवान मृकण्डु महर्षि के पुत्र मार्कडेय को सदुपदेश प्रदान करके उसी समय मे वही पर अ तर्हित हो गये थे ॥७९॥

उसी समय से महान भाग्य वाले मार्कण्डेय ऋषि भी सर्वदा श्रीहरि की भक्ति में लीन होकर परम धर्म कर्म का पालन करते हुए अनेक प्रकार के यज्ञों के द्वारा भगवान का यजन करते रहा करते हैं ।।८०।। मार्कण्डेय मुनि ने शालग्राम नामक महान तीर्थ में जाकर अत्यन्त उग्र तपश्चर्या की थी और निरन्तर भगवान के ध्यान में मग्न रहते हुए अपने समस्त कर्मों को क्षीण करके वे परम शान्ति तथा मोक्ष की प्राप्ति करेंगे ।।८१।। इस कथा से यह सिद्ध हो जाता है कि जो कोई भी भगवान का भक्त भगवान की पूजा किया करता है और समस्त प्राणियों का हित चाहता है वह अपने हृदय में जो भी कुछ मनोरथ करता है उसके वे सभी मनोरथ सिद्ध होजाया करते हैं ।।८२।। श्री नन्ददेव जी ने कहा—हे द्विजोत्तम ! आपके प्रश्न करने पर हमने यह सम्पूर्ण भगवान का माहात्म्य वर्णन कर दिया है । अब और आप मुझ से क्या पूछने की इच्छा रखते हैं ।।८३।।



।।प्रयाग और गंगाजी माहात्म्य वर्णन।।

भगवद्भक्तिमाहात्म्यं श्रुत्वा प्रीतस्तु नारद ।
पुनः पप्रच्छ सनकं ज्ञानविज्ञानपारगम् ।।१
क्षेत्राणामुत्तमं क्षेत्रं तीर्थानां च तथोत्तमम् ।
परया दयया तथ्यं ब्रूहि शास्त्रार्थपारग ।।२
शृणु ब्रह्मन्परं गुह्यं सर्वसंपत्करं परम् ।
दुःस्वप्ननाशनं पुण्यं धर्म्यं पापहरं शुभम् ।।३
श्रोतव्यं मुनिभिर्नित्यं दुष्टग्रहनिवारणम् ।
सर्वरोगप्रशमनमायुर्वर्द्धनवारणम् ।।४
क्षेत्राणामुत्तमं क्षेत्रं तीर्थानां च तथोत्तमम् ।
गङ्गायमुनयोर्योगं वदन्ति परमर्षयः ।।५

सितासितोदक तीर्थं ब्रह्माद्या सर्वदेवता ।
मुनयोमनवश्चैव सेवन्ते पुण्यकांक्षिण ॥६
गङ्गा पुण्यनदी ज्ञेया यतो विष्णुपदोद्भवा ।
रविजा यमुना ब्रह्म स्तयोर्योग शुभावह ॥७

श्री सूतजी ने कहा—भगवान की भक्ति के इस माहात्म्य का श्रवण कर नारदजी को अत्यधिक प्रसन्नता हुई और फिर ज्ञान तथा विज्ञान के महान् पारगामी विद्वान सनकजी से उन्होंने पुन प्रश्न किया था। श्री नारदजी ने कहा—हे शास्त्रो के तत्वार्थों मे पारङ्गत मुनिवर ! अब आप मुझ पर परमानुग्रह करके यह बताइये कि क्षेत्रो मे सर्वोत्तम क्षेत्र कौन सा है ॥१-२॥ श्री सनकजी ने कहा— हे ब्रह्मन ! अब मैं आपके सामने वही बतलाता हूँ जो क्षेत्रो मे और तीर्थो मे सर्वोत्तम है। यह परम गुह्य, सभी प्रकार की सम्पत्तियो का प्रदान करने वाला, दु स्वप्नो का विनाशक, परम पुण्य पूर्ण, धर्म से युक्त, पापों का अपहरण करने वाला, अत्यधिक शुभ, दुष्टग्रहो को दूर भगा देने वाला, मुनियो के श्रवण करने के योग्य समस्त व्याधियो को शात करने वाला, आयु की वृद्धि करने वाला जो परमोत्तम तीर्थ एव क्षेत्र है उसका सुनिये। परमोत्तम ऋषिगण उसको गङ्गा यमुना का सङ्गम प्रयाग कहा करते हैं ॥३-५॥ यह ऐसा महान् तीर्थ है जहाँ पर गङ्गा का जल तो सफेद है और यमुना का जल आश्रित रूप वाला है। पुण्य की अभिलाषा रखने वाले ब्रह्मा आदि समस्त देववृन्द, मुनिगण और मनुओं का समुदाय सभी लोग सदा इसी क्षेत्र एव सर्वोत्तम महान् तीर्थ का सेवन किया करते हैं ॥६॥ भागीरथी गङ्गाजी को परम पुण्यमयी सरिता समझनी चाहिए क्यो कि साक्षात् भगवान् विष्णु के परम पावन चरणो से प्रकट हुई हैं। यमुना श्री सूर्यदव की पुत्री हैं। इसीलिये इन दोनो नदियो का यहाँ पर सङ्गम जो है वह परम कल्याण करने वाला है ॥७॥

स्मृतार्तिनाशिनी गङ्गा नदीना प्रवरा मुने ।
सर्वपापक्षयकरी सर्वोपद्रवनाशिनी ॥८
यानि क्षेत्राणि पुण्यानि समुद्रान्ते महातले ।
तेषा पुण्यतम ज्ञेय प्रयागाख्य महामुने ॥९
इयाज वेधा यज्ञन यत्र देव रमापतिम् ।
तथैव मुनय सर्वे चक्रुश्च विविधान्मखान् ॥१०
सर्वतीर्थाभिषेकाणि यानि पुणयानि तानि वै ।
गङ्गाविन्द्वभिषेकस्य कला नार्हन्ति षोडशीम् ॥११
गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद्योजनाना शते स्थित
सोऽपि मुच्येत पापेभ्य किमु गङ्गाभिषेकवान् ॥१२
विष्णुपादोद्भवा देवी विश्वेश्वरशिर स्थिता ।
ससेव्या मुनिभिर्देवै कि पुन पामरैर्जनै ॥१३
यत्सैकत ललाटे तु ध्रियते मनुजोत्तमै ।
तत्रैव नेत्र विज्ञेय विध्वर्द्धाध समुज्वलत् ॥१४

हे मुनिवर ! गङ्गा की ऐसी महिमा है कि यह स्मरण मात्र करने ही से सम्पूर्ण पीडा को शान्त कर दिया करती है । यह समस्त नदियो मे परम श्रेष्ठ नदी है और सभी प्रकार के महापातको को क्षीण कर दिया करती है तथा सब उपद्रवो को दूर भगा देने वाली है ॥८॥ हे महामुने ! समुद्र पर्यन्त पृथ्वी पर जो भी पुण्य क्षेत्र हैं उन सब मे प्रयाग परम पुण्यमय एव सर्वश्रेष्ठ क्षेत्र है ॥९॥ यह वह पवित्र तीर्थ स्थल है जहा पर ब्रह्माजी ने स्वय यज्ञो के यजन के द्वारा भगवान् विष्णुदेव का अर्चन किया है और और अन्य सब मुनिगण ने भी इस स्थल मे अनेक प्रकार के बहुत-से यज्ञादि का अनुष्ठान किया है ॥१०॥ अन्य जितने भी पवित्र तीर्थों के अभिषेक हैं वे गङ्गा के बिन्दुओं के अभिषक की सोलहवी कला को भी प्राप्त नहीं हो सकते हैं ॥११॥ चार सौ कोस की दूरी पर भी कोई बैठा हुआ 'गङ्गा-गङ्गा'

यह उच्चारण कर इसका स्मरण मात्र कर लेता है वह भी अपने कृत सब पापो से छुटकारा पा जाया करता है फिर यदि वहा पर पहुँच कर गङ्गा मे अवगाहन करले तो उसकी महिमा का तो कहना ही क्या है ।।१२।। यह गङ्गा प्रथम तो भगवान विष्णु के चरणो से उत्पन्न हुई है फिर अखिल विश्व के स्वामी शङ्कर के मस्तक पर आकर स्थित हुई थी उस गङ्गा का बडे देवगण और मुनिवृन्द भी सेवन कम करने की उत्कट अभिलाषा रक्खा करते हैं फिर पामर मनुष्यो की तो बात ही क्या है ।।१३।। मनुजो मे श्रेष्ठ ललाट पर जहां गङ्गा की रज को लगाया करते वहीं पर ही अर्ध चन्द्र के नीचे भगवान शिव के अत्युज्वल तीसरे नेत्र को समझना चाहिए ।।१४।।

यन्मज्जन महापुण्य दुर्लभं त्रिदिवौकसाम् ।
सारूप्यदायक विष्णोः किमस्मात्कथ्यते परम् ।।१५
यत्र स्नाताः पापिनोऽपि सर्वपापविवर्जिताः ।
महद्विमानम रूढाः प्रयान्ति परम पदम् ।।१६
यत्र स्नाता महात्मानः पितृमातृकुलानि वै ।
सहस्राणि समुद्धृत्य विष्णुलोक व्रजन्ति वै ।।१७
स स्नात सर्वतीर्थेषु यो गङ्गा स्मरति द्विज ।
पुण्यक्षेत्रेषु सर्वेषु स्थितवान्नात्र सशयः ।।१८
यत्र स्नात नर दृष्ट्वा पापोऽपि स्वर्गभूमिभाक् ।
यदङ्गस्पर्शमात्रेण देवानामधिपो भवेत् ।।१९
तुलसीमूलसभूता द्विजपादोद्भवा तथा ।
गङ्गोद्भवा तु मृल्लोकान्नयत्यच्युतरूपताम् ।।२०
गङ्गा च तुलसी चैव हरिभक्तिरचञ्चला ।
अत्यन्तदुर्लभा नृणा भक्तिर्द्धर्मप्रवक्तरि ।।२१

भागीरथी गङ्गाजी के जल मे स्नान करना परम पुण्य का प्रदान करने वाला होता है। यह गङ्गाजल मे स्नान करना देवगण को

भी परम दुर्लभ हुआ करता है। गङ्गाजल का स्नान, पान, स्पर्शन और दर्शन साक्षात् भगवान् विष्णु के स्वरूप का प्रदान करने वाला होता है—इससे अधिक इस गङ्गा की महिमा क्या वर्णन की जा सकती है ।।१५।। इस भागीरथी गङ्गा के जल मे स्नान करने का ऐसा अदभुत प्रभाव होता है कि महा पापात्मा प्राणी भी समस्त पापो की वासनाओ से छुटकारा प्राप्त करके बडे भारी दिव्य विमान पर समारूढ होकर परमोत्तम पद की प्राप्ति करा लिया करता है ।।१६।। महान् आत्माओं वाले पुरुष गङ्गा के जल मे अवगाहन करके सहसा माता-पिताओ के कुलो का उद्धार करके विष्णु लोक को प्राप्त हो जाया करते हैं ।।१७।। हे द्विजवर ! जो गङ्गाजी का स्मरण भी यदि कर लेता है उसने समस्त परम पुण्यमय तीर्थों मे स्नान कर लिया है ऐसा समझ लेना चाहिए। वह पुरुष सभी पुण्य क्षेत्रो के गमन करने का फल प्राप्त कर लिया करता है। ऐसा फल समस्त पापो की वासनाओं को देने वाले शुद्ध हृदय त्याग वाले पुरुष को ही प्राप्त हुआ करता है ।।१८।। यहाँ पर स्नान करने वाले पुरुषो का दर्शन मात्र कर लेने पर भी लोग स्वर्ग को प्राप्त कर लिया करते हैं। गङ्गा के जल का स्पर्श करने का ही ऐसा महत्त्व है कि वह मनुष्य देवताओं का भी स्वामी बन जाया करता है ।।१६।। तुलसी के जडरी मृत्तिका—विप्रा के चरणो से स्पर्श की हुई धूलि कण और गङ्गा मृत्तिका मनुष्य को साक्षात् विष्णु भगवान् का स्वरूप प्रदान कर दिया करते हैं अर्थात् स्वरूप मुक्ति दे दिया करते हैं ।।२०।। बहुत बडे पुण्य से ही गङ्गातुलसी और श्री हरि की अनन्य भक्ति प्राप्त हुआ करते हैं धर्म के प्रवचन करने वाले में भक्ति की भावना भी अत्यन्त दुर्लभ होती है। ये सब को कभी प्राप्त नहीं हो सकते हैं ।।२१

सद्धर्मवक्तृ पदसंभवा मृद गङ्गोद्भवा चैव तथा तुलस्या।
मूलोद्भवा भक्तियुतो मनुष्यो धृत्वा शिरस्येति पद च विष्णो २२
यदा यास्याम्यहं गङ्गा कदा पश्यामि तामहम्।

वाच्छन्यपि च यो ह्येवं सोऽपि विष्णुपद व्रजेत् ॥२३
गङ्गाया महिमा ब्रह्मन्वक्तु वर्षशतैरपि ।
न शक्यते विष्णुनापि किमन्यैर्बहुभाषितैः ॥२४
अहो माया जगत्सर्वं मोहयत्येनदद्भुतम् ।
यतो वै नरकं यान्ति गङ्गानाम्नि स्थितेऽपि हि ॥२५
ससारदुःखविच्छेदि गङ्गानाम प्रकीर्तितम् ।
तथा तुलस्या भक्तिश्च हरिकीर्तिप्रवक्तरि ॥२६
सकृदप्युच्चरेद्यस्तु गङ्गेत्येवाक्षरद्वयम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥२७
योजननित्य यस्तु गङ्गायामधिगच्छति ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः सूर्यलोके समेति हि ॥२८

सद् धर्म के प्रवचन करने वाले के चरणों से स्पर्श की हुई रज-गङ्गाजी की मृत्तिका और तुलसी के मूल की मिट्टी मस्तक पर चढाने की ऐसी महान् महिमा है कि वह मनुष्य सीधा विष्णु भगवान् के लोक को प्राप्त हो जाता है। ॥२२॥ जो मनुष्य अपने हृदय मे—मैं किस समय मे गङ्गाजी पर पहुँचकर स्नानादि करूँगा मैं कब गङ्गादेवी के दर्शन करूँगा। ऐसे विचार उठा करते हैं वह भी अपने इन परम पवित्र विचार धारा के ही परम पुण्य से विष्णु लोक की प्राप्ति कर लिया करता है ॥२३॥ हे ब्रह्मन ! अधिक क्या वर्णन किया जावे गङ्गाजी की महिमा इतनी विशाल है कि भगवान् विष्णु भी यदि स्वयं कहना चाहें तो उसे सैकड़ो वर्षों मे भी नहीं कह सकते हैं। साधारण मनुष्य की तो शक्ति ही क्या हो सकती है ॥२४॥ यह भगवान् की माया ऐसी है जो सम्पूर्ण ससार का मोह मे डाल दिया करती है क्योंकि गङ्गा जैसी परम पावन नदी के विद्यमान रहते हुए भी उस ओर मायामग्नता के कारण ध्यान न देने से मनुष्य नरकों की यातनाएँ सहन किया करते हैं क्योंकि पाप करने का स्वभाव होता ही है जिनका कुफल नरक प्राप्ति

हुआ करती है। गङ्गा का नाम स्मरण, तुलसी की भक्ति और धर्म प्रवक्ता म श्रद्धाभाव ये ससार के जन्म-मरण के दु ख को काट देने वाले हुआ करते हैं ॥२५॥ ॥२६॥ जो एक बार भी अपने जीवन मे पापो की वासना को निर्मूल करने के लिये "गङ्गा" ये दो अक्षरो का उच्चारण करता है वह सभी पापो से छूट कर भगवान् विष्णु के परम पद को प्राप्त कर लेता है ॥२७॥ जो गङ्गा के क्षेत्र से बारह कोस तक विचरण किया करता है वह भी समस्त प्रकार के पापो से छूट कर सूर्य लोक को प्राप्त किया करता है। १२ कोस की दूरी पर भी गङ्गा का ऐसा प्रभाव होता है ॥२८

सेय गङ्गा महापुण्या नदी भक्त्या निषेविता ।
मेषतौलिमृगार्केषु पावयत्यखिल जगत् ॥२६
गोदावरी भीमरथी कृष्णा रेवा सरस्वती ।
तुङ्गभद्रा च कावेरी कालिन्दी बाहुदा तथा ॥३०
वेत्रवती ताम्रपर्णी सरयूश्च द्विजोत्तम ।
एवमादिषु तीर्थेषु गङ्गा मुख्यतमा स्मृता ॥३१
✓यथा सर्वगतो विष्णुर्जगद्व्याप्य प्रतिष्ठित ।
तथैव व्यापिनी गङ्गा सर्वपापप्रणाशिनी ॥३२
अहो गङ्गा जगद्धात्री स्नानपानादिभिर्जगत् ।
पुनाति पावनीत्येषा न कथ सेव्यते नृभि ॥३३
तीर्थानामुत्तम तीर्थं क्षेत्राणा क्षेत्रमुत्तमम् ।
वाराणसीति विख्यात सर्वदेवनिषेवितम् ॥३४
ते एव श्रवणे धन्ये सविदाते बहुश्रुतम् ।
इह श्रुतिमता पुसा काशी याम्या श्रुताऽसकृत् ॥३५

यदि महा पुण्यमयी गङ्गाजी के जल का सेवन मेष, तुला और मकर के ऊपर जब सूर्य सक्रमण किया करते हैं उस समय मे किया जावे तो यह समस्त जगत् को परम पवित्र बना दिया करता है ॥२६॥

गोदावरी, भीमरथी, कृष्णा, रेवा, सरस्वती, तुङ्गभद्रा, कावेरी, कालिन्दी, वाहुदा, वेत्रवती, ताम्रपर्णी और सरयू इन समस्त तीर्थों में हे द्विजवर ! गङ्गा परम पुण्यमयी बताई गई है ॥३०-३१॥ जिस प्रकार से भगवान विष्णु समस्त लोकों को व्याप्त करके विराजमान रहा करते हैं वैसे ही व्यापिनी यह गङ्गा भी सब महापापों का नाश कर देने वाली है ॥३२॥ इस संसार में जगत् को पुष्टि प्रदान करने वाली यह गङ्गा नदी स्नान, पान, दर्शन और स्पर्शन आदि के द्वारा जगत को परम पवित्र बना देने वाली स्थित है तो भी मनुष्य इसका सेवन क्यों नहीं किया करते हैं—कैसी आश्चर्य की बात है ॥३३॥ वाराणसी में सभी देवगण विराजमान रहा करते हैं। यह भी परमोत्तम तीर्थ और श्रेष्ठ क्षेत्र है ॥३४॥ जिन कर्णों से बहुत से शास्त्रों का श्रवण करके उन पुण्य क्षेत्रों का मर्म ज्ञात किया है वे ही कान परम धन्य हैं जिन कानों ने वारम्वार काशी के माहात्म्य का श्रवण किया है ॥३५॥

ये य स्मरन्ति सस्थानमविमुक्त द्विजोत्तमा ।
निर्धूतसर्वपापास्ते शिवलोक व्रजन्ति वै ॥३६
योजनाना शतस्थोऽपि अविमुक्त स्मरेद्यदि ।
बहुपातकपूर्णोऽपि पद गच्छत्यनामयम् ॥३७
प्राणप्रयाणसमये योऽविमुक्त स्मरेद् द्विज ।
सोऽपि पापविनिर्मुक्त शैव पदमवाप्नुयात् ॥३८
काशीस्मरणज पुण्य भुक्त्वा स्वर्ग तदन्तत ।
पृथिव्यामेकराड् भूत्वा काशी प्राप्य च मुक्तिमाप् ॥३९
बहुनात्र किमुक्तेन वाराणस्या गुणान्प्रति ।
नामापि गृह्णता काश्याश्चतुर्वर्गो न दरत ॥४०
गङ्गायमुनयोर्योगोऽधिक काश्या अपि द्विज ।
यस्य दर्शनमात्रेण नरा यान्ति परा गतिम् ॥४१

मकरस्थे रवौ गङ्गा यत्र कुत्रावगाहिता ।
पुनाति स्नानपानाद्यैर्नयन्तीन्द्रपुरं जगत् ॥४२

हे द्विजोत्तम ! जो पुरुष अविमुक्त क्षेत्र इस काशी का स्मरण किया करते हैं वे अपने सब कृत पापो को झाड़कर सीधे शिवजी के लोक को चले जाया करते हैं ॥३६॥ कोई मनुष्य चारसौ कोश दूर बैठा हुआ भी इस अविमुक्त क्षेत्र काशी का स्मरण भी कर लेता है वह चाहे अनेक प्रकार के पापों से पूर्ण भी क्यो न हो काशी मे अपना मन लगाने के कारण से पापों के पुञ्ज से छूट कर अनामय पद की प्राप्ति कर लिया करता है । काशी मे अपने चित्त की वृत्ति लगा देने मात्र का ही इतना प्रबल प्रभाव होता है ॥३७॥ अपने प्राणो का परित्याग करने के समय मे काशीपुरी का स्मरण कर लेता है भले ही वह कही पर भी क्यो न हो, हे द्विजोत्तम ! वह भी सब पापो से विमुक्त होकर शिवलोक की प्राप्ति करने का अधिकारी हो जाता है ॥३८॥ इस काशीपुरी के स्मरण करने से स्वर्ग मे सुख भोग कर के अन्त मे इस भूमण्डल मे आकर राजघर मे जन्म ग्रहण किया करता है और फिर काशी निवास पाकर मुक्त हो जाया करता है ॥३९॥ वाराणसी के गुणो की अधिकता का वर्णन करने से क्या लाभ है ? जो काशी का ज्ञान प्रकाश नाम भी लेता है उससे चारो पुरुषार्थ दूर नही रहा करते है ॥४०॥ हे द्विज-वर ! गङ्गा यमुना का सङ्गम जहाँ पर है वह प्रयाग काशी से भी अधिक है जिसके केवल दर्शन करने ही से परम श्रेष्ठ गति प्राप्त होजाती है ॥४१॥ मकर राशि पर जब सूर्य स्थित हो तब चाहे जिस किसी घाट पर स्नान किया जावे वह स्नान-पान आदि से जगत् को पवित्र करके इन्द्रलोक मे भेज दिया करती है ॥४२॥

यो गङ्गां भजते नित्यं शङ्करो लोकशङ्करः ।
लिङ्गरूपी कथं तस्या महिमा परिकीर्यते ॥४३
हरिरूपधरं लिङ्गं लिङ्गरूपधरो हरिः ।

ईषदप्यन्तर नास्ति भेदकृच्चानयो कुधी ॥४४
अनादिनिधने देवे हरिशङ्करसज्ञिते ।
अज्ञानसागरे मग्ना भेद कुर्वन्ति पापिन ॥४५✓
यो देवो जगतामीश कारणाना च कारणम् ।
युगान्ते निगलत्येतद्रुद्ररूपधरो हरि ॥४६ ✓
रुद्रो वै विष्णुरूपेण पालयत्यखिल जगत् ।
ब्रह्मरूपेण सृजति प्रान्ते ह्येतत्त्रय हर ॥४७
हरिशकरयोर्मध्ये ब्रह्मणश्चापि यो नर ।
भेद करोति सोऽभ्येति नरक भृशदारुणम् ॥४८
हर हरि विधातार य पश्यत्येकरूपिणम् ।
स याति परमानन्द शास्त्राणामेष निश्चय ॥४९

समस्त जगत् के कल्याण करने वाले भगवान लिङ्ग रूपधारी शङ्कर भी सर्वदा गङ्गा का सेवन किया करते हैं तो ऐसी भगवती गङ्गा की महिमा किस तरह से वर्णन की जा सकती है अर्थात् गङ्गा का महत्त्व वर्णनातीत है ॥४३॥ लिङ्ग स्वरूपधारी शिव भी हरि के रूप धारण करने वाले हैं और विष्णु चतुर्भुजधारी शिव रूप हैं। इन दोनो मे तनिक भी कुछ भेद नही है। जो मूढ मनुष्य इन में भेद राम झता है उसकी बुद्धि वास्तव में ही कुत्सित हो गई है—यह मान लेना चाहिए ॥४४॥ जन्म मरण से रहित भगवान् शम्भु तथा विष्णु मे भेद *अज्ञान सागर मे निमग्न महापापी* ही समझा करते हैं या समझते हैं ॥४५॥ जो भगवान विष्णु इस जगत् के स्वामी है। कारणों के कारण स्वरूप हैं वे ही स्वय प्रलयकाल म भीषण रुद्र का रूप धारण कर इस ससार को लीन कर लिया करते हैं ॥४६॥ रुद्रदेव ही विष्णुदेव के स्वरूप से समस्त विश्व के चराचर का पालन पोषण किया करते हैं और वे ही ब्रह्मा के स्वरूप म अवस्थित होकर विश्व का सृजन किया करते है। अन्त म ये तीनो हर ही हैं ॥४७॥ अतएव ब्रह्मा,

विष्णु और महेश—इनमे जो भेद बुद्धि रखता है वह महान् दारुणतम नरक मे जाकर परम घोर यातनाऐ सहता है ॥४८॥ जो प्राणी हरि-हर और ब्रह्मा इन तीनो को एक रूप देखता है वह परमानन्द की प्राप्ति किया करता है—ऐसा शास्त्रो का निश्चित सिद्धान्त है ॥४९॥

योऽसावनादि सर्वज्ञो जगतामादिकृद्विभु ।
नित्य सन्निहितस्तत्र लिंगरूपी जनार्दन ॥५०
काशीविश्वेश्वर लिंग ज्योतिर्लिङ्ग तदुच्यते ।
त दृष्ट्वा परम ज्योतिराप्नोति मनुजोत्तम ॥५१
काशीप्रदक्षिणा येन कृता त्रैलोक्यपावनी ।
सप्तद्वीपा साब्धिशैला भू परिक्रमिमामुना ॥५२
धातुमृद्दारुपाषाणलेख्याद्या मूर्तयोऽमला ।
शिवस्य वाच्युतस्यापि तासु सनिहितो हरि ॥५३
तुलसीकानन यत्र तत्र पद्मवन द्विज ।
पुराणपठन यत्र तत्र सन्निहितो हरि ॥५४
पुराणसंहितावक्ता हरिरित्यभधीयते ।
तद्भक्ति कुर्वता नृणा गङ्गास्नान दिने दिने ॥५५
पुराणश्रवणे भक्तिगङ्गास्नानसमा द्विज ।
तद्वक्तरि च या भक्ति सा प्रयागोपमा स्मृता ॥५६

जो अनादि सर्वज्ञ इस विश्व का प्रारम्भ करने वाले भगवान् विष्णु हैं वही स्वय साक्षात् काशी वाराणसी का विश्वेश्वर लिंग ज्योतिर्लिङ्ग कहलाता है। इसका दर्शन प्राप्त करके मनुष्य परम ज्योतिर्मय लोक को प्राप्त हो जाया करता है ॥५१॥ सम्पूर्ण तीनो भुवनो को परम पावन बना देने वाली वाराणसी पुरी की परिक्रमा जिस मनुष्य ने की है उसको इतना पुण्य होता है जो सात सागर गिरि कानन सम-न्वित एव सातो द्वीपवती प्रदक्षिणा से हुआ करता है ॥५२॥ किसी

भी शुद्ध धातु, मृत्तिका, काष्ठ, पाषाण और लेख (चित्ररूपी) इत्यादि से निर्मित शिव और विष्णु की प्रतिमायें निर्मल होती हैं और उनमें भगवान् सन्निहित रहा करते है ।।५३।। हे द्विजवर ! जिस स्थान मे तुलसी का वन होता है या पद्मो का वन होता है जहा पुराण का पाठ होता है वहा पर श्री हरि सदा विद्यमान रहा करते है ।।५४।। पुराणो की सहिता का प्रवचन करने वाला (व्यास) श्री हरि का ही प्रतिनिधि स्वरूप हुआ करता है । इन वक्ताओं की भक्ति करने वाला को प्रतिदिन गङ्गा के स्नान का फल मिलता है ।।५५।। हे द्विजराज ! पुराणो के श्रवण करने मे भक्ति की भावना का उत्पन्न होना गङ्गा के स्नान के ही समान है । पुराणो के वक्ता व्यास मे जो भक्ति होती है उसकी उपमा प्रयाग की दी जाया करती है ।।५६।।

पुराणधर्मकथनैर्यं समुद्धरते जगत् ।
ससारसागरे मग्न स हरि परिकीर्तित ।।५७
नास्ति गङ्गासम तीर्थं नास्ति मातृसमो गुरु ।
नास्ति विष्णुसम देव नास्ति तत्त्व गुरो परम् ।।५८
वर्णाना ब्राह्मण श्रेष्ठस्तारकाणा यथा शशी ।
यथा पयोधि सिन्धूना तथा गङ्गा परा स्मृता ।।५९
नास्ति शान्ति समो बन्धुर्नास्ति सत्यापर तप ।
नास्ति मोक्षात्परो लाभो नास्ति गङ्गासमा नदी ।।६०
गङ्गाया परम नाम पापारण्यदवानल ।
भवव्याधिहरा गगा तस्मात्सेव्या प्रयत्नत ।।६१
गायत्री जाह्नवी चोभे सर्वपापहरे स्मृते ।
एतयोर्भक्तिहीनो यस्त विद्यात्पतित द्विज ।।६२
गायत्री छन्दसा माता माता लोकस्य जाह्नवी ।
उभे ते सर्वपापाना नाशकारणता गते ।।६३

पुराणो मे वर्णित तथा पुराणो द्वारा प्रतिपादित धर्मों का वर्णन करके जो ससार सागर में डूबते हुए प्राणियो का उद्धार करता है वह

व्यास हरि कहा जाता है ॥५४॥ गङ्गाजी के समान तीर्थ नहीं है, माता के तुल्य कोई अन्य गुरु नहीं है, भगवान् विष्णु के सदृश अन्य देवता नहीं है और गुरु के समान कोई तत्व नहीं है ॥५८॥ जिस प्रकार नक्षत्रों और तारों में चन्द्र सर्वश्रेष्ठ होता है और चारों वर्णों में ब्राह्मण परम श्रेष्ठ होता है सातों सागरों में क्षीर सागर सर्वोत्तम है उसी प्रकार से समस्त नदियों में गङ्गा सर्वश्रेष्ठ नदी है ॥५९॥ जैसे शान्ति के तुल्य कोई बन्धु नहीं है—सत्य के समान अन्य कोई भी तप नहीं है—मोक्ष के बराबर अन्य लाभ नहीं है उसी भाँति श्रीगङ्गाजी के समान अन्य कोई नदी नहीं है ॥६०॥ पापारण्य दावानल अर्थात् पापों के वनों को भस्म करने वाला दावाग्नि यह गङ्गाजी का एक श्रेष्ठ अन्य नाम है। गङ्गा समस्त सांसारिक व्याधियों का हरण करने वाली परमोत्कृष्ट नदी है। अतएव मनुष्यों को चाहिये गङ्गा का सेवन परम प्रयत्न के साथ अवश्य ही करें ॥६१॥ गायत्री और गङ्गा ये दोनों सम्पूर्ण पापों का हरण कर मुक्त करा देने वाली हैं। जो देहधारी इन दोनों की भक्ति एवं सेवा से शून्य होता है वह महान् पतित प्राणी है ॥६२॥ गायत्री समस्त छन्दों की जननी है और गङ्गा लोकों की माता है। ये दोनों समस्त पापों के नाश करने का कारण हैं ॥६३॥

यस्य प्रसन्ना गायत्री तस्य गंगा प्रसीदति ।
विष्णुशक्तियुते ते द्वे सर्वकामप्रसिद्धदे ॥६४
धर्मार्थकामरूपाणां फलरूपे निरञ्जने ।
सर्वलोकानुग्रहार्थं प्रवर्तते महोत्तमे ॥६५
अतीव दुर्लभा नृणां गायत्री जाह्नवी तथा ।
तथैव तुलसी भक्तिर्हरिभक्तिश्च सात्त्विकी ॥६६
अहो गंगा महाभागा स्मृता पाप प्रणाशिनी ।
हरिलोकप्रदा दृष्टा पीता सारूप्यदायिनी ।
यत्र स्नाता नरा विष्णोः पदमनुत्तमम् ॥६७

नारायणो जगद्धाता वासुदेव सनातन ।
गगास्नानपुराणा तु वाञ्छितार्थफलप्रद ॥६८
गङ्गाजलकणेनापि य सिक्तो मनुजोत्तम ।
सर्वपापविनिर्मुक्त प्रयाति परम पदम् ॥६९
यद्बिन्दुसेवनादेव सगरान्वय सम्भव ।
विसृज्य राक्षस भाव सप्राप्त परम पदम् ॥७०

जिस प्राणी पर गायत्री देवी परम प्रसन्न होती है उस पर गङ्गा भी प्रसन्न हो जाती है। इन दोनो मे भगवान विष्णु की भक्ति भरी हुई है इसीलिए ये दोनो सब कामनाओं को सिद्ध करने मे एक सी ही है ॥६४॥ ये दोनो ही धर्म अर्थ और काम की सिद्धि स्वरूप वाली हैं निरञ्जन-महोत्तम और सब प्राणियो पर अपना अनुग्रह करने मे सतत सलग्न रहती हैं ॥६५॥ इस ससार में मानवो को गायत्री-गङ्गा और तुलसी की भक्ति तथा परम सात्विकी भगवान् विष्णु की भक्ति का प्राप्त होना परम दुलभ होता है ॥६६॥ यह गङ्गा पापो का विनाश कर देने वाली महाभागा बतलाई गयी है जो केवल दर्शन करने मात्र से ही वैकुण्ठ लोक का निवास प्रदान किया करती है और इसके जल का पान करने पर भगवान का सारूप्य प्रदान किया करती है ॥६७॥इस जगत् के धाता सनातन नारायण भगवान् वासुदेव प्रभु गङ्गा के स्नान करने वाले मानवो के समस्त मनोरथ पूण किया करते हैं ॥६८॥ वह परम श्रेष्ठ पुरुष है जिसके देह पर गङ्गा जी के जल का एक कण भी गिर जाता है। इसी से ही वह मनुष्य सब प्रकार के महा पातको से मुक्त होकर परम पद को प्राप्त कर लिया करता है ॥६९॥ इस गङ्गा देवी के जल की बिन्दु पड जाने से सगर के वश म समुत्पन्न सौदास राक्षस भाव को त्याग कर परमोत्तम पद को प्राप्त हो गया था ॥७०॥

॥ राजा बाहु का चरित्र ॥

कोऽसौ राक्षसभावाद्धि मोचित सगरान्वये ।
सगर को मुनिश्रेष्ठ तन्ममाख्यातुमर्हसि ॥१
शृणुष्वमुनिशार्दूल गङ्गामाहात्म्यमुत्तमम् ।
यज्जलस्पर्शमात्रेण पावित सागर कुलम् ।
गत विष्णुपद विप्र सर्वलोकोत्तमोत्तमम् ॥२
आसीद्रविकुले जातो बाहुर्नाम वृकात्मज ।
बुभुजे पृथिवी सर्वा धर्मतो धर्मतत्पर ॥३
ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्या शूद्राश्चान्ये च जन्तव ।
स्थापिता स्वस्वधर्मेषु तेन बाहुविशापति ॥४
अश्वमेधैरयाजासौ सप्तद्वीपेषु सप्तभि ।
अतर्पयद्भूमिदेवान् गोभूस्वर्णांशुकादिभि ॥५
अयासन्नीतिशास्त्रेण यथेष्ट परिपन्थिन ।
मेने कृतार्थमात्मानमन्यातपानिवारणम् ॥६
चन्दनानि मनोज्ञानि बलि यस्सर्वदा जना ।
भूषिता भूषणैर्दिव्यैस्तद्राष्ट्रे सुखिनो मुने ॥७

श्री नारदजी ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठ ! सगर के वंश में राक्षस भाव को प्राप्त होने वाला कौन था जो गङ्गा के प्रभाव से मुक्त हो गया था ? यह सगर कौन था ? इसका वर्णन कृपा कर मेरे सामने आप कहिए ॥१॥ श्री सनकदेव ने नारदजी को उत्तर दिया था—हे मुनियों में शार्दूल ! अब आपकी ऐसी ही अभिलाषा है, तो गङ्गाजी के उत्तम माहात्म्य का विशेष रूप से श्रवण करिये । हे विप्रवर ! गङ्गा के जल का स्पर्श होते ही सगर राजा का वंश परम पवित्र होकर सब लोकों में परमोत्तम भगवान् विष्णु के लोक को वह प्राप्त हो गया था ॥२॥ सूर्यवंश में एक वृक नाम वाले राजा के पुत्र बाहु

नाम वाले राजा हुये थे । वे परम धर्म परायण थे और उन्होंने इस सम्पूर्ण पृथिवी का उपभोग किया था ॥३॥ राजा बाहु ने अपने *शासन काल* में *ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र* इन चारों वर्णों के प्राणियों को अपने अपने धर्मों कर्मों में संस्थापित किया था । इसी-लिये बाहु प्रजापति कहलाया था ॥४॥ वह ऐसा धर्म परायण राजा हुआ था कि सातों द्वीपों में सात अश्वमेध यज्ञ आपने किए थे । समस्त *ब्राह्मणों* को उस *राजा* ने *दक्षिणा* के रूप में गौ *भूमि, सुवर्ण* और वारीक उत्तम वस्त्र आदि देकर पूर्णतया तृप्त किया था ॥५॥ नीति शास्त्र के अनुसार समस्त लुटेरों को समुचित दण्ड देकर किसी अन्य राजा को उस समय में छत्रधारी न देखकर वह अपने आपको परम कृतार्थ मानने लगा था ॥६॥ सुन्दर, सुगन्धित चन्दन लगाकर तथा दिव्याभूषण धारण करके मनुष्यों के शरीर में झुर्रियाँ पड जाया करती थीं । हे मुने ! इस तरह से उसके राज्य में सभी लोग परम सुख से सुसम्पन्न और प्रसन्न रहा करते थे ॥७॥

अकृष्टपच्या पृथिवी फलपुष्पसमन्विता ॥८
ववर्ष भूमौ देवेन्द्र काले काले मुनीश्वर ।
अधर्मनिरतापाये प्रजा धर्मेण रक्षिता ॥९
एकदा तस्यभूपस्य सर्वसंपद्विनाशकृत् ।
अहंकारो महाञ्जज्ञे सासूयो लोपहेतुकः ॥१०
अहं राजा समस्तान् लोकाना पालको वली ।
कर्त्ता महाक्रतूना च मत्त पूज्योऽस्ति कोऽपर ॥११
अहं विचक्षण श्रीमाञ्जिता सर्वे ममारय ।
वेदवेदाङ्गतत्वज्ञो नीतिशास्त्रविशारद ॥१२
अजेयोऽव्याहतैश्वर्यो मत्त कोऽन्योऽधिको भुवि ।
अहंकारपरस्यैव जातासूया परेष्वपि ॥१३
असूयातोऽभवत्कामस्तस्य राज्ञो मुनीश्वर ।

एपु स्थितेपु तु नरो विमाश यात्यसशयम् ॥१४

हे मुनिवर ! वह ऐसा धर्मपालक राजा हुआ था कि उसके राज्य मे यह पृथ्वी विना ही जोते हुये ही पूर्ण रूप से पक जाया करती थी और खूब फल पुष्पादि दिया करती थी ॥८॥ हे मुनीश्वर उचित समय पर मेघ आकर वर्षा किया करते थे और भूमि को जल से तृप्त कर देते थे। उस राजा ने प्रजा मे जो अधर्म की प्रवृत्ति थी उसका समूल विनष्ट करके उनको धर्म मे पूर्णतया प्रवृत्त कर दिया था तथा धर्म की अच्छी तरह से रक्षा की थी ॥६॥ एक समय ऐसा आ गया था कि उस राजा की सम्पूर्ण सम्पत्तियो को विनष्ट करने वाला और सब सद्गुणो मे दोप लगाने वाला यह विनाश का कारण बडा भारी अहङ्कार हो गया था ॥१०॥ उसके मनमे ऐसा धर्म दूपित भाव पैदा हो गया था कि मैं तो सभी लोको का पालन करने वाला हूँ और महान बलवान राजा हूँ। मैंने बडे २ विशाल यज्ञो का यजन किया है। इस समय मे विश्व मे मुझसे अधिक पूजनीय अन्य कोई भी नही है ॥११॥ मैं तो श्री सम्पन्न और विचक्षण राजा हूँ मेरे सभी शत्रु परास्त हो गय हैं। मैं तो वेदो और वेदातो के तत्वो को भली भाति जानने वाला हूँ तथा नीति शास्त्र के ज्ञान मे भी बहुत कुशल हूँ॥१२॥ मैं इस समय ससार मे अजेय हूँ और मेरा यह ऐश्वर्य भी अव्याहत है। मुझसे अधिक इस भूमडल मे कोई नही है। इस तरह के हृदय मे उठने वाले अहकार से भरकर वह राजा दूसरो के गुणो मे भी दोपो का आरोपण करने लग गया था ॥१३॥ हे मुनीश्वर ! असूया के भाव मे उस राजा के हृदय मे काम वासना की उत्पत्ति होगयी थी। जिसके होजाने से प्राय मनुष्य का विनाश होजाया करता है ॥१४॥

यौवन धनसपत्ति प्रभुत्वमविवेकिता।
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम् ॥१५॥

स्यादसूयानुमहती जाता मोहनिरोधिनी।

स्वदेहनाशिनी विप्र सर्वसम्पद्विनाशिनी ॥१६
असूयाविष्टमनसि यदि सम्पत्प्रवर्त्तते ।
सुपाग्नि वायुमयोगमिव जानीहि सुव्रत ॥१७
असूयोपेतमनसा दम्भाचारवता तथा ।
परुषोक्तिरताना च सुख नेह परत्र च ॥१८
असूयाविष्टचित्ताना सदा निष्ठुरभाषिणाम् ।
प्रिया वा तनया वापि बान्धवा अप्यरातय ॥१६
मनोभिलाप कुरुते य समीक्ष्य परश्रियम् ।
स स्वसम्पद्विनाशाय कुठारो नात्र सशय ॥२०
य स्वश्रेयोविनाशाय कुर्याच्चरन नरो मुने ।
सर्वेषा श्रेयस दृष्ट्वा स कुर्यान्मित्सर कुधी ॥२१

यौवन-धन सम्पत्ति प्रभुता और अविवेकता इन चारो वस्तुओं मे यदि एक भी किसी को होजावे तो वह महान् अनर्थ करने वाली होजाया करती है-ऐसा शास्त्र सम्मत सिद्धान्त है और फिर दुर्भाग्य से यदि ये चारो ही एकत्रित हो जायें तो फिर उस व्यक्ति के विनाश मे कुछ भी सन्देह ही नही रहता है ॥१५॥ हे विप्रवर ! यह असूया की भावना ही एक ऐसी भयानक होती है जो समस्त सम्पत्तियो का विनाश कर दिया करती है और शरीर को विनष्ट ही कर देती है । ससार मे विरोध की वृद्धि कर देने वाली वही असूया उनके हृदय मे बहुत ही अधिक मात्रा मे समुत्पन्न हो गयी थी ॥१६॥ हे सुव्रत ! जिस प्राणी के हृदय मे ईर्ष्या और असूया की भावना सवृद्ध होकर भर जावे उसके पास जितनी अधिक सम्पत्ति क्यो न हो वह वायु के समान को पाकर उस मे प्राप्त अग्नि के समान अति शीघ्र ही विनष्ट हो जाने वाली समझ लेना चाहिए ॥१७॥ जिसके मनमे असूया की भावना भरी रहा करती है और जो केवल प्रदर्शन मात्र के ही लिये सदाचार का ढोग किया करता है तथा अपने मुख से कठोर बातें

निकाला करते है उनको न तो इस लोक मे सुख शान्ति प्राप्त होती है और न परलोक मे ही शान्ति मिला करती है ॥१८॥ जो असूया से युक्त रहा करते हैं और परम निकृष्ट भाषण किया करते हैं उनको अपनी स्त्री बन्धु जन भी शत्रु के समान दिखाई दिया करते हैं ॥१९॥ जो दूसरे के वैभव को देखकर उसे अपहरण करने का विफल मनोरथ अपने चित्त में किया करते है उसे समझना चाहिये कि वह अपनी प्राप्त सम्पत्ति को काटने के लिए कुठार ही चलाया करता है ॥२०॥ हे मुनिवर ! जो अपने श्रेय का नाश करने के लिए यत्न करता है वही दुष्ट बुद्धि वाला मनुष्य अन्योके श्रेय को देख कर मनमे डाह किया करता है। जब दूसरो के श्रेय से डाह करने लगे तो समझ लेना चाहिये कि इसके श्रेय का निश्चित ही अब विनाश होने वाला है ॥२१

मित्रापत्यगृहक्षेत्रधनधान्यपशुष्वपि ।
हानिमिच्छन्नर. कुर्यादसूया सततं द्विज ॥२२
अथ तस्या विनीतस्य ह्यसूयाविष्टचेतस. ।
हैहयास्तालजघाश्च वलिनोऽरातयोऽभवन् ॥२३
यस्यानुकूलो लक्ष्मीश. सौभाग्यं तस्य वर्द्धते ।
स एव विमुखो यस्य सौभाग्यं तस्य हीयते ॥२४
तावत्पुत्राश्च पौत्राश्च धनधान्य गृहादयः ।
यावदीक्षेत लक्ष्मी- कृपापाङ्गेन नारद ॥२५
अपि मूर्खान्धवधिरजडाः शूरा विवेकिन ।
श्लाघ्या भवन्ति विप्रेन्द्र ईक्षिता माधवेन ये ॥२६
सौभाग्य तस्य हीयेत यस्यासूयादिलाञ्छनम् ।
जायते नात्र सदेहो जन्तुद्वेषो विशेषतः ॥२७
सतत यस्य कस्यापि यो द्वेष कुरुते नर ।
तस्य सर्वाणि नश्यन्ति श्रेयासि मुनिसत्तम ॥२८

हे द्विजवर ! जिसके मित्र सन्तान—घर, खेत, धन-धान्य और पशु आदि का विनाश निकट में ही होने वाला होता है वही मनुष्य असूया का भाव मनमें करने लगता है ॥२२॥ इस प्रकार से उस राजा के हृदय में नम्रता से रहित असूया की भावना बढ़ गई तो उस समय में *हैहय और ताल वंश के नृप उसके शत्रु बन गये थे* ॥२३॥ यह तो सार्वदिक निश्चित नियम है कि भगवान जिसके अनुकूल रहा करते हैं उसी का सौभाग्य इस जगत् में बढ़ा करता है और जिसके दुराचारण से भगवान् विष्णु अप्रसन्न एवं विमुख हो जाते हैं उसका सौभाग्य चाहे जितना भी क्यों न हो सब विनष्ट होजाया करता है। इसीलिये भगवान् को सन्तुष्ट रखने के लिये और अपने अनुकूल बनाने के वास्ते सदाचरण एवं सत्कर्मों का महत्व होता है ॥२४॥ हे नारद ! *जिस समय तक भगवान् कृपापूर्ण अपनी दृष्टि प्राणी पर रखते* हैं तभी तक उसके पुत्र, पौत्र, धन-धान्य आदि का वैभव बना रहा करता है ॥२५॥ हे विप्रवर ! भगवान की सुदृष्टि की बड़ी अधिक महिमा है। भगवान् की सुदृष्टि होजाने पर महान् मूक-अन्धे-जड़ और बधिर भी बड़े सूर और विवेकशील एवं प्रशंसा के पात्र होजाया करते हैं ॥२६॥ जिनके हृदय में असूया आदि लाञ्छन स्थान जाया करते हैं, उनका सम्पूर्ण सौभाग्य क्षीण होने लगता है वह फिर समस्त प्राणियों से द्वेषभाव रखने लगता है। फिर धीरे धीरे उसके सम्पूर्ण शुभ कर्मों का विनाश होने लगता है चाहे पहिले उसके कितने ही शुभ कर्म क्यों न होवें ॥२८॥

असूया यदंते यस्य तस्य विष्णुः पराङ्मुखः ।
धन धान्यं सुतो गृहं विनश्यन्ति ततो ध्रुवम् ॥२९
विवेकं हृदयस्यान्तर्विनाशं जायते नृणाम् ।
आदौ सम्पद्विनश्यन्ति तदनन्तरम् ॥३०
अहंकारो भवेद्यस्य सर्वनाशो भविष्यति ।

असूयाविष्टमनसस्तस्य राज्ञ परै सह ।।३१
आयोधनमद् घोर मासमेक निरन्तरम् ।
हैहयैस्तालजङ्घैश्च रिपुभि स पराजित ।।३२
वन गतस्ततो बाहुरन्तर्वत्न्या स्वभार्यया ।
अवाप परमा तुष्टि तत्र दृष्ट्वा महत्सर ।।३३
असूयोपेतमनसस्तस्य भाव निरीक्ष्य च ।
सरोगतविहङ्गास्ते लीनाश्चित्रमिद महत् ।।३४
अहो कष्टमहो रूप घोरमत्र समागतम् ।
विशन्तस्त्वरया वासमित्यूचुस्ते विहङ्गमा ।।३५

जिस मनुष्य के चित्त मे असूया का भाव बढने लगता है उससे भगवान् विष्णु पराङ्मुख होजाया करते है और जब भगवान् की विमुखता होने लगती है तो उसकी पृथ्वी धन, धान्य आदि की समस्त सम्पत्ति का विनाश अवश्य होजाया करता है ।।२६।। यह निश्चित नियम है कि चित्त मे जब अहकार आजाता है तो उसका विवेक बिल्कुल ही नष्ट होजाता है । जब अविवेक और अविचार मन मे आ जाते है तो उस प्राणी को चारो ओर से अविचार और आपत्तियाँ घेर लिया करती हैं । इसलिये अहकार बहुत बुरी वस्तु है इसका त्याग ही कर देना चाहिये । यह सर्वनाश का मूल होता है ।।३०।। जिसके हृदय म अहङ्कार हो जाता है उसका विनाश बहुत ही वेग स होने लगता है । इस प्रकार असूया स युक्त उस राजा बाहु का युद्ध निरन्तर एक मास तक होता रहा था और अन्त म हैहय वश और तालजघ राजाओ न उसको पराजित कर दिया था ।।३१।३२।। वह फिर सब वैभव खोकर अपनी गर्भवती स्त्री को लेकर वन म चला गया था । वहा म एक परम विशाल सरोवर का देखकर उसको अधिक प्रसन्नता हुयी थी ।३३। वहा पर एक अत्य त आश्चय की बात यह हुई कि उस राजा क ईर्ष्यालु भाव को भापकर उस सरोवर पर रहन वाल

सब पक्षी अपने २ घासलो म प्रविष्ट होगये थे ॥३४॥ जिस समय म उड २ कर जाने लगे थे तब यह कहते जा रहे थे कि—अरे । यह बहुत ही अधिक दु ख की बात है कि बहुत ही घोर कर्मों के करने वाला यह प्राणी यहा पर आगया है । ऐसा वे सब पक्षी आपस मे बातचीत करते हुये अपने २ घोसलो म जाकर छिप गये थे कि उसका मुख न दिखाई पडे ॥३५॥

सोऽवगाह्यसरोभूप पत्नीभ्या सहितो मुदा ।
पीत्वा जल च सुखद वृक्षमूलमुपाश्रित ॥३६
तस्मिन्वाहो वन याते तेनैव परिरक्षिता ।
दुर्गु णान्विगणय्यास्य धिग्धिगित्यब्रु वन्प्रजा ॥३७
यो वा को वा गुणी मर्त्य सर्वश्लाघ्यतरो द्विज ।
सवसपत्समायुक्तोऽप्यगुणो निन्दितो जनै ॥३८
अपकीर्तिसमो मृत्युर्लोकेष्वन्यो न विद्यते ।
यदा बाहुर्वन यातस्तदा तद्राज्यगा जना ।
सतुष्टि परमा याता दवधी विगते यथा ॥३९
निन्दितो वहुशो बाहुर्मृ तवत्कानने स्थित ।
निहृत्य कम च यशो लोके द्विजवरोत्तम ॥४०
नास्त्यपकीर्तिसमो मृत्युर्नास्ति क्रोधसमो रिपु ।
नास्ति निंदासम पाप नास्ति मोहसमासव ॥४१
नास्त्यसूयासमाकीर्तिर्नास्ति कामसमोऽनल ।
नास्ति रागसम पाशा नास्ति सङ्गसम विषम् ॥४२

उस समय म उस विभव विहीन राजा न अपनी पत्नियो के साथ म उस सरोवर म स्नान करके जलपान किया था और सानन्द सुख पूर्वक उसी वृक्ष के मूल म आकर बैठ गया था ॥३६॥ उस राजा बाहु के वन म जाने पर उसकी समस्त रक्षित प्रजा उसके महान दुर्गुणो पर विचार करके उसको धिक्कार देने लगी

थी ॥३७। हे द्विजवर ! चाहे कोई भी कैसा ही मनुष्य हो यदि वह गुणो से सुसम्पन्न होता है तो सभी उसकी प्रशसा किया करते हैं, भले उसके पास कुछ भी न हो और जो गुणहीन एव दुर्गुणो से युक्त होता है तो भले ही वह कैसा भी शक्तिशाली क्यो न हो उसकी सभी मनुष्य निन्दा किया करते है ॥३८॥ इस ससार मे अपकीर्ति का होना मृत्यु से भी अधिक कष्टदायक होता है। वह बाहु राजा अपना सभी कुछ विनष्ट करके जब वन मे चला गया था तब सभी उसके राज्य मे निवास करने वाले ग्रीष्म के ताप के व्यतीत होजाने के ही समान परम सन्तोष का अनुभव करने लग गये थ ॥३९॥ हे द्विजवर ! इस भाँति वह बहुत प्रकार की निन्दा का पात्र होता हुआ अपने सुयश और सत्कर्मों का विनाश करके एक मृत प्राणी के ही तुल्य उस वन मे रहने लगा था ॥४०॥ अकीर्त्ति मृत्यु के ही समान होती है। क्रोध के तुल्य अन्य कोई भी शत्रु नहीं होता है। मनुष्य को क्रोध एक महान् शत्रु के ही समान हुआ करता है। मोह के बराबर मादक वस्तु इस ससार मे अन्य कुछ भी नहीं है ॥४१॥ असूया ही सबसे बड़ी अकीर्ति करने वाली होती है। काम के समान अन्य कोई भी अग्नि नही है। राग के तुल्य अन्य कोई बन्धन नही होता है। कुसगति के बराबर अन्य कोई वस्तु नही है जो विष का सा प्रभाव रखती है ॥४२॥

एव विलप्य बहुधा बाहुरत्यन्तदु खित ।
जीर्णाङ्गो मनसस्तापाद् वृद्धभावादभूदसौ ॥४३
गते बहुतिथे काले और्वाश्रमसमीपत. ।
सबाहुर्व्याधिना ग्रस्तो ममार मुनिसत्तम् ॥४४
तस्य भार्या च दु खार्ता वनिथा गर्भिणी तदा ।
चिर विलप्य बहुधा सह गन्तु मनो दधे ॥४५
समानीय च मेधासि चिता कृत्वातिदु.खिता ।

समारोप्य तमारूढ स्वय समुपचक्रमे ॥४६
एतस्मिन्नन्तरे धीमानौर्वस्तेजोनिधिर्मुनि ।
एतद्विज्ञातवान्सर्वं परमेण समाधिना ॥४७
भूत भव्य वर्त्तमान त्रिकालज्ञा मुनीश्वरा ।
गतासूया महात्मान पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषा ॥४८
तपोभिस्तेजसा राशिरौर्वं पुण्यसमो मुनि ।
सप्राप्तस्तत्र साध्वी च यत्र वाहुप्रिया स्थिता ॥४६

उस अपकीर्ति के कारण ही वह बहुत विलाप करता हुआ बहुत अधिक दु खित हुआ था। इस तरह से बढे हुए मन का सन्ताप और वृद्धता के भाव के कारण उस बाहु राजा के सभी अङ्ग बहुत जीर्ण होगये थे ॥४३॥ इस प्रकार स वह बाहु राजा और्व ऋषि के आश्रम के समीप म बहुत सा समय व्यतीत करके हे मुनिवर ! वह व्याधियो से ग्रस्त होकर वही पर मर गया था ॥४४॥ उसके मृत्युगत हो जाने पर उसकी जो छोटी पत्नी थी वह बहुत ही दु खित हुई थी क्योकि वह गर्भवती थी। उसने बहुत अधिक विलाप किया था ॥४५॥ उस रानी ने ईधन एकत्रित कर चिता बनाई और अत्यन्त शोकग्रस्त दु खिनी ने उस पर राजा के शव को रखकर उसी के साथ स्वय भी चढकर दाह करने का विचार किया था ॥४६॥ उस समय म परमाधिक तेजस्वी और्व मुनि ने समाधि के द्वारा इस वृत्तान्त का ज्ञान प्राप्त करके वहीं पर प्राप्त होगये थे ॥४७॥ मुनीश्वर तो तीनो कालो की बात को भली प्रकार स जानते ही हैं। वे महात्मा असूया के भाव से रहित होने के कारण ज्ञान की दृष्टि से सभी कुछ का ज्ञान प्राप्त कर लिया करते हैं ॥४८॥ तपश्चर्या के कारण महान तेज वाले मूर्तिमान पुण्य के समान वे और्व मुनि भी जहा पर यही चिता बनाई गयी थी और बाहु की साध्वी पत्नी सती होना चाहती थी वहाँ उपस्थित हो गये थ ॥४६

चितामारोढुमुद्युक्तातादृष्ट्वा मुनिसत्तम ।
प्रोवाच धर्ममूलानि वाक्यानि मुनिसत्तम ॥५०
राजवर्यप्रिये साध्वि मा कुरुष्वातिसाहसम् ।
तवोदरे चक्रवर्ती शत्रुहन्ता हि तिष्ठति ॥५१
बालापत्याश्च गर्भिण्यो ह्यदृष्टऋतवस्तथा ।
रजस्वला राजसुते नार्येहति चिता शुभे ॥५२
ब्रह्महत्यादिपापाना प्रोक्ता निष्कृतिरुत्तमै ।
दम्भिनो निंदकस्यापि भ्रूणघ्नस्य न निष्कृति ।
नास्तिकस्य कृतघ्नस्य धर्मोपेक्षाकरस्य च ।५
विश्वासघातकस्यापि निष्कृतिर्नास्ति सुव्रते ॥५४
तस्मादेतन्महत् पाप कर्त्तुं नार्हसि शोभने ।
यदेतद्दुःखमुत्पन्न तत्सर्वं शातिमेष्यति ॥५५
इत्युक्ता मुनिना साध्वी विश्वस्य तदनुग्रहम् ।
विललापातिदु खार्ता सगृह्य धवपल्कजौ ॥५६

हे मुनिवर ! जिस समय मे और्व मुनि ने रानी को चिता पर चढ़कर दाह करने को प्रस्तुत देखा था तो उस समय मे वे धर्म मे परिपूर्ण वचन कहने लगे थे ॥५०॥ और्व मुनि ने अपने भाषण मे कहा—हे साध्वि ! तुम इस श्रेष्ठ राजा की प्रिया हो किन्तु तुम्हारे उदर मे समस्त शत्रुओ का विनाश कर देने वाला चक्रवर्ती पुत्र विद्यमान है अतएव यह जो परम साहस से पूर्ण सती होने का तुम्हारा विचार है इसको मत करो ॥५१॥ हे शुभे ! शासन का यह सुनिश्चित सिद्धान्त है कि जिनकी सन्तति बालक एव असमर्थ होती है—जो गर्भवती होती है—जिनका रजोदर्शन नहीं हुआ है—जो रजस्वला हैं। हे राजपुत्रि ! हे शुभे! वे चितारोहण करके सती नहीं हुआ करती हैं। उनको धर्मशास्त्र के अनुसार सती होने का अधिकार प्राप्त नहीं है ॥५२॥ श्रेष्ठ महानुभावो ने ब्रह्महत्या प्रभृति

महापाप करने वाले की—दम्भ करने वाले की तथा निंदक की तो सबकी निष्कृति बतलाई है किन्तु जो गर्भवती होती है उसकी निष्कृति या उद्धार का कहीं पर कोई भी नही कहा है ॥५३॥ अतएव हे साध्वि ! हे सुव्रत ! नास्तिक, कृतघ्न और धर्म की उपेक्षा करने वाले तथा विश्वासघातक पुरुष का इतना महान पाप समझा जाता है इसके करने वाले का कोई प्रायश्चित ही नहीं बताया गया है ॥५४॥ इसलिये आपको इस समय मे यह महान् पाप का करना उचित नही है। हे शोभन ! तुम्हारे ऊपर जो इस समय मे यह बहुत भारी कष्ट आया है वह सभी कुछ समय मे दूर होजायगा ।५५। औवं मुनि के इस भांति से कथन करने पर यह साध्वी मुनिवर के अनुग्रह पर विश्वास करके अति दुःखित भाव से अपने पतिदेव के चरणों को पकड़ कर विलाप करने लगी थी ॥५६

औवोऽपि तां पुनः प्राह सर्वशास्त्रार्थकोविदः ।
मा रोदीः राजतनये श्रियमग्रयां गमप्यसि ॥५७
मा मुचास्र महाभागे प्रेतो दाह्योऽद्य मज्जनैः ।
तस्माच्छोकं परित्यज्य कुरु कालोचितां क्रियाम् ॥५८
पण्डिते वापि मूर्खे वा दरिद्रे वा श्रियान्विते ।
दुर्वृत्ते वा सुवृत्ते वा मृत्योः सर्वत्र तुल्यता ॥५९
नगरे वा तथारण्ये दैवमात्रातिरिच्यते ॥६०
यद्यत्पुरातनं कर्म तत्तदेवेह युज्यते ।
कारणं दैवमेवात्र मर्त्ये सोपाधिका जनाः ॥६१
गर्भे वा बाल्यभावे वा यौवने वापि वार्द्धके ।
मृत्योर्वशं प्रयातव्यं जन्तुभिः कमलानने ॥६२
हन्ति पाति च गोविन्दो जन्तून्कर्मवशे स्थितान् ।
प्रवादं रोपयन्त्यज्ञा हेतुमात्रेषु जन्तुषु ॥६३

इस समय मे सर्वशास्त्रों के महा मनीषी औवं मुनि ने उसस

फिर कही—हे राजपुत्रि ! तुम विलाप मत करो । तुमको भविष्य मे परम श्रेष्ठ लक्ष्मी की प्राप्ति होगी ॥५७॥ हे महाभागे ! तुम अब अधिक अश्रुपात मत करो । आज के दिन विद्वान लोगो ने प्रेत की दाह क्रिया करने की आज्ञा दी है अतएव शोक का त्याग करके समयोचित दाह की क्रिया को सम्पन्न करो ॥५८॥ यह मृत्यु तो सभी को एक दिन आया ही करती है चाहे कोई पंडित मूर्ख, दरिद्र, लक्ष्मीमान्, दुराचारी या सदाचारी क्यो न हो । यह तो सभी को समान भाव से समय पर आती है ॥५९॥ नगर हो या वन हो कही पर भी मौत का जब समय प्राप्त हो जाता है तब आ ही जाया करती है, इसका कोई भी प्रतिकार नही होता है प्रारब्ध के अनुसार ही मृत्यु सर्वत्र सबको आया करती है ॥६०॥ पूर्व जन्मो के जो सचित कर्म होते है उनका योग बुरा या भला जैसा भी हो उसको इस ससार मे हर एक को भोगना ही पडता है । मैं तो इस प्रकार से भोग करने मे प्रारब्ध को ही मुख्य कारण मानता हूँ - किसी न किसी उपाधि के वश होकर पूर्व जन्म मे किये हुए कर्म के कारण ही मनुष्य इस जगत मे फल भोगा करते हैं ॥६१॥ हे कमल के समान मुख वाली । भोगो के अनुसार ही प्राणी गर्भ मे, शैशवावस्था मे यौवन मे अथवा वार्धक्य मे अवश्य ही मृत्यु के पंजे मे फँसते ही हैं ॥६२॥ भगवान प्रभु कर्मो के वश मे पडे हुए प्राणियों को उनके कर्मों के अनुसार पालन किया करते हैं और मारते है । मूढ पुरुष तो जो निमित्त मात्र बने हुये प्राणी है उन पर दोषारोपण किया करते है ॥६३॥

तस्माद्दु ख परित्यज्य सुखिनी भव सुव्रते ।
कुरु पत्युश्च कर्माणि विवेकेन स्थिरा भव ॥६४
एतच्छरीर दु खाना व्याधीनामयुतैर्वृतम् ।
सुखाभास बहुक्लेश कर्मपाशेन यन्त्रितम् ॥६५
इत्याश्वास्य महाबुद्धिस्तया कार्याण्यकारयत् ।

त्यक्तशोका च सा तन्वी नता प्राह मुनीश्वरम् ॥६६
किमत्र चित्र यत्सन्त. परार्थफलकांक्षिण ।
नहि द्रुमाश्च भोगार्थ फलन्ति जगतीतले ॥६७
योऽन्यदु खानि विज्ञाय साधुवाक्यै. प्रबोधयेत् ।
स एव विष्णुस्सत्त्वस्थो यत परहिते स्थित ॥६८
अन्यदु खेन यो दु खी योऽन्य हर्षेण हर्षित ।
स एव जगतामीशो नररूपधरो हरि ॥६९
तद्भिश्रुतानि शास्त्राणि परदु खविमुक्तये ।
सर्वेषा दु खनाशाय इति सन्तो वदन्ति हि ॥७०

अतएव हे सुव्रते ! अब तुम इस पति-वियोग के दु ख का त्याग करके सुखी बनो और विवेक द्वारा अपनी बुद्धि को स्थिर करो । अब तुमको यही चाहिये कि अपने पति का औदर्य दैहिक कर्म को यथा विधि करो । यह शरीर तो अयुतों (दश हजारो) व्याधियो से घिरा हुआ रहा करता है । इसमे सुख का तो केवल आभास मात्र ही होता है अन्यथा इसमे नाना प्रकार के क्लेश ही क्लेश भरे हुये हैं सुख तो वास्तव मे है ही नही । यह शरीर कर्मों के पास मे बद्ध है ॥६४।६५ ॥ महान मेधावी उस और्व मुनि ने इस रीति से उसका समाधान करके धीरज प्रदान किया और कर्म कराने की चाह की थी । उस स्त्री ने भी शोक का त्याग कर मुनि को प्रणाम किया और उसने कहा इसमे कुछ भी आश्चर्य की बात नही है सज्जन पुरुष सदा परोपकारस्पी फल की ही इच्छा किया करते हैं । पृथ्वी पर वृक्ष अपने लिये कभी फल नही दिया करते हैं और वे परोपकार करने के लिये ही फलते-फूलते हैं ॥६६।६७॥ जो पुरुष दूसरे को दु ख मे पतित देखकर और उसके दु ख का ज्ञान प्राप्त करके उसके सदुपदेशों के वचनो द्वारा शान्ति प्रदान किया करते हैं उनको सत्त्व गुण मे ही विराजमान समझना चाहिये क्योंकि वे सर्वदा दूसरो के हित मे परायण रहा करते

ही उस चिता के मध्य से देवराज इन्द्र के समान चमकता हुआ उठा और मुनिराज और्व को प्रणाम करके एक परम श्रेष्ठ विमान में विराजमान होकर परम धाम को चला गया था ॥७३॥ चाहे कोई पापी हो या महापातकों से घिरा हुआ हो महापुण्यों की जिस पर कृपा की दृष्टि हो जाती है तो वह निश्चय ही सबसे मुक्त होकर परमधाम को प्राप्त होजाया करता है ॥७४॥ हे सत्तम ! पुण्यात्मा महापुरुष की दृष्टि किसी के शरीर—भस्म, अथवा धूम पर भी पड़ जाया करती है तो वह सभी पापों से छुटकारा पाकर परमोत्तम गति को प्राप्त हो जाया करता है ॥७५॥ हे नारद ! वह रानी अपने पति की क्रिया करके मुनि के ही आश्रम में भक्ति भाव से उनकी सेवा करने में तत्पर हो गयी थी उसकी सपत्नी भी उसी के साथ रहने लगी थी ॥७६॥



॥ भगीरथ द्वारा गंगाजी का लाया जाना ॥

एवमौर्वाश्रमे ते द्वे वाहुभार्ये मुनीश्वर ।
चक्राते भक्तिभावेन शुश्रूषां प्रतिवासरम् ॥१
गते वर्षार्द्ध के काले ज्येष्ठा राज्ञी तु या द्विज ।
तस्याः पापमतिर्जाता सपत्न्याः सम्पदं प्रति ॥२
ततस्तया गरो दत्तः कनिष्ठायै तु पापया ।
न स्वप्रभावं चक्रे वै गरो मुनिनिषेवया ॥३
भूलेपनादिभिः सम्यग्यत सानुदिनं मुने ।
चकार सेवां तेनासौ जीर्णपुण्येन कर्मणा ॥४
ततो मासत्रयेऽतीते गरेण सहितं सुतम् ।
सुषाव सुशुभे काले शुश्रूषानष्टकिल्विषा ॥५
अहो सत्सङ्गतिर्लोके किं पापं न विनाशयेत् ।
न तदातिसुखं किं वा नराणां पुण्यकर्मणाम् ॥६

हैं ॥६८॥ जो सर्वदा दूसरो के दु खो मे स्वय दु खित होता है और दूसरो के हर्ष मे स्वय प्रसन्नता का अनुभव किया करता है उस पुरुष को इस जगत् का स्वामी नररूपधारी साक्षात् विष्णुदेव ही समझना चाहिए ॥६९॥ सज्जन पुरुष दूसरो का दु ख निवारण करने के लिये शास्त्रो का गहन अध्ययन किया करते हैं और जब दूसरो को दु ख मे मग्न देखते है तो अवसर प्राप्त करके उस दु ख का निराकरण करने के लिये शास्त्र का सार उन्हें सुनाया करते हैं ॥७०॥

यत्र सन्त प्रवर्त्तते तत्र दु ख न वाधते ।
वर्तते यत्र मार्तण्ड कथ तत्र तमो भवेत् ॥७१
इत्येव वादिनी सा तु स्वपत्युश्चापरा क्रिया. ।
चकार तत्सरस्तीरे मुनिप्रोक्तविधानत. ॥७२
स्थिते तत्र मुनौ राजा देवराडिव सज्वलन् ।
चितामध्याद्विनिष्क्रम्यविमानवरमास्थित ॥७३
प्रपेदे परम धाम नत्वा चौर्व मुनीश्वरम् ।
महापकयुक्ता वा युक्ता वा चोपपातकं. ।
पर पद प्रयान्त्येव महद्भिरवलोकित: ॥७४
कलेवर वा तद्भस्म तद्धूम वापि सत्तम् ।
यदि पश्यति पुण्यात्मा स प्रयाति परा गतिम् ॥७५
पत्यु' कृतक्रिया सा तु गत्वाश्रमपद मुने. ।
चकार तस्य शुश्रूषा सपत्न्या सह नारद ॥७६

जिस स्थल पर सज्जन पुरुषो का प्रवेश होता है वहाँ पर दु ख विशेष जोर नही करता है क्योकि ज्ञान के सूर्य के सामने अज्ञान से समुत्पन्न दु ख का अन्धकार रहने नही पाता है ॥७१॥ उसने इस प्रकार से महत्तर मुनि के वर्णित विधान के अनुसार ही अपने पतिदेव की उसी सरोवर के तीर पर अपर काल की औध्र्व दैहिक क्रिया सम्पन्न की थी ॥७२॥ उस समय मे वह बाहुराजा मुनि के समक्ष मे

ही उस चिता के मध्य से देवराज इन्द्र के समान चमकता हुआ उठा और मुनिराज और्व को प्रणाम करके एक परम श्रेष्ठ विमान में विराजमान होकर परम धाम को चला गया था ॥७३॥ चाहे कोई पापी हो या महापातकों से घिरा हुआ हो महापुरुषों की जिस पर कृपा की दृष्टि हो जाती है तो वह निश्चय ही सबसे मुक्त होकर परमधाम को प्राप्त होजाया करता है ॥७४॥ हे सत्तम ! पुण्यात्मा महापुरुष की दृष्टि किसी के शरीर—भस्म, अथवा धूम पर भी पड़ जाया करती है तो वह सभी पापों से छुटकारा पाकर परमोत्तम गति को प्राप्त हो जाया करता है ॥७५॥ हे नारद ! वह रानी अपने पति की क्रिया करने मुनि के ही आश्रम में भक्ति भाव से उनकी सेवा करने में तत्पर हो गयी थी उसकी सपत्नी भी उसी के साथ रहने लगी थी ॥७६॥



॥ भगीरथ द्वारा गंगाजी का लाया जाना ॥

एवमौर्वाश्रमे ते द्वे बाहुभार्ये मुनीश्वर ।
चक्राते भक्तिभावेन शुश्रूषां प्रतिवासरम् ॥१
गते षण्मासे काले ज्येष्ठा राज्ञी तु या द्विज ।
तस्याः पाप मतिर्जाता सपत्न्याः सम्पदं प्रति ॥२
ततस्तया गरो दत्तः कनिष्ठायै तु पापया ।
न स्वप्रभावं चक्रे वै गरो मुनिनिषेवया ॥३
भूलेपनादिभिः सम्यग्वत सानुदिनं मुने ।
चचार सेवां तेनासौ जीर्णपुण्येन कर्मणा ॥४
ततो मासत्रयेऽतीते गरेण सहितं सुतम् ।
सुषाव सुशुभे काले शुभग्रहनिरीक्षिता ॥५
अहो सत्सङ्गनिर्लोकि किं पापं न विनाशयेत् ।
न तदानिमुखं किं वा नराणां पुण्यकर्मणाम् ॥६

ज्ञानाज्ञानकृतं पाप यच्चान्यत्कारित परैः ।
तत्सर्वं नाशयत्याशु परिचर्या महात्मनाम् ॥७

श्री सनकजी ने कहा—हे मुनीश्वर ! इस प्रकार से वे दोनो विधवा रानियाँ और्व मुनिके आश्रम मे रहती हुई मुनि की शुश्रूषा भक्ति की भावना से किया करती थी ॥१॥ हे द्विज ! जब छै मास व्यतीत हो गये तो बडी रानी को अपनी सपत्नी की पुत्र की सम्पत्ति पर पापमय बुद्धि उत्पन्न हो गई थी ।।२॥ उस महा पापिनी ने छोटी रानी को विष दे दिया था । किन्तु महा मुनि की सेवा करने के कारण से उस दिये हुये विष का कुछ भी बुरा प्रभाव नही हुआ था ॥ ३ ॥ वह छोटी बाहु की रानी नित्य हो उस आश्रम की भूमि को लीपने आदि की महा मुनि की सेवा किया करती थी । इसलिये जीर्णोद्धार के परम पुण्यमय सत्कर्म के करने के ही कारण से ही उसको सौत के दिये हुए विष का प्रभाव कुछ भी नही हुआ था ॥४॥ फिर मुनि की भक्ति पूर्वक सेवा करने से जिसका सब पाप नष्ट हो गया था उस रानी ने तीन मास व्यतीत होजाने पर उस विष के सहित पुत्र रत्न का प्रसव किया था ॥५॥ ओहो ! इस ससार मे सत्पुरुषो की सङ्गति का कैसा अद्भुत प्रभाव है कि इससे सभी पाप नष्ट हो जाया करते हैं । पुण्यशील पुरुषो के लिये इस सत्सङ्गति के समान और कौन-सा सुख हो सकता है ॥६॥ जो जान बूझकर या अनजाने पाप कर्म बन जाया करता है अथवा दूसरो के द्वारा कराया जाता है उस सबको महान् पुरुषो की सेवा तुरन्त ही नष्ट कर दिया करती है ॥७॥

जडोऽपि याति पूज्यत्व सत्सङ्गाज्जगतीतले ।
कलामात्रोऽपि शीतांशुः शम्भुना स्वीकृतो यथा ॥८
सत्सङ्गति परामृद्धि ददाति हि नृणा सदा ।
इहामुत्र च विप्रेन्द्र सन्त. पूज्यतमास्ततः ॥९
अहो महद्गुणान्वक्तु कः समर्थो मुनीश्वर ।

गर्भं प्राप्तो गरो जीर्णो मासत्रयमहोऽद्भुतम् ॥१०
गरेण सहित पुत्र दृष्ट्वा तेजोनिधिर्मुनि ।
जातकर्म चकारासौ तन्नाम सगरेति च ॥११
पुपोष सगर बाल तन्माता प्रीतिपूर्वकम् ।
चौलोपवीतकर्माणि तथा चक्रे मुनीश्वर ॥१२
शास्त्राण्यध्यापयामास राजयोग्यानि मन्त्रवित् ।
समर्थ सगर दृष्ट्वा किंचिदुद्भिन्नशैशवम् ॥१३॥
मन्त्रवत्सर्वशास्त्रास्त्र दत्तवान्स मुनीश्वर ।
सगर शिक्षितस्तेन सम्यगौर्वपिणा मुने ॥१४
वभूव वलवान्धर्मी कृतज्ञो गुणवान्सुधी ।
धमज्ञ सोऽपि सगरो मुनेरमिततेजस ।
समित्कुशाम्बुपुष्पादि प्रत्यह समुपानयत् ॥१५

इस जगत् मे जड मनुष्य भी सत्पुरषो की सगति करने से पूज्य हो जाया करता है । जिस तरह से एक कलामात्र बचे हुये चन्द्रमा को ही शिवजी ने अङ्गीकार कर लिया था । इसलिये भगवान की सङ्गति के कारण ही उसकी सब पूजा किया करते हैं ॥२॥ यह अटल सिद्धान्त है कि सत्सङ्गति मनुष्यो को सदा समृद्धि दिया करती है । हे विप्र ! यही कारण है कि सज्जन लोग यहाँ भू लोक मे और यहा परलोक मे परमाधिक पूजनीय हैं ॥६॥ हे मुनिवर ! महापुरषो के चरित्र ऐसे विशाल हैं कि उनका वर्णन किसके द्वारा किया जा सकता है ? देखिये, कैसा प्रभाव है गर्भ मे प्राप्त होने वाला विष तीन मास म जीण हो गया । यह सन्त शुश्रूषा एक अदभुत फल के सिवाय क्या हो सकता है ॥१०॥ तेज के निधान महामुनि और्व ने बालक को विष के साथ उत्पन्न हुआ देख कर उसका नामकरण ही 'सगर' इससे कर दिया गया था फिर जात कर्मादि शास्त्रोक्त संस्कार करा दिये थे ॥११॥ उसके पश्चात् उसकी माता उस बालक (सगर) का

बड़ी ही प्रीति के साथ पालन पोषण करने लग गई थी, मुनिवर और्व ने यथा समय मुण्डन और उपवीत आदि संस्कार भी करा दिये थे।१२। उस बालक सगर ने अपनी शैशवावस्था में पदार्पण किया उसी समय मन्त्रों के ज्ञाता मुनि ने उसको राजाओं के पढ़ने योग्य शास्त्रों को पढ़ाया था ।।१३।। मुनीश्वर ने केवल अध्ययन ही नहीं कुछ मन्त्रों के सहित अस्त्र शस्त्र भी प्रदान किये थे। इस प्रकार से और्व महर्षि ने सगर को अच्छी तरह से शिक्षित बनाकर होशियार एवं कुशल बना दिया था। हे मुनिश्रेष्ठ! उसी समय से बलवान,धर्मिष्ठ, कृतज्ञ, गुणी, बुद्धिमान् सगर भी उन मुनि और्व के लिये समिधा-जल दर्भ और पुष्प आदि लाकर देने की सेवा में नित्य ही निरत रहने लगा था ।।१४।१५

स कदाचिद्गुणनिधिः प्रणिपत्य स्वमातरम् ।
उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा सगरो विनयान्वितः ।।१६
मातर्गतः पिता कुत्र किंनामा कस्य वंशजः ।
तत्सर्वं मे समाचक्ष्व श्रोतुं कौतूहलं मम ।।१७
पित्रा विहीना ये लोके जीवतोऽपि मृतोपमाः ।।१८
दरिद्रोऽपि पिता यस्य ह्यास्ते स धनदोपमः ।
यस्य माता पिता नास्ति सुखं तस्य न विद्यते ।।१९
धर्महीनो यथा मर्त्यः परत्रेह च निन्दितः ।
मातापितृविहीनस्य अज्ञस्याप्यविवेकिनः ।
अपुत्रस्य वृथा जन्म ऋणग्रस्तस्य चैव हि ।।२०
चन्द्रहीना यथा रात्रिः पद्महीनं यथा सरः ।
पतिहीना यथा नारी पितृहीनस्तथा शिशुः २१

एक दिन ऐसा अवसर प्राप्त हुआ कि वह गुणसागर अपनी माता से बहुत विनम्र होकर प्रणाम पूर्वक पूछने लगा ।।१६।। सगर ने कहा—हे माताजी हमारे पिताजी कहाँ पर हैं? मैंने कभी उनके दर्शन तक नहीं किये हैं। पिताजी का शुभ नाम क्या है? व किस वंश में

उत्पन्न हुए थे ? आप इन सब बातों का सुस्पष्ट उत्तर अभी दे दीजिये—इन सब बातों का ज्ञान पाने के लिए मेरे हृदय में बड़ा कुतूहल हो रहा है ॥१७॥ हे माताजी ! इस संसार में जो पितृहीन हैं वे जीवित रहते हुए भी मृत के समान ही हैं ॥१८॥ जिसका पिता अत्यन्त दरिद्र भी है तो भी उसको कुबेर के ही समान समझना चाहिए। जिसके माता और पिता दोनों ही न हों उसको संसार में सभी सुख नहीं मिल सकता है ॥१६॥ वह पुरुष धर्म विहीन एक मूर्ख के समान इस लोक और परलोक दोनों जगहों में निन्दा ही पाया करता है। इस जगत में माता पिता से हीन का—अज्ञानी का, अविवेकी का, अपुत्र और ऋण शून्य का जन्म ही व्यर्थ है ॥२०॥ बिना चन्द्रोदय के रात्रि—कमलों के विकास से रहित सरोवर, पतिहीन नारी और पिता से हीन बालक=ये सब एक से ही होते हैं ॥२१

धर्महीनो यथा जंतु कर्महीनो यथा गृही ।
पशुहीनो यथा वैश्यस्तथा पित्रा विनार्भक ॥२२
सत्यहीन यथा वाक्य साधुहीना यथा सभा ।
तपो यथा दयाहीन तथा पित्रा विनार्भक ॥२३
वृक्षहीन यथारण्य जलहीना यथा नदी ।
वेगहीनो यथा वाजी तथा पित्रा विनार्भक ॥२४
यथा लघुतरो लोके मातर्याच्ञापरो नर ।
तथा पित्रा विहीनस्तु बहुदुःखान्वित सुत ॥२५
इतीरित सुतेनैवा श्रुत्वा निःश्वस्य दुःखिता ।
सपृष्ट तत्यथावृत्त सर्वं तस्मै न्यवेदयत् ॥२६
तच्छ्रुत्वा सगर क्रुद्ध कोपसरक्तलोचन ।
हनिष्यामीत्यरातीन्स प्रतिज्ञामकरोत्तदा ॥२७
प्रदक्षिणीकृत्य मुनि जननी च प्रणम्य स ।
प्रस्थापित प्रतस्थे च तेनैव मुनिना तदा ॥२८

जिस प्रकार से धर्म से हीन प्राणी, कर्म से हीन प्राणी, कर्म हीन गृहस्थ और पशु हीन वैश्य हो उसी प्रकार से पितृहीन बाउक होता है ॥२२॥ जिस रीति से सत्यता से रहित वचन, सत साधुओ से हीन सभा या परिषद्— दया से विहीन तपश्चर्या व्यर्थ है वैसे ही जनकहीन बालक होता है ॥२३॥ जैसे वृक्ष लतादि से शून्य वन, सलिल शून्य नदी, वेग विहीन अश्व केवल नाम मात्रसे ही हुआ करते है उसी भाति पिता से रहित बालक हुआ करता है ॥२४॥ जैसे याचना करने वाला मनुष्य इस जगत मे बहुत ही तुच्छ एव ओछा माना जाया करता है उसी तरह से पिता से रहित अनाथ बालक भी बहुत ही तुच्छ समझा जाया करता है और अनेक प्रकार के कष्ट ही भोगा करता है ॥२५॥ पुत्र के इस भाति से कथन करने पर उसकी माता न दु खित होकर एक लम्बी उष्ण श्वास लेकर आह भरी और अपने पुत्र के पूछने पर सम्पूर्ण सत्य घटित घटना का वृत्तान्त उसको कहकर सुना दिया था । इस वृत्तान्त का श्रवण करके सगर को बहुत भारी क्रोध उत्पन्न होगया था । क्रोधावेश मे उसके नेत्र लाल हो गये थे और उसी क्षण मे दृढ प्रतिज्ञा की थी कि मैं अपने सर्वस्व का अपहरण करन वाले समस्त शत्रुओ का सहार कर दूंगा ॥ २७ ॥ इसके उपरान्त उस सगर ने उन महा मुनि के चरणो म और अपनी जननी के पद पङ्कजा म अपना मस्तक झुकाया था और उस महा मुनि के समादेश से प्रस्थान करा देन पर वह वहा से चल दिया था ॥२८

और्वाश्रमाद्विनिष्क्रान्त सगर सत्यवाक् शुचि ।
वशिष्ठ स्वकुलाचार्य प्राप्त प्रीतिसमन्वित ॥२६
प्रणम्य गुरवे तस्मै वशिष्ठाय महात्मने ।
सर्व विज्ञापयामास ज्ञानदृष्ट्या विजानते ॥३०
ऐन्द्रास्त्र वारुण ब्राह्ममाग्नेय सगरो नृप ।
तेनैव मुनिनाऽवाप खड्ग वज्रोपम धनु ॥६१

ततस्तेनाभ्यनुज्ञातः सगरः सौमनस्यवान् ।
अशीर्भिरन्वितः सद्यः प्रतस्थे प्रणिपत्य तम् ॥३२
एकेनैव तु चापेन स शूरः परिपन्थिनः ।
सपुत्रपौत्रान्सगणानकरोत्स्वर्गवासिनः ॥३३
तच्चापमुक्तबाणाग्निर्मतप्तास्तदरातयः ।
केचिद्विनष्टा भयस्तास्तथा चान्ये प्रदुद्रुवुः ॥३४
केचिद्विशीर्णकेशाश्च वल्मीकोपरि संस्थिता. ।
तृणान्यभक्षयन्केचिन्नग्नाश्च विविशुर्जलम् ॥३५

परम सत्य भाषण करने वाला और अधिक पुनीत वह बालक सगर और्व मुनि के आश्रम से चल कर परम प्रीति के साथ अपने कुल के गुरुदेव श्री वशिष्ठ मुनि के समीप मे प्राप्त हुआ था ॥२६॥ वशिष्ठ जी ज्ञान की दृष्टि से सभी कुछ जानते थे । उस समय मे सगर ने वहाँ पर पहुँच कर श्री वशिष्ठजी को प्रणाम करके सभी वृत्तान्त सुनाई दिया था ॥३०॥ उसी समय मे कुलगुरु वशिष्ठजी ने उस सगर को ऐन्द्रास्त्र, ब्रह्मास्त्र, वरुणास्त्र, अग्नियास्त्र वज्र के समान खड्ग और धनुष आदि का प्रदान किया था ॥३१॥ इसके उपरान्त वशिष्ठजी के आदेश और अमोघ आशीर्वाद को प्राप्त करके परम प्रसन्न मन से मुक्त करके वहाँ से तुरन्त ही प्रस्थान कर दिया था ॥३२॥ उस सगर ने अपने शत्रु स्वरूप परिपन्थियो से युद्ध आरम्भ कर दिया था । उस महावीर नर सगर ने एक ही धनुष से उन सबको अपने पुत्र-पौत्रादि के गणो के सहित संहार करके स्वर्गवासी बना दिया था ॥३३॥ राजा सगर के धनुष से निकले हुए शरो के प्रहारो से सन्तप्त एव उसके शत्रु अत्यन्त भयभीत होकर रण मे मारे गये थे और खड़े-खड़े भाग गये थे ॥३४॥ कुछ के बाल बिखर गये और कुछ बाँबी मे जाकर छिप गये थे कुछ दाँतों तले तिनके दबाकर रह गये और शेष नग्न होकर डूब मरे थे ॥३५॥

शकाश्च यवनाश्चैव तथा चान्ये महीभृतः ।
सत्वरं शरणं जग्मुर्वशिष्ठं प्राणलोलुपाः ॥३६
जितक्षितिर्बाहुपुत्रो रिपून्गुरुसमीपगान् ।
चारैर्विज्ञातवान्सद्य. प्राप्तश्चाचार्यसन्निधिम् ॥३७
तमागतं बाहुसुतं निशम्य मुनिर्वशिष्ठ शरणागतांस्तान् ।
त्रातुं च शिष्याभिहितं च कर्तुं विचारयामास तदा क्षणेन ॥३८
चकार मुण्डाञ्शवरान्यवनांल्लम्बमूर्द्धजान् ।
अन्धाश्चश्मश्रुलान्सर्वान्मुण्डान्वेदबहिष्कृतान् ॥३९
वसिष्ठमुनिना तेन हतप्रायान्निरीक्ष्य सः ।
प्रहसन्प्राह सगरं स्वगुरुं तपसो निधिम् ॥४०
भो भो गुरो दुराचारानेतान्रक्षसि तान्वृथा ।
सर्वथाहं हनिष्यामि मत्पितुर्देशहारकान् ॥४१
उपेक्षेत समर्थ. सन्धर्मस्य परिपन्थिनः ।
स एव सर्वनाशाय हेतुभूतो न संशयः ॥४२

वह ऐसा भीषण समय उपस्थित हो गया था कि अपने प्राणों के परित्याग की इच्छा से शक और यवन आदि सब राजा लोग शीघ्र ही वसिष्ठ की शरण में जाकर पहुँच गये थे ॥३६॥ स्वर्गीय बाहु के परम बलवान् प्रतापी सगर ने सम्पूर्ण पृथ्वी पर विजय प्राप्त कर ली सगर को दूतों के द्वारा ज्ञात हो गया था कि शत्रु समुदाय अपने गुरु-देव की शरण में पहुँच गए हैं । उसी समय वह वसिष्ठजी के समीप में आ गया था ॥३७॥ बाहु के पुत्र सगर को अपने पास में आता हुआ सुनकर वसिष्ठजी ने उन शरण में समागत होने वालों की रक्षा और अपने परम प्रिय शिष्य के हित की चिन्ता में एक क्षण के लिए निमग्न होगए थे ॥३८॥ इसके पश्चात् उन लम्बे-लम्बे केशों वाले शबर और यवनों के माथे मुँडवा कर वेद बहिष्कृत शास्त्ररूपी नेत्रों से अन्धे उनकी मूँछें भी मुँड़वा दी थी ॥३९॥ राजा सगर ने वसिष्ठ मुनि के द्वारा

उनको मरा हुआ सा देखा था। उस समय में तपोनिधि अपने गुरु वशिष्ठजी से हँसकर कहा था ॥४०॥ सगर ने अपने भाषण में कहा—हे गुरुदेव! आप इन दुष्ट, दुराचरण करने वालों की रक्षा व्यर्थ ही करना चाहते हैं। ये वे ही महा दुष्ट पापी हैं जिन्होंने मेरे पिताजी का देश और वैभवपूर्ण राज्य छीन लिया था। मेरी तो यही इच्छा है कि इन सभी को मार ही डालना चाहिए ॥४१॥ इस धर्म के नाशक लुटेरों की शक्ति होते हुये भी रक्षा का करना और अपेक्षा करके इनको जीवित बने रहने देना भविष्य में सर्वनाश का हेतु हो सकता है ॥४२

बाधन्ते प्रथमं मत्त्वा दुर्जना सकलं जगत् ।
त एव बलहीनाश्चेद्भजन्तेऽत्यन्तसाधुताम् ॥४३
अहो मायाकृतं कर्म खला कश्मलचेतस ।
तावत्कुर्वन्ति कार्याणि यावत्स्यात्प्रबलं बलम् ॥४४
दासभावं च शत्रूणां वारस्त्रीणां च सौहृदम् ।
साधुभावं च सर्पाणां श्रेयस्कामो न विश्वसेत् ॥४५
प्रहासं कुर्वते नित्यं यान्दन्तान्दर्शयन्खला ।
तानेव दर्शयन्त्याशु स्वसामर्थ्यविपर्यये ॥४६
पिशुना जिह्वया पूर्वं परुषं प्रवदन्ति च ।
अतीव करुणं वाक्यं वदन्त्येव तथाबला ॥४७
श्रेयस्कामो भवेद्यस्तु नीतिशास्त्रार्थकोविद ।
साधुत्वं समभावं च खलानां नैव विश्वसेत् ॥४८
दुर्जनं प्रणतिं यान्तं मित्रं कैतवशालिनम् ।
दुष्टा भार्यां च विश्वस्तो मृत एव न संशय ॥४९

मदमत्त ये दुष्ट लोग पहिले समस्त जगत् के लोगों को भरसक प्रपीडित किया करते हैं और जब इनकी शक्ति क्षीण हो जाती है तो ये साधुता दिखलाया करते हैं ॥४३॥ ये महापापी दुष्ट चित्तवृत्ति वाले लोग जबतक अपना दल प्रबल नहीं होता है तभी तक माया रचकर

बडी साधुता एव सज्जनता का प्रदर्शन किया करते है और अच्छे कर्म दिखलाते है जैसे ही इनमे थोडी सी भी सबलता प्राप्त हुई कि ये शत्रु बन जाया करते है ॥४४॥ जो मनुष्य अपना वास्तविक कल्याण की कामना रखता है उसे भूलकर भी कभी शत्रुओ के दास भाव का, वेश्याओ की मित्रता का और विषधर सर्पो की साधुवृत्ति का विश्वास नही करना चाहिये ॥४५॥ दुष्ट लोग अपनी शक्ति की सम्पन्नता की दशा मे जिन दातों को हँसकर दिखाया करते है वे ही शक्ति के क्षीण हो जाने पर उन्ही दाँतो को दिखाकर हीनता का भाव प्रकट किया करते है ।।४६।। चुगली करने वाले लोग जिस अपनी जिह्वा से परम कठोर वचन बोला करते है वे क्षीण व निर्बल हो जाते हैं तो उसी जीभ से अत्यन्त करुणा से परिपूर्ण वचन कहा करते हैं ॥४७॥ नीति शास्त्र का सिद्धान्त है कि चतुर मनुष्य यदि अपना कल्याण चाहता है तो उसे दुष्ट पुरुषो के साधु भाव और समता के भाव का कभी विचार नही करना चाहिये ॥४८॥ नम्रता दिखाने वाले दुर्जन पुरुष का, जुआरी मित्र का और दुष्टा भार्या का विश्वास करने वाला व्यक्ति मरे हुए के ही समान हुआ करता है ॥४६

मा रक्ष तस्मादेतान्वै गोरूपव्याघ्रधर्मिण ।
हत्वैतानखिलान् दुष्टास्त्वत्प्रसादान्मही भजे ॥५०
वशिष्ठस्तद्वच श्रुत्वा सुप्रीतो मुनिसत्तम ।
कराभ्या सगरस्याङ्ग स्पृशन्निदमुवाच ह ॥५१
साधु साधु महाभाग सत्य वदसि सुव्रत ।
तथापि मद्वच श्रुत्वा परा शान्ति लभिष्यसि ॥५२
मयैते निहिता पूर्वं त्वत्प्रतिज्ञाविरोधित ।
हतानां हनने कीर्ति का समुत्पद्यते वद ॥५३
भूमीश जन्तव सर्वे कर्मपाशेन यन्त्रिता. ।
तथापि पापैर्निहता किमर्थं हसि तान्पुन. ॥५४

देहस्तु पापजनितः पूर्वमेवैनसाः हतः ।
आत्मा ह्यभेद्यः पूर्णत्वाच्छास्त्राणामेष निश्चयः ॥५५
स्वकर्मफलभोगानां हेतुमात्रा हि जन्तवः ।
कर्माणि दैवमूलानि दैवाधीनमिदं जगत् ॥५६

अतएव मेरी तो यही प्रार्थना है कि इन व्याघ्र के समान कर्म करने वाले गोरूपधारी दुष्टों का विश्वास न करें। मैं तो इन समस्त दुष्टों का समूल संहार करके ही इस भूमि पर राज्य करने का इच्छुक हूँ ॥५०॥ उस समय में मुनि शिरोमणि वसिष्ठजी ने सगर के नीतिपूर्ण वचनों का श्रवण करके परम प्रीति के साथ उस सगर के शरीर पर अपना हाथ फिराते हुये उससे कहा—वसिष्ठजी ने कहा था—हे महाभाग ! बहुत ही ठीक है और साधु है (आप जो भी कुछ कह चुके हैं वह अक्षरशः परम सत्य है तथापि मेरे वचन सुन कर आपको शान्ति प्राप्त होगी ॥५१॥५२॥ जैसे तुमने प्रतिज्ञा की थी उसका विरोध करने वाली मैंने अपनी शरण इनको दी है। ये तो शरण माँगकर स्वयं ही मर चुके हैं फिर यह बतलाओ कि इन मृतों के मारने से आपको क्या कीर्ति प्राप्त होगी ? ॥५२॥ हे भूमीश्वर ! इस जगत् में समस्त प्राणी अपने कर्मों के पाश में जकड़े हुये रहा करते हैं। ये अपने पापकर्मों से स्वयं ही मरे हुये रहा करते हैं। जो अपने पापकर्मों से स्वयं ही मरे हुये हैं फिर आप उनको क्यों मारने की इच्छा करते हैं ? इन सबका पापों से समुत्पन्न देह पहिले ही पाप से ही नाश वाला होरहा है। रही आत्मा के सम्बन्ध की बात सो तो सदा ही अमोघ है क्योंकि वह पूर्ण और नित्य है। ऐसा सब शास्त्रों का सत्य सिद्धान्त है ॥५५॥ यह प्राणी अपने कर्मों के फलों को भोगने का हेतु मात्र होता है जो कर्म प्रारब्ध के अधीन होता है। इस प्रकार से यह जगत् प्रारब्ध के ही अधीन रहा करता है ॥५६

यस्माद्द्वै हि साधूना रक्षिता दुष्ट शिक्षिता ।

ततो नरैरस्वतन्त्रै किं कार्यं साध्यते वद ॥५७
शरीरं पापसंभूतं पापेनैव प्रवर्तते ।
पापमूलमिदं ज्ञात्वा कथं हन्तुं समुद्यतः ॥५८
आत्मा शुद्धोऽपि देहस्थो देहीति प्रोच्यते बुधैः ।
तस्मादिदं वपुर्भूप पापमूलं न संशयः ॥५९
पापमूलवपुर्हन्तुः का कीर्तिस्तव बाहुज ।
भविष्यतीति निश्चित्य नैतान्हिंसास्ततः सुत ॥६०
इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं विरराम स कोपतः ।
स्पृशन्करेण नगरं नन्दनं मनुयस्तदा ॥६१
अथाथर्वनिधिस्तस्य सगरस्य महात्मनः ।
राज्याभिषेकं कृतवान्मुनिभिः सह सुव्रतैः ॥६२
भार्याद्वयं च तस्यासीत्केशिनी सुमतिस्तथा ।
काश्यपस्य विदर्भस्य तनये मुनिसत्तम ॥६३

अतएव यही सिद्धान्त सुदृढ है कि दैव ही साधु पुरुषों की सुरक्षा करने वाला तथा दुष्टों को दण्ड देने वाला होता है। इसलिये यह बताओ कि जो पराधीन हैं उनसे क्या काम सिद्ध हो सकता है ॥५७॥ यह शरीर पापों से उत्पन्न हुआ है और पापों से ही चला करता है। इस शरीर का पाप मूल जान कर भी तुम क्यों मारने के लिए प्रस्तुत हुए हो ॥५८॥ आत्मा तो परम शुद्ध होता है किन्तु यह आत्मा देह में स्थित रहा करता है इसीलिए विद्वान् लोग इसको देही कहा करते हैं अतएव हे भूमिपाल ! यह शरीर निश्चय ही पाप मूल होता है। ऐसे इस पाप मूल शरीर का विनाश करने से आपको क्या यश प्राप्त होगा? इसलिये हे पुत्र ! ऐसा विचार कर अब तुम इनको मत मारो ॥५९—६०॥ अपने गुरुचरण के इन वचनों का श्रवण करके सगर का वह बढा हुआ क्रोध शान्त हो गया था। उस समय में समस्त मुनिवृन्द ने आनन्द प्रद सगर के शरीर पर प्रेमपूर्ण हाथ फिरा कर स्पर्श किया था ॥६१॥ इसके अनन्तर अथर्व वेद के निधि वसिष्ठजी ने तथा अन्य

व्रतधारी मुनिगण ने राजा सगर का राज्याभिषेक किया था ॥६२॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! फिर विदर्भ देश के राजा काश्यप की केशिनी और सुमति नामा वाली दो राजकुमारियों के साथ सगर राजा का विवाह हुआ था ॥६३॥

राज्ये प्रतिष्ठित दृष्ट्वा मुनिरौर्वस्तपोनिधि ।
वनादागत्य राजान सभाष्य स्वाश्रम ययौ ॥६४
कदाचित्तस्य भूपस्य भार्याया प्रार्थितो मुनि ।
वर ददावपत्यार्थमौर्वो भार्गवमन्त्रवित् ॥६५
क्षण ध्यानस्थिता भूत्वा त्रिकालज्ञो मुनिश्वर ।
केशिनी सुमति चैव इदमाह प्रहर्षयन् ॥६६
एका वशधर चैकमन्या षडयुतानि च ।
अपत्यार्थ महाभाग वृणुता च यथेप्सितम् ॥६७
अथ श्रुत्वा वचस्तस्य मुनरौर्वस्य नारद ।
केशिन्येक सुत वव्रे वशसन्तानकारणम् ॥६८
तथा षष्टिसहस्राणि सुमत्या ह्यभवन्सुता ।
नाम्नासमजा केशिन्यास्तनयो मुनिसत्तम ॥६९
असमजास्तु कर्माणि चक्रारोन्मत्तचेष्टित ।
त दृष्ट्वासागरा सर्वे ह्यासन्दुर्वृत्तचेतस ॥७०

तपोनिधि महामुनि और्व राज्यासन पर प्रतिष्ठित सगर को देखने के लिये वहाँ पर उपस्थित हुए थे और राजा सगर से वार्तालाप करके वापिस वन को लौटकर चल गये थे ॥६४॥ एक समय में राजा सगर की दोनों पत्नियों ने भृगु मन्त्र के ज्ञाता और्व मुनि से सन्तान होने के लिए प्रार्थना की थी। उस समय और्व महामुनि ने उनको वर-दान दिया था ॥६५॥ त्रिकाल की बातें जानने वाले मुनि ने क्षण भर के लिये ध्यान करके केशिनी और सुमति को प्रसन्नता प्रदान करते हुए यह कहा था कि आप दोनों महान् भाग्य वाली हैं। तुम में से एक तो

केशघर पुत्र को प्राप्त कर सकती है और दूसरी रानी साठ सहस्र पुत्रों की प्राप्ति कर सकती है। अतएव तुम दोनों जैसी भी इच्छा हो उसी के अनुसार वरदान माँग लो ॥६७॥ हे नारद ! और्व मुनि के इन वचनों का श्रवण करके केशिनी नाम वाली रानी ने एक ही वंश चलाने वाले पुत्र को प्राप्त करने का वरदान माँगा था और दूसरी सुमति के साठ हजार पुत्र उत्पन्न हुए थे। हे मुनि सत्तम ! केशिनी के असमञ्जा नाम वाला एक ही पुत्र हुआ था ॥६८-६६॥ असमञ्जा एक उन्मत्त के समान चेष्टा वाला होकर वैसे ही कर्मों का करने वाला था। उसको देखकर सभी सगर पुत्रों का चित्त बिगड़ने लगा था ॥७०

तद्बालभावं संदृष्ट्वा ज्ञात्वा बाहुसुतो नृपः।
चिन्तयामास विधिवत्पुत्रकर्म विगर्हितम् ॥७१
अहो कष्टतरा लोके दुर्जनानां हि संगतिः।
कारुकैस्ताडयते वह्निरयः संयोगमात्रतः॥७२
अंशुमान्नाम तनयो बभूव ह्यसमंजसः।
शास्त्रज्ञो गुणवान्धर्मी पितामहहिते रतः ॥७३
दुर्वृत्ताः सागराः सर्वे लोकोपद्रवकारिणः।
अनुष्ठानवतां नित्यमन्तराया भवन्ति ते ॥७४
हुतानी यानि यज्ञेषु हवींषि विधिवद् द्विजैः।
बुभुजिरे हि सर्वाणि निराकृत्य दिवौकसः ॥७५
स्वर्गादाहृत्य सततं रम्भाद्या देवयोषितः।
भजन्ति सागरास्ता वै कचग्रहबलात्कृताः ॥७६
पारिजातादिवृक्षाणां पुष्पाण्याहृत्य ते खलाः।
भूषयन्ति स्वदेहानि मद्यपानपरायणाः ॥७७

राजा सगर ने उसके बालकपन के दूषित कर्मों को देख कर पुत्र के इन परम निन्दित कर्मों पर गहन विचार किया था ॥७१॥ दुष्टों की सङ्गति से इस संसार में कष्ट ही मिला करता है। लोहे के संयोग

होन से लुहार लोग अग्नि को भी पीटने लगा करते हैं ॥७२॥ उस असमञ्जा का अशुमान् नाम वाला पुत्र समुत्पन्न हुआ था। यह शास्त्रो का ज्ञाता एव परम गुणी था, बहुत अधिक धर्मात्मा था और सदा ही अपने पितामह सगर के हितप्रद कार्यो म सलग्न रहा करता था ॥७३॥ अन्य सभी सगर के पुत्र दुराचारी थे तथा ससार मे कुछ न कुछ उपद्रव मचाते रहा करते थे और जो कोई अनुष्ठान किया करते थे उस के कम म विघ्न डाला करते थे ॥७४॥ द्विजगण यज्ञो मे सविधि जो हवि या होम किया करते थे वे सागर के देवो को हटाकर उस देव योग्य हवि को स्वय ही खा जाया करते थ ॥७५॥ स्वग लोक से रम्भा आदि देवाङ्गनाओ को लाकर उनकी चोटी पकड कर उनके साथ बलात्कार किया करते थ ॥७६॥ ये एसे दुष्ट थे कि पारिजात आदि देव वृक्षो के पुष्प ग्रहण कर अपने शरीरो का सज्जित किया करते थे और मदिरा का पान किया करते थ ॥७७॥

साधुवृत्ती समाजह्नु सदाचारानमनाशयन् ।
मित्रैश्च योद्ध_मारब्धा बलिनोऽत्यन्तपापिन ॥७८
एतद् दृष्ट्वातिदु खार्ता देवा इन्द्रपुरोगमा ।
विचार परम चक्र_ रेतेपा नाशहेतवे ॥७९
निश्चित्य विबुधा सर्वे पातालान्तरगोचरम् ।
कपिल देवदेवेश ययु प्रच्छन्नरूपिण ॥८०
ध्यायन्तमात्मनात्मान परानदैकविग्रहम् ।
प्रणम्य दण्डवद् भूमौ तुष्टुवुरिन्दशास्तत ॥८१
नमस्ते योगिने तुभ्य साख्ययोगरताय च ।
नररूपप्रतिच्छन्नविष्णवे जिष्णवे नम ॥८२
नम परेशभक्ताय लोकानुग्रहहेतवे ।
ससारारण्यदावाग्ने धर्मपालनसेतव ॥८३
महते वीतरागाय तुभ्य भूयो नमो नम ।

त र्हि त दैवमेवाशु नाश कार्या विचारणा ।।८७
अल्पैरहोभिरेवैते नाशमेष्यन्ति सागरा ।
इत्युक्ते मुनिना तेन कपिलेन महात्मना ।
प्रणम्य त यथान्याय गता नाक दिवौकस. ।।८८
अत्रान्तरे तु सगरो वसिष्ठाद्यैर्महर्षिभि ।
आरेभे हयमेधाख्य यज्ञ कर्त्तुमनुत्तमम् ।।८९
तद्यज्ञे योजित सप्तिमपहृत्य सुरेश्वर ।
पाताले स्थापयामास कपिलो यत्र तिष्ठति ।।९०
गूढविग्रहशक्रेण हृतमश्व तु सागरा ।
अन्वेष्टु वभ्रमुर्लोकान् भूरादीश्च सुविस्मिता ।।९१

देवगण की इस विनती को सुनकर श्री कपिल मुनि ने कहा—हे श्रेष्ठ देवताओ ! जो अपराध रहित मनुष्यो को पीडा पहुँचाने की इच्छा किया करता है उसको सभी लोको मे पापो का कुफल भोगने के लिये उन्मुख समझ लेना चाहिए ।।८६।। जो अपने कर्मो से ही नही मन और वचनो के द्वारा भी सर्वदा दूसरे प्राणियो को प्रपीडित किया करता है उसको दैव बहुत ही शीघ्र समाप्त कर दिया करता है। इसमे विचारने की कुछ भी बात नही है ।।२७।। इसलिये इस प्राकृतिक नियमानुसार के महान् उत्पीडक राजा सगर के पुत्र शीघ्र ही विनष्ट होजायेंगे । समस्त देवगण ने श्री कपिल मुनि के ऐसे सान्त्वनाप्रद वचनो का श्रवण करके उनके चरणो मे गिरकर दण्डवत प्रणाम किया और फिर वे वापिस अपने स्वर्ग लोक को चले गये थे ।।८८।। इसी अनन्तर मे राजा सगर ने श्री वसिष्ठजी आदि महा महर्षियो की सहायता प्राप्त कर परम श्रेष्ठ अश्वमेध यज्ञ कर यजन करने का आरम्भ कर दिया था ।।८९।। देवराज इन्द्र ने जो उस अश्वमेध यज्ञ का अश्व छोडा गया था उसका अपहरण करके पाताल लोक मे पहुँचा दिया था जहाँ पर श्री कपिल मुनि तपश्चर्या कर रहे

थे । वहाँ उसको बाँध दिया था ॥८६॥ इन्द्रदेव ने अपने शरीर को छिपा कर ही इस अश्व का अपहरण किया था । उस समय में राजा सगर के ये साठ हजार पुत्र बहुत ही विस्मित हो गए थे और भू आदि समस्त लोकों में उस अश्व की खोज करने लगे थे ॥८१

अदृष्टसप्तयस्ते च पाताल गन्तुमुद्यता ।
चख्नुर्महीतल सर्वमेकैको योजन पृथक् ॥८२
मृत्तिका खनिता ते चोदधितीरे समाकिरन् ।
तद्द्वारेण गता सर्वे पाताल सगरात्मजा ॥८३
विचिन्वन्ति हय तत्र मदोन्मत्ता विचेतस ॥८४
तत्रापश्यन्महात्मान कोटिसूर्यसमप्रभम् ।
कपिल ध्याननिरत वाजिन च तदन्तिके ॥८५
तत सर्वे तु सरब्धा मुनि दृष्ट्वातिवेगत ।
हन्तुमुद्युक्तमनसो विद्रवन्त समासदन् ॥८६
हन्यता हन्यतामेष वध्यता वध्यतामयम् ।
गृह्यता गृह्यतामाशु इत्यूचुस्ते परस्परम् ॥८७
हृताश्व साधुभावेन वकवद्ध्यानतत्परम् ।
सन्ति चाहो खला लोके कुर्वन्त्याडम्बर महत् ॥८८

अश्वमेध यज्ञ बिना इस अश्व की प्राप्ति के अधूरा ही रह गया था । जब अन्यत्र कहीं पर भी वह अश्व नहीं मिला तो वे सब पाताल लोक में गमन करने को उद्यत हुये और एक-एक योजन का एक वृत्त बना कर इस पृथ्वी के खनन करने का कार्य आरम्भ कर दिया था और खुदी हुई मिट्टी को समुद्र के किनारे पर डालकर उस खुदी हुई मृत्तिका के द्वार से इन्होंने पाताल लोक में प्रवेश प्राप्त कर लिया था ॥८२।८३ व सगर के पुत्र बहुत ही उदास होकर वहाँ पर भी उस अश्व की खोज करने में प्रवृत्त होगये थे । इन मदोन्मत्त सगर पुत्रों ने वहाँ पर करोड़ों सूर्यों के समान कान्ति वाले महात्मा कपिल

मुनि को ध्यान मे निमग्न इन्होंने देखा था और यह भी देखा था कि वह घोड़ा उन्ही के समीप बँधा हुआ है ॥६४।६५॥ मुनि को देखकर इनको बहुत अधिक क्रोध हुआ था और वे सब उनको मार देने का मनमे विचार कर अत्यन्त वग से उनकी ओर झपटने लगे थे ॥६६॥ उस समय मे वे परस्पर मे ऐसे वचन कह रहे थे—अरे ! इस दुष्ट को मार डालो—मार डालो और शीघ्र ही इसे पकड लो ॥ ६७ ॥ यह यज्ञ के अश्व को चुराकर यहाँ ले आया है और अब कैसा बगुले के ही समान ध्यान लगा कर बहुत बडा साधु बनकर बैठा हुआ है ! ऐसे दुष्ट लाग इस ससार मे कैसा आडम्बर दिखाया करते हैं ॥६८

इत्युच्चरन्तो जहमु कपिल ते मुनीश्वरम् ।
समस्तेंद्रियमदोह नियम्यात्मानमात्मनि ॥६६
आस्थित कपिलस्तेपा तत्कर्म ज्ञात वान्न हि ॥१००
आसन्नमृत्यवस्ते तु विनष्टमतयो मुनिम् ।
पद्भि मताडयामासुर्वाहु च जगृहु परे ॥१०१
ततस्त्यक्तसमाधिस्तु स मुनिर्विस्मितस्तदा ।
उवाच भावगम्भीर लोकोपद्रवकारिण ॥१०२
ऐश्वर्यमदमत्ताना क्षुधिताना च कामिनाम् ।
अहकारविमूढाना विवेको नैव जायते ॥१०३
निधेराधारमात्रेण मही ज्वलति सर्वदा ।
तदेव मानवा भुक्त्वा ज्वलतीति किमद्भुतम् ॥१०४
किमत्र चित्र सुजन बाधन्ते यदि दुर्जना ।
महीरहाश्चानुतटे पातयन्ति नदीरया ॥१०५

महा मुनीश्वर कपिल देव के विषय में इस तरह से कहते हुए वे हँस रहे थे कि इधर कपिल मुनि ने अपनी समस्त इन्द्रियों को वश मे कर परमात्मा के ध्यान मे अपना मन लगा कर रक्खा था । इसीलिए उनको सगर के पुत्रो के इस कर्म का कुछ भी पता नही लगा

था ॥६६।१००॥ किन्तु उन लोगो की मौतें निकट आ पहुँची थी। अतएव उनकी बुद्धि एकदम भ्रष्ट हो गई थी। इसीलिये वे तप में समवस्थित मुनि मे ठोकरें मारने लगे थे और कुछ ने उनकी भुजायें पकड ली थी ॥१०१॥ उस समय मे इस अत्यधिक उत्पात होने के कारण उनकी समाधि खुल गयी थी। उस समय मे परम विस्मित होकर उन समस्त ससार में महान् उपद्रव मचा देने वालो से बड़े ही गम्भीर भाव से पूर्ण यह वचन कहा था—ऐश्वर्य के मद से उन्मत्त, मूर्ख और कामियो को तथा अहङ्कार के वश मे पडे हुये महा मूढो को विवेक नही रहा करता ॥१०२।१०३॥ सम्पूर्ण निधि का आधार होने से यह पृथ्वी सदा चलती रहा करती है उसी निधि को उपभोग करने वाले मनुष्य भी जलने लगें तो कुछ आश्चर्य की बात नही है।१०४ दुष्ट लोग सज्जनो को कष्ट देते हैं तो कोई आश्चर्य की बात नही है क्योंकि दुष्टो का तो स्वभाव ही पीडा पहुँचाना है जैसे नदी का वेग तटस्थ वृक्षों को गिरा ही दिया करता है ॥१०५

यत्र श्रीर्यौवन वापि शारदा वापि तिष्ठति ।
तत्र श्रीर्दृष्टता नित्य मूर्खत्व चापि जायते ॥१०६
अहो कनकमाहात्म्यमाख्यातु केन शक्यते ।
नामसाम्याद हो चित्र धत्तूरोऽपि मदप्रद. ॥१०७
भवेद्यदि खलस्य श्रीः सैव लोकविनाशिनी ।
यथा सखाग्ने पवन. पन्नगस्य यथा विषम् ॥१०८
अहो धनमदान्धस्तु पश्यन्नपि न पश्यति ।
यदि पश्यत्यात्महित स पश्यति न सशयः ॥१०९
इत्युक्त्वा कपिलः क्रुद्धो नेत्राभ्या समृजेऽनलम् ।
स वह्नि सागरान्सर्वान्भस्मसादकरोत्क्षणात् ॥११०
मन्नेत्रजानल दृष्ट्वा पातालतलवासिन. ।
अकालप्रलय मत्वा चक्रुशु शोकलालसा ॥१११

तदग्नि तापिता सर्वे दन्दशूकाश्च राक्षसा ।
सागर विविशु. शीघ्रं सता कोपो हि दु सह ॥११२

जहां लक्ष्मी,यौवन और सरस्वती वर्तमान में रहा करती है वहां पर इनके साथ ही साथ अलक्ष्मी-वृद्धता और मूर्खता भी अपनी जडे जमा लिया करती है ॥१०६॥ कनक (सुवर्ण) का माहात्म्य किसी से भी कहा नहीं जा सकता है । समान नाम होने के कारण कनक (धतूरा) भी महान मदकारी होता है (कनक सुवर्ण और धतूरा इन दोनों का नाम होता है) ॥१०७ यदि किसी दुष्ट पुरुष के पास पूर्व पुण्यों के प्रताप से सम्पत्ति हो जाया करती है तो वह उससे ससार के समस्त प्राणियों को कष्ट दिया करता है जिस तरह अग्नि का मित्र वायु वहां जाता है तो वह अत्यन्त प्रचण्ड होकर सर्वनाश ही कर दिया करता है और सर्प का विष बढ जाता है तो वह जीवों का दशन करके मार दिया करता है ॥१०८॥ अहो ! धन का मद कितना प्रबल होता है कि आंखो से देखता हुआ भी अन्धा हो जाया करता है और उसे कुछ भी सत्-असत् दिखलाई नहीं पडता है । यदि अपने-हित की बात देख लेवे तो सुख प्राप्त करे किन्तु उसे तो हित-अहित का धन के मद में ज्ञान ही नही रहा करता है ॥१०६॥ इस प्रकार से कह कर कपिल मुनि ने क्रुद्ध होकर अपने नेत्रों से अग्नि का प्रक्षेप किया था और उससे एक ही क्षण में वे सगर के पुत्र खाक की ढेरियाँ बन गये थे ॥११०॥ उस समय में उनके नेत्रों की उस अग्नि को देख कर सब पाताल लोक के निवासी महाप्रलय की कालाग्नि समझकर शोक से चीखने लग गये थे ॥१११॥ उस महान् प्रदीप्त अग्नि के ताप से सन्तप्त होकर सर्प और राक्षस समुद्र में कूद गये थे । क्योंकि सज्जनों का कोप परम दुःसह हुआ करता है ॥११२

अथ तस्य महीपस्य समागम्याध्वर तदा ।
देवदूत उवाचेद सर्वं वृत्त हि यत्तते ॥११३

एतत्समाकर्ण्य वच सगर सर्ववित्प्रभु ।
दैवेन शिक्षता दुष्टा इत्युवाचातिहर्षित ॥११४
माता वा जनको वापि भ्राता वा तनयोऽपि वा ।
अधर्म कुरुते यस्तु स एव शिपुरिष्यते ॥११५
यस्त्वधर्मेपु निरत सर्वलोकविरोधकृत् ।
न रिपु परम विद्याच्छास्त्राणामेष निर्णत ॥११६
सगर पुत्रनाशेऽपि व शुशोच मुनीश्वर ।
दुर्वृत्तनिधन यस्मात्सतागुत्साहकरणम् ॥११७
यज्ञेष्वनधिकारत्वादपुत्राणामिति स्मृते ।
पौत्र तमशुमन्त हि पुनत्वे कृतवान्प्रभु ॥११८
असमञ्जस्सुत त तु सुधिय वाग्विदा वरम् ।
युयोज सार्वविद् भूयो ह्यश्वानयनकर्मणि ॥११९

इसके अनन्तर एक दूत ने वहा उपस्थित होकर समस्त समाचार राजा सगर को सुना दिया था जहा पर वे यज्ञ कर रहे थे ॥११३॥ इस वृत्तान्त का श्रवण कर सर्व ज्ञानी राजा सगर ने यही कहा था कि दैव ने ही दुष्टो को दण्ड दिया है—यह कह कर वह प्रसन्न हुआ था ॥११४॥ राजा सगर ने कहा कि चाहे माता हो या पिता हो, भ्राता हो या पुत्र हो, जो भी कोई हो जो अधर्म और अन्याय किया करता है उसको शत्रु ही समझ लेना चाहिये॥११५॥ जो अधर्म परायण हो और सदा सब लोगो का विरोध ही किया करता हो उसको अपना परम घोर शत्रु ही समझना चाहिये—यही समस्त शास्त्रो का सिद्धान्त है ॥११६॥ हे मुनीश्वर ! इसी शास्त्रो के सिद्धान्त के अनुसार राजा सगर ने अपने पुत्रो का विनाश होने पर भी किंचिन्मात्र भी शोक नही किया था क्योकि दुराचरण करने वालो का विनाश सत्पुरुषो के हर्ष का ही बढाया करता है ॥ ११७ ॥ इसके पश्चात् राजा सगर ने पुत्रहीन को यज्ञ करने का कोई अधिकार नही

होता है। शास्त्र के सिद्धान्त का स्मरण करके अपने पौत्र अंशुमान को ही पुत्र मान लिया था ॥११८॥ फिर उस परम बुद्धिमान एवं वक्ताओं मे परम श्रेष्ठ असमञ्जस के पुत्र अंशुमान को ही सारवेत्ता सगर ने अश्व के लाने के कार्य मे नियुक्त किया था ॥११६

स गतस्तद्विलद्वारे दृष्ट्वा त मुनिपुङ्गवम् ।
कपिल तेजसा राशि साष्टाङ्ग प्रणनाम ह ॥१२०
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा विनयेनाग्रत स्थित. ।
शान्तमनस देवदेव सनातनम् ॥१२१
दौ शील्य यत्कृत ब्रह्मन्मत्पितृव्यै क्षमस्व तत् ।
परोपकारनिरता क्षमासारा हि साधव ॥१२२
दुर्जनेष्वपि सत्त्वेषु दया कुर्वन्ति साधव ।
नहि संहरते ज्योत्स्ना चन्द्रश्चाण्डालवेश्मन ॥२३
बाध्यमानोऽपि सुजन सर्वेषा सुखकृद्भवेत् ।
ददाति परमा तुष्टि भक्ष्यमाणोऽमरै शशी ॥१२४
दारितश्छिन्न एवापि ह्यामोदेनैव चन्दन ।
सौरभ कुरुते सर्व तथैव सुजनो जन ॥॥१२५
क्षान्त्या च तपसाचारैस्तद्गुणज्ञा मुनीश्वरा ।
सजात शासितु लोकास्त्वा विदु पुरुषोत्तम ॥१२

फिर वह अंशुमान उसी पूर्व निर्मित बिल के द्वार स वहा पर पहुँच गया था जहा पर परम तेजस्वी मुनिपुङ्गव श्री कपिल देव के दर्शन करके उनके चरणो में साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम किया था ॥१२०॥ फिर वह अंशुमान नम्रता के साथ दोनो हाथ जोड कर उनके समक्ष मे स्थित हो गया था और परम शान्त हृदय वाले सनातन श्री कपिल मुनि स वह निवेदन करने लगा था ॥१२१॥ अंशुमान् ने कहा—हे ब्रह्मन् ! मेरे चाचाओ ने जो दुःशीलता का व्यवहार किया था, उस अपराध को आप क्षमा कर दीजिए क्योंकि

साधु पुरुष सर्वदा परोपकार करने मे परायण ही रहा करते हैं और क्षमा भाव ही उनका सार हुआ करता है ॥१२२॥ साधु पुरुष दुर्जन प्राणियो पर भी उनके कल्याण करने के लिए ही दया किया करते हैं। चन्द्रमा चाण्डाल के घर से भी अपनी चाँदनी का प्रकाश हटाता नहीं है और सब पर उसकी चाँदनी का प्रकाश समान स्वरूप से ही फैला रहा करता है ॥१२३॥ साधु पुरुषों को भले ही कोई अपनी दुष्ट वृत्ति से थोड़ा भी देवे तो भी वे सबको सदा सुख ही दिया करते हैं। देवता चन्द्र को खाये जाते हैं फिर भी वह सबको सन्तुष्ट ही रखा करता है ॥१२४॥ फाड़कर और चीरकर प्राप्त किया गया भी चन्दन अपनी सुन्दर सुगन्ध को ही सर्वत्र फैलाया करता है वैसी ही दशा साधु पुरुषो की हुआ करती हैं ॥१२५॥ हे पुरुषोत्तम! आपकी क्षमा और तप के आचरणो से गुणज्ञ मुनीश्वर यह समझ लिया करते हैं कि आप मनुष्यो पर शासन करने के लिये ही समुत्पन्न हुये हैं ॥१२६

नमो ब्रह्मन्मुने तुभ्य नमस्ते ब्रह्ममूर्त्तये।
नमो ब्रह्मण्यशीलाय ब्रह्मध्यानपराय च ॥१२७
इति स्तुतो मुनिस्तेन प्रसन्नवदनस्तदा।
वर वरय चेत्याह प्रसन्नोऽस्मि तवानघ ॥१२८
एवमुक्ते तु मुनिना ह्य शुमान्प्रणिपत्यतम्।
प्रापयास्मत्पितृन्सन्ब्राह्म लोकमित्यभ्यभाषत ॥१२९
ततस्तस्यातिसतुष्टो प्रोवाच मुनिः सादरम्।
गङ्गामानीय पौत्रस्ते नयिष्यति पितृन्दिवम् ॥१३०
त्वत्पौत्रेण समानीता गङ्गा पुण्यजला नदी।
कुर्वैतान्धूतपापान्वै नयिष्यति पर पदम् ॥१३१
प्रापयन हय वत्स यत स्यात्पूर्णमध्वरम्।
पितामहान्तिक प्राप्य साश्व वृत्त न्यवेदयत् ॥१३२
सगरस्तेन पशुना त यज्ञ ब्राह्मणैः सह।

विधाय तपसा विष्णुमाराध्याप पदं हरेः ॥१३३

हे ब्रह्मन् ! हे मुनिवर ! आपको मेरा सादर प्रणाम समर्पित है। सदा ब्रह्म के ध्यान मे लीन रहने वाले आपको मैं सर्वप्रथम प्रणाम करता हूँ ॥१२७॥ इस प्रकार से मुनि का सस्तवन करने पर कपिल मुनि ने परम प्रसन्न मुख से कहा—हे निष्पाप ! मैं तेरे ऊपर अत्यधिक प्रसन्न हूँ, तुझे जो भी कुछ इच्छा हो उसका वरदान मुझसे माग लें ॥१२८॥ उन महा मुनि के इस तरह से कहने पर अंशुमान ने उनको फिर एक बार सविनय प्रणाम करके निवेदन किया था—हे ब्रह्मन् ! मेरे मृत पितरो को आप ब्रह्मलाक भेज देने की कृपा कीजिये ॥१२९॥ उस समय मे उन पर परम प्रसन्न होकर महा मुनि कपिलदेव ने आदरपूर्वक कहा—तेरा पौत्र स्वर्गलोक से गङ्गाजी को यहा लाकर इन सबका उद्धार कर स्वर्गलोक मे पहुँचावेगा ॥१३०॥ तेरे पौत्र के द्वारा लाई गई परम पवित्र जल वाली गङ्गा इनको निष्पाप करके परम पद को प्राप्त करा देगी ॥१३१॥ हे वत्स ! अब तू इस यज्ञ के अश्व को लेजा जिससे तेरे पितामह का यज्ञ पूर्ण हो जावे । इसके पश्चात् अश्व को लेकर अंशुमान ने वहा आकर अपने पितामह राजा सगर से समस्त वृत्तान्त सुना दिया था ॥१३२॥ फिर राजा सगर ने ब्राह्मणों के साथ बैठकर अपने यज्ञ अश्वमेघ का यजन कर उसे पूर्ण किया था। तपश्चर्या से भगवान् विष्णु की समाराधना करके श्री हरि के परमपद को प्राप्त हो गया था ॥१३३॥

अंशं ह्यंशुमतः पुत्रो दिलीप इति विश्रुत ।
तस्माद्भगीरथो जातो यो गङ्गामानयद्दिवः ॥१३४
भगीरथस्य तपसा तुष्टो ब्रह्मा ददौ मुने ।
गङ्गां भगीरथायाथ चितयामास धारणे ॥१३५
ततश्च शिवमाराध्य तद्द्वारा स्वर्णदीं भुवम् ।
आनीय तज्जलैः स्पृष्ट्वा पूतान्निन्ये दिव पितॄन् ॥१३६

भगीरथान्वये जात सुदासो नाम भूपतिः ।
तस्य पुत्रो मित्रसह सर्वलोकेपु विश्रुत. ॥१३७
वसिष्ठशापात्प्राप्त ससौदासो राक्षसी तनुम् ।
गङ्गाविन्दुनिषेकेण पुनर्मुक्तो नृपो ऽभवत् ॥१३८

फिर उस अशुमान का दिलीप नाम वाला परम प्रसिद्ध पुत्र उत्पन्न हुआ था। उस दिलीप के भागीरथ नामक पुत्र हुआ था और उसने ही स्वर्ग लोक से यहाँ पर गङ्गाजी को लाकर विराजमान किया था ॥१३४॥ हे मुने ! भगीरथ ने अति उग्र तप किया था जिससे परम प्रसन्न एव सन्तुष्ट होकर ब्रह्माजी ने भगीरथ को गङ्गाजी दे दी थीं। उस समय भगीरथ ने अपने मनमें विचार किया था कि इन गङ्गाजी को यहाँ से जाने पर धारण कौन करेगा ॥१३५॥ गङ्गादेवी के प्रपात करने के लिये फिर राजा भगीरथ ने परम दयालु भगवान् शङ्कर की आराधना की थी और उनके ही द्वारा स्वर्ग से गङ्गाजी को इस भूमण्डल मे लेकर भगीरथ नृपति स्वय पवित्र हुये और पितरो को भी जल का स्पर्श करा कर स्वर्ग लोक मे पहुँचा दिया था ॥१३७॥ भगीरथ राजा के वश मे एक सुदास नाम वाला राजा हुआ था। उसका पुत्र समस्त लोको में मित्र सह नाम से प्रसिद्ध हुआ था ॥१३६ वसिष्ठ मुनि के शाप से उस सौदास को राक्षस का शरीर प्राप्त हो गया था वह राजा भी गङ्गाजल के छींटे पडने ही से राक्षसी भाव से मुक्त होकर मनुष्य होगया था ॥१३८

॥ सौदास चरित्र ॥

शप्त कथ वसिष्ठेन सौदासो नृपसत्तम ।
गङ्गाविन्दुभिषेकेण पुन शुद्धोऽभवत्कथम् ॥१
सवमेतदशेषेण भ्रातर्मे वक्तुमर्हसि ।

शृण्वता वदता चैव गङ्गाख्यान शुभावहम् ॥२
सौदास. सर्वधर्मज्ञ सर्वज्ञो गुणवाञ्छुचि ।
बुभुजे पृथिवी सर्वा पितृवद्रञ्जयन्प्रजा ॥३
सगरेण यथा पूर्वं महीय सप्तसागरा ।
रक्षिता तद्वदमुना सर्वधर्माविरोधिना ॥४
पुत्रपौत्रसमायुक्त सर्वैश्वर्यसमन्वित ।
त्रिशदष्टसहस्राणि बुभुजे पृथवी युवा ॥५
सौदासस्त्वेकदा राजा मृगयाभिरतिर्वनम् ।
विवेश सबल सम्यक् शोधित ह्याप्तमन्त्रिभि ॥६
निषादै सहितस्तत्र विनिघ्नन्मृगसञ्चयम् ।
आससाद नदी रेवा धर्मज्ञ स पिपासित ॥७

देवर्षि श्री नारदजी ने पूछा था कि बसिष्ठजी ने राजाओं में परम श्रेष्ठ सौदास को क्यों शाप दिया था और वह गङ्गाजलसे कैसे शुद्ध हुआ ? ॥१॥ हे भ्रात ! आप इन सब बातों का वर्णन मेरे सामने विस्तृत रूप से करने की कृपा कीजिये क्योंकि यह गङ्गा देवी अपनी कथा में वक्ता और श्रोता दोनों को ही पवित्र कर दिया करती है ॥२॥ श्री सनकजी ने नारदजी के प्रश्न का उत्तर देते हुये कहा था कि सुदास का पुत्र मित्रसह सभी धर्मों को जानने वाला था । सभी वस्तुओं और गुणों का ज्ञाता तथा परम पवित्र था । वह पिता के ही समान अपनी प्रजा का मनोरञ्जन करते हुये पृथ्वी के सुखों का भोग किया करता था ॥३॥ पहिले राजा सगर ने जिस तरह से सातों सागर वाली पृथ्वी का पालन किया था उसी प्रकार से राजा मित्रसह भी धर्म के किसी भी भाग में विरोध न करता हुआ इस भूमण्डल की रक्षा करता था ॥४॥ उस राजा ने युवावस्था ही में पुत्र-पौत्र और सभी तरह के ऐश्वर्य से परिपूर्ण रहकर अड़तीस हजार वर्ष तक इस पृथ्वी का सुख भोगा था ॥५॥ एक समय में राजा मित्रसह मन्त्रियों के

द्वारा सुरक्षित वन में शिकार करने के शौक से अपनी सेना के साथ प्रविष्ट हुआ था ।।६।। वहा पर उसी के साथ में निषाद लोग भी अपनी टोली बना कर मृगो की टोलियो को मार रहे थे।। वह धर्मज्ञ राजा प्यास लगने पर रेवा नदी के तट पर पहुँच गया था ।।७

सुदासतनयस्तत्र स्नात्वा कृत्वाह्निकं मुने ।
भुक्त्वा च मन्त्रिभिः सार्द्धं तां निशां तत्र चावसत् ।।८
ततः प्रातः समुत्थाय कृत्वा पौर्वाह्णिकीं क्रियाम् ।
बभ्राम मन्त्रिसहितो नर्मदातीरजे वने ।।६
वनाद्वनान्तरं गच्छन्नेक एव महीपतिः ।
आकर्णकृष्टवाणः सन् कृष्णसारं समन्वगात् ।।१०
दूरसैन्योऽश्वमारूढः स राजानुव्रजन्मृगम् ।
व्याघ्रद्वयं गुहासस्थमपश्यत्सुरते रतम् ।।११
मृगपृष्ठं परित्यज्य व्याघ्रयोः समुखं ययौ ।
धनुः सहितवाजेन तेनासौ शरशास्त्रवित् ।।१२
तां व्याघ्रीं पातयामास तीक्ष्णाग्रनतपर्वणा ।
पतमाना तु सा व्याघ्री षट्त्रिंशद्योजनायता ।।१३
तडित्वद्घोरनिर्घोषा राक्षसी विकृताभवत् ।
पतितां स्वप्रियां वीक्ष्य द्विपन्सं व्याघ्रराक्षसः ।।१४
प्रतिक्रियां करिष्यामीत्युक्त्वा चातर्दधे तदा ।
राजा तु भयसंविग्नो वने सैन्यं समेत्य च ।।१५

हे मुनिवर ! वहाँ पर राजा मित्रसह ने स्नान तथा आह्निक कृत्य समाप्त करके अपने मन्त्रियो के साथ भोजन किया था और उस रात मे वही पर ठहर गया था ।।८।। इसके उपरान्त दूसरे दिन मे प्रातःकाल होने पर उठकर पूर्वान्ह की क्रिया की थी और फिर अपने मन्त्रियो को साथ मे लेकर नर्मदा नदी के तीर पर भ्रमण करने लग गया था ।।६।। एक वन से दूसरे वन मे जाने के समय

मे राजा अकेला ही रह गया था और एक कृष्ण सार हिरन के पीछे कान तक बाण खीचकर दौडने लग गया था ॥ १० ॥ उस समय मे राजा के सैनिक बहुत दूर पीछे ही रह गये थे । उस अवसर पर घोडे पर सवार रहते हुये ही राजा ने एक गुफा के अन्दर व्याघ्र दम्पत्ति को मैथुन करते हुए देखा था ॥ ११ ॥ इनको देखकर उस राजा ने हिरण का पीछा करना तो छोड दिया और अपने धनुप पर शर चढा कर उस व्याघ्र दम्पत्ति के जोडे की ओर बढ गया था ॥१२॥ उस राजा ने अत्यन्त तीक्ष्ण अग्र भाग वाले तथा जमी हुई गाँठ से युक्त बाण से उस जोडे मे से बाघनी को मार कर गिरा दिया था। उस व्याघ्री ने जब मौत के मुँह मे गमन कर रही थी। विद्युत से युक्त मेघ के समान बडी भारी गर्जना की थी और एकसो चौआलीस कोस लम्बी बेडोल भयावह राक्षसी का स्वरूप धारण करके मर गयी थी। उस समय मे अपनी प्रिया को मरी हुई देखकर वह व्याघ्र रूपी राक्षस बडा भारी द्वेष करके राजा से कहने लगा था—मैं तेरे इस अत्याचार का बदला लेकर छोडूँगा। इतना कहकर वह अन्तर्धान होगया था। इसके ऐसा कहने पर राजा को बडा भय हुआ और अत्यन्त उद्विग्न होकर वह अपने सैनिको से मिला था ॥१३।१४।१५

तद्वृत्त कथयन्सार्वान्स्वा पुरी स न्यवर्तत ।
शङ्कमानस्तुतद्रक्ष कृत्याद्राजा सुदासज ॥१६
परितत्याज मृगया तत प्रभृति नारद ।
गते बहुतिथे काले हयमेध मख नृप ।
समारेभे प्रसन्नात्मा वशिष्ठाद्यमुनीश्वरै। ।१७
तत्र ब्रह्मादिदेवेभ्यो हविर्दत्त्वा यथाविधि ।
समाप्य यज्ञनिष्क्रातो वशिष्ठ स्नातकोऽपि च ॥१८

अत्रान्तरे राक्षसोऽसौ नृपहिंसितभार्यकः ।
कर्तुं प्रतिक्रिया राज्ञे समायातो रुषान्वितः ॥१६
स राक्षसस्तस्य गुरो प्रयाते वशिष्ठवेष तु तदैव धृत्वा ।
राजानमभ्येत्य जगाद भोक्ष्ये मास समिच्छाम्यहमित्युवाच ॥२०
भूय समास्थाय स सूदवेष पक्त्वामिष मानुषमस्य प्रादात् ।
स्थितश्च राजापि हिरण्यपात्रे धृत्वा गुरोरागमन प्रतीक्षन् ॥२१
तन्मास हेमपात्रस्थ सौदासो विनयान्वित. ।
समागताय गुरवे ददौ तस्मै स सादरम् ॥२२

राजा ने अपने सैनिको को वह सब वृत्तान्त सुना दिया और वापिस अपनी नगरी को लौट पडा सुदास का पुत्र राजा मित्रसह उस राक्षस के कृत्य से सदा शङ्कित रहा करता था। इसलिये उसने उस दिन से मृगया का करना ही एक दम बन्द कर दिया। हे नारद! बहुत सा समय व्यतीत हो जाने पर उस राजा ने चित्त मे प्रसन्नता करके वशिष्ठ आदि ऋषीश्वरो के साथ मिलकर अश्वमेध यज्ञ के यजन करने का आरम्भ किया था ॥१६।१७॥ उसमे ब्रह्मा आदि देव वृन्द को हवि देकर और यज्ञ को सविधि समाप्त करके वह राजा और वशिष्ठ महर्षि उस यज्ञ मण्डप से बाहर चले गये थे ॥१८॥ इसी अन्तर मे जिसकी भार्या को राजा ने वन मे मार कर गिरा दिया था वह राक्षस महान क्रोध से भरकर बदला लेने के लिये राजा के समीप पहुँच गया था ॥१६॥ वह वशिष्ठ मुनि के चले जाने पर वशिष्ठ मुनि का स्वरूप धारण कर राजा के पास पहुँचा और उससे कहने लगा था—'मैं मास खाऊगा, फिर उस राक्षस ने पाचक का रूप धारण किया था और राजा को मनुष्य का मास पकाकर दे दिया था। राजा भी उसको एक सुवर्ण के पात्र मे रखकर उस मांस को आदर के साथ गुरुजी को अर्पित करने लगा था ॥२०।२१।२२

त दृष्ट्वा चिन्तयामास गुरु किमिति विस्मित ।

अपश्यन्मानुष मासं परमेण समाधिना ॥२३
अहोऽस्य राज्ञो दौ शील्यमभक्ष्य दत्तवान्मम ।
इति विस्मयमापन्न प्रमन्युरभवन्मुनि ॥३४
अभोज्य मद्विघाताय दत्त हि पृथिवीपते ।
तस्मात्तवापि भवतु ह्येभदेव हि भोजनम् ॥२५
नृमास रक्षसामेव भोज्य दत्त मम त्वया ।
तद्याहि रक्षसत्व त्व तदाहारोचित नृप ॥२६
इति शाप दमत्यस्मिन्सौदासो भय विह्वल ।
आज्ञप्तो भवतीवेति सक्पोऽरमै व्यजिज्ञपत् ॥२७
भूयश्च चिन्तयामास वशिष्ठस्तेन नोदित ।
रक्षसा वञ्चित भूत ज्ञातवान् दिव्यचक्षुषा ॥२८

इसको देखकर योगी गुरुजी ने परम विस्मित होकर विचार किया था कि—यह क्या है और जब बहुत ध्यान से देखा तो उनको वह मनुष्य का मास ज्ञात हो गया था ॥२३॥ इससे परम विस्मित हुये मुनि को महान् क्रोध हो गया था । उन्होने विचार किया ओहो ! इस राजा ने कैसा दुष्टता का कार्य किया है इससे मुझे सर्वथा अभक्ष्य नर मास भक्षण करने को दिया है ॥२४॥ वशिष्ठजी ने कहा—हे राजन् ! तूने मेरी सम्पूर्ण तपश्चर्या का नाश करने के लिय आज यह अभोज्य पदार्थ मेरे अर्पण किया है । अतएव जा, यह तेरा ही भोजन होगा ।।२५॥ अरे दुष्ट राजा, तूने यह राक्षसो का भाजन मुझे दिया है अतएव इसके खाने का उचित पात्र तू आज से राक्षस हाजा ।।२६॥ राजा मित्रसह श्री वसिष्ठजी के इस प्रकार से शाप देन पर भय से बचैन होगया था और परम विस्मित गात्रो वाला होकर कहने लगा कि आपने ही मुझे आज्ञा प्रदान की थी, मेरा इसमे क्या दोष है ॥२७॥ राजा की इस बात का सुनकर वसिष्ठजी को कुछ प्रेरणा मिली थी और उन्होंने पुन याग भाग के द्वारा विचार किया

तो दिव्य चक्षु से उन्होंने देखा था कि राक्षस ने ही राजा को वञ्चित किया है ॥२८

राजापि जलमादाय वशिष्ठ शप्तुमुद्यत ॥२९
समुद्यत गुरु शप्ता दृष्ट्वा भूयो रुषान्वितम् ।
मदयती प्रिया तस्य प्रत्युवाचाथ सुव्रता ॥३०
भो भो क्षत्रियदायाद कोप सहतुं मर्हसि ।
त्वया यत्कर्म भोक्तव्य तत्प्राप्त नात्र सशय ॥३१
गुरु तु कृत्य हु कृत्य यो वदेन्मूढधीर्नर ।
अरण्ये निजले देशे स भवेद् ब्रह्मराक्षस ॥३२
जितेन्द्रिया जितक्रोधा गुरुशुश्रूपणे रता ।
प्रयान्ति ब्रह्मसदनमिति शास्त्रेपु निश्चय ॥३३
तयोक्तो भूपति कोप त्यक्त्वा भार्या ननन्द च ।
जल कुत्र क्षिपामीति चिन्तयामास चात्मना ॥३४
तज्जल यत्र ससिक्त तद्भवेद्भस्म निश्चितम् ।
इति मत्वा जल तत्तु पादयोर्न्यक्षिपत्स्वयम् ॥३५

उस समय मे राजा भी हाथ मे जल ग्रहण करके वशिष्ठ मुनि को शाप देने के लिये प्रस्तुत हो गया था ॥२९॥ उस अवसर पर वसिष्ठजी ने देखा था कि राजा परम क्रुद्ध हो गया है और मुझे शाप देने के लिये तैयार हो गया है तो उसकी रानी जो परम सुन्दर व्रत वाली थी और जिसका मदयन्ती नाम था राजा से निवेदन करने थी ॥३०॥ मदयन्ती ने उस समय मे कहा था—हे क्षत्रिय पुत्र ! अपने इस क्रोधावेश को रोकिये । जो कर्म आपको भोगना था वह आपको अब प्राप्त हो गया है ॥३१॥ महान् मूढ पुरुष जो होता है वही अपने गुरु से तू या हूँ ऐसा कहकर बोला करता है वह निश्चय ही निर्जन बियावान वन मे ब्रह्म राक्षस हुआ करता है ॥३२॥ शास्त्रों का यह परम निश्चित सिद्धान्त है कि जो अपनी सब इन्द्रियों को

और क्रोध को वश मे रखते हुये गुरु की सेवा सुश्रूषा मे निरन्तर निरत रहा करते हैं वे ब्रह्म लोक मे गमन किया करते हैं ॥ ३३ ॥ अपनी पत्नी के ऐसे समझाने पर राजा ने अपने आपको शान्त किया था और अपनी भार्या को आनन्दित करके स्वयही अपने मनमे विचार किया था कि अब शाप देने के लिये ग्रहण किये हुये जल को कहाँ छोड़ा जावे ॥३४॥ वह जल तो शाप देने के विचार से ही ग्रहण किया था अतएव वह जल जिस पर भी गिरेगा वह निश्चय ही भस्मीभूत हो जायगा । गहराई से यह विचार कर वह जल अपने ही चरणो मे डाल दिया था ॥३५

तज्जलस्पर्शमात्रेण पादौ कल्मापता गतौ ।
कल्मापपाद इत्येव तत प्रभृति विस्तृत ॥३६
कल्मापपादो मतिमान् प्रिययाश्वासितस्तदा।
मानसा सोऽतिभीतस्तु ववन्दे चरण गुरो ॥३७
उवाच च प्रपन्नस्त प्राञ्जलिर्नयकोविद ।
क्षमस्व भगवन्सर्वं योपराध कृतो मया ॥३८
तच्छ्रुत्वोवचा भूपाल मुनिर्नि श्वस्य दु खित ।
आत्मान गर्हयामास ह्यविवेकपरायणम् ॥३९
अविवेको हि सर्वेषामापदा परम पदम् ।
विवेकरहितो लोके पशुरेव न सशय ॥४०
राज्ञा त्वजानता नूनमेतत्कर्मोचित कृतम् ।
विवेकरहितोऽज्ञोऽह यत पाप समाचरम् ॥४१
विवेकनियतो याति यो वा को वापि निर्वृतिम्।
विवेकहीनमाप्नोति को वा यो वाप्यनिर्वृतिम् ॥४२

उस जल का स्पर्श होते ही उस राजा के पैर चितकवरे से हो गये थे और उस दिन से वह फिर कल्मपपाद नाम से लोक मे प्रसिद्ध हो गया था ॥३६॥ कल्मपपाद बहुत ही बुद्धिमान था, अपनी प्रिया

पत्नी के समाश्वासन देने पर अपने मन मे बहुत अधिक डरते २ फिर उसने भृगुजी के चरणो मे प्रणाम किया था ॥३७॥ इसके अनन्तर नीतिशास्त्र मे परम चतुर उस राजा ने हाथ जोड कर अपने गुरुजी के चरणो की शरण मे जाकर रहने लग गया था और उसने उनसे विनम्र होकर प्रार्थना की थी । हे भगवन् ! मुझ से जो यह महान् अपराध इस समय मे बन गया है उसे अब आप क्षमा कर दीजिए ॥३८॥ इस बात का श्रवण कर मुनिवर वसिष्ठ जी बहुत ही दु खित हुए और उन्होने एक दु.ख भरी श्वास लेकर उस राजा से कहा—मैं बहुत ही विवेकहीन हूँ, मुझे धिक्कार है । यह कार्य और अकार्य का विचार न रहना ही अविवेक है और यही समस्त आपदाओ का मूल होता है । जो विवेक से हीन रहा करता है वह मनुष्य पशु के ही तुल्य हो जाया करता है ॥३९-४०॥ हे राजन् ! तुम को इसका ज्ञान ही नही था अतएव आप भी मुझे शाप दे देते तो बहुत ही उचित होता क्यो कि मूढ और विवेक से रहित था । इसी कारण से मुझ से यह पाप बन गया था ॥४१॥ जो प्राणी विवेक बुद्धि के द्वारा अपने मन को वश मे रखता है वह भले ही कोई भी हो सदा सुख प्राप्त किया करता है तथा जो विवेक को त्याग देता है उसे हर तरह का दुख आकर दबा दिया करता है ॥४२॥

> इत्युक्त्वा चात्मनात्मान प्रत्युवाच मुनिर्नृ पम् ।
> नात्यन्तिक भवेदेतद् द्वादशाब्द भविष्यति ॥४३
> गङ्गाविन्दुभिषिक्तस्तु त्यक्त्वा वै राक्षसी तनुम् ।
> पूर्वरूप त्वमापन्ना भोक्ष्यसे मेदिनीमिमाम् ॥४४
> तद्विदुगेवम्भूतज्ञानेन गतकल्मष ।
> हरिमेवापगे भूत्व परा शान्ति गमिष्यसि ॥४५
> इत्युक्त्वाथर्वविद्भूप वसिष्ठ स्वाश्रम ययौ ।
> राजापि दु खसपन्नो राक्षसी तनुमाश्रित. ॥४६

क्षुत्पिपासाविशेषार्तो नित्यं क्रोधपरायणः ।
कृष्णक्षपाद्युतिर्भीमो बभ्राम विजने वने ॥४७
मृगांश्च विविधांस्तत्र मानुषांश्च सरीसृपान् ।
विहङ्गमान्प्लवङ्गांश्च प्रशस्तास्तानभक्षयत् ॥४८
अस्थिभिर्बहुभिर्भूय. पीतरक्तकलेवरैः ।
रक्तान्त्रप्रेतकेशैश्च चित्रासीद् भूर्भयंकरी ॥४९

इस तरह से स्वय आप ही अपनी बुराई का काम न कर फिर मुनि उस राजा से कहने लगे थे—यह मेरा शाप चिरकाल तक नहीं रहेगा । बारह वर्ष के बाद यह छूट जायेगा ॥४३॥ जब तुम्हारे शरीर पर भागीरथी गङ्गाजी के जल से अभिषेक होगा तो इस राक्षस शरीर से तुम्हारी मुक्ति हो जावेगी और पुन. तुम प्रथम स्वरूप को प्राप्त कर इस पृथ्वी का सुख भोगोगे ॥४४॥ गङ्गाजी के जल से अभिषिक्त होने पर तुमको ज्ञान की प्राप्ति होगी और समस्त तुम्हारे पाप नष्ट हो जायँगे । फिर तुम भी हरि की सतत सेवा करके परम शान्ति का लाभ करोगे ॥४५। अथर्व वेद के पूर्ण ज्ञाता महा मुनि वशिष्ठजी उस राजा को इस प्रकार से सान्त्वना देकर अपने आश्रम मे वापिस लौटकर चले गये थे और वह राजा राक्षस का शरीर प्राप्त कर महान् कष्ट मे पड गया था ॥४६॥ राक्षस शरीर को प्राप्त कर वह भूख प्यास से परम व्याकुल रहने लग गया था । सर्वदा ही वह क्रोध से भरा रहता था । कृष्ण पक्ष की रात्रि के समान ही महान भीषण कान्ति वाला होकर निर्जन वनो मे भ्रमण करने लग गया था ॥४७॥ वन मे विभिन्न प्रकार के मृग-मनुष्य, पक्षी, सर्प और श्रेष्ठ वानरो का भक्षण किया करता था ॥४८॥ वहाँ की भूमि बहुत सी अस्थियो से तथा रक्त पान कर चूसी हुई लाशो से और रुधिर से लिप्त हुए मृत मनुष्यों के केशो से चितकबरी और अत्यन्त भयावह हो गई थी ॥४९

ऋतुनये स पृथिवी शतयोजनविस्तृताम् ।
कृत्वातिदु खिता पश्चाद्वनान्तरमुपागतम् ॥५०
तत्रापि कृतवान्नित्य नरमासाशन सदा ।
जगाम नर्मदातीर मुनिसिद्धनिषेवितम् ॥५१
विचरन्नर्मदातीरे सर्वलोकभयकर ।
अपश्यत्कचन मुनि रमन्त प्रियया सह ॥५२
क्षुधानलेन सतप्तस्त मुनि समुपाद्रवत् ।
जग्राह चातिवेगेन व्याघ्रो मृग शिशु यथा ॥५३
ब्राह्मणी स्वपति वीक्ष्य निशाचरकरस्थितम् ।
शिरस्यञ्जलिमाधाय प्रोवाच भयविह्वला ॥५४
भो भो नृपतिशार्दूल त्राहि मा भवविह्वलाम् ।
प्राणप्रियप्रदानेन कुरु पूर्ण मनोरथम् ॥५५
नाम्ना मित्रसहस्त्य हि सूर्यवशसमुद्भव ।
न राक्षसस्ततोऽनाथा पाहि मा विजने वने ॥५६

वह राक्षस शरीर मे रहने वाला राजा छ मास पर्यन्त चार सौ कोस की भूमि को प्राणी विहीन एव दुःखमयी बनाकर फिर वहा से दूसरे वन मे चला गया था ॥५०॥ वहाँ पर भी नर मांस का भक्षण करता हुआ मुनि और परम सिद्धो के द्वारा सेवित नर्मदा नदी के तट पर भटकता हुआ पहुँच गया था ॥ ५१ ॥ सभी प्राणियो को भयभीत करने वाले उस राक्षस ने उस नर्मदा नदी के तट पर विचरण करते हुये एक मुनि को अपनी प्रिया पत्नी के साथ रमण करत हुये देखा था ॥५२॥ भूख की उग्र अग्नि से झुलसता हुआ वह राक्षस मुनि के ऊपर झपटा था और जिस तरह से व्याघ्र एक मृग के बच्चे को पकड लिया करता है उसी भाँति इस राक्षस ने भी उस विप्र को दबोच लिया था ॥५३॥ वह मुनि पत्नी ब्राह्मणी ने अपने स्वामी को राक्षस के हाथो मे फँसा हुआ देखा तो वह भय से अत्यन्त विह्वल होकर हाथ जोडकर कहने लगी थी ॥५४॥ उस मुनि पत्नी ने कहा— हे राजशार्दूल ! आप मुझे भय से विह्वल होती

रक्षा करिये । मेरे प्राण प्यारे पति को छोड दीजिए और मेरा
ोरथ पूर्ण करिए ॥५५॥ आप वास्तव मे राक्षस नही हैं । आप तो
रम पवित्र एव प्रख्यात सूर्य वश मे पैदा हुएहैं। अतएव इस निर्जन वन
मुझ अनाथ की इस समय मे आप रक्षा करिए ॥५६

या ना भर्तृ रहिता जीवत्यपि मृतोपमा ।
तथापि बालवैधव्य किं वक्ष्याम्यरिमर्दन ॥५७
न मातापितरौ जाने नापि बधु च कचन ।
पतिरेव परो बधु परम जीवन मम ॥५८
भवान्वेत्त्याखिलान्धर्मान्योपिता वर्त्तन यथा ।
त्रायस्व बन्धुरहिता बालापत्या जनेश्वर ॥५९
कथ जीवामि पत्यास्मिन्हीना हि विजने वने ।
दुहिताह भगवतस्त्राहि मा पतिदानत ॥६०
प्राणदानात्पर दान न भूत न भविष्यति ।
वदन्तीति महाप्राज्ञा प्राणदान कुरुष्व मे ॥६१
इत्युक्त्वा सा पपातास्य राक्षसस्य पदाग्रत ।
एव सप्रार्थ्यमानोऽपि ब्राह्मण्या राक्षसो द्विजम् ।
अभक्षयत् कृष्णसार शिशु व्याघ्रो यथा बलात् ॥६२
ततो विलप्य बहुधा तस्य पत्नी पतिव्रता ।
पूर्णशापहत भूपमशपत्क्रोधिता पुन ॥६३

जिस नारी का पति नही रहा करता है वह तो जीवित रहते हुई भी मृतक के ही समान हो जाया करती है । हे अरिमर्दन ! फिर भी जो बाल विधवा होती है उसके दुःख का तो मैं वर्णन ही क्या करूं ॥५७॥ मैं न तो अपनी माता को जानती हूँ और न अपने पिता का ही जानती हूँ । अन्य किसी भी बन्धु का ज्ञान मुझे नहीं है । मेरे तो यह पतिदेव ही परम बन्धु हैं और यही मेरे जीवन सर्वस्व हैं ॥५८॥ आप तो सभी धर्मों का भली भाँति ज्ञान रखते हैं और स्त्रियां

के व्यवहार वर्ताव को भी अच्छी तरह से जानते हैं। हे नभेश्वर ! इस समय मे मुझ बन्धु विहीन बालक सन्तति वाली अबला की आप सुरक्षा कीजिये ॥५६॥ मैं अपने स्वामी के बिना इस निर्जन वन मे कैसे जीवित रह सकूँगी। मैं आपकी पुत्री हूँ। आप इसस मय मे मुझे मेर पतिदेव का दान देकर मेरी रक्षा करिये ॥६०॥ परम बुद्धि मानो का कथन है कि प्राणो का दान परम श्रेष्ठ होता है इसकी समता अन्य कोई भी दान नही रखता है। ऐसा दान अब तक कोई नही हुआ है और न होगा, अत मेरी रक्षा करिये। मुझे प्राण-दान ही कीजिये ॥६१॥ इस तरह से विनती करके वह मुनि पत्नी उस राक्षस के चरणो म गिर पडी थी। उस ब्राह्मणी की इस प्रार्थना के करने पर भी वह राक्षस जैसे व्याघ्र कृष्ण मृग के बच्चे को बलात खा जाया करता है। उसी भाँति उस ब्राह्मण को खा गया था ॥६२ उस समय उसकी पतिव्रता पत्नी ने बहुत भारी विलाप किया था और प्रथम ही शाप से नष्ट राक्षस को क्रुद्ध होकर फिर शाप दे दिया था ॥६३

पति मे सुरतासक्त यस्माद्भिसितावान्यलात् ।
तस्मात्स्त्रीसङ्गम प्राप्तस्त्वमपि प्राप्स्यसे मृतिम् ॥६४
शप्त्वैव ब्राह्मणी क्रुद्धा पुन शापान्तर ददौ ।
राक्षसत्य ध्रुव तेऽस्तु मत्पतिर्भक्षितो यत ॥६५
सोऽपि शापद्वयं श्रुत्वा तया दत्त निशाचार ।
प्रमन्यु प्राह विनृजन्वोपादङ्गारसचयम् ॥६६
दुष्टे यस्मात्प्रदत्त मे वृथा शापद्वय त्वया ।
एकस्यैवापराधस्य शापस्त्वेको ममोचित ॥६७
यस्मात्त्दापसि दुष्टाग्रर्घ मयि शापान्तर तत ।
पिशाचयोनिमद्यैव याहि पुत्रसमन्विता ॥६८
तेनैव ब्राह्मणा सता पिशाचत्व तदा गता ।

क्षुधार्ता सुस्वरं भीमा रुरोदापत्यसंयुता ॥६६
राक्षसश्च पिशाची च क्रोशन्तौ निर्जने वने ।
जग्मतुर्नर्मदातीरो वटं राक्षससेवितम् ॥७०

अरे दुष्ट ! तूने मेरी रति मे आसक्त प्रिय पति को बलपूर्वक मार डाला है। इसलिये तू भी जब भी स्त्री का सङ्ग करेगा मृत होजायगा ॥६४॥ इस प्रकार से शाप देकर क्रोध मे भरी हुई ब्राह्मणी ने पुनः शाप दिया था कि अरे दुष्ट तूने मेरे पति का भक्षण कर लिया है अतएव तेरा यह राक्षसत्व बहुत समय तक अटल हो जावेगा ॥६५॥ उस समय मे वह राक्षस उस मुनि पत्नी के दिये हुए इन दो शापो को सुनकर क्रोध से धधकने लग गया था और क्रोध के अङ्गारे से उगलते हुए उससे बोला—अरी दुष्टे ! एक अपराध के लिए तुझे एक ही शाप देना उचित था। तूने व्यर्थ ही मुझे दो शाप दिये हैं ऐसा क्यो किया है ? ॥६७॥ अरी दुष्टे ! तूने एक ही अपराध पर दूसरा भी शाप दिया है इसलिये मैं भी तुझे शाप देता हूँ कि तू भी अपने पुत्र के सहित राक्षसी होजा ॥६८॥ उस राक्षस के द्वारा इस प्रकार से शाप देते ही वह ब्राह्मणी अपने पुत्र के सहित राक्षसी हो गई थी और अपने बालक के सहित भूखे होकर परम भयकर चीखे मारने लगी थी ॥६९॥ इस तरह से उस बियाबान वन मे चीखते व चिल्लाते हुये वे राक्षस और पिशाचिनी उस नर्मदा के तट पर एक राक्षस के निवास स्थान मे वट पर जाकर पहुँच गये थे ॥७०

औदासान्य गुरौ कृत्वा राक्षसी तनुमाश्रित. ।
तत्रास्ते दु खसतप्त. कश्चिल्लोकविरोधकृत् ॥७१
राक्षस च पिशाची च दृष्ट्वा स्ववटमागतौ ।
उवाच क्रोधबहुलो वटस्थो ब्रह्मराक्षस ॥७२
किमर्थमागतौ भीमौ युवा मत्स्थानमीप्सितम् ।
ईदृशौ केन पापेन जातौ मे ब्रुवता द्रुतम् ॥७३

सौदासस्तद्वच श्रुत्वा तया यच्चात्मना कृतम् ।
सर्व निवेदयित्वास्मै पश्चादेतदुवाच ह ।।७४
कस्त्वं वद महाभाग त्वया वै किं कृतं पुरा ।
सख्युर्ममातिस्नेहेन तत्सर्वं वक्तुमर्हसि ।।७५
करोति वञ्चनं मित्रे यो वा को वापि दुष्टधी ।
स हि पापफलं भुङ्क्ते यातनास्तु युगायुतम् ।।७६
जन्तूनां सर्वदुःखानि क्षयन्ते मित्रदर्शनात् ।
तस्मान्मित्रेषु मतिमान्न कुर्याद्वञ्चनं कदा ।।७७

उस स्थल में भी एक लोकों के विरोध करने वाला तथा अपने गुरु से उदासीनता दिखाने वाला होने के कारण से ही राक्षस शरीर पाकर दुःख से अत्यन्त सन्तप्त होकर निवास किया करता था ।।७१।। वह ब्रह्मराक्षस था और उसने जब यह देखा कि एक राक्षस और एक पिशाचिनी भी उसके वड के नीचे आ पहुँचे हैं तो वह क्रोध में भरकर कहने लगा ।।७२।। उसने कहा—अरे महान् भयङ्कर प्राणियो ! तुम मेरे परम प्रिय इस स्थान पर क्यों आये हो ? और यह भी बताओ कि किस पाप के करने के कारण तुम्हारी यह गति हुई है? ।।७३।। इस बात का श्रवण कर राजा सुदास के पुत्र मित्रसह ने और उस ब्राह्मणी ने स्वयं ही अपने आप जो कर्म किया था वह सब कह कर सुना दिया था । इसके पश्चात् उस सौदास ने पूछा था—उसने कहा—हे महाभाग ! आपभी अपना पूर्ण परिचय दो कि आप कौन हैं ? और पहिले कौनसा कुत्सित कर्म किया था जिसके कारण आप इस दशा में प्राप्त हुए हैं । मुझे तो आप अपना ही एक मित्र ही समझ लीजिए तथा बड़े ही स्नेह के साथ अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त सुना दीजिये ।।७५ जो अपने मित्र के साथ धोखा दिया करता है वह बहुत ही दुष्ट बुद्धि वाला होता है और वह चाहे कोई भी क्यों न हो दस हजार युगों तक पाप के फल की यातना ही भोगा करता है ।।७६।। मित्र के दर्शन से

पर प्राणी के समस्त दुःख नष्ट हो जाया करते हैं। इसलिये परम बुद्धि-
मान मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह अपने मित्रों से कभी भी प-
टिवाद न करे ॥७७

कल्याणपादैर्नैर्युक्तो यस्त्यक्तो सत्कथाश्रयः ।
उवाच प्रीतिमापन्नो धर्मवाक्यानि नारद ॥७८
ब्राह्मणः पुरा विप्रो मागधो वेदपारगः ।
सोमदत्त इति ख्यातो नाम्ना धर्मपरायणः ॥७९
प्रवर्तोऽद्य महाभाग विद्यया चरणा धनैः ।
औदासीन्य गुणैः कृत्वा प्राप्तवानीदृशीं मतिम् ॥८०
न कोऽपि मम दिविजिनास्तत्रगंर्तासु प्रियाः ।
मया तु भक्षिता विप्रा नगलोऽस्य गह्वराः ॥८१
गुल्मिणागतो नित्यमन्नपानेन पीडितः ।
अगम्यागमनो नित्यं मांसाशनपरायणः ॥८२
पूर्ववासनानुध्याना गतामन्यप्रदायिनी ।
तवानुग्रहमासाद्य ततः श्रीमान् चापरम् ॥८३

आपको वर्णन करके बतलाता हूँ। हे सखे ! अब आप अपने मन को एकाग्र करके उसका श्रवण करिये ॥८५॥ वेदो का अध्यापन कराने वाला—वेदार्थ की श्रुतियो को बताने वाला—शास्त्रों की विशद व्याख्या करने वाला—धर्म का उपदेश देने वाला, नीति शास्त्र को बताने वाला, मन्त्रोपदेश करने वाला तथा मन्त्रो के अर्थ समझाने वाला, वेदो मे समुत्पन्न सन्देहो को दूर करने वाला, व्रतो का उपदेश प्रदान करने वाला, भय से बचाने वाला, अन्नदान देने वाला, श्वसुर, मामा, बडा भाई, पिता, उपनयन संस्कार कराने वाला, वह जिसने गर्भाधानादि समस्त संस्कार कराये हों, ये सब गुरु ही माने जाते हैं। इन सभी का सादर पूजन एवं वन्दना करनी चाहिये ॥८६।८७।८८।८९॥ कल्माष पाद ने इस पर उस ब्रह्म राक्षस से कहा—आपने तो बहुत से प्रकार के गुरुओ का वर्णन कर दिया है। इन सब मे परम श्रेष्ठ गुरु कौन होता है। अथवा ये सभी समान ही हुआ करते हैं। हे मित्र ! यह सब आप ठीक-ठीक बतलाइये ॥९०

साधु साधु महाप्राज्ञ यत्पृष्टं तद्वदामि ते।
गुरुमाहात्म्यकथनं श्रवणं चानुमोदनम् ॥९१
सर्वथा श्रेय आधत्ते तस्माद्वक्ष्यामि साम्प्रतम्।
एते समानपूजार्हाः सर्वदा नात्र संशयः ॥९२
तथापि शृणु वक्ष्यामि शास्त्राणां सारनिश्चयम्।
अध्यापकाश्च वेदानां मन्त्रव्याख्याकृतस्तथा ॥९३
पिता च धर्मवक्ता च विशेषगुरवः स्मृताः।
एतेषामपि भूपाल शृणुष्व प्रवरं गुरुम् ॥९४
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञमापिनं प्रवदामि ते।
यः पुराणानि वदति धर्मयुक्तानि पण्डितः ॥९५
संसारपाशविच्छेदकरणानि स उत्तमः।
देवपूजार्हकर्माणि देवतापूजने फलम् ॥९६

ज्ञायते च पुराणेभ्यस्तस्मात्तानीह देवता. ।
सर्ववेदार्थसाराणि पुराणानीति भूपते ॥६७
वदन्ति मुनयश्चैव तद्वक्ता परमो गुरु ।
य: ससारार्णवं तत्तु्मुद्योग कुरुते नर ॥६८
शृणुयात्स पुराणानि इति शास्त्रविभागकृत् ।
प्रोक्तवान्सर्वधर्माश्च पुराणेपु महीपते ॥६६

उस ब्रह्म राक्षस ने कहा—हे महा प्राज्ञ ! बहुत अच्छा प्रश्न है। यह तुम्हारा पूछना बहुत ही अच्छा एव उचित है। मैं वह भी अभी आपको बतलाता हूँ। क्योकि गुरु के विषय मे उनकी महिमा का वर्णन, श्रवण अथवा गुरु के माहात्म्य का अनुमोदन करना सबको कल्याण करने वाला हुआ करता है। इसीलिए मैं अभी इसका वर्णन करता हूँ। यद्यपि वैसे उपर्युक्त गुरुजन जिनके नाम मैंने अभी आपको बतलाये हैं ये सभी समान ही पूजन के पात्र हुआ करते हैं ॥६१।६२॥ तथापि जो शास्त्रो का निश्चित सिद्धान्त है वही मैं आपको बतलाये देता हूँ। जो वेदो की शिक्षा दिया करते हैं—जो मन्त्रोपदेश एव मन्त्रो की व्याख्या किया करते हैं—जो गर्भ धारण कराने वाले पिता हैं और जो धर्म के ज्ञाता हैं। ये विशेष पूजा के पात्र गुरु कहे जाया करते हैं। हे भूपाल ! इनमे भी जो परम श्रेष्ठतम गुरु हैं उनको भी अब आप सुनिये ॥६३।६४॥ सर्व धर्म के जानने वालो का जो मन्तव्य है उसी का मैं वर्णन कर रहा हूँ। जो इस ससार के आवागमन के पाश का छेदन कर धर्मपूर्ण पुराणो का वर्णन किया करता है वही सर्वोत्तम गुरु है। देवो की पूजा का कर्म और देवो की अर्चना का फल पुराणो के द्वारा ही ज्ञात हुआ करता है। अतएव हे राजन् ! पुराण सब वेदो के तत्वार्थ के सार स्वरूप हुआ करते है इस कारण से ये देवता ही होते हैं ॥६५।६६।६७॥ मुनिगण यही कहते हैं कि उन पुराणो का वर्णन करने वाला परम श्रेष्ठ गुरु होता है। जो प्राणी

इस ससार रूपी गहन सागर को पार करने का उद्या
उसको पुराणो का श्रवण अवश्य ही करना चाहिये । हे राजन् ! कृष्ण द्वैपायन व्यासदेव ने सब शास्त्रो का विभाजन कर पुराणो मे सभी (समस्त) धर्मों का विशद एव सरल वर्णन किया है ॥६८।६६॥

तर्कस्तु वादहेतु स्यान्नीतिस्त्वैहिकसाधनम् ।
पुराणानि महाबुद्धे इहामुत्र सुखाय हि ॥१००
य शृणोति पुराणानि सतत भक्तिसयुक्त ।
तस्य स्यान्निर्मला बुद्धिर्भूयो धर्मपरायण १०१
पुराणश्रवणाद्भक्तिर्जायते श्रीपतौ शुभा ।
विष्णुभक्तनृणा भूप धर्मे बुद्धि प्रवर्त्तते ॥१०२
धर्मात्पापानि नश्यन्ति ज्ञान शुद्ध च जायते ।
धर्मार्थकाममोक्षाणा ये फलान्यभिलिप्सव १०३
शृणुयुस्ते पुराणानि प्राहुरित्थ पुराविद ।
अह तु गौतममुने सर्वज्ञाद् ब्रह्मवादिन ॥१०४
श्रुतवान्सर्वधर्मार्थ गङ्गातीरे मनोरमे ।
कदाचित्परमेशस्य पूजा कर्त्तुमह गत ॥१०५

हे महान् बुद्धिशाली सौदास ! तर्क करना तो एक विवाद का कारण होजाया करता है और नीति के अनुसरण करते ही इस लोक के सब कार्य सिद्ध हुआ करते हैं । ये पुराण इस लोक और परलोक दोनो ही जगहो पर सुख प्रदान किया करते हैं ॥१००॥ इन पुराणो का श्रवण करने से श्रीपति भगवान की परम शुभ भक्ति समुत्पन्न हुआ करती है और हे राजन् ! जो मनुष्य भगवान् विष्णु के भक्त होते हैं उनकी बुद्धि सदा धर्म कर्मों मे लगा करती है । जो भक्त भाव के सहित सदा श्रवण किया करता है उसकी बुद्धि निर्मल हो जाया करती है और वह फिर अधिकाधिक धर्मों का समाचरण किया करता है ॥१०१।१०२॥ धर्म का आचरण करने से समस्त पाप नष्ट हो जाया

करते हैं और मन मे निर्मलता आया करती है। प्राचीन ज्ञानवान् लोग कहा करते हैं कि 'जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, इन चारो पुरुषार्थों को यथावत् प्राप्त करने की अभिलाषा रखते हो और इनका श्रेष्ठतम फल प्राप्त करना चाहते हो उनको सब कुछ त्याग कर पुराणो का ही श्रवण करना चाहिये। मैंने तो परम रमणीय श्री गङ्गा नदी के तीर पर सर्व ज्ञाता महान ब्रह्मवादी श्री गौतम मुनि के मुख से सम्पूर्ण धर्मों के तात्पर्य का श्रवण किया था। एक समय की घटना है कि मैं भगवान शकरजी का अर्चन करने मे सलग्न था ॥१०३।१०४।१०५

उपस्थितायापि तस्मै प्रणाम न ह्यकारिषम् ।
स तु शान्तो महाबुद्धिर्गौतमस्तेजसा निधि ॥१०६
मन्त्रोदितानि कर्माणि करोतीति मुद ययौ ।
यस्त्वर्चितो मया देव. शिव: सर्वजगद्गुरु. ॥१०७
गुर्ववज्ञा कृता येन राक्षसत्वे नियुक्तवान् ।
ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि योऽवज्ञा कुरुते गुरोः ॥१०८
तस्यैवाशु प्रणश्यन्ति धीविद्यार्थात्मजक्रियाः ।
शुश्रूषा कुरुते यस्तु गुरूणा सादर नरः १०९
तस्य सपद्भवेद्भूप इति प्राहुर्विपश्चितः ।
तेन शापेन दग्धोऽहमन्तश्चैव क्षुधाग्निना ॥११०
मोक्ष कदा प्रयास्यामि न जाने नृपसत्तम ।
एव वदति विप्रेन्द्र वटस्थेऽस्मिन्निशाचरे ॥१११
धर्मशास्त्रप्रसगेन तयोः पाप क्षय गतम् ।
एतस्मिन्नन्तरे प्राप्त. कश्चिद्विप्रोऽतिधार्मिकः ॥११२

इसी बीच मे मेरे गुरुवर नदी पर समागत हो गये थे। मैं पूजन मे लगा रहने के कारण से उनके चरणों मे उपस्थित होकर उन्हे प्रणाम न कर सका था परन्तु गौतम मुनि महान मेधावी महा पुरुष थे और उत्तम तेज के निधि थे इसीलिये वे शान्त रहे थे ॥१०६॥ वे यह

हमारा शिष्य मन्त्रशास्त्र मे कहे हुये कर्मों का विधान कर रहा है–यह समझ कर वे बहुत प्रसन्न हुये थे परन्तु उन भगवान् शङ्कर ने ही जिनके यजनार्चन मे लगा हुआ था, गुरु की अवज्ञा करने के अपराध के कारण ही मुझे राक्षस बना दिया था। जो भी कोई ज्ञानपूर्वक या अज्ञान स गुरुदेव का अपमान किया करता है उसकी, विद्या, बुद्धि, सम्पत्ति, सन्तति और सत्कर्मानुष्ठान ये सभी अत्यन्त शीघ्र ही नष्ट हो जाया करते हैं। जो अपने गुरुदेव की समादर के सहित सेवा, सत्कार किया करते हैं ॥१०७।१०८।१०९।११०॥ हे राजन्! उसको अतुल सम्पदा प्रदान हुआ करती है। ऐसा विद्वजन कहा करते हैं। मैं उन ही भगवान् के शाप से परम दुःखित होकर झुलस रहा हूँ। अन्दर भूख की अग्नि मुझे जला रही है ॥१११॥ मैं नही मानता कि इस महान कष्ट से मेरा छुटकारा कब तक होगा। हे विप्रेन्द्र! वह उस वट वृक्ष पर निवास करने वाला ब्रह्म राक्षस इस प्रकार से कह ही रहा था कि धर्म चर्चा के करने से उसका सम्पूर्ण पाप क्षीण हो गया था। उसी समय मे एक परम धार्मिक ब्राह्मण वहाँ पर आ पहुँचा था ॥११२

कलिङ्गदेशसभूतो नाम्ना गर्ग इति स्मृत ।
वहन्गङ्गाजल स्कधे स्तुवन् विश्वेश्वर प्रभुम् ॥११३
गायन्नामानि तस्यैव मुदा हृष्टतनूरुह् ।
समागत मुनि दृष्ट्वा पिशाचो राक्षसी च तौ ॥११४
प्राप्ता न पारमेत्युक्त्वा प्राद्रवन्तूर्ध्वबाहव ।
तेन कीर्तितनामानि श्रुत्वा दूरे व्यवस्थिता ।
अशक्तास्त घर्षयितुमिदमूचुश्च राक्षस ॥११५
अहो विप्र महाभाग नमस्तुभ्य महात्मने ।
नामकीर्तनमाहात्म्याद्राक्षसा दूरगा वयम् ॥११६
अस्माभिर्भक्षिता पूर्वं विप्रा कोटि सहस्रश ।
नामप्रावरण विप्र रक्षति त्वा महाभयात् ॥११७

नामश्रवणमात्रेण राक्षसा अपि भो वयम् ।
परा शान्ति समापन्ना महिम्ना ह्यच्युतस्य वै ॥११८
सर्वथा त्व महाभाग रागादिरहितो ह्यसि ।
गङ्गाजलाभिषेकेण पाह्यस्मात्पातृकोऽन्वयात् ॥११६

वह ब्राह्मण कलिंग देश मे समुत्पन्न हुआ था और उसका नाम गर्ग था। वह अपने कन्धे पर गङ्गाजल लिये हुये विश्वेश्वर प्रभु का स्तवन कर रहा था ॥११३॥ भगवान् के परम शुभ नामों का कीर्तन कर रहा था। प्रसन्नता के कारण से उसका शरीर पुलकायमान हो रहा था। उस श्रेष्ठ मुनि को समागत हुये देखकर ये राक्षस और पिशाचिनी मनमे विचार करने लगे कि हमारा भोजन प्राप्त हो गया है। ये दोनों अपनी भुजायें उठाकर उसे पकड़ने के लिये दौडे थे। किन्तु उसके मुख से उच्चरित भगवान् के शुभ नाम कीर्तन को सुन कर कुछ रुक गये थे। उस समय मे उस विप्र को धर दबोचने में असमर्थ होकर वे राक्षस इस तरह से कहने लगे थे ॥११४।११५ उन्होने विनम्रता के साथ उससे कहा—हे महाभाग (ब्राह्मण) हम महान आत्मा वाले आपको सादर प्रणाम करते हैं। ओहो ! भगवान विष्णु के नाम कीर्तन का कैसा अद्भुत प्रभाव है कि इस नाम के माहात्म्य के कारण से हम सरीखे राक्षस आपके समीप मे फटक भी नही सकते हैं। ऐसे महाप्रभु श्री विष्णु भगवान की सेवा मे भी हमारा प्रणाम समर्पित है ॥११६॥ इससे पूर्व हमने सहस्रों ब्राह्मणो का भक्षण कर डाला था परन्तु यह नामोच्चारणरूपी दुर्ग आपकी रक्षा महान भय से कर रहा है ॥११७॥ हम लोग महान दुष्ट राक्षस हैं तो भी भगवान के परम पावन एव शुभ नामो के कीर्तन का श्रवण करने पर इस समय हमको परम शान्ति प्राप्त हो रही है। अहो ! भगवान अच्युत की बडी भारी महिमा होती है ॥११८॥ हे महाभाग ! आप तो रागादि दोषो से रहित हैं। ये लोग मुझे खाने को प्रस्तुत हो गये

थे तत इनका उद्धार मैं क्यों करूँ । इस भावना का परित्याग करके आपके पास जो यह परम पावनी पतितोद्धारणी गङ्गा का जल है इससे अभिषिञ्चन करके हमको राक्षस योनि के बडे भारी पाप से उद्धार कीजिये ॥११६

हरिसेवापरो भूत्वा यश्चात्मान तु तारयेत् ।
स तारयेज्जगत्सर्वमिति शसन्ति सूरय ॥१२०
अपहाय हरेर्नाम घोरसंसारभेषजम् ।
केनोपायेन लभ्येत मुक्ति सर्वत्र दुर्लभा ॥१२१
लोहोडुपेन प्रतरन्निमज्जत्युदके यथा ।
तथैवाकृतपुण्यास्तु तारयन्ति कथ परान् ॥१२२
अहो चरित्र महता सर्वलोकसुखावहम् ।
यथा हि सर्वलोकानामानन्दाय कलानिधि ॥१२३
पृथिव्या यानि तीर्थानि पवित्राणि द्विजोत्तम ।
तानि सर्वाणि गङ्गाया कणस्यापि समानि न ॥१२४
तुलसीदलसमिश्रमपि सर्षपमात्रकम् ।
गङ्गाजल पुनात्येव कुलानामेकविंशतिम् ॥१२५
तस्माद्विप्र महाभाग सर्वशास्त्रार्थकोविद ।
गङ्गाजलप्रदानेन पाह्यस्मान्पापकर्मिण ॥१२६

विद्वान् पुरुष कहा करते हैं कि जो निरन्तर भगवान् श्री हरि की सेवा में सलग्न रह कर अपने आपका उद्धार किया करता है वह सम्पूर्ण जगत् का भी उद्धार कर सकता है ॥१२०॥ भगवान् श्री हरि का नाम इस ससाररूपी महा व्याधि की महौषध है । मुक्ति बहुत ही दुर्लभ वस्तु है । आप यह बताइये कि इस श्री हरि के नामोच्चारण के अतिरिक्त किसी अन्य साधना के द्वारा भी वह प्राप्त हो सकती है ॥१२१॥ लोह की नौका से पानी में तैरने वाला भी डूब जाया करता है । इसी प्रकार से जिसने कभी कोई पुण्य कर्म नहीं किया है वह

दूसरो की कैसे तार सकता है ॥१२२॥ जिस तरह से चन्द्रमा सबको आनन्द प्रदान किया करता है वैसे ही बडे आदमियो का चरित्र भी सब लोगो को सुख प्रदान किया करता है ॥१२३॥ हे द्विजोत्तम ! इस भूमण्डल मे जितने भी परम पवित्र तीर्थ है वे सभी गङ्गा के किनके की बराबर नही हैं ॥१२३॥ तुलसी दलो से युक्त सरसो के दाने के समान भी गङ्गाजल मनुष्य की इक्कीस पीढियो का उद्धार कर दिया करता है ॥१२४॥ अतएव हे समस्त शास्त्रो के महान पण्डित महाभाग ब्राह्मण देव ! इस समय मे गङ्गाजी का जल प्रदान करके हम सब पापियो की आप रक्षा कीजिये ॥१२५

इत्याख्यात राक्षसैस्तैर्गङ्गामाहात्म्य मुत्तमम् ।
निशम्य विस्मयाविष्टो वभूव द्विजसत्तम ॥१२७
एषामपीदृशी भक्तिर्गङ्गाया लोकमातरि ।
किमु ज्ञातप्रभावाणा महता पुण्यशालिनाम् ॥१२८
अथासौ मनसा धर्म विनिश्चित्य द्विजोत्तम ।
सर्वभूतहितो भक्त प्राप्नोतीति पर पदम् ॥१२६
ततो विप्र कृपाविष्टो गङ्गाजलमनुत्तमम् ।
तुलसीदलसामिश्र तेषु रक्ष स्वसेचयत् ॥१३०
राक्षसास्तेन सिक्तास्तु सर्षपोर्मविदुना ।
विसृज्य राक्षस भावमभवन्देवतोपमा ॥१३१
ब्राह्मणी पुत्रसयुक्ता सोमदत्तस्तथैव च ।
कोटिसूर्यप्रतीकाशा वभूर्वुविबुधर्षभा ॥१३२
शखचक्रगदाचिह्ना हरिसारूप्य मागता ।
स्तुवन्तो ब्राह्मण सम्यग्ते जग्मुर्हरिमन्दिरम् ॥१३३;

उन राक्षसो ने जिस समय मे गङ्गाजल का इस प्रकार से माहात्म्य का वर्णन किया तो उसका श्रवण करके वह परम श्रेष्ठ ब्राह्मण अत्यधिक प्रसन्न हुआ था ॥१२७॥ उसे प्रसन्नता इसी बात से हुई

थी कि लोक जननी गङ्गा मे जब इन महा पतित राक्षसो की ऐसी प्रगाढ भक्ति है जो जन गङ्गाजी की महिमा का भली भाँति ज्ञान रखते हैं उन महान पुण्यात्मा लोगो की श्रद्धा-भक्ति के विषय मे क्या कहा जावे ? ॥१२८॥ इसके अनन्तर उस परम श्रेष्ठ शिरोमणि द्विज ने अपने मन मे विचार किया कि जो प्राणी जगत् में समस्त प्राणियों का हित-सम्पादित किया करता है वह परम दयालु और परोपकारी भक्त अवश्य ही परम पद की प्राप्ति किया करता है। अतएव इन विचारे दुर्गति दशापन्न जीवों का भी उद्धार करना महान धर्म का कार्य है—इस बात का अपने हृदय मे विचार करके उसके अन्त करण मे दया की भावना जाग उठी थी ॥१२६॥ मन मे करुणा के आ जाने से उस ब्राह्मण ने तुलसी दल से मिश्रित परम पावन गङ्गाजल के छींटे उन राक्षसो पर दिये थे ॥१३०॥ उस ब्राह्मण के द्वारा सरसो के बराबर ही गङ्गाजल की छींटें देते ही वे राक्षस राक्षसी स्वभाव का त्याग करके देवों के तुल्य अति शीघ्रता से होगये थे ॥१३१॥ अपने पुत्र के सहित वह ब्राह्मणी और सोमदत्त करोडो सूर्य के समान दमकते हुए परम श्रेष्ठ बन गये थे ॥१३२॥ उस समय में उनका स्वरूप शख, चक्र, गदा धारी भगवान् विष्णु के समान ही होगया था और फिर वे सब उस ब्राह्मण देवता का सस्तवन करते हुए विष्णु लोक को चले गये थे ॥१३३

राजा कल्लपपादस्तु निजरूप समास्थित ।
जगाम महती चिन्ता दृष्ट्वा तान्मुक्तिगानघान् ॥१३४
तस्मिन् राज्ञि सुदु खार्ते गूढरूपा सरस्वती ।
धर्ममूलमहावाक्य बभापेऽनाघया गिरा ॥१३५
भो भो राजन्महाभाग न दु ख गन्तुमर्हसि ।
राजन्तवापि भोगान्ते महच्छ्रेयो भविष्यति ॥१३६
सत्कर्मधूतपापा ये हरिभक्ति परायणा ।

प्रयान्ति नात्र सन्देहस्तद्विष्णो परम पदम् ॥१३७
सर्वभूतदयायुक्ता धर्ममार्गप्रवर्तिनः ।
प्रयान्ति परम स्थान गुरुपूजापरायणा ॥१३८
इतीरित समाकर्ण्य भारत्या नृपसत्तमः ।
मनसा निर्वृ तिं प्राप्यसन्मार च गुरोर्गच. ॥१३९
स्तुवन्गुरु च तं विप्र हरिं चैवातिहर्षितः ।
पूर्ववृत्त च विप्राय सर्व तस्मै न्यवेदयत् ॥१४०

किन्तु राजा कल्मापपाद अपने राक्षसी रूप मे ही वहाँ पर खडा रहा था और उसने उन अन्य पापियो की मुक्ति को आखो से देखा तो उसको बडी चिन्ता हुई थी ॥१३४॥ इस प्रकार से जब अत्यधिक खिन्न हो गया था तो उस समय मे सरस्वती देवी ने गुप्त रूप से परम गम्भीर वाणी मे कहा था ॥१३५॥ हे महाभाग्यवान् ! हे राजन् ! तुम अपने हृदय मे दुःखित मत होओ, जब कर्मो के भोग की समाप्ति हो जायगी तब तुम्हारा भी महान् कल्याण अवश्य ही होगा ॥१३६॥ सत्कर्मों से जिनके पाप पङ्क का प्रक्षालन हो जाया करता करता है ऐसे श्री हरि के भक्त मनुष्य भगवान् विष्णु के परम पद की प्राप्ति अवश्य ही किया करते हैं इसमे तनिक भी सन्देह का अवसर नही है ॥१३७॥ जो समस्त प्राणियो से दयाभाव का बरताव किया करते हैं, धर्म के मार्ग पर चलते हैं और अन्यो को चलाया करते हैं, अहर्निश श्री हरि की भक्ति मे निमग्न रहा करते हैं, सर्वदा अपने से बडो की सेवा किया करते हैं वे निश्चय ही परम पद को प्राप्त किया करते हैं ॥१३८॥ इस नभोवाणी का श्रवण करके उस राजा के मनमे सुख हुआ और उसे फिर श्री गुरुदेव वसिष्ठ जी के वचनो का स्मरण हो आया ॥१३९॥ तब वह अत्यधिक प्रसन्नता मग्न होकर अपने गुरु देव की, उस ब्राह्मण की और भगवान् श्री हरि की स्तुति करने में प्रवृत्त हो गया था । उसने फिर अपना पूर्व घटित अपना समस्त वृत्तात ब्राह्मण देवता को सुना दिया था ॥१४०

तत्तो नृपस्तु कालिग प्रणम्य विधिवन्मुने ।
नामानि व्याहरन्विष्णो सद्यो वाराणसीं ययौ ॥१४१
षण्मास तत्र गङ्गाया स्नात्वा दृष्ट्वा सदाशिवम् ।
ब्राह्मणीदत्तश पात्तु मुक्तो मित्रसहोऽभवत् ॥१४२
ततस्तु स्वपुरीं प्राप्तो वशिष्ठेन महात्मना ।
अभिषिक्तो मुनिश्रेष्ठ स्वक राज्यमपालयत् ॥१४३
पालयित्वा मही कृत्स्ना भुक्त्वा भोगान्स्त्रिय विना ।
वसिष्ठात्प्राप्य सन्तान गतो मोक्ष नृपोत्तम ॥१४४
नैतच्चित्र द्विजश्रेष्ठ विष्णोर्वाराणसीगुणान् ।
शृण्वञ्छ्रवणवन्स्मरन्गङ्गा पीत्वा मुक्तो भवेन्नर ॥१४५
तस्मान्महिम्नो विप्रेन्द्र गङ्गाया शक्यते नहि ।
पार गन्तु सुराधीशैर्ब्रह्मविष्णुशिवैरपि ॥१४६
यन्नामस्मरणादेव महापातककोटिभि ।
विमुक्तो ब्रह्मसदन नरो याति न सशय ॥१४७
गङ्गा गङ्गेति यन्नाम सकृदप्युच्यते यदा ।
तदैव पाप निर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयके ॥१४८

हे मुनिवर ! उसके पश्चात् उस राजा ने उन कलिङ्ग देशवासी ब्राह्मण को प्रणाम किया था । फिर सविधि भगवान् विष्णु के शुभ नामो का कीर्तन करता हुआ वह शीघ्र ही भगवान विश्वनाथ की पुरी वाराणसी को रवाना हो गया था ॥१४१॥ काशीपुरी मे उस कल्मापपाद ने छँ मास तक निवास कर गङ्गा म स्नान किया था और सदाशिव प्रभु के नित्य दर्शन किये थे । उस समय मे राजा मित्र सह को उस ब्राह्मणी के दिये हुये शाप से मुक्ति हुई थी ॥ १४२ ॥ राक्षसी शरीर से छुटकारा पाकर वह मित्रसह राजा अपनी नगरी मे पहुँच गया था । वहाँ पर महामुनि वशिष्ठजी ने उसका अभिषेक किया था । हे श्रेष्ठ ! इस प्रकार से अपनी पाप योनि से छूटकर अपने

राज्य का यथावत् परिपालन करने मे प्रवृत्त हो गया था ॥१४३॥ उसने राज्य की प्रजा का पालन करते हुए सम्पूर्ण भूमि को भोगा फिर महर्षि वसिष्ठजी की कृपा एव आशीर्वाद से सन्तान की प्राप्ति करके वह श्रेष्ठ राजा अवसान मे मोक्ष पद को प्राप्त होगया था ।१४४ हे द्विज श्रेष्ठ ! इसमे कुछ भी आश्चर्य की बात नही है । भगवान विष्णुदेव और विश्वनाथपुरी वाराणसी की ऐसी ही अद्भुत महिमा है । इनमे इसी प्रकार के गुण विद्यमान हैं । जो मनुष्य गङ्गाजी की कथा का प्रवचन किया करता है, श्रवण करता है, अथवा गङ्गाजल का पान किया करता है वह निश्चय ही मुक्त हो जाया करता है ॥१४५॥ अतएव हे विप्रेन्द्र ! देवो के स्वामी, ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी गङ्गाजी की महिमा का पार नही पा सकते हैं अन्य लोगो की तो बात ही क्या है ॥१४६॥ भगवती, पतित पावनी गङ्गाजी के नामोच्चारण करने ही से मनुष्य करोडो महा पातको मे छुटकारा पाकर अन्त मे ब्रह्मलोक की प्राप्ति किया करता है । इसमे कुछ भी सन्देह नही है ॥१४७॥ जो 'गङ्गा-गङ्गा' यह भगवती का नाम एक बार भी अपने मुख से उच्चारण किया करता है उसी समय मे मनुष्य अपने कृतकर्मों से अर्थात् पापो से छूट जाया करता है और उसी समय से ब्रह्म लोक मे उसकी प्रशसा होना आरम्भ हो जाया करता है ॥१४८॥

॥दैत्यों का अग्नि प्रकट कर भस्म होना॥

विष्णुपादाग्रसम्भूता या गङ्गेत्यभिधीयते ।
तदुत्पत्ति वद भ्रातरनुग्राह्योऽस्मि ते यदि ॥१
शृणु नारद वक्ष्यामि गङ्गोत्पत्ति तवानघ ।
वदता शृण्वता चैव पुण्यदा पापनाशिनीम् ॥२
आसीदिद्रादिदेवाना जनक: कश्यपो मुनि: ।

दक्षात्मजे तस्य भार्ये दितिश्चादितिरेव च ॥३
अदितिर्देवमातास्ति दैत्याना जननी दिति ।
ते तयोरात्मजा विप्र परस्परजयैषिण ॥४
सदा सपूर्वदेवास्तु यतो दैत्या प्रकीर्तिता ।
आदिदैत्यो दिते पुत्रो हिरण्यकशिपुर्बली ॥५
प्रह्लादस्तस्य पुत्रोऽभूत्सुमहान्दैत्यसत्तम ।
विरोचनस्तस्य सुतो वभूव द्विजभक्तिमान् ॥६
तस्य पुत्रोऽतितेजस्वी बलिरासीत्प्रतापवान् ।
स एव वाहिनीपालो दैत्यानामभवन्मुने ॥७

श्री देवर्षि नारदजी ने कहा—हे भाई ! गङ्गा देवी की उत्पत्ति भगवान विष्णु के चरण कमलो के अग्रभाग मे बतायी जाया करती है । इस भगवती गङ्गा उत्पत्ति का वर्णन कृपया आप यदि करना चाहे तो करे ॥१॥ नारदजी के ऐसा कहने पर श्री सनक मुनि ने कहा—हे निष्पाप नारद ! मैं अब आपकी इच्छा के अनुसार गङ्गा देवी की उत्पत्ति की कथा का वर्णन करता हूँ । यह कथा तो ऐसी महिमामयी है कि यह वक्ता और श्रोता दोनो के पाप का नाश कर उनको महान् पुण्य फल प्रदान किया करती है ॥२॥ कश्यप मुनि इन्द्रादि देवो के पिता थे । दक्ष प्रजापति की २पुत्रियाँ थी जिनके नाम दिति तथा अदिति थ ये दोनो कश्यप ऋषि की पत्नियाँ थी ॥ ३ ॥ इन दोनो म अदिति देवो की माता थी और दिति दैत्यो की माता थी । हे विप्रवर ! इन दोनो के पुत्र परस्पर मे एक दल दूसरे दल पर सवदा विजय प्राप्त करन की अभिलाषा रखवा करते थे और उनम बराबर युद्ध कलह हुआ ही करता था ॥४॥ दिति का पुत्र आदि दैत्य हिरण्यकशिपु बडा भारी बलशाली हुआ था ॥५॥ हिरण्यकशिपु क पुत्र का नाम प्रहलाद था जो बहुत श्रेष्ठ दैत्य हुआ था । प्रहलाद के पुत्र का नाम विरोचन हुआ था । इस विरोचन की ब्राह्मणो म परम

भक्ति रहा करती थी ॥६॥ इस विरोचन का पुत्र बलि दैत्यराज हुआ था। यह बलि अत्यधिक तेजस्वी और महान् प्रतापी राजा था। हे मुनिवर! यह बलि ही दैत्यों की सेना मे सेनापति बना था ॥७

बलेन महता युक्तो बुभुजे मेदिनीमिमाम् ।
विजित्य वसुधा सर्वा स्वर्गं जेतु मनो दधे ॥८
गजाश्च यस्यायुतकोटिलक्षास्तावन्त एवाश्वरथा मुनीद्र ।
गजे गजे पञ्चशती पदाते कि वर्ण्यते तस्य चमूवरिष्ठा ॥६
अमात्यकोटचग्रसरावमात्यौ कुम्भाण्डनामाप्यथ कूपवर्णं ।
पित्रा सम शौर्यपराक्रमाभ्या बाणो बले पुत्रशताग्रजोऽभूत् ॥१०
बलि सुराञ्जेतुमना प्रवृत्त सैन्येन युक्तो महता प्रतस्थे ।
ध्वजातपत्रैर्गगनानुराशेस्तरङ्गविद्युत्स्मरण प्रकुर्वन् ॥११
अवाप्य धृत्रारिपुर सुरारी रुरोध दैत्यैर्मृगराजगाढ ।
सुराश्च युद्धाय पुरात्तथैव विनिर्ययुर्वज्रकरादयश्च ॥१२
तत प्रववृते युद्ध घोर गीर्वाणदैत्ययो ।
कल्पान्तमेघनिर्घोष डिंडिमध्वनिसभ्रमम् ॥१३
मुमुचु शरजालानि दैत्या सुमनसा बले ।
देवाश्च दैत्यसेनासु सग्रामेऽत्यन्तदारुणे ॥१४

इस दैत्यराज बलि के पास बहुत ही विशाल सेना थी। उस बलि ने सम्पूर्ण पृथ्वी को जीतकर अपने ही अधीन कर लिया था और उसको भोगता था। इसके पश्चात् इस राजा बलि ने स्वर्गलोक को भी जीतने का विचार किया था। इसके पास दश पद्म तो हाथी थे और हे मुनीन्द्र! इतने ही इस बलि के पास अश्वों के रथ थे। प्रत्येक हाथी के साथ पाँच सौ २ पदाति (पैदल) सैनिक थे। इसकी इतनी बड़ी हुई महान विशाल सेना थी कि इसका वर्णन कहाँ तक किया जा सकता है ॥८।९॥ इस राजा बलि के मन्त्रियों की सख्या करोडो मे थी। इन सब मन्त्रियो मे कुम्भाण्ड और कूपवर्ण नाम के दो महा

मन्त्री थे। राजा वलि के सौ पुत्र हुए थे। वाणापुर इन सबमें ८
था और यह भी वीरता एव बल पराक्रम में अपने ही पिता के स
था ॥१०॥ राजा वलि ने देवगणो को जीतने का विचार अपने म
स्थिर करके अपनी बड़ी भारी सेना को साथ लेकर यह वहाँ से
किया था। इस अपनी सेना के ध्वज और छत्रो को देखकर उस
समुद्र की लहररूपी बिजलियों का स्मरण हो गया था ॥११॥ देवो
महान् शत्रु दैत्य राज वलि ने वृत्रासुर के परम शत्रु देवराज इन्द्र
स्वर्गपुरी पर आक्रमण कर दिया था। मृगराज से अति गहरी मित्र
भी रखने वाले दैत्यो के द्वारा इन्द्र की स्वर्गपुरी को घेर लिया थ
उस दैत्यो के आक्रमण को देखकर देवगण भी हाथ में वज्र आ
हथियार ग्रहण कर दैत्यों के साथ युद्ध करने के लिये सुसज्जित हो
निकल आये थे ॥१२॥ उस समय में देवों और दैत्यो में महान् भो
युद्ध होना प्रारम्भ हो गया था। उस युद्ध में प्रलय काल में होने व
महान मेघो के समान गड़गड़ाहट हो रही थी तथा नगाड़ों की चोट
ऐसी घोर ध्वनि हो रही थी कि उससे समस्त प्राणियो को चक
आने लग गये थे ॥१३॥ दैत्यो ने देवो की सेना पर वाणो की घ
वर्षा करना आरम्भ कर दिया था। उस महान दारुण युद्ध में दे
गण भी दैत्यो पर वाणा की वर्षा करने लग गये थे ॥१४

जहि दारय भिंधीति छिंधि मारय ताडय।
इत्येव सुमहान्घोषो वदता सेनयोरभूत् ॥१५
शरदुन्दुभिनिर्ध्वानै सिंहनादै सुरद्विषाम्।
भाङ्कारैः स्यन्दनाना च वाणकेङ्कारनिःस्वनैः ॥१६
अश्वाना ह्रेषितैश्चैव गजाना बृंहितैस्तथा।
टङ्कारैर्धनुषा चैव लोकः शब्दमयोऽभवत् ॥१७
सुरासुरविनिर्मुक्तत्राणनिष्पेपजानलैः।
अकालप्रलय मेने निरीक्ष्य सकल जगत् ॥१८

वभौ देवद्विपा सेना स्फुरच्छस्त्रौघधारिणि ।
चलद्विद्युन्निभा रात्रिश्छादिता जलदैरिव ॥१६
तस्मिन्युद्धे महाघोरैर्गिरीन् क्षिप्तान् सुरारिभि ।
नाराचैश्चूर्णयामासुर्देवास्ते लघुविक्रमा. ॥२०
केचित्सताडयामासुर्नागान्नथानूर्थं ।
अश्वैरश्वाश्च केचित्तु गदादण्डैरथार्दयन् ॥२१

उस महान् भीषण युद्ध में सैनिको के द्वारा मार दो, चीर डालो, फाड दो छेदन कर डालो इस तरह के उत्साह वर्धक शब्दो की ध्वनियाँ कहते, करते हुये एक दूसरे पर बराबर हमला कर रहे थे और महान द्वन्द्व होने लग गया था ॥१५॥ उन देव और दैत्यो की भीषणता ऐसी वढ गई कि देवो की गूँजों से—असुरो की दहाडों से, रथो की झनझनाहट से, वाणो के छूटनेसे कर्ण कठोर ध्वनियो से अश्वो की हिनहिनाहट से, हाथियो की चिंघाडो से, धनुषो की टकारो से सम्पूर्ण ससार एक दम गूँज उठा था ॥१६।१७॥ उस युद्ध के समय मे देवो और दैत्यो के वाण जब परस्पर मे टकराव कर रहे थे तो उस टक्कर से जो अग्नि उत्पन्न हुई थी उसको देखकर सम्पूर्ण जगत के प्राणी उसे अकाल प्रलय हुआ ही समझने लग गये थे ॥१८॥ दैत्यो की सेना लपलपाते हुये शस्त्रो को धारण किये हुये थी और वह मेघावृत चमकने वाली बिजली से युक्त रात सी दिखाई दे रही थी ॥ १६ ॥ देवताओ के गण भी बडी फुर्ती से वीरता का प्रदर्शन कर रहे थे। उस युद्ध मे दैत्य जिन पाषाणो को फैंक कर देवो पर प्रहार करते थे देवता उनको अपने परम भयकर वाणो से चूर्ण कर दिया करते थे ॥२०॥ उस समय उस महान भयङ्कर युद्ध में कोई हाथियो के द्वारा हाथियो को टक्कर दे रहे थे। कोई अश्व सवार अश्वो पर धावा बोल रहे थे और कुछ हाथो मे गदा दण्डो को ग्रहण करके ही सहार करने मे व्यस्त हो रहे थे ॥२१

परिघैस्ताडिता केचित्पेतु शोणितकर्दमे ।
समुत्क्रान्तासव केचिद्विमानानि समाश्रिता ॥२२
ये दैत्या निहता देवैप्रसह्य सङ्गरे तदा ।
ते देवभावमापन्ना दैतेयान्समुपाद्रवन् ॥२३
अथ दैत्यगणा क्रुद्धास्ताडयमाना सुरैर्भृशम् ।
शस्त्रैर्बहुविधैर्देवा न्निजघ्नुरतिदारुणा ॥२४
हयद्भिर्भिन्दिपालैश्च खड्गै परशुतोमरै ।
परिघैश्छुरिकाभिश्च कुन्तैश्चक्रैश्च शकुभि ॥२५
मुसलैरङ्कुशैश्चैव लाङ्गलै पट्टिशैस्तथा ।
शक्तयोपलै शतघ्नीभि पाशैश्च तलमुष्टिभि ॥२६
शूलैर्नालीकनाराचै क्षेपणोयैस्समुद्गरै ।
रथाश्वनागपदगै सङ्कुलो ववृधे रण ॥२७
देवाश्च विविधास्त्राणि दैतेयेभ्य समाक्षिपन् ।
एव वर्षसहस्राणि युद्धमासीत्सुदारुणम् ॥२८

उस समय मे कोई सैनिक परिघो के प्रहारो से प्रपीडित होकर कीच मे पड गये थ और कुछ प्राणो का परित्याग कर विमानो पर चढे जा रहे थे ॥२२॥ उस युद्ध म देवो ने जिन दैत्यो को मार गिराया था वे फिर देव रूप धारण करके उल्टे दैत्यो पर झपट रहे थे ॥२३॥ उस युद्ध मे देवो ने दैत्यो की खूब दिल खोलकर पिटाई की थी और दैत्यो ने भी कोई कसर नही छोडी थी। वे भी अनेक प्रकार के शस्त्रो के द्वारा देवो को मार रहे थे ॥ २४ ॥ उस समय मे युद्ध मे भिन्दिपाल, खड्ग, कुठार, तोमर परिघ छुरिका, कुन्त (भाले) चक्र, शकु मूसल, अकुश, लकडी, पटे, गोफन, तोप, फासे, हथेली, मुक्के, शूल, बन्दूक, नराच, क्षेपणीय, मुद्गर, रथ, अश्व हाथी और पैदलो से वह रणभूमि खचाखच भरी हुई थी और महान् दारुण सग्राम हो रहा था ॥२४।२५।२६।२७॥ इस तरह से यह देव दानवो

का युद्ध एक हजार वर्ष तक बराबर होता रहा था। इसमे देवो ने भी विभिन्न प्रकार के अस्त्रो का प्रयोग दैत्यो की सेना पर किया था ॥२४

अथ दैत्यबले वृद्धे पराभूता दिवोकस ।
सुरलोक परित्यज्य सर्वे भीता प्रदुद्रु ।२६
नररूपपरिच्छन्ना विचेरुरवनीतले ।
वैरोचनिस्त्रिभुवन नारायण परायण ॥३०
बुभुजेऽव्याहतोश्वर्यं प्रवृद्धश्रीर्महानल ।
इयाज चाश्वमेधै स विष्णुप्रीणनतत्पर. ॥३१
इन्द्रत्व चाकरोत्स्वर्गे दिक्पालत्व तथैव च ।
देवाना प्रीणनार्थाय ये क्रियन्ते द्विजैर्मखा ॥३२
तेपु यज्ञेषु सर्वेपु हविर्भुंक्ते स दैत्यराट् ।
अदिति स्वात्मजान्वीक्ष्य देवमातातिदु खिता। ।३३
वृथात्र निवसामीति मत्वागाद्धिमवद्भरिम् ।
शक्रस्यैश्वर्यमिच्छन्ती दैत्याना च पराजयम् ॥३४
हरिध्यानपरा भूत्वा तपस्तेपेऽति दुष्करम् ।
किंचित्काल समासीना तिष्ठन्ती च तत परम् ॥३५

दैत्यो का बल बराबर बढता ही चला जा रहा था उस युद्ध में पराजित होकर देवगण दैत्यों से हार गये थे और भयभीत होकर सब देवता देवलोक को छोडकर इधर उधर भाग गये थे ॥२६॥ फिर देवता लोग दैत्यों से इतने डर गये थे कि वे मनुष्यो के स्वरूप मे पृथ्वी पर विचरण करने लग गये थे। फिर विरोचन का पुत्र दैत्यराज बलि भगवान नारायण की भक्ति करता हुआ त्रिभुवन के राज्य सुख का उपभोग करने लग गया था॥३०॥ इस दैत्यराज का ऐश्वर्य इतना बडा-चढा था कि कोई भी इसमे कुछ बाधा नहीं डाल सकता था। उसकी राज्य लक्ष्मी दिन दूनी बढ रही थी। उस समय मे उस महान

बलवान दैत्यो के राजा बलि ने भगवान विष्णु को प्रसन्न करने के लिये अश्वमेध यज्ञा का यजन किया था ।।३१।। इस बलि का बल पराक्रम इतना बढ गया था कि यह स्वर्गलोक मे जाकर इन्द्रदेव का कार्य स्वय ही किया करता था । यज्ञ मण्डप मे ब्राह्मण लोग जो देवो को तृप्ति करने के लिये जो भी हवि दिया करते थे उसे सभी यज्ञो मे यह दैत्यराज ही उस हवि को ग्रहण किया करता था क्योंकि देवगण तो डरकर सब भाग ही गय थे । इस समय म अपने पुत्र देवो की ऐसी दुदशा देखकर माता अदिति को बडा भारी दु ख हुआ था ।।३२।३३ उस अदिति ने वहाँ पर रहना व्यर्थ समझकर फिर हिमाचल पर प्रस्थान कर दिया था । वहा पर जाकर भी पुत्र देवो के ऐश्वर्य की इच्छा मन मे रखती थी और दैत्यो की पराजय होने की भावना उसके हृदय मे थी ।।३४।। यह अदिति वहा पर्वत पर श्री हरि के ध्यान में मग्न होकर परम दुष्कर तप करने लग गयी थी । कुछ समय तक तो उसने बैठकर ही तपश्चर्या की थी फिर वह खडी होकर तपस्या करने लगी थी ।।३५

पादेनैकेन सुचिर तत पादाग्रमानत ।
कचित्काल फलाहारा तत शीर्णदलाशना ।।३६
ततो जलाशना वायुभोजनाहारवर्जिता ।
सच्चिदानन्दसन्दोह ध्याय यात्मानमात्मना ।।३७
दिव्याब्दाना सहस्र सा तपोऽतप्यत नारद ।
दुरन्त ततप श्रुत्वा दैतेया मायिनोऽदितिम्।।३८
देवतारूपमास्थाय सप्रोचुर्वलिनो दिवा ।
किमर्थ तप्यते मात शरीरपरिशोषणम् ।।३९
यदि जानन्ति दैतेया महद्दुख ततो भवेत् ।
त्यजेद दु खवहुल कायशोषणकारणम् ।।४०
प्रयाससाध्य सुकृत न प्रशसन्ति पण्डिता ।

शरीरयत्नतो रक्ष्यं धर्मसाधनतत्परैः ॥४१
ये शरीरमुपेक्षते ते स्युरात्मविघातिनः ।
सुख त्व तिष्ठ सुभगे पुत्रानस्मान्न खेदय ॥४२

बहुत समय तक एक ही पैर से खडी रहकर और फिर केवल अपने चरण के अँगूठे के बल पर ही खडी होकर उसने तपस्या की थी। कुछ समय तक तो उसने फलो का ही आहार किया था ॥३६॥ इसके उपरान्त जल का आहार और अन्त मे केवल वायु को खाकर ही घोर तप अदिति ने किया था। हे नारद ! उस देव माता अदिति ने इस रीति से परम सच्चिदानन्द सन्दोह श्री भगवान का चित्त मे ध्यान-स्मरण करते हुये एक हजार दिव्य वर्षों तक तपस्या की थी। उस देव माता अदिति की इस परम दुष्कर तपश्चर्या करने का वृत्तान्त सुनकर दैत्यो ने राजा बलि की प्रेरणा प्राप्त कर अपनी माया से देव रूप धारण किया था और उस तप मे सलग्न अदिति के समीप मे पहुँच कर उससे कहने लगे थे। इस समय मे आप हे माता जी ! अपने शरीर को शोषण करने वाला ऐसा उग्र तप किस लिये कर रही हो ॥३७-३९॥ आपकी इस तपस्या का ज्ञान यदि दैत्यो को लग जायगा तो फिर आपको बहुत अधिक कष्ट उठाना होगा। अतएव हम लोग यही प्रार्थना करते है कि इस अवस्था मे आप शरीर को सुखा देने वाले तप को छोड दो क्योकि इससे आपको इस समय में बहुत ज्यादा कष्ट उठाना पड रहा है ॥४०॥ अत्यधिक श्रम उठाने पर जो भी कुछ पुण्य का फल प्राप्त हुआ करता है उस फल के प्राप्त करने की महान पण्डित लोग प्रशसा नही किया करते हैं। इसलिये जो कोई धर्म की साधना मे सलग्न रहना चाहता है उसे अपने शरीर के सरक्षण का भली भाति ध्यान रखना परम आवश्यक होता है ॥४१॥ जो अपने शरीर की पुण्य साधन के कार्यो मे उपेक्षा किया करते है वे तो पुण्यात्मा न होकर आत्मघाती ही कहे जाया करते हैं। अतएव हे

सौभाग्यवति ! आप सुख से ही अपना जीवन बितायें। ऐसा दुष्कर तप करके हम पुत्रों के चित्त में खिन्नता उत्पन्न न करें ॥

माता हीना जना मातर्मृतप्राया न संशयः ।
गावो वा पशवो वापि यत्र गावो महीरुहा ॥४३
न लभन्ते सुखं किंचिन्मात्रा हीना मृतोपम ।
दरिद्रो वापि रोगी वा देशान्तरगतोऽपि वा ॥४४
मातुर्दर्शनमात्रेण लभते परमा मुदम् ।
अन्ने वा सलिले वापि धनादौ वा प्रियासु च ॥४५
कदाचिद्विमुखो या त जनो मातरि कोऽपि न ।
यस्य माता गृहे नास्ति यत्र धर्मपरायणा ।
साध्वी च स्त्री पतिप्राणा गन्तव्य तेन वै वनम् ॥४६
धर्मश्च नारायणभक्तिहीनो धन च सद्भोगविवर्जितं हि
गृहं च भार्यातनयैर्विहीनं यथा तथा मातृविहीनमर्त्य. ॥
तस्माद्देवि परित्राहि दु खार्त्तानात्मजास्तव ।
इत्युक्ताप्यदितिर्दैत्यैर्न चचाल समाधित. ॥४८
एवमुक्त्वासुरा सर्वे हरिध्यानपरायणाम् ।
निरीक्ष्य क्रोधसयुक्ता हन्तुन्वक्रुर्मनोरथम् ॥४९

फिर देवरूपधारी उन दैत्यों ने अदिति से कहा—हे माता : जो पुत्र अपनी माता से हीन हो जाया करते हैं व तो मृत से ही स होते हैं। भले ही ग्राम में गौ, पशु, वृक्ष सभी कुछ हों परन्तु यदि म नहीं है तो वे सब उस मातृ-सुख को किसी भी प्रकार न प्राप्त करा सकते हैं। जो अपनी मा से रहित हो जाया करते हैं वे तो मरे हुये से ही रहा करते हैं। चाहे कोई अति दरिद्र हो, रोग युक्त परदेश में रहता हो परन्तु माता कभी भी विमुख नहीं होती जिसके घर में माता न हो और पतिप्राणा, धर्म परायणा, परम स पत्नी भी न हो उसे तो वह उच्च घर का त्याग कर वन में ही

जाना चाहिये क्योंकि ऐसे शून्य घर मे कुछ भी आनन्द नही रहा करता है।।४३-४६।। भगवान् नारायण की भक्ति से शून्य, धर्म, सद्भोग से रहित धन का वैभव, भार्या और पुत्रो से रिक्त घर जिस तरह से आनन्द से सूना होता है वैसे ही माता से रहित मनुष्य का जीवन भी निरानन्दामय हुआ करता है ।।४७।। अतः हे देवि ! आप अपने परम खिन्न एव दुःखित पुत्रो की रक्षा करो । इस प्रकार से दैत्यो के द्वारा माया कथन के करने पर भी अदिति ने अपनी समाधि का त्याग नही किया था ।।४८।। असुरो के इस तरह से बहुत कुछ कहने पर भी जब अदिति टस से मस तक नही हुई और उसको सर्वदा भगवान विष्णु के ध्यान मे ही सलग्न पाया तो वे असुर क्रोध मे भरकर उसे मार डालने का विचार करने लगे थे ।।४६

कल्पान्तमेघनिर्घोषा क्रोधसंरक्तलोचनाः ।
दष्ट्राग्रं रसृजन्वह्नि सोऽदहत्कानन क्षणात् ।।५०
शतयोजनविस्तीर्णं नानाजीवसमाकुलम् ।
तेनैव दग्धा दैतेया ये प्रधर्षयितुं गता ।।५१
सैवावशिष्टा जननी सुराणामव्दाच्छतादच्युतसक्तचित्ता ।
स रक्षिता विष्णुसुदर्शनेन दैत्यान्तकेन स्वजनानुकम्पिना।।५२

उन दैत्यो ने माता अदिति को भयभीत करने के उद्देश्य से प्रलय काल के मेघो के समान अपनी माया रचित मेघो की गडगडाहट की थी और अत्यन्त उग्र क्रोध से अपने नेत्रो को लाल कर लिया था। अपनी दाढो से अग्नि उत्पन्न कर चारो ओर फैलादी थी जो कि एक ही क्षण मे सम्पूर्ण वन को भस्मसात् करने मे लग गयी थी । चारसौ कोस पर्यन्त फैला हुआ वह वन जिसमे अनेक जीव जन्तु निवास किया करते थे धाय २ कर एक दम जलने लग गया था । उस अग्नि ने अपना प्रभाव प्रकट करने के लिये जो भी दैत्य वहाँ पर समागत हुए थे उनको भी जला दिया था ।।५०।५१।। चारो ओर उन दैत्यो

रूप से आप वर्णन करने की कृपा कीजिये क्योंकि जो भी मुनीश्वर होते हैं वे दूसरों को उपदेश प्रदान करके अपनी सज्जनता को प्रकट किया करते हैं ॥२॥ श्री सनत्जी ने कहा—हे नारद ! जो श्री हरि के चरणों में ध्यान लगा कर मग्न रहा करते हैं उन साधु पुरुषों को कौन बाधा पहुँचा सकता है ॥३॥ जिस स्थान पर श्री हरि की भक्ति मे परायण प्राणी निवास किया करता है उसकी रक्षा करने के लिये सदा ब्रह्मा, विष्णु महेश, देवता सिद्धगण और परम श्रेष्ठ मुनीश्वर सभी खडे रहा करते हैं ॥४॥ हे महाभाग ! जो अपने चित्त में परम शान्त रहा करते हैं। उनके चित्त मे शान्ति प्रिय भगवान स्वय ही प्रकट होजाया करते हैं। जो सदा हरिनाम के उच्चारण मे तत्पर रहते हैं और श्री हरि के ध्यान मे अपने मन को लगाये हुये हैं उनकी क्या प्रशसा की जावे ॥५॥ जिस स्थल मे भगवान शङ्कर अथवा भगवान् विष्णु की पूजा मे मग्न मनुष्य निवास किया करता है वहा पर महालक्ष्मी और अन्य सभी देवता पूर्ण कृपा किया करते हैं ॥६॥ जिस स्थान पर श्री विष्णु की अर्चना करने मे मग्न प्राणी रहता है वहाँ न अग्नि कोई दुःख दे सकता है और न वहा पर चोर तथा व्याधियो का ही कुछ प्रभाव हो सकता है ॥७

प्रेता पिशाचा कुष्माण्डग्रहा बालग्रहास्तथा ।
डाकिन्यो राक्षसाश्चैव न बाधन्तेऽच्युतार्चकम् ॥८
परपीडारता ये तु भूतवेतालकादय ।
नश्यन्ति यत्र सद्भक्तो हरिलक्ष्म्यर्चनेरत ॥९
जितेन्द्रिय सर्वहितो धर्मकर्मपरायण ।
यत्र तष्ठति तत्रैव सर्वतीर्थानि देवता ॥१०
निमिष निमिषार्द्धं वा यत्र तिष्ठन्ति योगिन ।
तत्रैव सर्वश्रेयासि तत्तीर्थं तत्तपोवनम् ॥११
यन्नामोच्चारणादेव सर्वे नश्यन्त्युपद्रव ।

स्पृशन्करेण पुण्येन प्राह कश्यपवल्लभाम् ॥१५
देवमात प्रसन्नोऽस्मि तपसाराधितस्त्वया ।
चिरश्रान्तासि भद्र ते भविष्यति न सशय ॥१६
वर वरय दास्यामि यत्ते मनसि रोचते ।
मा भैर्भद्रे महाभागे ध्रुव श्रेयो भविष्यति ॥१७
इत्युक्ता देवमाता सा देवदेवेन चक्रिणा ।
तुष्टाव प्रणिपत्यैन सर्वलोकसुखावहम् ॥१८
नमस्ते देवदेवेश सर्वव्यापिञ्जनार्दन ।
सत्त्वादिगुणभेदेन लोकव्यापारकारण ॥१६
नमस्ते बहुरूपायारूपाय च महात्मने ।
सर्वेकरूपरूपाय निर्गुणाय गुणात्मने ॥२०
नमस्ते लोकनाथाय परमज्ञानरूपिणे ।
सद्भक्तजनवात्सल्यशालिने मङ्गलात्मने ॥२१

मन्द मुस्कराहट के कारण कुछ प्रकट होते हुए दन्तों के प्रकाश के कारण से सभी दिशाओं में परमोज्वल प्रकाश फैलाने वाले भगवान ने अपने कमलोपम परम कोमल करों से देवमाता अदिति के शरीर का स्पर्श करते हुए कहा था—हे देवमाता ! आपने अत्यधिक समय तक तपश्चर्या करके भक्तिभाव से मेरा समाराधन किया है और आपने बहुत ही अधिक श्रम उठाया है । मैं अब आप पर बहुत प्रसन्न हूँ । तुम्हारा पूर्ण रूप से कल्याण ही होगा—इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥१६॥ अब आप के मन में जो भी अच्छा लगता हो वही वरदान मुझ से प्राप्त कर लो । हे भद्रे ! अब आप बिल्कुल भी डरिये नहीं । अब आपका पूर्ण रूप से कल्याण होगा ॥१७॥ जिस समय में चक्रधारी भगवान विष्णुदेव ने देवमाता अदिति से इस तरह से कहा तो वह समस्त लोकों को सुख प्रदान करने वाले भगवान को प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लग गये थे ॥१८॥ अदिति ने कहा—हे देवों के भी देवेश्वर ! हे सर्वत्र व्यापक रहने वाले ! हे जनार्दन ! आप को सेवा में मेरा

प्रणाम समर्पित है। सत्वादि गुणो के प्रभेद से इस समस्त ससार के व्यापार के कारण स्वरूप आपको मेरा प्रणाम है ॥१६॥ आप तो सर्वव्यापक हैं अतएव आपके अनेक स्वरूप हैं। अपने २ रूप मे प्रतिष्ठित अवस्था मे रूप रहित ब्रह्म, उदार चित्त वाले सभी रूपो के एक रूप (विराट् रूप धारण करने वाले) निर्गुण और सगुण परमात्मा के लिये मेरा प्रणाम है ॥२०॥ सम्पूर्ण ससार के स्वामी, परम शान्त स्वरूप, सज्जन अपने भक्तो पर कृपा करने वाले मङ्गलमय भगवान् की सेवा मे सादर प्रणाम है ॥२१॥

यस्यावतारस्पाणि ह्यर्चयन्ति मुनीश्वरा ।
तमादिपुरुषं देवं नामामि ह्यर्थसिद्धये ॥२२
श्रुतयो य न जानन्ति न जानन्ति सूरयः ।
त नमामि जगद्धे तु समाय चाप्यमायिनम् ॥२३
यस्यावलोकन चित्र मायोपद्रवकारणम् ।
जगद्रूप जगद्धे तु त वन्दे सर्ववन्दितम् ॥२४
यत्पादाम्बुजकिञ्जल्कसेवारक्षितमस्तका ।
अवापु: परमा सिद्धि वन्दे कमलाधवम् ॥२५
यस्य ब्रह्मादयो देवा महिमान न वै विदु. ।
अत्यासन्न च भक्ताना तं वन्दे भक्तसगिनम् ॥२६
यो देवस्त्यक्तसङ्गाना शान्ताना करुणार्णव. ।
करोति ह्यात्मन. सङ्ग त देव सङ्गवर्जितम् ॥२७
यज्ञेश्वर यज्ञकर्म यज्ञकर्मसुनिष्ठितम् ।
नमामि यज्ञफलद यज्ञकर्मप्रवोधकम् ॥२८

महा मुनीश्वर जिन भगवान के स्वरूपो का अर्चन किया करते हैं उन परम पुराण आदि पुरुष देव को मैं अपनी मनोवाञ्छित कामना की सिद्धि के लिए प्रणाम करता हूँ ॥२२॥ जिन भगवान के यथार्थ स्वरूप का पूर्ण रूप मे वर्णन श्रुतियाँ नही कर सकती हैं और बडे २

विद्वान भी भगवान के स्वरूप को यथार्थ रूप से नहीं बखान सकते हैं उन इस सम्पूर्ण विश्व के कारण स्वरूप, माया से विशिष्ट और माया से रहित परमेश्वर को मैं सादर प्रणाम करती हूँ ॥२३॥ जिन भगवान का केवल दर्शन ही मोक्ष रूपी अद्भुत फल को प्रदान करने वाला हैं और जो इस माया स्वरूप उपद्रव का हेतुभूत है अर्थात् यह माया जिनसे प्रकट हुआ करती है उन्हीं जगन्मय विश्व के कारण, सर्व वन्दित भगवान् विष्णुदेव के चरणों में मेरा प्रणाम है ॥२४॥ जिनके चरण कमल के केसर से अपने मस्तक को सुरक्षित करके प्राणी परम सुसिद्धि को प्राप्त किया करते हैं उन्हीं कमलाकान्त भगवान की मैं वन्दना करती हूँ ॥२५॥ ब्रह्मादि बड़े २ देव भी जिन भगवान की महिमा का पार नहीं पा सकते हैं और जो अपने भक्तों के लिये प्रकट हुआ करते हैं। उन्हीं भक्तों के सङ्ग करने वाले माधव की मैं वन्दना करती हूँ ॥२६॥ जो इस संसार को त्याग कर परम शान्त भक्तजनों के लिए करुणा के सागर के समान हैं और उनके साथ रहा करते हैं उन सर्व सङ्ग से रहित देवदेव की सेवा में मेरा सादर प्रणाम है ॥२७॥ यज्ञ कर्मों के साक्षी, यज्ञकर्म, यज्ञकर्मों में निष्ठित, यज्ञों का फल प्रदान करने वाले और यज्ञकर्मों के फल का बोध करने वाले वेदस्वरूप भगवान विष्णु को मेरा प्रणाम अर्पित है ॥२८॥

अजामिलोऽपि पापात्मा यन्नामोच्चारणादनु ।
प्राप्तवान्परमं धाम तं वन्दे लोकसाक्षिणम् ॥२६
हरिरूपी महादेवः शिवरूपी जनार्दनः ।
इति लोकस्य नेता यस्तं नमामि जगद्गुरुम् ॥३०
ब्रह्माद्या अपि देवेश यन्मायापाशयन्त्रिता ।
न जानन्ति परं भावं तं वन्दे सर्वनायकम् ॥३१
हृत्पद्मस्थोऽप्ययोग्यानां दूरस्थ इव भासते ।
प्रमाणातीतसद्भावस्तं वन्दे ज्ञानसाक्षिणम् ॥३२

यन्मुखाद् ब्राह्मणो जातो बाहुभ्या क्षत्रियोऽजनि ।
ऊर्वोर्वैश्यः समुत्पन्न पद्भ्या शूद्रोऽभ्यजायत ॥३३
मनसश्चन्द्रमा जातो जात. सूर्यश्च चक्षुष. ।
मुखादग्निस्तथेन्द्रश्च प्राणाद्वायुरजायत ॥३४
ऋग्यजु सामरूपाय सप्तस्वरगतात्मने ।
षडङ्गरूपिणे तुभ्य भूयोभूयो नमो नम ॥३५

महापापी अजामिल भी जिनके एक ही बार अन्त समय मे "नारायण"—इस शुभ नाम के उच्चारण करने मात्र से ही परम पद को प्राप्त हो गया था उन्ही इस सम्पूर्ण लोक के द्रष्टा भगवान् विष्णु को मैं बारम्बार प्रणाम करती हूँ ॥२६॥ महादेव विष्णु के रूप वाले हैं और जनार्दन भगवान शिव स्वरूप हैं। इस रीति से सब लोकों को उपदेश प्रदान करने वाले जगत् के गुरुदेव भगवान् विष्णु की सेवा मे मैं अपना प्रणाम करती हूँ ॥३०॥ ब्रह्मादिक देवगण भी जिनकी महामाया के पाश मे बद्ध होकर उस परम तत्व को वास्तविक रूप मे नही जान पाते हैं उन्ही जगत् के नायक भगवान विष्णु की सेवा मे मेरा प्रणाम समर्पित है ॥३१॥ सर्वान्तरयामी और सब के हृदय कमल मे विराजमान रहने वाले भगवान विष्णु जो योग्य नही है उन लोगो को दूर ही लगा करते हैं, किसी भी प्रत्यक्षानुमानादि प्रमाणो से जिनके असली भाव का निरूपण नही किया जा सकता है उन्ही ज्ञान के साक्षी भगवान विष्णुदेव को मैं प्रणाम करती हूँ ॥३२॥ जिन प्रभु के मुखारविन्द से ब्राह्मणो की उत्पत्ति हुई है, भुजाओ से क्षत्रिय प्रकट हुए हैं, जाघो से वैश्यो का उद्भव हुआ है और चरणो से शूद्रो का जन्म हुआ है। उन्ही चारो वर्णों को समुत्पन्न करने वाले भगवान का मैं प्रणाम करती हूँ ॥३३॥ जिन भग्वान के मन स चन्द्रदव प्रकट हुए हैं, जिनके नेत्रो से सूर्यदेव, मुख से इन्द्र और अग्नि का प्रादुर्भाव हुआ है तथा प्राण से वायु ने अपना रूप प्रकट किया है उन भगव न् को मैं प्रणाम

करती हूँ ॥३४॥ ऋक्, यजु और सामवेद स्वरूप सातो स्वरो मे ,व्याप्त आत्मा वाले षडङ्ग रूपी आप के लिये मैं बारम्बार प्रणाम करती हूँ ॥३५॥

त्वमिन्द्र पवन सोमस्त्वमीशानस्त्वमन्तक ।
त्वमग्निर्निऋ तिश्चैव वरुणस्त्व दिवाकर ॥३६
देवाश्च स्थावराश्चैव पिशाचाश्चैव राक्षसा ।
गिरय सिद्धगधर्वा नद्यो भूमिश्च सागरा ॥३७
त्वमेव जगतामीशो यत्रासि त्व परात्पर ।
त्वद्रूपमखिल देव तस्मान्नित्य नमोऽस्तु ते ॥३८
अनाथनाथ सर्वज्ञ भूतदेवेन्द्रविग्रह ।
दैतेयैर्बाधितान्पुत्रान्मम पाहि जनार्दन ॥३९
इति स्तुत्वा देवमाता देव नत्वा पुन पुन ।
उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा हर्षाश्रुक्षालितस्तनो ॥४०
अनुग्राह्यास्मि देवेश त्वया सर्वादिकारण ।
अकण्टका श्रिय देहि मत्सुताना दिवौकसाम् ॥४१
अन्तर्यामिञ्जगद्रूप सर्वज्ञ परमेश्वर ।
अज्ञात किं तव श्रीश किं मामीहयसि प्रभो ॥४२

आप ही इन्द्र, पवन, सोम, ईशान, अन्तक, अग्नि, निऋ ति, वरुण और दिवाकर के रूप मे काम किया करते हैं ॥३६॥ विश्व मे देव, स्थावर, पिशाच, राक्षस, सिद्ध, पर्वत, गन्धर्व, नदी, भूमि और समुद्र सब में आप ही का प्रकाश दिखाई दिया करता है ॥३७॥ हे भगवन् ! आप ही इस समस्त जगत् के स्वामी हैं और आप जहाँ पर भी हैं परम श्रेष्ठ हैं। हे देवेश्वर ! यह सम्पूर्ण जगत आप का ही रूप है अतएव आपकी सेवा मे मेरा सर्वदा प्रणाम अर्पित है ॥३८॥ हे अनाथो के स्वामिन् ! हे सर्वज्ञ ! समस्त प्राणियो और देवेन्द्र मे व्याप्त ! हे जनार्दन ! मेरे सब पुत्र इस समय मे इन दुष्ट दैत्यो से पीड़ा

प्राप्त कर रहे हैं आप उनकी रक्षा कीजिए ॥३६॥ इस प्रकार से स्तवन करके देवमाता अदिति ने भगवान की सेवा में अनेक बार प्रणाम किया था। हर्षातिरेक होने के कारण बहने वाले अश्रुओं से उसके स्तन भीग गये थे। उस समय में वह अपने दोनों हाथों को जोड़ कर भगवान से प्रार्थना करने लग गई थी ॥४०॥ अदिति ने कहा—हे सब के आदि कारण देवेश्वर ! यदि आप मुझ पर अपनी अनुकम्पा करने की इच्छा करते हैं तो मैं यही आपकी सेवा में विनम्र निवेदन करती हूँ कि मेरे पुत्रों को (देवगणों को) निष्कन्टक लक्ष्मी प्रदान कीजिएगा ॥४१॥ हे जगद्रूप अन्तर्यामिन् ! हे सर्वज्ञ परमात्मन् ! आप से तो कुछ भी छिपा हुआ नहीं है तथापि हे लक्ष्मीपति देव ! आप मुझ से अपनी मनोव्यथा को कहने के लिए क्यों प्रेरित कर रहे हैं ॥४२

तथापि तव वक्ष्यामि यन्मे मनसि रोचते ।
वृथापुत्रास्मि देवेश दैतेयैः परिपीडिता ॥४३
तान्न हिंसितुमिच्छामि यतस्तेऽपि सुता मम ।
तानहत्वा श्रियं देहि मत्सुतेभ्यः सुरेश्वर ॥४४
इत्युक्तो देवदेवेश. पुन. प्रीतिमुपागतः ।
उवाच हर्षयन्विप्र देवमातरमादरात् ॥४५
प्रीतोऽस्मि देवि भद्रं ते भविष्यामि सुतो ह्यहम् ।
यतः सपत्निपुत्रेषु वात्सल्यं देवि दुर्लभम् ॥४६
त्वया तु यत्कृतं स्तोत्रं तत्पठन्ति नरास्तु ये ।
तेषां सम्पद्वरा पुत्रा न हीयन्ते कदाचन ॥४७
स्वात्मजे वान्यपुत्रे वा यः समत्वेन वर्तते ।
न तस्य पुत्रशोकः स्यादेष धर्मः सनातनः ॥४८
नाहं वोढुं क्षमा देव त्वामद्य पुरुषं परम् ।
असंख्याताण्डरोमाणं सर्वेशं सर्वकारणम् ॥४९

फिर भी मेरे मन को जो भी अच्छा मालूम होता है उसी को

मैं आपकी सेवा मे निवेदित करती हूँ । हे देवेश्वर ! मेरी सपत्नी दिति के पुत्र दैत्यो से मैं इस समय मे अत्यधिक सताई हुई हूँ और मेरे सभी पुत्र विचारे मारे २ व्यर्थ ही इधर उधर डोल रहे हैं ॥४३॥ हे भगवन ! मैं उन दैत्यो को मारना तो नही चाहती हूँ क्यो कि आखिरकार वे भी मेरे ही पुत्र हैं । हे भगवन् ! आप सहार किये ही बिना मेरे पुत्रो से अपहृत की हुई सम्पत्ति उनको दिला दीजिए ॥४४॥ हे विप्र ! इस रीति से अदिति के द्वारा प्रार्थना करने पर भगवान और भी अधिक उस पर प्रसन्न हो गये थे और फिर आदर के साथ देवमाता को प्रसन्न करते हुए बोले ॥४५॥ श्री भगवान् ने कहा—हे देवि ! आपका कल्याण हो । मैं तुम पर अधिक प्रसन्न हूँ । हे देवि ! अपनी सपत्नी के पुत्रो पर वत्सलता का भ व दिखाना बहुत ही कठिन है। अत मैं आपका पुत्र बनकर ही समुत्पन्न होऊँगा ॥४६॥ आप के कहे हुए इस स्तोत्र का जो मनुष्य पाठ करेंगे उनके पुत्र और धन का कभी विनाश नही होगा ॥४७॥ अपने और दूसरे के पुत्र मे जो कोई समता का बरताव रखता है उसको कभी भी अपने पुत्र का शोक नही हुआ करता है यही सनातन धर्म है ॥४८॥ अदिति ने कहा—हे देव ! आप तो परम पुरुष हैं । अखण्ड एव असख्य ब्रह्माण्ड आपके रोमो मे भरे हुए हैं । आप सब के स्वामी हैं और सब के आप कारण हैं । अतएव मैं आपको धारण करने मे असमर्थ हूँ ॥४६

यत्प्रभाव न जानन्ति श्रुतय सर्वदेवता ।
तमह देवदेवेश धारयामि कथ प्रभो ॥५०
अणोरणीयासमज परात्परतर प्रभुम् ।
धारयामि कथ देव त्वामह पुरुषोत्तमम् ॥५१
महापातकयुक्तोऽपि यन्नामस्मृतिमात्रत ।
मुच्यते स कथ देवो ग्राम्येषु जरिमर्हति ॥५२
यथा शूकरमत्स्याद्या अवतारास्तव प्रभो ।

तथाप्यमपि को वेद तव विश्वेश चेष्टितम् ॥५३
त्वत्पादपद्मप्रणता त्वन्नामस्मृतितत्परा ।
त्वामेव चिंतये देव यथेच्छसि तथा कुरु ॥५४
तयोक्त वचन श्रुत्वा देवदेवो जनार्दन ।
दत्वाभय देवमातुरिद वचनमब्रवीत् ॥५५
सत्यमुक्त महाभागे त्वया रास्त्यत्र सशय ।
तथापि शृणु वक्ष्यामि गुह्याद्गुह्यतर शुभे ॥५६

हे प्रभो ! जिनके प्रभाव और महिमा का पार श्रुति और समस्त देववृन्द भी नही कर सकते हैं । उन देव देवश्वर को मैं अपने उदर म कैस धारण कर सकूँगी ? ॥५०॥ हे देव ! आप तो सूक्ष्म से भी परम सूक्ष्म है—आप उत्पत्ति से रहित हैं और पर से भी पर प्रभु हैं । पुरुषोत्तम आपको मैं कैसे धारण करूँगी ? ॥५१॥ ब्रह्महत्या आदि महापातक करने वाला मनुष्य भी जिनके नाम का स्मरण मात्र करने से ही मुक्त हो जाया करता है वह देवेश्वर मुझ जैसी ग्रामीण के यहाँ जन्म धारण करे —यह कैसे उचित होगा ? ॥५२॥ अच्छा जिस तरह से आपके शूकर और मत्स्य आदि अवतार हुए हैं वैसे ही यह भी आपका अवतार हो जायगा क्योंकि हे विश्वेश ! आपकी चेष्टा को कौन समझ सकता है ॥५३॥ जैसी आपकी इच्छा हो वही आप करिए । मैं तो सर्वदा आपके चरण कमलो म प्रणाम करती हूँ ॥५४॥ श्रीसनक-देवदेव जनार्दन न देवमाता अदिति को अभय का दान दिया और यह कहने लगे थे ॥५५॥ भगवान न कहा—हे महाभागे ! तुमने सर्वथा सत्य ही कहा है—इस आपके कथन म कुछ भी सन्देह नहीं है । हे शुभे ! हे मैं एक परम गुप्त बात आप स कहता हू उसका आप श्रवण करे ॥५६

रागद्वेषविहीना ये यद्भक्ता मत्परायणा ।
वहति सतत ते मा गतासूया अदाम्भिका ॥५७

परोपतापविमुखा शिवभक्तिपरायणा ।
मत्कथाश्रवणासक्ता विहन्ति सतत हि माम् ॥५८
पतिव्रता पतिप्राणा पतिभक्तिपरायणा ।
वहन्ति सतत देवि स्त्रियोऽपि त्यक्तमत्सरा ॥५६
मातापित्रोश्च शुश्रूपुर्गुरुभक्तोऽतिथिप्रिय ।
हितकृद्ब्राह्मणाना य स मा वहति सर्वदा ॥६०
पुण्यतीर्थरता नित्य सत्सङ्गनिरतास्तथा ।
लोकानुग्रहशीलाश्च सतत ते वहन्ति माम् ॥६१
परोपकारनिरता परद्रव्यपराङ्मुखा ।
नपुसका परस्त्रीपु ते वहन्ति च मा सदा ॥६२
तुलस्युपासनरता सदा नामपरायणा ।
गोरक्षणपरा ये च सतत मा वहन्ति ते ॥६३

जो पुरुष राग द्वेष से रहित हैं और मेरे भक्तजन हैं, जो अहर्निश मेरे ही चरणो मे सलग्न रहा करते हैं, जो असूया और दम्भ से रहित हैं वे तो सदा ही मुझे धारण करने मे समर्थ होते हैं ॥ ५७ ॥ जो सदा दूसरों को सन्ताप देने से बचते हैं और भगवान शिव की भक्ति मे लीन रहा करते हैं तथा सदा मेरी कथा के श्रवण करने की जिनको लालसा रहा करती है वे मुझे सर्वदा धारण कर सकते हैं ॥५८॥ हे देवि ! जो स्त्रियाँ पतिव्रता होती हैं और अपने पति को प्राण के समान ही समझा करती हैं तथा अहर्निश पति की भक्ति मे ही सलग्न रहा करती है । जो स्त्रियाँ मात्सर्य से रहित होती हैं वे मुझे सदा धारण करने मे समर्थ होती हैं ॥५६॥ जो अपने माता पिता की सदा सेवा भक्ति भाव से किया करता है—जो गुरु का परम भक्त है तथा समागत अतिथि को प्रिय समझता है और विप्रो का हित किया करता है वह मुझे धारण करने का पात्र क्यो नहीं है ? ॥ ३० ॥ जो परम पुण्यमय तीर्थों में भ्रमण किया करते हैं, सदा सत्पुरुषो की सगति

किया करत हैं, जिनका स्वभाव समस्त प्राणियो पर अनुग्रह करने का होता है व मुझे सदा धारण कर सकते हैं ॥६१॥ जो परोपकार मे तत्पर, दूसरे के द्रव्य से विमुख रहा करते हे तथा पराई स्त्रियो के विषय मे नपु सकत्व रक्खा करते हैं वे मुझे सदा धारण कर सकते हैं ॥६२॥ जो सदा तुलसी की उपासना किया करते हैं, जो सदा मेरे नामो का स्मरण किया करते हैं और नाम स्मरण म मग्न रहा करते हैं। जो सर्वदा गौ रक्षा मे सलग्न रहते हैं, उनके समीप मे तो मैं सर्वदा ही रहा करता हूँ ॥६३

प्रतिग्रह निवृत्ता ये परान्नविमुखास्तथा ।
अन्नोदकप्रदातारो वहन्ति सतत हि माम् ॥६४
त्व तु देवि पतिप्राणा साध्वी भूतहिते रता ।
सप्राप्य पुत्रभाव ते साधयिष्ये मनोरथम् ॥६५
इत्युक्त्वा देवदेवशो ह्यदिति देवमातरम् ।
दत्त्वा कण्ठगता मालामभय च तिरोदधे ॥६६
सा तु सहृष्टमनसा देवसूर्दक्षनन्दिनी ।
प्रणम्य कमलाकान्त पुन स्वस्थानमाव्रजत् ॥६७
ततोऽदितिर्महाभागा सुप्रीता लोकवन्दिता ।
असूत समये पुन सर्वलोकनमस्कृतम् ॥६८
शखचक्रधर शान्त चन्द्रमण्डलमध्यगम् ।
सुधाकलशदध्यन्नकर वामनसज्ञितम् ॥६९
सहस्रादित्यसकाश व्याकोशकमलेक्षणम् ।
सर्वाभरणसयुक्त पीताम्बरधर हरिम् ॥७०
स्तुत्य मुनिगणैर्युक्त सर्वलोकैकनायकम् ।
आविर्भू त हरि ज्ञात्वा कश्यपो हर्षविह्वल ।
प्रणम्य प्राञ्जलिर्भू त्वा स्तोतु समुपचक्रमे ॥७१

जो दान लेने के कार्य से दूर रहते हैं, जो दूसरो के अन्न से बचते रहा करते हैं तथा जो स्वय अन्न और जल का दान दिया करते

हैं वे मुझे पाने के सर्वदा अधिकारी पात्र हुआ करते हैं ॥६४॥ हे देवि ! आप तो समस्त प्राणियो के हित करने मे परायण रहा करती है और पतिप्राणा एव परम साध्वी हैं अतएव मैं आपका पुत्र बन कर आपका मनोरथ पूर्ण कर दूंगा ॥६५॥ उन देवेश्वर भगवान ने देवों की माता अदिति को इस रीति से समझा बुझाकर उसको अभय का दान प्रदान करके अन्त मे अपने कण्ठ की माला देकर वही पर अन्तर्धान हो गये थे ॥६६॥ उस समय मे वह दक्ष प्रजापति की पुत्री देव माता अदिति अपने मनमे अत्यन्त प्रसन्न होकर लक्ष्मीनारायण भगवान को प्रीति पूर्वक प्रणाम करती हुई अपने स्थान पर वापिस लौट कर आ गयी थी ॥६७॥ इसके उपरान्त समस्त ससार की वन्दनीया अदिति ने परम प्रसन्नता मे भरी रहती हुई समय समाप्त होने पर परम वन्दनीया पुत्र का प्रसव किया था ॥६८॥ कश्यप मुनि ने भी शख, चक्र, गदाधारी, परम शान्त चन्द्र मण्डल के मध्य मे विराजमान, हाथ मे अमृत का पात्र, दधि और अन्न ग्रहण किये हुए वामन नाम को धारण करने वाले, सहस्रो सूर्यो के समान तेजस्वी, कमल के सदृश सुन्दर नेत्रो से युक्त, सभी आभरणो से विभूषित, स्तुति के समुचित पात्र, मुनियो से घिरे हुये और सब लोको मे अद्वितीय एव अनुपम नायक को देखकर उन्होने साक्षात् श्री हरि को प्रकट हुआ समझ लिया था और परम हर्ष से गद्गद् होकर हाथ जोड कर प्रणाम करते हुये स्तवन करने के लिये समुद्यत हो गये थे ॥६९-७१॥

नमो नमस्तेऽखिलकारणाय नमो नमस्तेऽखिलपालकाय ।
नमो नमस्तेऽमरनायकाय नमो नमो दैत्यविनाशनाय ॥ ७२
नमो नमो भक्तजनप्रियाय नमो नम सज्जनरंजिताय ।
नमो नमो दुर्जननाशनाय नमोऽस्तु तस्मै जगदीश्वराय ॥७३
नमो नमः कारणवामनाय नारायणायामितविक्रमाय ।
सशार्ङ्गचक्रासिगदाधराय नमोऽस्तु तस्मै पुरुषोत्तमाय ॥७४

नम पयोराशिनिवासनाय नमोऽस्तु सद्‌हृत्कमलस्थिताय ।
नमोऽस्तु सूर्याद्यमितप्रभाय नमो नम पुण्यकथागताय ॥७५
नमोनमोऽर्केन्दुविलोचनाय नमोऽस्तु ते यज्ञफलप्रदाय ।
नमोऽस्तु यज्ञाङ्गविराजिताय नमोऽस्तु ते सज्जनवल्लभाय॥७६
नमो जगत्कारणकारणाय नमोऽस्तु शब्दादिविवर्जिताय ।
नमोऽस्तु ते दिव्यसुखप्रदाय नमो नमो भक्तमनोगताय ॥७७

कश्यप मुनि ने कहा—हे भगवन् ! सबके कारण स्वरूप आप की सेवा मे मेरा प्रणाम है । सबके परिपालन करने वाले आपकी सेवा मे मेरा प्रणाम अर्पित है और पुन प्रणाम है । देवो के नायक आपको मेरा बारम्बार प्रणाम है । दैत्यो के विनाश करने वाले आपकी सेवा मे मेरा पुन पुन प्रणाम है ॥७२॥ भक्तो के परम प्रिय भगवान को बारम्बार नमस्कार है । सज्जनो को प्रसन्न करने वाले भगवान की सेवा मे मेरा बारम्बार प्रणाम है । दुर्जनो का नाश करने वाले भगवान को मेरा बारम्बार नमस्कार है । जो इस सम्पूर्ण जगत के स्वामी हैं उन भगवान के लिये मेरा प्रणाम है ॥७३॥ विशेष कारण के वशीभूत होकर वामन स्वरूप का अवतार धारण करने वाले तथा अमित विक्रम वाले भगवान् को मेरा बारम्बार प्रणाम है । शार्ङ्ग-धनुष, सुदर्शन चक्र, नन्दक खड्ग और कौमोदकी गदा को धारण करने वाले परम पुरुषोत्तम भगवान की सेवा मे मेरा प्रणाम है ॥७४ क्षीर सागर मे निवास करने वाले विश्वम्भर भगवान को नमस्कार है । सत्पुरुषो के हृदय कमल मे संस्थित अन्तर्यामी ईश्वर के लिये मेरा प्रणाम है । सूर्यादि के तुल्य अपरिमित प्रभा से समन्वित आपकी सेवा मे प्रणाम है तथा परम पवित्र कथाओ मे वर्णन किये गये आपको नमस्कार है ॥७५॥ सूर्य-चन्द्ररूपी नेत्रो वाले भगवान की सेवा में बारम्बार नमस्कार है । यज्ञो के पुण्य फल को प्रदान करने वाले तथा यज्ञाङ्गो मे विराजमान प्रभु के लिये नमस्कार है । हे सत्पुरुषों को

प्रिय समझने वाले ! आपको मैं अपना प्रणाम अर्पित करता हूँ ॥७६॥ इस सम्पूर्ण जगतके कारण स्वरूप ईश्वर के लिये नमस्कार है। शब्दादि से रहित भगवान के लिये नमस्कार है तथा दिव्य सुख प्रदान करने वाले भगवान को प्रणाम है और भगवद्भक्तों के मनमें सदा निवास करने वाले भगवान को प्रणाम है ॥७७॥

नमोऽस्तु ते ध्वान्तविनाशकाय नमोऽस्तु ते मन्दरधारकाय ।
नमोऽस्तु ते यज्ञवराहनाम्ने नमो हिरण्याक्षविदारकाय ॥७८
नमोऽस्तु ते वामनरूपभाजे नमोऽस्तु ते क्षत्रकुलान्तकाय ।
नमोऽस्तु ते रावणमर्दनाय नमोऽस्तु ते नन्दसुताग्रजाय ॥७९
नमस्ते कमलाकान्त नमस्ते सुखदायिने ।
स्मृतार्तिनाशिने तुभ्यं भूयो भूयो नमो नमः ॥८०
यज्ञेश यज्ञविन्यास यज्ञविघ्नविनाशन ।
यज्ञरूप यजद्रूप यज्ञाग त्वां यजाम्यहम् ॥८१
इति स्तुतः स देवेसो वामनो लोकपावनः ।
उवाच प्रहसन्हृर्ष वर्द्धयन्कश्यपस्य सः ॥८२
तात तुष्टोऽस्मि भद्रं ते भविष्यति सुरार्चित ।
अचिरात्साधयिष्यामि निखिल त्वन्मनोरथम् ॥८३
अहं जन्मद्वयोस्त्वेव युवयो. पुत्रता गतः ।
अस्मिञ्जन्मन्यपि तथा साधयाम्युत्तम सुखम् ॥८४

अज्ञानान्धकार विनाश करने वाले, मन्दराचलधारी, यज्ञवराह, हिरण्याक्ष के विदारण करने वाले भगवान की सेवा मे बारम्बार प्रणाम समर्पित है। वामन का स्वरूप (बौना) धारण करने वाले आपके लिये मेरा प्रणाम है। क्षत्रियो के वश का विध्वस करने वाले परशुराम के अवतार वाले आपको नमस्कार है। लकेश्वर रावण का वध करने वाले रामरूप आपको नमस्कार है। बलराम के छोटे भाई नन्द सुत श्रीकृष्ण का अवतार धारण करने वाले आपको मेरा प्रणाम

है ।।७८।७६।। हे कमलाकान्त ! सुख प्रदान करने वाले आपको प्रणाम करता हूँ । स्मरण करने मात्र से पीडा को दूर भगा देने वाले आपको बारम्बार प्रणाम है । हे यज्ञेश ! हे यज्ञ विन्यास ! हे यज्ञो के विघ्नों को विनष्ट करने वाले ! हे यज्ञ स्वरूप ! हे यज्ञाङ्ग ! मैं आपका पूजन करता हूँ ।।८०।८१।। इस प्रकार से कश्यप मुनि के द्वारा स्तुति किये जाने पर लोकपावन, देश भावन भगवान वामनजी हँसकर कश्यप मुनि का हर्ष वर्धन करते हुये बोले ।।८२ । श्री भगवान ने कहा—हे पिता जी मैं प्रसन्न हूँ । हे देवो के वन्दनीय ! आपका कल्याण होगा ।।८३।। मैं पृश्निगर्भ और श्रीकृष्ण इन दोनो नामोंमे से आपका पुत्र बना करता हूँ अतएव इस वामन जन्म मे भी आपको सुख दूँगा ।।८४

अनान्तरे वलिर्दैत्यो दीर्घसत्र महामखम् ।
आरेभे गुरुणा युक्त काव्येन च मुनीश्वरै ।।८५
तस्मिन्मखे समाहूतो विष्णुर्लक्ष्मीसमन्वित ।
हवि स्वीकारणार्थाय ऋषिभिर्ब्रह्मवादिभि ।।८६
प्रवृद्धैश्वर्यदैत्यस्य वर्तमाने महाक्रतौ ।
आमन्त्र्य मातापितरौ स वटुर्वामानो ययौ ।।८७
स्मितेन मोहयँल्लोक वामनो भक्तवत्सल ।
हविर्भोक्तुमिवायातो वले प्रत्यक्षतो हरि ।।८८
दुर्वृत्तो वा जडा वाय हितोऽपि वा ।
यो भक्तियुक्तस्तस्यान्त सदा सनिहितो हरि ।।८९
आयान्त वामन दृष्ट्वा ऋषयो ज्ञानचक्षुष ।
ज्ञात्वा नारायण देवमुदस्थु सभ्यसयुता ।।९०
एतज्ज्ञात्वा दैत्यगुरुरेकाते वलिमब्रवीत् ।
स्वसारमविचार्येव खला कार्याणि कुर्वते ।।९१

इस ओर दैत्यराज वलि ने अपने गुरुवर शुक्राचार्य और अन्य मुनीश्वरों को अपने साथ मे लेकर बहुत लम्बे समय तक चलने वाले

एक बड़े भारी यज्ञ के करने का आरम्भ कर दिया था ॥ ८५ ॥ उस यज्ञ में ब्रह्मवादी महामहर्षियों ने लक्ष्मीनारायण भगवान का हवि स्वीकार करने के लिये आवाहन किया था ।।८६।। उस समय में वटुक वामन अपने माता पिता से आज्ञा प्राप्त करके बढ़े हुये ऐश्वर्य से सम्पन्न दैत्यराज के किये जाने वाले महा यज्ञो के देखने को चल दिये थे ।।८७।। भक्तवत्सल वामन देव अपनी मन्द मुस्कराहट से सम्पूर्ण संसार को मुग्ध करते हुये बलि राजा के सामने प्रकट होकर विष्णु भगवान के हवि का भोग लगाने के समान आगे को बढ़ चले ।।८८।। जो अन्तःकरण में भक्ति का भाव रखता है वह दुराचारी हो या सदाचारी, जड़ हो या प्राज्ञ, जो लोगो के हित का काम करने वाला है श्री हरि उसके समीप में रहा करते हैं ।।८९।। वहाँ पर वामन देव को आते हुये देखकर ऋषिगणों ने अपनी ज्ञान दृष्टि से देख लिया था कि यह तो भगवान नारायण ही आ रहे हैं अतः वे सभ्यता के साथ प्रत्युत्थान देने के लिए सब खड़े हो गये थे ।।९०।। दुष्ट लोग अपनी शक्ति का विचार न कर काम करने के लिए उद्यत हो जाया करते हैं अतएव दैत्य गुरु शुक्राचार्य इस बात को जाँच गये थे और फिर राजा बलि से एकान्त में जाकर कहने लगे थे ।।९१

भो भो दैत्यपते सौम्य ह्यपहर्ता तव श्रियम् ।
विष्णुर्वामनरूपेण ह्यदितेः पुत्रतां गतः ।।९२
तवाध्वरं स आयाति त्वया तस्यासुरेश्वर ।
न किंचिदपि दातव्यं मन्मतं श्रृणु पण्डित ।।९३
आत्मबुद्धिः सुखकरी गुरुबुद्धिर्विशेषतः ।
परबुद्धिर्विनाशाय स्त्रीबुद्धिः प्रलयकरी ।।९४
शत्रूणां हितकृद्यस्तु स हन्तव्यो विशेषतः ।।९५
गुरोर्न त्रवक्तव्यं धर्ममार्गविरोधतः ।
यदादत्ते स्वयं विष्णुः किमस्मादधिकं वरम् ।।९६

कुर्वन्ति विदुषो यज्ञान्विष्णुप्रीणनकारणात् ।
स चेत्साक्षाद्धविर्भोगी मत्त कोऽस्यधिको भुवि ॥६७
दरिद्रेणापि यत्किंचिद्दीयते विष्णवे गुरो ।
तदेव परम दान दत्त भवन्ति चाक्षयम् ॥६८

श्री शुक्राचार्यजी ने कहा—हे दैत्यराज ! आप तो बहुत ही सीधे साधे और भोले हैं । मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि आपकी लक्ष्मी का अपहरण करने के लिये और इसी विचार से यह विष्णु भगवान ही अदिति के पुत्र बन कर यहाँ आये है ॥६२। हे असुरेश्वर । वही आपके इस यज्ञ - मण्डप मे आरहे हैं । अब हे पण्डित ! आप मेरी बात का श्रवण कर भली भाँति समझ लो आप उसको कुछ भी मत देना ॥६३॥ अपने अन्दर यदि बुद्धि हो तो वह हमेशा सुख देने वाली हुआ करती । परन्तु अपने गुरुदेव की बुद्धि परम सुख दिया करती है और शत्रु अथवा दूसरे की बुद्धि नाश कारिणी होती है । यह कहा भी गया है कि मूर्ख सदा दूसरे की बुद्धि ग्रहण किया करता है । स्त्री की बुद्धि प्रलयकारिणी हुआ करती है ॥६४॥ जो पुरुष अपने शत्रुगण का हित किया करता है वह तो भली भाति नष्ट विनष्ट होकर ही रहा करता है ॥६५॥ राजा बलि ने इस गुरुदेव के वचन का उत्तर दिया था । उसने कहा—हे गुरुदेव ! धर्म मार्ग के विपरीत आपको ऐसी बात कभी भी नहीं करनी चाहिये । यदि स्वयं विष्णु ही दान लेना चाहते हैं तो इससे भली दूसरी मेरे लिये और क्या बात हो सकती है ॥६६॥ विद्वान् लोग भगवान विष्णुदेव को प्रसन्न करने के लिये तो यज्ञ कर्म आदि किया करते हैं । जब वे स्वयं ही हवि का भोग लगाना चाहते हैं तो इस भूमण्डल पर मुझसे अधिक महान भाग्य-शाली और कौन होगा ? ॥६७॥ हे गुरुवर ! एक महान दरिद्र पुरुष भी जो कुछ यथा शक्ति विष्णुदेव की प्रीति के लिये दान दिया करता है वह दान परम श्रेष्ठ और अक्षय हुआ करता है ॥६८

स्मृतोऽपि परया भक्त्या पुनाति पुरुषोत्तमः ।
येन केनाप्यर्चितश्चे द्दाति परमां गतिम् ॥६६
हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तैरपि स्मृत ।
अनिच्छयापि सस्पृष्टो दहत्येव हि पातकः ॥१००
जिह्वाग्रे वसते यस्य हरिरित्यक्षरद्वयम् ।
स विष्णुलोकमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥१०१
गोविंदेति सदा ध्यायेद्यस्तु रागादिवर्जित ।
स याति विष्णुभवनमिति प्राहुर्मनीषिण ॥१०२
अग्नौ च ब्राह्मणे वापि हूयते यद्धविर्गुरो ।
हरिभक्त्या महाभाग तेन विष्णु प्रसीदति ॥१०३
अहं तु हरितुष्ट्यर्थं करोम्यध्वरमुत्तमम् ।
स्वयंमायाति चेद्विष्णुः कृतार्थोऽस्मि न सशयः ॥१०४
एव वदति दैत्येन्द्रे विष्णुर्वामनरूपधृक् ।
प्रविवेशाध्वरस्थान हुतवह्निमनोरमम् ॥१०५

पुरुषोत्तम प्रभु तो अत्युत्कट भक्तिभाव से स्मरण करने पर ही, उस अपने उपासक भक्त को परम पवित्र कर दिया करते हैं चाहे जो कोई भी हो जब उनका वह पूजन करता है तो वे उसको परमोत्तम गति दिया करते हैं ॥६६॥ दोषयुक्त चित्त वाले पुरुष भी यदि श्री हरि भगवान का स्मरण किया करते हैं तो भी वे उनके सम्पूर्ण पाप को हरण कर लिया करते हैं। अग्नि को बिना इच्छा के भी कोई स्पर्श करे तो अवश्य ही जला दिया करता है। इसी प्रकार से भगवान श्री हरि तो पापों के समुदाय का विनाश कर दिया करते हैं ॥१००॥ जिन पुरुषों की जिह्वा के अग्र भाग पर श्री हरि इन दो अक्षरों का निवास रहा करता है वह तो उस परमोत्तम विष्णु लोक की प्राप्ति किया करता है जिस पद से फिर वापिस लौटना परम दुर्लभ हुआ करता है ॥१०१॥ बुद्धिमान पुरुष यहां कहते हैं जो रागादि दोषों से रहित

होकर के सर्वदा श्री गोविन्द भगवान का ध्यान किया करते हैं वे निश्चय ही भगवान विष्णु के लोक की प्राप्ति किया करते हैं ।।१०२।। हे महाभाग ! श्री हरि की भक्ति के साथ जो हवि अग्नि या ब्राह्मण मे होमी जाया करती है उससे भगवान श्री विष्णु परम प्रसन्न हुआ करते हैं ।।१०३।। मैं भी तो इस समय भगवान् श्री विष्णुदेव को प्रसन्न करने के ही लिये इस महान यज्ञ का यजन कर रहा हूँ । अब यदि भगवान विष्णु स्वय ही कृपा करके यहां पदार्पण करते हैं तो मैं तो निश्चित ही परम कृतकृत्य हो जाऊँगा ।।१०४।। वह दैत्यराज बलि इस प्रकार से अपने गुरुदेव से कह ही रहा था कि अग्नि मे होम करने से उस परम मनोहर स्थल मे जहा कि यज्ञ का यजन किया जारहा था वामन स्वरूप को धारण करने वाले श्री विष्णुदेव ने प्रवेश किया था ।।१०५

त दृष्ट्वा कोटिसूर्याभं योग्यावयवसुन्दरम् ।
वामन सहसोत्थाय प्रत्युगृह्णात्कृताञ्जलि. ।।१०६
दत्वासन च प्रक्षाल्य पादौ वामनरूपिणम् ।
सकुटुबो वहन्मूर्ध्ना परमा मुदमाप्तवान् ।।१०७
विष्णवेऽस्मै जगद्धाम्ने दत्त्वार्घ्यं विधिवद्बलि ।
रोमाञ्चिततनुर्भूत्वा हर्षाश्रुनयनोऽब्रवीत् ।।१०८
अद्य मे सफल जन्म अद्य मे सफलो मख. ।
जीवित सफल मेऽद्य कृतार्थोऽस्मि न सशय. ।।१०६
अमोघामृतवृष्टिर्मे समायातातिदुर्लभा ।
त्वदागमनमात्रेण ह्यनायासो महोत्सव ।।११०
एते च ऋषय सर्वे कृतार्था नात्र सशय ।
यै: पूर्वं हि तपस्तप्त तदद्य सफल प्रभो ।।१११
कृतार्थोऽस्मि कृतार्थोऽस्मि कृतार्थोऽस्मि न सशय ।
तस्मात्तभ्य नमस्तुभ्य नमस्तुभ्य नमोनम ।।११२

करोडो सूर्यो के समान कान्ति वाले और ठीक २ अवयवो से युक्त श्री वामनदेव के दर्शन करके राजा बलि एक साथ अपने आसन से उठकर खडा हो गया था और उसने अपने दोनो हाथो को जोडते हुए उनका स्वागत किया था ।।१०६।। फिर एक आसन समर्पित कर उन वामन रूपधारी विप्र वटु के राजा ने चरणो का प्रक्षालन किया था तथा उसके चरणामृत को अपने मस्तक पर एव अपने समस्त परिवार के मस्तको पर छिडक दिया था और उस समय मे उसके मन मे अत्यधिक प्रसन्नता हुई थी ।।१०७।। इसके उपरान्त राजा बलि ने समस्त जगत् के परमाश्रय स्थान भगवान विष्णुदेव को विधिपूर्वक अर्घ्य दिया था । उस समय मे पुलकायमान होकर परम हर्ष से अपने नेत्रो मे आँसू भरकर दैत्यराज बलि ने कहा था ।।१०८।। दैत्यराज ने निवेदन किया था—आज मेरा जन्म परम सफल होगया है और आज मेरा यह यज्ञ भी सफल हो गया है एव आज मेरा जीवन ही सफल होगया है, अधिक क्या निवेदन करू मैं तो आज निश्चय ही कृतार्थ होगया हूँ ।।१०९।। मेरे घर मे तो मैं समझता हूँ कि आज अति दुर्लभ और अमोघ अमृत की वर्षा हो रही है । हे भगवान् आपके यहाँ पदार्पण करने से ही अनायास मेरे गृह मे एक प्रकार का उत्सव सा मच गया है ।।११०।। इस समय म यहाँ पर विराजमान होने वाले ये सब ऋषिगण भी कृतार्थ हो गये है । हे प्रभो ! इनने जो भी अब तक तपश्चर्या की थी वह आज इनकी सफल हो गई है ।।१११।। मैं तो अवश्य ही कृतार्थ होगया । कृतार्थ हो गया और परम कृतार्थ हो गया हूँ इसी कारण से मैं आपकी सेवा मे अपना प्रणाम समर्पित करता हूँ और बारम्बार प्रणाम करता हूँ ।।११२

त्वदाज्ञया त्वन्नियोग साधयामीति मन्मन ।
अत्युत्साहसमायुक्त समाज्ञापय मा प्रभो ।।११३
एवमुक्तो दीक्षितेन प्रहसन्वामनोऽब्रवीत् ।

देहि मे दपसि स्यात् भूमि त्रिपद समिताम् ॥११४
एतच्छु त्वा वलि प्राह राज्य याचितवान्न हि ।
ग्राम वा नगर चापि धन वा कि कृत त्वया ॥११५
तन्निशम्य वलि प्राह विष्णु सर्वशरीरभृत् ।
आसन्नभ्रष्टराज्यस्य वैराग्य जनयन्निव ॥११६
श्रृणु दैत्येन्द्र वक्ष्यामि गुह्याद्गुह्यतम परम् ।
सर्वसग विहीनाना किमर्थं साध्यते वद ॥११७
अह तु सर्वभूतानामन्तर्यामीति भावय ।
मयि सर्वमिद दैत्य किमन्यै साध्यते वद॥११८
रागद्वेषविहीनाना शान्तात्मा त्यक्तमायिनाम् ।
नित्यानदस्वरूपाणा किमन्यं साध्यते धनं ॥११९

अब जो भी आपकी आज्ञा होगी मैं आपके उसी कार्य को पूर्ण सिद्ध करूंगा । मेरा मन इस समय मे बहुत ही अधिक उत्साह से भरा हुआ है । अतएव हे प्रभो । अब आप मुझे अपनी सेवा के लिये आदेश प्रदान कीजिये ॥११३॥ उस यज्ञ मे दीक्षा का ग्रहण किये हुये राजा वलि के द्वारा इस प्रकार से कहने पर श्री वामनदेव ने हँसकर कहा था कि मुझे तपस्या करने के लिये केवल तीन पग भूमि का दान करो ॥११४॥ यह सुनकर राजा वलि ने कहा था–हे भगवन् ! आपने यह क्या माँगा है ? आपने न तो कोई राज्य ही माँगा न ग्राम की ही याचना की है न कोई नगर माँगा और न धन ही माँगा है ॥११५॥ इस बात का श्रवण कर सब प्राणियो के शरीर को पुष्ट करने वाले वामन रूपधारी भगवान विष्णुदेव शीघ्र ही जिसका राज्य भ्रष्ट होने वाला है उस राजा वलि का वैराग्य दिखाते हुए बोले थे ॥११६॥ भगवान ने कहा—हे दैत्येन्द्र ! मैं आप से एक गुप्त बात कहता हूँ उसको आप सुनिए—हम लोग तो सभी प्रकार के

सङ्गो मे रहित है तो फिर आप ही बताइये, हमको धन सम्पत्ति से क्या प्रयोजन है ? ॥११७॥ हमको तो आप सब प्राणियों का अन्तर्यामी ही समझ लेना चाहिए । यह सम्पूर्ण जगत् हममे ही तो है फिर अन्य धनो से सबको क्या करना शेष रहता है ? ॥११८॥ जो सभी प्रकार के राग द्वेष से रहित हैं, जो ज्ञान से सुसम्पन्न हैं जो माया का छोड देने वाले हैं और जो नित्य ही आनन्द स्वरूप हैं वे धन को ग्रहण करके भी क्या कार्य सिद्ध करेंगे ? ॥११६

आत्मवत्सर्वभूतानि पश्यता शान्तचेतसाम् ।
अभिन्नमात्मन सर्वं को दाता दीयते च किम् ॥१२०
पृथ्वीय क्षत्रियवशा इति शास्त्रेषु निश्चितम् ।
तदाज्ञाया स्थिता सर्वे लभन्ते परम सुखम् ॥१२१
दातव्यो मुनिभिश्चापि पष्ठाशो भूभुजे वले ।
महीय ब्राह्मणाना तु दातव्या सवयत्नत ॥१२२
भूमिदानस्य माहात्म्य न भूत न भविष्यति ।
पर निर्वाणमाप्नोति भूमिदो नात्र सशय ॥१२३
स्वल्पामपि मही दत्त्वा श्रोत्रियायाहिताग्नये ।
ब्रह्मलोकमवाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥१२४
भूमिद सर्वद प्रोक्तो भूमिदो मोक्षभाग्भवेत् ।
अतिदान तु तज्ज्ञेय सर्वपापप्रणाशनम् ॥१२५
महापातकयुक्तो वा युक्तो वा सर्वपातकै ।
दशहस्ता हो दत्त्वा सर्वपापै. प्रमुच्यते ॥१२६

सभी प्राणियो को अपने ही समान देखने वाले और परम शान्त चित्त वाले के लिये तो अपने से सभी अभिन्न हैं तो फिर कौन देने वाला होता है और दिया भी क्या जा सकता है ? ॥१२०॥ यह भूमि तो क्षत्रियो के वश मे ही रहा करती है। ऐसा शास्त्रो का सिद्धान्त है। अतएव शास्त्रो की आज्ञानुसार ही चलने वालो को परम सुख प्राप्त हुआ करता है ॥१२१॥ हे बलिराज ! मुनियो का

भी अपने तप मे से छटवाँ भाग राजा को देना पड़ता है। अतएव इस भूमि का दान ब्राह्मणो को यत्न पूर्वक करना चाहिये ॥ १२२ ॥ हे वले ! इस भूमि के दान का माहात्म्य भूत और भविष्यत काल मे भी अपनी समता नही रखता है । इस भूमि के दान देने वाले को परम सुख की प्राप्ति हुआ करती है—इसमे तनिक भी सन्देह नही है ॥१२३ किसी अग्निहोत्र करने वाले श्रोत्रिय ब्राह्मण को बहुत थोड़ी-सी भूमि का दान देने से भी उस व्यक्ति को उस ब्रह्मलोक की प्राप्ति हुआ करती है जहा पर पहुँच कर फिर वापिस लौटना कठिन है ॥१२४॥ जो भूमि का दान करने वाला है वह सभी प्रकार की वस्तुओ का दाता माना जाया करता है। भूमि के दान देने वाले की मुक्ति होजाया करती है। भूमि दान को सब पापो का नाशक एक महा दान समझना चाहिए ॥१२५॥ महा पातकी और सभी प्रकार के पापो से कलङ्कित मनुष्य केवल दश हाथ भूमि का दान देने से सभी पापो से छुटकारा पा जाया करता है ॥१२६

सत्पात्रे भूमिदाता य सर्वदानफल लभेत् ।
भूमिदानसम नान्यत्त्रिपु लोकेपु विद्यते ॥१२७
द्विजाय वृत्तिहीनाय यः प्रदद्यान्मही वले ।
तस्य पुण्यफल वक्तु न क्षमोऽब्दशतैरहम् ॥१२८
रक्ताय देव पूजासु वृत्तिहीनाय दैत्यप ।
स्वल्पामपि मही दद्याद्य: स विष्णुर्न सशय. ॥१२९
इक्षुगोधूमतुवरीपूगवृक्षादिसयुता ।
पृथ्वी प्रदीयते येन स विष्णुर्नात्र सशय ॥१३०
वृत्तिहीनाय विप्राय दरिद्राय कुटुम्बिने ।
स्वल्पामपि मही दत्वा विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥१३१
भक्ताय देवपूजासु विप्रायाढकिका महीम् ।
दत्त्वा लभेत गङ्गाया त्रिरात्रस्नानज फलम् ॥१३२

विप्राय वृत्तिहीनाय सदाचाररताय च ।
द्रोणिका पृथिवी दत्त्वा यत्फल लभते शृणु ॥१३३

जो मनुष्य किसी सत्पात्र को भूमि का दान किया करता है उसको अनेक प्रकार के दानो का फल प्राप्त हुआ करता है । इस भूमि के दान के समान इस त्रैलोक्य मे अन्य कोई भी दान नही होता है ॥१२७॥ हे वले ! जो आजीविका से रहित किसी ब्राह्मण को पृथ्वी का दान देता है उसका जो पुण्यफल होता है उसका वर्णन मुझसे यदि लगातार कहता ही रहूँ तो भी सौ वर्ष के लम्बे समय में भी नहीं किया जा सकता है ॥१२८॥ हे दैत्यराज ! अहर्निश देवों के यजन में सलग्न रहने वाले ब्राह्मण को, जिसकी कोई भी वृत्ति नहीं होती है, थोडी सी भी पृथ्वी का दान दिया जाता है वह उस प्रतिगृहीता के लिये साक्षात् विष्णु ही है ॥१२६॥ ईख, गहूँ, अरहर, सुपारी आदि पेड पौधा से भरी-पूरी भूमि का जो दान किया करता है वह प्रतिग्रहीता और समस्त ससार की दृष्टि मे विष्णु ही होता है ।१३०॥ आजीविका से रहित कुटुम्ब वाले दरिद्री ब्राह्मण को यदि कोई बहुत थोडी सी भी पृथ्वी का दान देता है उसे विष्णु भगवान की सायुज्यता प्राप्त हुआ करती है ॥ १३१ ॥ देवों की अर्चना मे निमग्न ब्राह्मण को एक आढक अर्थात् जिसमे एक घडा भर अन्न उत्पन्न हो जाता हो उतनी ही पृथ्वी का दान देने से तीन दिन तक गङ्गा स्नान का पुण्य फल मिला करता है ॥१३२॥ वृत्ति विहीन सदाचरण से रहने वाले ब्राह्मण के लिये द्रोणका मात्र अर्थात् बीस सेर अन्न उपजाने वाली पृथ्वी के दान से जो फल प्राप्त होता है उसका श्रवण करो ॥१३३॥

गङ्गातीर्थाश्वमेधाना शतानि विधिवन्नर ।
कृत्वा यत्फलमाप्नोति तदाप्नोति सपुष्फलम् ॥१३४
ददाति खारिका भूमि दरिद्राय द्विजाय य ।

अभवस्तस्य षट् पत्न्य. श्रुति. सिन्धुर्यशोवती ।
कामिनी मालिनो चैव शोभा चेति प्रकीर्तिता ॥१४१
आसु पत्नीपु तस्यसश्चत्वारिंशच्छतद्वयम् ।
पुत्राणामसुरश्रेष्ठ सर्वे नित्य वुभुक्षिता. ॥१४२
अकिञ्चनो भद्रमतिः क्षुधार्तानात्मजान्प्रिया. ।
पश्यन्स्वय क्षुधार्त्तश्च विललापाकुलेन्द्रिय. ॥१४३
धिग्जन्म भाग्यरहित धिग्जन्म धनवर्जितम् ।
धिग्जन्म धर्मरहित धिग्जन्म ख्यातिवर्जितम् ॥१४४
नरस्य वह्वपत्यस्य धिग्जन्मैश्वर्यवर्जितम् ।
अहो गुणा सौम्यता च विद्वत्ता जन्म सत्कुले ॥१४५
दारिद्रयाम्बुधिमग्नस्य सर्वमेतन्न शोभते ।
प्रिया. पुत्राश्च पौत्राश्च वान्धवा भ्रातरस्तथा ॥१४६
शिष्याश्च सर्वमनुजास्त्यजन्त्यैश्वर्यवर्जितम् ।
चाण्डालो वा द्विजो वापि भाग्यवानेव पूज्यते ॥१४७

उसकी श्रुति-सिन्धु-यशोवती, कामिनी, मालिनी और शोभा इन नामो वाली पत्नियाँ थी ॥१४१॥ हे असुर श्रेष्ठ ! इसके इन पत्नियो के गर्भ से दो सौ चालीस पुत्र उत्पन्न हुए थे । ये सभी भूखे रहा करते थे ॥१४२॥ वह महान दरिद्र भद्रमति अपने सब बच्चो को और पत्नियो को भूखा क्षुधार्त देखकर और स्वय भी क्षुधातुर होने के कारण से इन्द्रियो के व्याकुल होने पर विलाप करने लग गया था ॥१४३॥ वह कहता था—अहो ! इस ससार मे भाग्यहीन मनुष्य का जीवन व्यर्थ ही है—ऐसे धन विहीन जीवन को धिक्कार है और प्रसिद्धि से रहित जीवन को धिक्कार है ॥ १४४ ॥ जिसके बहुत सी सन्ततियाँ हों परन्तु धन न हो उस मनुष्य के जीवन को भी धिक्कार है । वडे से वडे अच्छे गुणगण, सौम्यता, विद्वता और सत्कुलीनता ये सब बातें दरिद्रता के सागर मे डुबकियाँ लगाने वाले मनुष्य को शोभा

नही दिया करती हैं ॥१४५॥ जिसके पास ऐश्वर्य का अभाव होता है उसको प्रिय पुत्र,पौत्र, बान्धव, भाई तथा शिष्य सभी मनुष्य त्याग दिया करते हैं । चाहे कोई चाण्डाल हो अथवा द्विज हो ससार मे धनैश्वर्य से सम्पन्न भाग्यशाली का ही सत्कार हुआ करता है ॥१४६।१४७॥

दरिद्र पुरुषो लोके शववल्लोकनिन्दित ।
अहो सपत्समायुक्तो निष्ठुरो वाप्यनिष्ठुर ॥१४८
गुणहीनोऽपि गुणवान्मूर्खो वाप्यय पण्डित ।
ऐश्वर्यगुणयुक्तश्चेत्पूज्य एव न सशय ॥१४६
अहो दरिद्रता दु ख तत्राप्याशातिदु खदा ।
आशाभिभूता पुरुषादु खमश्नुवतेऽक्षयम् ॥१५०
आशाया दासा ये दासास्ते सर्वलोकस्य ।
आशा दासी येषा तेषा दासायते लोक ॥१५१
मानो हि महता लोके धनमक्षय्यमुच्यते ।
तस्मिन्नाशाख्यरिपुणा माने नष्टे दरिद्रता ॥१५२
सर्वशास्त्रार्थवेत्तापि दरिद्रो भाति मूर्खवत् ।
नैराश्यमहाग्राहग्रस्ताना को विमोचक ॥१५३
अहो दु खमहो दु खमहो दु ख दरिद्रता ।
तत्रापि पुत्रभार्याणा बाहुल्यमतिदु खदम् ॥१५४

जो मनुष्य दरिद्र होता है वह तो इस ससार मे एक शव के समान ही परम निन्दित माना जाया करता है । अरे । सम्पत्तिशाली पुरुष परम निष्ठुर हो तब भी उसे दयालु समझा जाया करता है ।१४८ वह भले ही गुणो से ही हीन हो तो भी उसको गुणी कहा जाया करता है । मूर्ख धनी का पण्डित ज्ञानी कहकर पुकारा जाता है । जिसमें ऐश्वर्य के साथ गुण भी हो तो फिर उसका क्या कहना है वह तो पूज्य ही हो जाता है ॥१४६॥ अहो ! यह दरिद्रता का होना ही

महान् दु ख है फिर उसमे भी आशा का होना तो बहुत ही दु ख देने वाली हुआ करती है । आशा के पाश मे फँसे हुये मनुष्य अक्षय दु खो का भोग किया करते हैं ।।१५०।। जो आशा के दास हैं वे तो मानो सभी लोगो के दास हो जाते हैं और यह आशा जिन महा पुरुषो की दासी होती है उनका यह सम्पूर्ण ससार ही दास बन जाया करता है ।।१५१।। बडे पुरुषो का तो मान-सम्मान ही धन कहा जाया करता है और एक बिचारे दरिद्री के मान का तो यह आशा रूपी शत्रु नष्ट ही कर दिया करता है । अतएव वह तो मान के विनष्ट हो जाने से दरिद्र ही रहा करता है ।।१५२।। दरिद्र पुरुष भले ही समस्त शास्त्रो का ज्ञाता हो वह सदा सबकी दृष्टि मे एक मूर्ख ही जँचा करता है । अरे ! जिनको यह दरिद्रतारूपी नाका पकड लिया करता है उसको कौन छुडा सकता है ।।१५३।। यह दरिद्रता महान् दु ख है—विशाल वेदना है और अनुपम यातना है । ऐसी दरिद्रता मे बहुत सी स्त्रिया और बहुत सी सन्तान हो जाय तो बहुत ही दु ख दिया करते हैं ।।१५४

एवमुक्त्वा भद्रमति सर्वशास्त्रार्थपारग ।
अन्यमैश्वर्यवद धर्म मनसाऽचिन्तयत्तदा।१५५।
भूमिदान विनिश्चत्य सर्वदानोत्तमोत्तमम् ।
दानेन योऽनुमताति स एव कृतवान्पुरा ।।१५६
प्रापक परम धर्मं सर्वकामफलप्रदम् ।
दानामुत्तम दानभूदान परिकीर्तितम् ।।१५७
यद्दत्वा समवाप्नोति यद्यदिष्टतम नर ।
इति निश्चित्य मतिमान्धीरो भद्रमतिर्बले ।।१५८
कौशाम्बी नाम नगरी कलत्रापत्ययुग्ययौ ।
सुघोषो नाम विप्रेन्द्र सर्वैश्वर्यसमन्वितम् ।१५९
गत्वा याचितवान्भूमि पञ्चहस्तायता वले ।

विष्णुबुद्धया समभ्यर्च्य तावतीं पृथिवीं ददौ ।
सोऽपि भद्रमतिर्विप्रो धीमता याचिता भुवम् ॥१६५
दत्तवान्हरिभक्ताय श्रोत्रियाय कुटुम्बिने ।
सुघोषो भूमिदानेन कोटिवंशसमन्वितः ॥१६६
प्रपेदे विष्णुभवनं यत्र गत्वा न शोचति ।
बले भद्रमतिश्चापि यतः प्रार्थितवाञ्छितम् ॥१६७
स्थितवान्विष्णुभवने सकुटुम्बो युगायुतम् ।
तथैव ब्रह्मसदने स्थित्वा कोटियुगायुतम् ॥१६८
ऐन्द्रं पदं समासाद्य स्थितवान्कल्पपञ्चकम् ।
ततो भुवं समासाद्य सर्वैश्वर्यसमन्वितः ॥१६९

हे द्विजवर ! आपके अनुग्रह से मेरा यह कुल पवित्र होगया है। इस रीति से कहकर सुघोष ने उस विप्र का सत्कार किया था ॥१६२॥ फिर उस महान् मतिमान् सुघोष ने इस विप्र को पाच हाथ प्रमाण वाली भूमि के दान का वचन दे दिया था । मैं इस विष्णु से पालित विष्णु की पवित्र पृथ्वी को देता हूँ ॥१६३॥ इस भूमि दान से जनार्दन भगवान् मुझ पर प्रसन्न होवे । हे दैत्येन्द्र ! उस सुघोष ने यह उपर्युक्त मन्त्र पढकर उस द्विज श्रेष्ठ को विष्णु बुद्धि से पहिले तो अर्चन किया और फिर उतनी भूमि का दान कर दिया था । इसके उपरान्त उस भद्रमति ब्राह्मण ने एक कुटुम्बी श्रोत्रिय हरिभक्त को वह याचना की हुई भूमि देदी थी । भूमिदान के प्रभाव से वह सुघोष अपनी करोडो पीढियों के सहित विष्णु लोक मे चला गया था जहाँ कि किसी को भी कोई शोक नही करना पडता है । हे बले ! वह भद्रमति भी सम्पत्ति की चाह किया करता था ॥१६४-१६७॥ अतएव वह सकुटुम्ब वहा पर विष्णु लोक मे दस हजार युग तक रहा था । इसके पश्चात् दस सहस्र युग पर्यन्त उसने ब्रह्म लोक मे निवास किया था । इसके अनन्तर इन्द्र के पदपर पाँच कल्प पर्यन्त उस भद्रमति ने इन्द्रासन पर विराजमान होकर स्वर्ग लोक का राज्योपभोग किया था । इसके उपरान्त पुन. इस भूमण्डल

में उत्पन्न होकर सभी प्रकार के ऐश्वर्य प्राप्त किये थे ॥१६८।१६९॥

जातिस्मरो महाभागो बुभुजे भोगमुत्तमम् ।
ततो भद्रमतिर्दैत्य निष्कामो विष्णुतत्पर ॥१७०
पृथिवीं वृत्तिहीनेभ्यो ब्राह्मणेभ्य प्रदत्तवान् ।
तस्य विष्णु प्रसन्नात्मा दत्त्वैश्वर्यमनुत्तमम् ॥१७१
कोटिवंशसमेतस्य ददौ मोक्षमनुत्तमम् ।
तस्माद् त्वमते मह्य सर्वधर्मपरायण ॥१७२
तपश्चरिष्ये मोक्षाय देहि मे त्रिपदा महीम् ।
वैरोचनिस्ततो हृष्ट कलश जलपूरितम् ॥१७३
आददे पृथिवीं दातु वर्णिने वामनाय ।
विष्णु सर्वगतो ज्ञात्वा जलधाराप्ररोधिनम् ॥१७४
काव्य हस्तस्थदर्भाग्र तच्छरे सन्यवेशयत् ।
दर्भाग्रेऽभून्महाशस्त्र कोटिसूर्यसमप्रभम् ॥१७५

वह जातिस्मर हो गया था । इसरीति से उस महा भाग ने अनेक उत्तमोत्तम भोगो का भूमि दान की महिमा से उपभोग किया था । हे दैत्यराज ! इसके अनन्तर उस भद्रमति विप्र ने निष्काम भाव से भगवान विष्णु की सेवा मे निरन्तर निमग्न होकर वृत्ति विहीन ब्राह्मणो को भूमि का दान दिया था । इससे विष्णु भगवान् ने अपने चित्त मे परम प्रसन्न होकर उसको परम श्रेष्ठ ऐश्वर्य प्रदान किया था ॥१७० १७१॥ उसके पश्चात् उसके कोटिश वशो के सहित श्रेष्ठ मुक्ति प्रदान की थी । अतएव परम धर्म परायण दैत्यराज ! मुझको केवल तीन पद पृथ्वी दीजिये ॥१७२॥ उस भूमि पर स्थित होकर मैं अपनी मुक्ति प्राप्त करने के लिए तपस्या करूँगा । तब उसी समय में विरोचन के पुत्र राजा बलि ने उन ब्रह्मचारी वामन देव का पृथ्वी का दान प्रदान करने के लिये जल से परिपूर्ण कलश या करुआ उठाया था । इधर सर्व व्यापक भगवान् ने समझ लिया था कि दैत्य गुरु शुक्राचार्य उस करुए की जल

की धारा को रोकने के लिए उसमे प्रविष्ट होकर मध्य मे स्थित हो गये हैं। अतएव भगवान् ने अपने हाथ के अग्रभाग को उस करए की टोटी मे प्रविष्ट कर दिया था। वहाँ पर जो कुशा का अग्रभाग था वह सूर्य की कान्ति के समान महाशस्त्र बनाया था ॥१७३-१७५॥

अमोघ ब्राह्ममत्युग्र काव्याक्षिग्रासलोलुपम् ।
आयाय भार्गव सुरानसुरानेक चक्षुषा ॥१७६
पश्येति वादिदेशे च दर्भाग्र शस्त्रसन्निभम् ।
वलिर्ददौ महाविष्णोर्मही त्रिपदसमिताम् ॥१७७
ववृधे सोऽपि विश्वात्मा आब्रह्मभुवन तदा ।
अमिमीत महीद्वाभ्या पद्भ्या विश्वतनुर्हरि ॥१७८
स आब्रह्मकटाहातपदान्येतानि सप्रभ ।
पादागुष्ठाग्रनिर्भिन्न ब्रह्माण्ड विभिदे द्विधा ॥१७६
तद्द्वारा बाह्यसलिल बहुधार समागतम् ।
धौतविष्णुपद तोय निर्मल लोकपावनम् ॥१८०
आजाण्डबाह्यनिलय धारारूपमवर्त्तत ।
तज्जल पावन श्रेष्ठ ब्रह्मादीन्पावयत्सुरान् ॥१८१
सप्तर्पिसेवित चैव न्यपतन्मेरुमूर्द्ध नि ॥१८२

उस समय मे शुक्राचार्य के नेत्र को फोडने के लिये उत्साही अमोघ अस्त्र का काम किया था और शुक्राचाय के नेत्र से काने हो गये थे और सब असुरो के समक्ष वे कहने लगे थे—अरे! इस कुशा के अग्र भाग को देखो जिसने शस्त्र के समान कर्म किया है। इधर राजा वलि व मन देव को तीन पैर पृथ्वी का दान करने मे तत्पर हो गया था ॥१७६ १७७॥ उसी समय म विश्वात्मा भगवान् हरि जिनका यह सम्पूण विश्व ही शरीर है बढने लग गये थे और भूमि को नापने के लिए उद्यत होकर दो पग से समस्त पृथ्वी को नाप डाला था ॥१७८॥ फिर उनका उठाया हुआ तीसरा कदम जब बढा तो वह ब्रह्माण्ड कटाह

पर्यन्त पहुँच गया था। उस समय मे उनके चरणागुष्ठ के अग्रभाग की ठोकर से कटकर उस ब्रह्माण्ड के दो टुकडे हो गये थे ॥१७६॥ उसी छिद्र से भगवान् विष्णु के चरण के धुलने से परम निर्मल लोकों को पावन अनेक धाराओ वाला जल बाहिर की ओर निकलने लगा था ॥१८०॥ यह पवित्र कर देने वाला परम श्रेष्ठ जल ब्रह्मादिक सब देवगणो को पवित्र कर ब्रह्माण्ड से बाहिर की ओर निकल आया था और सप्तर्षियो के द्वारा सेवित होकर मेरु पर्वत के शिखर पर पहुँच गया था ॥१८१-१८२॥

एतद् दृष्ट्वाद्भुत कर्म ब्रह्माद्या देवतागण ।
ऋषयो मनवश्चैव ह्यस्तुवन्हर्षविह्वला ॥१८३
नम परेशाय परात्मरूपिणे परात्परायापररूपधारिणे ।
ब्रह्मात्मने ब्रह्मरतात्मवृद्धये नमोऽस्तुतेऽव्याहतकर्मशीलिने।१८४
परेश परमानन्द परमात्मन्परात्पर ।
सर्वात्मने जगन्मूर्ते प्रमाणातीत ते नम ॥१८५
विश्वतश्चक्षुषे तुभ्य विश्वतो बाहवे नम ।
विश्वतो शिरसे चैव विश्वतो गतये नम ॥१८६
एव स्तुतो महाविष्णुर्ब्रह्माद्यै स्त्रिदिवौकसाम् ।
दत्त्वाभय च मुमुदे देवदेव सनातन ॥१८७
विरोचनात्मज दैत्य पदैकार्य ववन्ध ह ।
तत प्रपन्न तु बलि ज्ञात्वा चास्मै रसातलम् ।
ददौ तद् द्वारपालश्च भक्तवश्यो बभूव ह ॥१८८
रसातले महाविष्णुर्विरोचनसुतस्य वै ।
नि भोज्य कल्पयामास घोरे सर्पभयाकुले ॥१८९

इस परमाद्भुत कार्य को देखकर ब्रह्मा आदिक देवता ऋषियो का समुदाय और मनु आदि सब बहुत ही हर्ष मे साथ अत्यन्त विह्वल होकर वामनदेव भगवान की स्तुति करने लगे थे ॥१८३॥ देवगण न

कहा—हे परमेश्वर परमात्मन् ! आप तो पर से भी पर हैं। आप समय पर सगुण स्वरूप धारण करने वाले हैं। आप ब्रह्मात्मक ब्रह्म में परायण आत्म बुद्धि के रूप हैं तथा अव्याहत कर्मों के करने वाले हैं। आप के चरणों मे हम सबका सादर प्रणाम समर्पित है ॥१८४॥ हे परमेश्वर परमानन्द स्वरूप परात्पर परमात्मन् ! समस्त प्रमाणो से अतीत ! हे जगन्मूर्ति ! आप सर्वात्मक हैं आपके लिए हमारा प्रणाम है ॥१८५॥ सबके नेत्रो म आप व्यापक हैं और सर्वत्र आपकी ही भुजाऐं हैं—सब आपके ही शिष्य हैं और आपकी सर्वत्र गति है ऐसे आपकी सेवा मे मेरा सादर प्रणाम अर्पित है ॥१८६॥ जिस समय मे ब्रह्मादिक देवों ने इस प्रकार से भगवान् का संस्तवन किया तो उन परम सनातन देवो के भी देवेश्वर ने देवताओ को स्वर्ग प्रदान करके सबको भय से रहित कर दिया था और उस समय मे उनको परम प्रसन्नता हुई थी ॥१८७॥ और एक पग पृथ्वी के लिये उस बलि को बाँध दिया था किन्तु पीछे बलि को शरण मे समागत हुआ समझकर उसको रसातल का राज्य प्रदान कर दिया था और स्वयं उसके द्वारपाल बन कर रहने लगे थे। भगवान अपने भक्त के वश मे होकर इस तरह से निवास करने लगे थे ॥१८८॥ श्री नारद जी ने कहा था कि सर्पो के महान् भय से घबड़ा देने वाले उस परम भीषण रसातल मे भगवान् विष्णु ने बलि के भोजन के लिए क्या नियत किया था ॥१८९॥

अमन्त्रित हविर्यत्तु हूयते जातवेदसि ।
अपात्रे दीयते यच्च तद्घोर भोगसाधनम् ॥१९०
हुत हविरशुचिना दत्त सत्कर्म यत्कृतम् ।
तत्सर्वं तत्र भोगार्हमध पातफलप्रदम् ॥१९१
एव रसातल विष्णुर्बलये सासुराय तु ।
दत्त्वाभय च सर्वेषा सुराणा त्रिदिव ददौ ॥१९२
पूज्यमानोऽमरगणै स्तूयमानो महर्षिभि ।

गन्धर्वैर्गीयमानश्च पुनर्वामनतां गतः ॥१६३
एतद् दृष्ट्वा महत्कर्म मुनयो ब्रह्मवादिन. ।
परस्पर स्मितमुखा. प्रणेमुः पुरुषोत्तमम् ॥१६४
सर्वभूतात्मको विष्णुर्वामनत्वमुपागतः ।
मोहयन्निखिल लोक प्रपेदे तपसे वनम् ॥१६५
एव प्रभावा सा देवी गङ्गा विष्णुपदोद्भवा ।
यस्या. स्मरणमात्रेण मुच्यये सर्वपातकैः ॥१६६
इद तु गङ्गामाहात्म्य यः पठेच्छृणुयादपि ।
'देवालये नदीतीरे सोऽश्वमेधफल लभेत् ॥१६७

श्री सनक महामुनि ने कहा—जो बिना ही मन्त्र के उच्चारण किये अग्नि मे हवि का होम किया जाता है और जो दान किसी अपात्र को दिया जाता है वह अत्यन्त घोर अन्न बलि का भोग हुआ करता है ॥१६०॥ जिस हवि का अपवित्र दशा मे रहते हुए हवसन किया जाया करता है तथा दान दिया जाता है या कोई भी सत्कर्म किया जाता है वह नीचे गिर कर देवो को प्राप्त न होकर बलि असुर को ही प्राप्त हुआ करता है ॥१६१॥ इस भाँति समस्त असुर गणो के सहित बलि को रसातल प्रदान किया था और सब देवो को अभय का दान प्रदान कर उनको स्वर्ग का राज्य एव सब वैभव प्रदान किया था ॥१६२॥ उस समय मे सभी देवगण भगवान् विष्णु देव का यजन करने लग गये थे । महर्षि गण स्तवन करने मे परायण हो गये तथा गन्धर्व गान करने लगे थे । इसके पश्चात् भगवान् विष्णु अपना वह विशाल वपु समेट कर पुन वामन रूप हो गये थे ॥१६३॥ इस बहुत ही भारी कार्य को देख कर ब्रह्मवादी मुनिगणो ने परस्पर मे मुस्कराकर पुरुषोत्तम भगवान वामन देव को सादर प्रणाम किया था ॥१६४॥ इस रीति से सर्वात्मक विष्णु भगवान ने रूप धारण कर सब ससार को मुग्ध करके अन्त मे तपस्या करने के लिये वे वन मे चले गये थे ॥१६५॥ भगवान् विष्णु

के चरण कमल से प्रादुर्भूत हुई गङ्गा देवी का ऐसा प्रभाव है कि इसका स्मरण करने मात्र मे ही प्राणी यहा पर सभी प्रकार के महान् पापो से छूट जाया करता है ।।१८६।। इस गङ्गा भागीरथी देवी का माहात्म्य जो पुरुष किसी देवालय मे अथवा पवित्र नदी के तीर पर बैठकर पढता है उसको अश्वमेध यज्ञ करने का पुण्यफल प्राप्त हुआ करता है ।।१८७।।

।। इष्टापूर्त फल एवं वीरभद्र नृप चरित्र ।।

श्रुतं तु गङ्गामाहात्म्य वाञ्छितं पापनाशनम् ।
अधुना लक्षण ब्रूहि भ्रातर्मे दानपानये ।।१
सर्वेषामेव वर्णानां ब्राह्मण. परमो गुरुः ।
तस्मै दानानि देयानि दत्तस्यानन्त्यमिच्छता ।।२
ब्राह्मण. प्रतिगृह्णीयात्सर्वतो भयवर्जितः ।
न कदापि क्षत्त्रविशो गृह्णीयाता प्रतिग्रहम् ।।३
चण्डस्य पुत्रहीनस्य दम्भाचाररतस्य च ।
स्वकर्मत्यागिनश्चापि दत्त भवति निष्फलम् ।।४
परदारातस्यापि परद्रव्याभिलाषिणः ।
नक्षत्रसूचकस्यापि दत्त भवति निष्फलम् ।।५
असूयाविष्टमनस कृतघ्नस्य च मायिन. ।
अयाज्ययाजकस्यापि दत्त ० ।।६
नित्य याच्ञापरस्यापि हिंसकस्य खलस्य च ।
रसविक्रयिणश्चैव दत्त ० ।।७

देवर्षि श्री नारदजी ने कहा कि मैं स्वय पापो के विनाश करने वाले गङ्गाजी के माहात्म्य का श्रवण करना ही चाहता था जो अब मैंने आपके अनुग्रह से श्रवण कर लिया है। हे भाई ! अब मेरा यह

निवेदन है कि आप कृपा करके दान का तथा दान देने के लिए समुचित सत्पात्र का लक्षण बताइये ॥१॥ तब महा मुनि श्री सनकजी ने कहा—ब्राह्मण सब वर्णों में श्रेष्ठ और सबका बड़ा गुरु होता है। अतएव जो मनुष्य दान में दी हुई वस्तु को अनन्त और अक्षय रूप में प्राप्त करने का अभिलाषी है उसे चाहिये ब्राह्मण को ही दान देवे ॥२॥ किन्तु ब्राह्मण भय से रहित होकर सभी वर्णों से दान ग्रहण कर सकता है परन्तु क्षत्रिय और वैश्य को कभी भी दान का ग्रहण नहीं करना चाहिए ॥३॥ यदि दान का ग्रहण करने वाला ब्राह्मण क्रोधी पुत्र हीन-दम्भ करने वाला अपने उचित कर्त्तव्य कर्मों को त्याग देने वाला हो तो ऐसे ब्राह्मण को दिया हुआ दान निष्फल ही हुआ करता है ॥४॥ जो पराई स्त्री के साथ गमन करने वाला हो तथा दूसरों के द्रव्य को कपट कर ग्रहण करने की इच्छा रखता हो एवं नक्षत्र सूचक ज्योतिषी हो उसको दान देना निष्फल हुआ करता है ॥५॥ जिसके हृदय में सदा ही असूया भरी रहा करती है—जो किये हुये उपकार को न मानने वाला कृतघ्न होता है—जो मायावी एवं अपात्र को यज्ञों का यजन कराया करता है ऐसे ब्राह्मण को दान देना भी सर्वथा निष्फल हुआ करता है ॥६॥ जो सर्वदा ही याचना किया करता हो, हिंसावृत्ति वाला हो, अत्यन्त खल कर्म करने वाला हो उसको दिया हुआ दान कभी भी कुछ फल नहीं दिया करता है ॥७॥

वेदविक्रयिणश्चापि स्मृतिविक्रयिणस्तथा।
धर्मविक्रयिणो विप्र दत्त० ॥८
गानेन जीविका यस्य यस्य भार्या च पुश्चली।
परोपतापिनश्चापि दत्तं भवति निष्फलम् ॥९
असिजीवी मषीजीवी देवलो ग्रामयाजकः।
धावको वा भवेत्तेषां दत्तं भवति निष्फलम् ॥१०
पाककर्तुं परस्यार्थे कवये गदहारिणे।

अभक्ष्यभक्षकस्यापि दत्तं० ॥११
शूद्रान्नभोजिनश्चैव शूद्राणा शवदाहिन: ।
पोश्चलान्नभुजश्चापि दत्तं भवति० ॥१२
नामविक्रयिणो विष्णो. सध्याकर्मोज्झितस्य च ।
दुष्प्रतिग्रहदग्धस्य दत्तं० ॥१३
दिवाशयनशीलस्य तथा मैथुनकारिण: ।
सध्याभोजिन एवापि दत्त भवति० ॥१४

जो वेद-स्मृति और अपने धर्म का विक्रय किया करता है उस ब्राह्मण को भी कभी दान नही देना चाहिए क्योंकि वह दान निष्फल ही होता है ॥८॥ जो विद्या में यल से ही अपनी आजीविका चलाया करता है, जिसकी स्त्री व्यभिचार करने वाली होती है, जो दूसरो को सदा सन्ताप दिया करता है उस ब्राह्मण को भी दान देना सर्वथा व्यर्थ ही होता है ॥९॥ जो तलवार से तथा स्याही से अपनी जीविका का परिचालन किया करता है, जो वेतन ग्रहण करके देवो का यजन किया करता है, जो ग्राम याजक एव हरकारे का कर्म करता है ॥१०॥ जो भगवान के निमित्त रसोई न बनाकर दूसरो के लिए रसोई मे पाचन कर्म किया करता है अर्थात् भगवान् का भोग नही लगाता है, जो दान ग्रहण करने के लिए चतुराई प्रकट किया करता है, जो दया से रहित होता है, जो वैद्य वृत्ति किया करता है और जो अभक्ष्य पदार्थों को भोजन किया करता है उस ब्राह्मण को भी कभी दान नही देना चाहिए क्योंकि उसका कोई भी फल नही हुआ करता है ॥११॥ जो शूद्रो का अन्न खाया करता है। उसको दिया हुआ दान कुछ भी प्रभाव नही रखता है, जो शूद्रो के मुर्दों को जलाता है, जो पुश्चली स्त्री के पति का अन्न खाता है उसको दिया हुआ दान भी व्यर्थ ही होता है ॥१२॥ जो स्वय भक्ति-श्रद्धा के भाव से न कर धन की प्राप्ति के लिए ही भगवान विष्णु का पूजन किया करता है, जो सन्ध्या वन्दन नही करता है और

जो दुष्प्रतिग्रह से दान ले चुका है ऐसे ब्राह्मण को दिया दान कुछ भी अपना प्रभाव नहीं रखा करता है ॥१३॥ जो ग्रीष्म ऋतु के अतिरिक्त अन्य ऋतु में भी दिन में सोता है, जो दिन के समय में मैथुन किया करता है, जो सन्ध्या के समय में भोजन करता है ऐसे ब्राह्मण को दिया हुआ दान कभी भी सफल नहीं हुआ करता है ॥१४॥

महापातकयुक्तस्य त्यक्तस्य ज्ञातिबान्धवैः ।
कुण्डस्य चापि गोलस्य दत्त भवति० ॥१५
परिवित्तेः शठस्यापि परिवेत्तुः प्रमादिनः ।
स्त्रीजितस्यातिदुष्टस्य दत्त भवति० ॥१६
मद्यमांसाशिनश्चापि स्त्रीविटस्यातिलोभिनः ।
चौरस्य पिशुनस्यापि दत्त ० ॥१७
ये सेविस्वाम‍निरता निन्दिता सुजनै सदा ।
न तेभ्य प्रतिगृह्णीयान्न च दद्याद् द्विजोत्तम ।
सत्कर्मनिरतायापि देय यत्नेन नारद ॥१८
यद्दान श्रद्धया दत्त तथा विष्णुसमर्पणम् ।
याचित्त वापि पात्रेण भवेत्तद्दानमुत्तमम् ॥१९
परलोक समुद्दिश्य ह्यैहिक वापि नारद ।
यद्दान दीयते पात्रे तत्काम्य मध्यम स्मृतम् ॥२०
दम्भेन चापि हिंसार्थं परस्याविधिनापि च ।
क्रुद्धेनाश्रद्धयापात्रे तद्दान मध्यम स्मृतम् ॥२१

जो गुरु पत्नी गमन जैसे महापापों में दूषित रहा करता है, जो जाति और बन्धुगण के द्वारा त्याज्य किया हुआ है, जो पति के जीवित रहते हुए किसी जार के वीर्य से समुत्पन्न हुआ हो अर्थात् कुण्ड हो, जो गोलक माना जाता हो उस ब्राह्मण का दिया हुआ दान कभी फल वाला नहीं हुआ करता है ॥१५॥ बड़ी बहिन का विवाह न होने पर छोटी बहिन के साथ विवाह करके अपनी पत्नी बना लेने वाला, बड़े भाई या

विवाह न होने पर पहिले अपना विवाह कर लेने वाला, शठता रखने वाला, प्रमादशील और जो दुष्ट प्रकृति का तथा स्त्रीजित जो ब्राह्मण होता है उसको भी कभी दान नहीं देना चाहिए क्योंकि ऐसे विप्र को दिया हुआ सब दान निष्फल ही हो जाया करता है ॥१६॥ मदिरा पान करने वाले, मास का अशन करने वाले और स्त्री के द्वारा की गयी कमाई को खाने वाले, अत्यन्त लालची, चोर वृत्ति वाले एव चुगली खाने के स्वभाव वाले विप्र को दिया हुआ दान भी विफल हुआ करता है अत ऐसे ब्राह्मणों को खूब परखकर ही दान देना चाहिए ॥१७॥ जिन पापों म डूबे रहने वाले लोगों की सज्जन पुरुष निन्दा किया करते हो। हे द्विजवर ! ऐसे विप्रो को भी कभी दान न देवे और ऐसे विप्रों से दान लेना भी नही चाहिए। हे नारद ! जो सदा सत्कर्मों के अनुष्ठान में ही प्रवृत्ति रखा करते हैं उन्हीं को प्रबल प्रयत्न करके दान देना चाहिए ॥१८॥ जो दान के पात्र के द्वारा याचना करने पर भगवदर्पण की भावना से परम श्रद्धा के साथ दान दिया जाया करता है वह ही परमोत्तम दान कहा जाता है और उसी का पुण्य फल भी यथावत् प्राप्त होता है। वैसे ही कुछ किसी को दे देने का नाम दान नही हुआ करता है ॥१९॥ हे नारद। ऐहलौकिक और पारलौकिक किसी भी सुख-सौभाग्य के प्राप्त करने की इच्छा से जो दान उचित पात्र को दिया जाता है वह मध्यम श्रेणी का दान कहा जाता है क्योंकि इसमे अपनी कामना पहिले ही से लिये हुए होती है ॥२०॥ जो दान दम्भपूर्वक शत्रु की हिंसा के उद्देश्य से विधि विहीन रीति से क्रोधावेश मे भरकर अश्रद्धापूर्वक किसी अपात्र को दान किया जाया करता है वह निकृष्ट श्रेणी का दान होता है ॥२१॥

अधम वलितोपाय मध्यमं स्वार्थसिद्धये।
उत्तम हरिप्रीत्यर्थं प्राहुर्वेदविदा वरा ॥२२
दानभोगविनाशाश्च राय स्युर्गतयस्त्रिधा।

यो ददाति च नो भुक्ते तद्धन नाशकारणम् ॥२३
धन धर्मफल विप्र धर्मो माधवतुष्टिकृत् ॥२४
तरव कि न जीवन्ति तेऽपि लोके परार्थका ।
यत्र मूलफलैर्वृक्षा परकार्यं प्रकुर्वते ॥२५
मनुष्या यदि विप्राग्र्य न परार्थास्तदा मृता ।
परार्थं न ये मर्त्या कायेनापि धनेन वा ॥२६
मनसा वचसा वापि ते ज्ञेया पापकृत्तमा ।
अग्रेनिहाम वक्ष्यामि शृणु नारद तत्वत ॥२७
यत्र दानादिदाना तु लक्षण परिकीर्तितम् ।
गङ्गामाहात्म्यसहित सर्वपापप्रणाशनम् ॥२८

परम श्रेष्ठ वही के ज्ञाता लोग कहा करते हैं अधम दान से वनि सन्तुष्ट होते हैं, स्वार्थ की सिद्धि के लिए जो भी कुछ दान दिया जाता है वह मध्यम है तथा उत्तम दान से भगवान प्रसन्न हुआ करते हैं ॥२२॥ संसार में जिस धन के प्राप्त करने की बहुधा सभी को लालसा रहा करती है उस धन की दान, भोग और विनाश ये तीन ही गतियाँ हुआ करती हैं। जो सर्वोत्तम गति धन का दान होता है उस दान को कभी नहीं करता है और न स्वयं ही उसका उपभोग किया करता है उस धन की अन्तिम गति विनाश ही होती है। चाहे चोर चुरा लेवे या किसी ऐसे के हाथ में वह पड़ जावे जो इसका बुरी तरह से दुरुपयोग एवं अपव्यय करके शीघ्र ही विनष्ट कर दिया करता है ॥२३॥ हे विप्र ! धन का वास्तविक फल धर्म करना ही होता है और धर्म वही है जो अपने आराध्य देव भगवान की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए किया जाया करता है। इन जड़ वृक्षों के जीवन भी संसार में दूसरे प्राणियों के कार्यों की सिद्धि के लिए ही होता है। जब ये महान जड़ वृक्ष भी फूल, फल पुष्प पत्र, वल्कल छाया और काष्ठ के द्वारा सदा परोपकार किया करते हैं और सदा दूसरों के ही [हि

उत्पन्न होकर जीवन व्यतीत किया करते हैं ॥२४।२५॥ तो हे विप्रश्रेष्ठ ! ये मनुष्य जो सब कुछ ज्ञान रखने वाले होते हुए भी दूसरो के काम मे कुछ भी नही आया करते हैं और दूसरो का कार्य कभी सिद्ध नहीं करते हैं तो उनके जीवन रहते हुए भी वे मृत के ही समान होते हैं। जो मनुष्य तन, मन, वचन, धन किसी के द्वारा भी दूसरो की भलाई नहीं किया करते हैं उन को इस ससार मे महान घोर पापी ही समझना चाहिए। हे नारद ! इस विषय की पुष्टि के लिये आपको मैं एक ऐतिहासिक घटना की चर्चा करता हू। आप इसको परम समाहित होकर श्रवण करिए ॥२६-२७॥ इस वर्णन मे दानो के विविध भेदो का वर्णन है और समस्त प्रकार के महापातको को विनष्ट कर देने वाला श्री गङ्गा की महिमा का भी वर्णन है ॥२८

भागीरथस्य धर्मस्य सवाद पुण्यकारणम् ।
आसीद्भगीरथो राजा सगरान्वयसभवः ॥२९
शशास पृथिवीमेता सप्तद्वीपा ससागराम् ।
सर्वधर्मरतो नित्यं सत्यसंध. प्रतापवान् ॥३०
कन्दर्पसदृशो रूपे यायजू को विचक्षण ।
प्रालेयाद्रिसमो धैर्ये धर्मे धर्मसमो नृपः ॥३१
सर्वलक्षणसंपन्नः सर्वशास्त्रार्थपारगः ।
सर्वसपत्समायुक्तः सर्वानन्दकरो मुने ॥३२
आतिथ्यप्रयतो नित्यं वासुदेवार्चने रतः ।
पराक्रमी गुणनिधिर्मैत्रः कारुणिकः सुधीः ॥३३
एतादृश त राजान ज्ञात्वा हृष्टो भगीरथम् ।
धर्मराजो द्विजश्रेष्ठ कदाचिद् द्रष्टुमागतः ॥३४
समागत धर्मराजमर्हयामास भूपतिः ।
शास्त्रदृष्टेन विधिना धर्म. प्रीत उवाच तम् ॥३५

इस चर्चा में धर्मराज राजा भागीरथ का भी परम पुण्यप्रद सम्वाद भी आता है। यह राजा भगीरथ महाराज सगर के वंश

मे ही समुत्पन्न हुए थे ॥२६॥ राजा भगीरथ ने सातो द्वीप और सातो समुद्र तक की भूमि पर अपना शासन किया था । वे धर्म के सभी अङ्गो का पूर्णतया परिपालन करने वाले और सर्वदा सत्य प्रतिज्ञा करने वाले तथा महान प्रतापी हुए थे ॥३०॥ सुन्दरता मे वे कामदेव के समान परम सुन्दर रूपवान हुये थे। वे विलक्षण यज्ञों का यजन बारम्बार किया करते थे । राजा भगीरथ धैर्य मे हिमालय के सदृश और धर्म कर्मो मे साक्षात् धर्मराज के ही तुल्य थे ॥३१॥ हे मुनिवर ! वह राजा भगीरथ सभी सुन्दर लक्षणो से शोभा सम्पन्न समस्त शास्त्रो के तात्पर्य को भलीभाँति समझने वाले सभी तरह की सम्पत्ति के वैभव से भरे पूरे और सबको सर्वदा आनन्दानन्द प्रदान करने वाले हुए थे ॥३२॥ वे सदा समागत हुए अतिथियो का स्वागत सत्कार करने वाले तथा भगवान वासुदेव के अर्चन मे सदा परायण रहने वाले थे। वे परम पराक्रमशील, सकल सद्गुणो के निधान, अतिशय करुणा करने वाले तथा मैत्री करने के योग्य और सद्बुद्धि से सुसम्पन्न थे ॥३३॥ हे द्विज श्रेष्ठ ! जब राजा की इस प्रकार की प्रशसा का श्रवण किया तो धर्मराज अधिक प्रसन्न हुये और एक बार वे स्वय ही इनका दर्शन करने के लिये वहाँ पर चले आये थे ॥३४॥ श्रीमान धर्मराज के वहाँ पर पदार्पण करने पर राजा भगीरथ ने उनका शास्त्रोक्त विधि विधान से स्वागत एव अतिथि सत्कार किया था। उस समय मे परम प्रसन्न होकर उनसे कहा था ॥३५

राजन्धर्मविदा श्रेष्ठ प्रसिद्धोऽसि जगत्त्रये ।
धर्मराजोऽथ कीर्ति ते श्रुत्वा त्वा द्रष्टुमागत ॥३६
सन्मार्गनिरत सत्य सर्वभूतहिते रतम् ।
द्रष्टुमिच्छन्ति विबुधास्तवोत्कृष्टगुणप्रिया. ॥३७
कीर्तिर्नीतिश्च सपत्तिर्वर्तते यत्र भूपते ।
वसन्ति तत्र नियत गुणास्सन्तश्च देवता ॥३८

अहो राजन्महाभाग शोभन चरितं तव ।
सर्वभूतहितत्वादि मादृशामपि दुर्लभम् ।।३६
इत्युक्तवन्त धर्म प्रणिपत्य भगीरथ : ।
प्रोवाच विनयाविष्टः सहृष्ट. श्लाक्ष्णया गिरा ।।४०
भगवन्सर्वधर्मज्ञ समदर्शिन् सुरेश्वर ।
कृपया परयाविष्टो यत्पृच्छामि वदस्व तत् ।।४१
धर्मा कीदृग्विधाः प्रोक्ताः के लोका धर्मशालिनाम् ।
कियत्यो यातना. प्रोक्ताः केषा ता. परिकीर्तिता. ।।४२

धर्मराज ने उनसे कहा—हे धर्म के ज्ञान रखने वालो मे परम श्रेष्ठ राजन ! आपका सुयश त्रैलोक्य मे प्रथित है अतएव मुझको भी आपकी विशद कीर्ति को सुन समझकर मनमे प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई थी कि मैं आपके एक बार स्वय चल कर दर्शन प्राप्त करने का सौभाग्य लू और आपके परम श्रेष्ठ गुणों से समाकृष्ट होकर ही मैं आपके समीप मे आया हूँ । आपके सद्गुण ही ऐसे हैं कि सभी देवगण आपके दर्शन करने की उत्सुकता रखा करते है क्योकि आप सन्मार्ग परायण, सदा सत्य भाषण करने वाले और समस्त प्राणियो के हित मे संलग्न रहने वाले महानुभाव हैं ।।३६-३७।। हे राजन ! यह सर्वाधिक नियम ही होना है कि जहा पर नीति, कीर्ति और सम्पत्ति हुआ करती है वहा पर सभी सद्गुण, सज्जन पुरुष और देव वृन्द भी स्वय ही खिचे चले आया करते हैं ।।३८।। हे महाभाग ! आपका चरित्र परम शोभन है । आपके हृदय मे जो प्राणीमात्र के हितो का सम्पादन करने आदि के जो अद्भुत गुण विद्यमान हैं वे हम लोगो मे भी कठिनाई से होते हैं ।।३६।। जब धर्मराज ने इस तरह से प्रशसा की थी तो राजा भगीरथ ने उनको प्रणाम किया और अत्यधिक प्रसन्न होकर विनय के साथ मधुर वाणी से निवेदन किया था ।।४०।। राजा भगीरथ ने कहा—हे सर्व धर्मो के ज्ञाता ! आप तो समदर्शी हैं

और सुरेश्वर हैं। मैं इस समय में जो पूछना चाहता हूँ उसके विषय मे आप कुछ वर्णन करने की कृपा कीजिये। आपका मुझ पर परम अनुग्रह होगा ॥४१॥ धर्मो का स्वरूप क्या-क्या है? धर्म कर्मों के करने वाले पुरुषों को कौन-कौन से लोकों का निवास प्राप्त हुआ करता है? नरको की यातनाये कितनी हैं? वे नारकीय यातनायें किनको भोगनी पड़ती हैं? ।।४२

त्वया संमाननीया ये शासनीयाश्च ये यथा।
तत्सर्वं मे महाभाग विस्तराद्वक्तुमर्हसि ॥४३
साधु साधु महाबुद्धे मतिस्ते विमलोर्जिता।
धर्माधर्मान्प्रवक्ष्यामि तत्त्वतः शृणु भक्तितः ॥४४
धर्मा बहुविधा प्रोक्ताः पुण्यलोकप्रदायकाः।
तथैव यातना प्रोक्ता असंख्या घोरदर्शनाः ॥४५
विस्तराद्गदितुं नालमपि वर्षशतायुतैः।
तस्मात्समासतो वक्ष्ये धर्माधर्मनिदर्शनम् ॥४६
वृत्तिदानं द्विजानां वै महापुण्यं प्रकीर्त्तितम्।
तथैवाध्यात्मविदुषो दत्तं भवति चाक्षयम् ॥४७
कुटुम्बिनं वा शास्त्रज्ञं श्रोत्रियं वा गुणान्वितम्।
यो दत्त्वा स्थापयेद्वृत्तिं तस्य पुण्यफलं शृणु ॥४८
मातृतः पितृतश्चैव द्विजः कोटिकुलान्वितः।
निर्विश्य विष्णुभवनं कल्पं तत्रैव मोदते ॥४९

हे महाभाग! आप जिन प्राणियों का सत्कार किया करते हैं और कौन से लोगो को दण्ड दिया करते हैं? अब आप कृपा करके इन सब बातो का मेरे समक्ष मे विस्तृत वर्णन कीजिये ॥ ४३ ॥ इस प्रकार से राजा भगीरथ के द्वारा जिज्ञासा करने पर धर्मराज ने कहा—हे महान बुद्धि वाले राजन बहुत ही अच्छे २ आपने प्रश्न किये हैं। आपकी बुद्धि बहुत ही विमल एवं उदार है। मैं आपके

प्रश्नो का समुचित उत्तर निवेदित करता हुआ इस समय मे सभी धर्मों और अधर्मों के विषय मे वर्णन करता हूँ आप भक्ति पूर्वक उन परम तात्विक बातो का श्रवण कीजिये ।।४४।। शास्त्रो मे पुण्य लोको को प्रदान कराने वाले बहुत से कर्मों का वर्णन किया गया है और उसी भाँति महान भीषण दिखाने वाली विविध नरको की यातनाओ का भी वर्णन किया गया है ।।४५।। यदि इन सबका शास्त्रो के अनुसार विस्तृत वर्णन किया जावे तो दश लाख वर्षो मे भी नही किया जा सकता है अतएव आपके प्रश्नो के अनुसार मे यहाँ पर आपके सामने परम सक्षेप से धर्माधर्म का दिग्दर्शन कराता हूँ ।।४६।। ब्राह्मणो के लिए वृत्ति का बाधना परम पुण्यप्रद कार्य है और जो किसी अध्यात्मवादी को दान दिया जाता है वह अक्षय हुआ करता है ।।४७।। किसी कुटुम्ब परिवार वाले पुरुष की,, शास्त्रो के ज्ञाता, गुणगण सम्पन्न श्रोत्रिय की जो वृत्ति बाँधता है उसका जो पुण्य-फल होता है उसका श्रवण आप करिये ।।४८।। वह ब्राह्मण अपने पितृकुल और मातृकुल की करोडो पीढियो को विष्णु लोक मे प्रविष्ट कराकर वहाँ पर एक कल्प पर्यन्त आनन्द का लाभ लिया करता है ।।४६

गण्यन्ते पासवो भूमेर्गण्यते वृष्टिबिन्दव ।
न गण्यन्ते विधात्रापि ब्रह्मवृत्तिफलानि वै ।।५०
सर्वदेवतारूपो ब्राह्मण परिकीर्तित ।
जीवन ददतस्तस्य क पुण्य गदितु क्षम ।।५१
यो विप्रहितकृन्नित्य स सर्वाद्रतवान्मखान् ।
स स्नात सर्वतीर्थेषु तप्त तेनाखिल तप ।।५२
यो ददस्वेति विप्राणा जीवन प्रेरयेत्परम् ।
सोऽपि तत्फलमाप्नोति किमन्यैर्बहुभाषितै ।।५३
तडाग कारयेद्यस्तु स्वयमेवापरेण वा ।
वक्त तत्पुण्यसख्यान नालह वर्षशतायुषा।। ५४

एकश्चेदध्वगो राजस्तडागस्य जल पिवेत् ।
तत्कर्तु सर्वपापानि नेश्यन्त्येव न सशय ॥५५
एकाहमपि यत्कुर्यादभू मिस्थमुदक नर ।
स मुक्त सर्वपापेभ्य शतवर्षं वसेद्दिवि ॥५६

धूलि के कण और वर्षा की बूँद भी किसी प्रकार से गिनी जा सकती है जिनकी गणना करना नितान्त असम्भव होता है अन्य की तो बात ही क्या है यदि विधाता भी चाहे तो उस ब्रह्मावृत्ति प्रदान करने वाला के पुण्य फलो की गणना नही कर सकते हैं ॥५०॥ ब्राह्मण सभी देवो का स्वरूप होता है । उसकी जो जीविका बाँध देता है उसके महान पुण्य फल के विषय मे किसकी शक्ति है जो उनका वर्णन कर सके ॥५१॥ निरन्तर विप्रो के निय हितप्रद कार्य किया करता है उसको तो यो समझना चाहिये कि उसने समस्त यज्ञो का यजन कर लिया है समस्त तीर्थों मे उसने अवगाहन कर लिया है और सभी प्रकार की तपश्चर्या भी वह पूर्ण कर चुका है ॥ ५२ ॥ जो प्राणी दूसरे लोगो को ब्राह्मणो की आजीविका बाँधने के लिये प्रेरित किया करता है उसको भी यही पुण्य फल प्रदान किया जा सकता है ॥५३॥ जो स्वय किसी तालाब आदि जलाशय का निर्माण कराता है या करता है उसका इतना अधिक पुण्य होता है कि उसकी गणना सौ वर्ष की पूरी लम्बी आयु मे भी नहीं की जा सकती है ॥५४॥ हे राजन् ! यदि कोई एक पथिक भी उस तालाब मे से जलपान कर लेता है तो उस तालाब के निर्माण करने वाले के सभी पापो का विनाश हो जाया करता है ॥५५॥ जो कोई मनुष्य एक दिन के पान करने के लायक भी जल उस तालाब मे कर दिया करता है वह सम्पूर्ण पापो से छुटकारा पाकर सौ वर्ष तक स्वर्ग मे निवास किया करता है ॥५६

शतु तडाग यो मर्त्य सात्यक शक्तितो भवत् ।

सोऽपि तत्फलमाप्नोति तुष्ट प्रेरक एव च ॥५७
मृद सिद्धार्थमात्रा वा तडागाद्यो वहि क्षिपेत् ।
तिष्ठत्यब्दशत स्वर्गे विमुक्त पापकोटिभि. ॥५८
देवता यस्य तुष्यन्ति गुरवो वा नृपोत्तम ।
तडागपुण्यभावस्स्यादित्येषा शाश्वती श्रुति ॥५९
इतिहास प्रवक्ष्यामि तवात्र नृपसत्तम ।
य श्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र सशय ॥६०
गौडदेशेऽतिविख्यातो राजासीद्वीरभद्रक ।
महाप्रतापो विद्यावान्सदा विप्रपूजक ॥६१
वेदशास्त्रकुलाचारयुक्तो मित्रविवर्धन ।
तस्य राज्ञी महाभागा नाम्ना चम्पकमञ्जरी ॥६२
तस्य राज्ञो महामामात्या कृत्याकृत्यविचारणा ।
धर्मणा धर्मशास्त्रैस्तु सदा कुर्वन्ति निश्चयम् ॥६३

जो मनुष्य तालाब के निर्माण कराने मे अपनी शक्ति के अनुरूप सहायता दिया करता है उसको तथा तालाव के निर्माण के लिये चन्दा आदि करने वाले तथा प्रेरणा देने वाले को भी यही फल प्राप्त हुआ करता है ॥५७॥ जो मनुष्य तालाब के निर्माण होने के समय मे तालाव की मिट्टी को निकाल कर बाहर की ओर फेंकता है उसको भी ऐसा पुण्य मिलता है कि वह भी करोडो पापो से मुक्त होकर सौ वर्ष पर्यन्त स्वर्ग मे वास किया करता है ॥५८॥ हे नृपश्रेष्ठ ! ऐसी एक परम प्राचीन काल से चली आने वाली श्रुति है कि जिस मनुष्य पर गुरु और देवगण परम प्रसन्न हुआ करते है उसी को तालाव वनवाने का महान पुण्य प्राप्त हुआ करता है ॥५९॥ हे राजन्! इस विषय मे मैं आपको एक ऐतिहासिक घटना का वर्णन करता हूँ उसका श्रवण करने वाला पुरुष भी सम्पूर्ण पापो से मुक्त होजाया करता है ॥६०॥ गौड देश मे वीरभद्र नाम वाला एक राजा था जो

महान् प्रतापी, विद्यावान और ब्राह्मणो की पूजा करने वाला परम प्रसिद्ध था ॥६१॥ वह राजा वेद शास्त्र और कुल के उपचारो का पूर्णतया पालन किया करता था तथा अपने मित्रो की वृद्धि करता था। उस राजा की परम भाग्यशालिनी रानी का नाम चम्पकमजरी था ॥६२॥ उस राजा के जो प्रधान मन्त्री थे वे भी हृदय-अहृदय का भली भांति से विचार करने वाले थे। उनका कर्त्तव्य यही था कि धर्मशास्त्रो के द्वारा ही पूर्णतया निर्णय किया करते थे ॥६३

प्रायश्चित्त चिकित्सा च ज्योतिषे धर्मनिर्णयम् ।
विना शास्त्रेण यो ब्रूयात्तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥६४
इति निश्चित्य मनसा मन्वादीरितधर्मकान् ।
आचार्येभ्य सदा भूप शृणोषि विधिपूर्वकम् ॥६५
न कोऽप्यन्यायवर्ती च तस्य राज्येऽवरोऽपि च ।
धर्मेण पाल्यमानस्य तस्य देशस्य भूपते ॥६६
जात समत्व स्वर्गस्य सौराज्यस्य शुभावहम् ।
स चैकदा तु नृपतिर्मृगयाया महावने ॥६७
मन्त्र्यादिभि परिवृतो बभ्राम मध्यभास्करम् ।
दैवादारोटशून्यस्य ह्यतिश्रान्तस्य तत्र वै ॥६८
नृपतीतस्य सजात सरसो दर्शन नृप ।
तत शुष्का तु सरसी दृष्ट्वा तत्र व्यचिन्तयत् ॥६९
किमय सरसी शृगे भुव येन विनिर्मिता ।
कथ जल भवेदत्र येन जीवेदय नृप ॥७०

पापो का प्रायश्चित, रोगो की चिकित्सा, ज्योतिष और धर्म के विषय मे जो बिना शास्त्र का विचार किये ही सहसा कुछ बोल देता है वह ब्रह्म घातक के समान ही महा पापी होता है ॥ ६४ ॥ अपने हृदय मे इन सभी बातो का भली भाँति विचार करके ही वह सर्वदा मनु आदि महर्षियो के द्वारा वर्णित धर्मों के विषय मे सदा ही विद्वान्

आचार्यों से श्रवण किया करता था ॥६५॥ उच्च वर्णों की तो बात ही क्या है उसके राज्य मे कोई शूद्र भी अधर्म का कार्य नही किया करता था। धर्म के साथ परिपालन करते हुए उस राजा के देश मे जो स्वराज्य था उसमे और स्वर्ग मे सभी समान ही कल्याणकारी बाते दिखलाई दिया करती थी। एक समय की बात है कि वह वीरभद्र राजा मृगया के लिये वन मे गया था ॥६६।६७॥ वह मध्यान्ह के समय मे पूरा दिन वन मे अपने मन्त्रियो के साथ मे इधर-उधर भ्रमण करता रहा किन्तु उसे दैवात् उस दिन कोई भी शिकार नही मिली थी। राजा घूमते हुए बहुत ही अधिक थक गया था। इसी बीच मे उसको उस महान् घोर वन मे एक बावडी दिखलाई दी थी। उस बावडी को मनुष्य चारो ओर से घेर कर खडे हो गये थे। उस समय मे बुद्धिसागर नामक मन्त्री ने उस बावडी को शुष्क देख कर अपने मन मे विचार किया था ॥६८।६९॥ यह पर्वत की चोटी पर किसने मिट्टी से एक बावडी का निर्माण कर दिया है। इसमे अब जल किस प्रकार से होवे जिससे इस परम परिश्रान्त राजा मे जीवन कैसे आवे ॥७०

ततो बुद्धि समभवत्खाते तस्या नृपोत्तम ।
हस्तमात्र ततो गर्त्त खात्वा तोयमवाप्तवान् ॥७१
तेन तोयेन पीतेन राज्ञस्तृप्तिरजायत ।
मन्त्रिणश्चापि भूमीश बुद्धिसागरसज्ञिन ॥७२
स बुद्धिसागरो भूप प्राह धर्मार्थकोविद ।
राजन्निय पुष्करिणी वर्षाजलवती पुरा ॥७३
अधुना वद्धवप्रा च कर्त्तु जाता मतिर्मम ।
तद्भवान्मोदता देव दत्तादाज्ञा च मेऽनघ ॥
इति श्रुत्वा वचस्तस्य मन्त्रिणो नृपसत्तम
मुमुदेऽतितरा भूप स्वय कर्तु समुद्यत ॥७५

तमेव मन्त्रिणं तत्र युयोज शुभकर्मणि ।
ततो राजाज्ञया सोऽपि बुद्धिसागरको मुदा ॥७६
सरसी सागरं कर्त्तुमुद्यत पुण्यकृत्तम ।
धनुषा चैव पञ्चाशत्सर्वतो विस्तृतायताम् ॥७७
सरसी बद्धसुशिला चकारागाधश-वराम् ।
ता विनिर्माय सरसी राज्ञे सर्वं न्यवेदयत् ॥७८

उस समय मैं उसने उदपान का मन में विचार किया था और एक हाथ का गड्ढा खोद दिया तो उसमे जल प्राप्त हो गया था ॥७१ हे राजन् ! उस जल के पान करने से राजा को तृप्ति हुई थी और बुद्धिसागर नाम वाला मन्त्री भी जल पीकर तृप्त हो गया था ॥७२ उस समय मे धार्मिक कार्यो के करने म परम कुशल उस मन्त्री ने राजा से प्रार्थना की थी कि हे राजन् ! पहिले यह बावडी वपा के ही जल से भरी हुई थी ॥७३॥ अब इसकी ठीक रचना कराकर सुन्दर स्वरूप इसका बनवाने का मेरा विचार है। हे देव ! यदि मेरे इस प्रस्ताव का अनुमोदन करे तो हे निष्पाप ! मुझे इस कार्य के सम्पादन करा देने की आज्ञा प्रदान करें ॥७४॥ अपने महान् मेधावी मन्त्री की इस बात का श्रवण कर वह श्रेष्ठ शिरोमणि राजा बहुत ही प्रसन्न हुआ था तथा बावडी की ठीक रचना कराने के कार्य के लिये स्वयं भी समुद्यत हो गया था ॥७५॥ राजा ने इस परम शुभ काम का सम्पन्न कराने के लिये उसी बुद्धिसागर मन्त्री की नियुक्ति कर दी थी। इस पुण्य कर्म के करने के लिये परमेच्छुक बुद्धिसागर राजा की आज्ञा पाकर परम प्रसन्न होकर उस बावडी को एक उत्तम सरोवर बनवाने के लिये तैयार होगया था। उस मन्त्री ने फिर वहाँ पर चारो ओर से पचास धनुष की फैली हुई चौडी पाषाण की भित्तिवाला परम मनोहर सरोवर बनवा दिया था। फिर तो उसमे अगाध जल होगया था। इस रीति से जब वह सरोवर पूर्णतया तैयार हो गया तो मन्त्री ने राजा को खबर दी थी ॥७६-७८॥

तस्या तत प्रभृति वै सर्वेऽपि वनचारिणः ।
पान्था पिपासिता भूप लभन्ते स्म जल शुभम् ॥७६
कदाचित्स्वायुपश्चान्ते स मन्त्री बुद्धिसागरः ।
प्रमृतो गतवाल्लोक लोकशास्तुर्मम प्रभो ॥८०
तदर्थं तु मया पृष्टो धर्मो धर्मलिपिकर. ।
चित्रगुप्तस्तु तत्कर्म मह्य सर्वं न्यवेदयात् ॥८१
उपदेष्टा स्वय चासौ धर्मकार्यस्य भूपते. ।
तस्मद्धर्मविमान तु समारोढुमिहार्हति ॥८२
इत्युक्ते चित्रगुप्तेन समाज्ञप्तो मया नृप ।
विमान धर्मसज्ञ तु आरोढु बुद्धिसागर. ॥८३
अथ कालान्तरे राजन्स राजा वीरभद्रक. ।
मृतो गतो मम स्थान नमश्चक्रे मुदान्वितः ॥८४

मन्त्री ने राजा के समीप मे यह सम्वाद भिजवाया था कि उस सरोवर के निर्माण होने के पश्चात् सुन्दर निर्मल जल हो गया है और अब उसी दिन से उस सरोवर मे वनवासी और यात्री लोग सभी इसके पवित्र जल का पान करने लग गये हैं । ७६।। हे राजन् ! एक समय आ गया कि आयु के पूर्ण होजाने पर वह बुद्धिसागर मन्त्री मर गया था । मुझे तो इस ससार को शिक्षा देनी ही पडती है । अत-एव जब वह मेरे लोक मे समागत हुआ तो मैंने धर्म को लिपिवद्ध करने वाले चित्रगुप्त से कहा और उस बुद्धिसागर मन्त्री के धर्म के विषय मे प्रश्न किया था । उस समय चित्रगुप्त ने इसका किया हुआ सभी कर्म मुझे बतलाया था ॥८०।८१॥ उसने कहा था कि इस मन्त्री ने इस धर्म के कार्य का राजा को स्वय ही उपदेश दिया था । अतएव यह धर्म-विमान पर चढने का पात्र है ॥८२॥ हे राजन् ! चित्रगुप्त के द्वारा इस बात के कहने पर मैंने उस बुद्धिसागर राजा के मन्त्री का धर्म नाम वाले विमान पर समारोहण करने का आज्ञापत्र

दे दिया था ॥ ८३ ॥ इस के उपरान्त कुछ समय के व्यतीत हो जाने पर वह राजा वीरभद्रभी आयु के समाप्त हो जाने पर मृत्यु प्राप्त करके मेरे दरबार में उपस्थित होगया था। उस राजा ने बहुत ही प्रसन्नता के साथ वहाँ आकर मुझे प्रणाम किया था ॥८४

मया तु तत्र तस्यापि दृष्टं कर्माखिलं नृप ।
कथित चित्रगुप्तेन धर्मं सरसिसंभवम् ॥८५
तदा सम्यङ्मया राजा बोधितोऽभूद्यथा शृणु ।
अधित्यकाया भूपाल सैकतस्य गिरेः पुरा ॥८६
लावकेनामुना चञ्च्वा खात द्व्यङ्गुलमम्बुनि ।
तत कालान्तरे तेन वाराहेण नृपोत्तम ॥८७
खनित हस्तमात्र तु जल तुण्डेन चात्मनः ।
ततोऽन्यदाऽमुया काल्या हस्तयुग्ममित. कृतः ॥८८
खातो जले महाराज तोय मासद्वय स्थितम् ।
पीत क्षुद्रैर्वनचरैः सत्त्वैस्तृष्णासमाकुलं. ॥८९
ततो वर्षत्रयान्ते तु गजेनानेन सुव्रत ।
हस्तत्रयामित खात कृतस्तत्राधिक जलम् ॥९०
मासत्रये स्थित तच्च पयो जीवैर्वनेचरैः ।
भवास्तत्र समायातो तत्शोपादनन्तरम् ॥९१

हे राजन् ! मैंने फिर चित्रगुप्त से उस राजा के धर्म के विषय में पूछा तो उसने उस राजा के धर्म के सम्बन्ध में सरोवर के निर्माण में मिले हुए उसके धर्म का वर्णन किया था ॥८५॥ उस समय में मैंने उस राजा को विस्तार के साथ बतलाया था। अब आप उसका श्रवण करिए। मैंने कहा था—हे राजन् ! पहिले इस बाज ने इस पहाड की तलहटी की रज में अपनी चोंच से दो अगुल का गर्त्त बनाकर जल निकाला था। हे नृप श्रेष्ठ ! इसके पश्चात् किसी समय में एक शूकर ने अपनी थूथडे में एक हाथ का उसी जगह पर एक गड्ढा बना दिया

था ॥८६।८७।८८॥ हे राजन् उस गर्त्त मे दो मास तक जल बना रहा था और प्यास से घबडाये हुए छोटे वन के जीव जन्तुओं ने उसके जल का पान कर अपनी पिपासा को शान्त किया था ॥ ६६ ॥ हे सुव्रत ! फिर जब तीन वर्ष व्यतीत होगये थे तो इस हाथी ने उसी जगह पर एक तीन हाथ का गर्त्त खोदकर बना दिया था और उसमें कुछ अधिक जल रहने लगा था। वह जगली जीवो के लिये तीन मास तक बराबर बना रहा था। इसके उपरान्त जब उसका जल सूख गया तो आप वहाँ पर पहुँच गये थे ॥६१

मासे तत्र तु सप्राप्त हस्त खात्वा जल नृप ।
ततस्तस्योपदेशेन मन्त्रिणे नृपते त्वया ॥६२
पञ्चापाद्वनुरुत्खात जात तत्र महाजलम् ।
पुन शिलाभिः सुदृढ वद्ध जात महत्सर ।
वृक्षाश्च रोपितास्तत्र सर्वलोकोपकारिणः ॥६३
तेन स्वस्वेन पुण्येन पञ्चैते जगतीपते ।
विमान धर्म्यमारूढास्त्वमप्येन समारुह ॥६४
इति वाक्यं समाकर्ण्य मम राजा स भूमिप ।
आरुरोह विमान तत्पश्चे राजा समाशभाक् ॥६५
इति ते सर्वमाख्यात तडागजनित फलम् ।
श्रुत्वैयन्मुच्यते पापादाजन्ममरणान्तिकात् ॥६६
यो नर श्रद्धया युक्तो व्याख्यात शृणुयात्पठेत् ।
सोऽप्याप्नोत्यखिल पुण्य सरोनिर्माणसभवम् ॥६७

हे राजन् ! फिर वहीं पर एक हाथ का गर्त्त खोदने पर ही आपको उसमे जल की प्राप्ति होगई थी फिर आपने अपने मन्त्री के उपदेश से पचास धनुष का मैदान खुदवा कर उसमें बहुत अधिक जल भर दिया था और पाषाणो के द्वारा एक परम सुन्दर पक्का घाट बनवा कर बहुत ही अच्छा एक सरोवर का निर्माण करा दिया था

और उसके आस-पास सबके उपकार करने वाले अनेक वृक्षों का भी आरोपण करा दिया था ॥६२।६३॥ हे राजन् ! उसी किये हुये अपने अपने पुण्य के प्रभाव से ये पाँचों धर्म के नाम वाले विमान पर चढ चुके हैं अब आप भी उस पर समारूढ होइये ॥६४॥ हे राजन् ! मेरे इस वचन को सुनकर वह छटा राजा भी जो उस जलाशय के निर्माण से उत्पन्न धर्म का समभागी था उस विमान पर चढ गया था ॥६५॥ तालाव के निर्माण करने का जो महान पुण्य होता है उसका वर्णन मैंने आपको कहकर सुना दिया है। इसका श्रवण कर तथा इसको करके मनुष्य जन्म से लेकर जो भी पाप होते हैं उनसे मुक्त हो जाया करता है ॥६६॥ जो कोई मनुष्य श्रद्धा की भावना से इस अद्भुत आख्यान को सुनता या पढता है उसको भी कभी ऐसी शक्ति होने पर यह सब फल प्राप्त हुआ करता है ॥६७



॥ नाना प्रकार के दानों का निरूपण ॥

देवतायतन यस्तु कुरुये कारयत्यपि ।
शिवस्यापि हरेर्वापि तस्य पुण्यफल श्रृणु ॥१
मातृत पितृतश्चैव लक्षकोटिकुलान्वित ।
कल्पत्रय विष्णुपदे तिष्ठत्येव न सशय ॥२
मृदैव कुरुते यस्तु देवतायतन नर ।
यावत्पुण्य भवेत्तस्य तन्मे निगदत श्रृणु ॥३
दिव्यदेहधरो भूत्वा विमानवरमास्थित ।
कल्पत्रय विष्णुपदे तिष्ठत्येव न सशय ॥४
मृदैव कुरुते यस्तु देवतायतन नर ।
यावत्पुण्य भवेत्तस्य तन्मे निगदत श्रृणु ॥५
दिव्यदेहधरो भूत्वा विमानवरमास्थित ।

कल्पत्रय विष्णुपदे स्थित्वा ब्रह्मपुर व्रजेत् ॥६
कल्पद्वय स्थितस्तत्र पुन कल्प वसेद्दिवि ।
ततस्तु योगिनामेव कुले जातो दयान्वित ॥७

धर्मराज ने कहा—जो मनुष्य भगवान् शङ्कर या भगवान् विष्णु इन देवों का स्थान अर्थात् मन्दिर का निर्माण कराता है अथवा निर्माण कराने की प्रेरणा प्रदान किया करता है इसका जो पुण्यफल होता है उसे भी आप अब सुनिए—ऐसे देवालय का निर्माण करने या कराने वाला मनुष्य अपने माता पिता दोनो के कुलो की दश खरब पीढियों के साथ तीन कल्प पर्यन्त विष्णु लोक मे निवास किया करता है ॥१-२॥ इस समय भ केवल मिट्टी से ही जो किसी देव मन्दिर का निर्माण कराता है उस मनुष्य को जो पुण्यफल प्राप्त होता है वह भी मुझ से आप सुन लीजिये ॥३॥ उस व्यक्ति का भी शरीर परम दिव्य होजाया करता है। और वह भी एक परम श्रेष्ठ विमान मे बैठकर तीन कल्प तक श्री विष्णु भगवान के लोक मे निवास किया करता है ॥४॥ जो पक्की मिट्टी आदि से देव मन्दिर की रचना करवाया करता है उसका पुण्यफल भी मैं आप को बतलाता हूँ उसका भी आप श्रवण करिए ॥५॥ वह मनुष्य रूपी परम दिव्य देह को धारण करके उत्तम विमान मे समारूढ हुआ करता है और तीन कल्प तक विष्णुलोक मे निवास किया करता है। फिर वह वहाँ से ब्रह्मलोक को चला जाता है ॥६॥ वहाँ पर दो कल्प तक निवास करके फिर एक कल्प तक स्वर्गलोक मे निवास का सुख भोगता है। इसके अनन्तर वह प्राणी किसी योगिराज के कुल म समुत्पन्न होता है और अपने जीवन म वह परम दयालु रहा करता है ॥७

वैष्णव योगमास्थाय मुक्ति व्रजति शाश्वतीम् ।
दारुभि कुरुते यस्तु तस्य स्याद् द्विगुण फलम् ॥८
त्रिगुण चेष्टकाभिस्तु शिलाभिस्तच्चतुर्गुणम् ।

स्फाटिकाभिः शिलाभिस्तु ज्ञेयं दशगुणोत्तरम् ॥९
ताम्रोभिस्तच्छतगुणं हेम्ना कोटिगुणं भवेत् ।
देवालयं तडागं वा ग्राम वा पालयेत्तु यः ॥१०
कर्तुः शतगुण तस्य पुण्य भवति भूपते ।
देवालयस्य शुश्रूषा लेपसेचनमडनं ॥११
कुर्याद्यस्सतत भक्त्या तस्य पुण्यमनन्तकम् ।
वेतनाद्विष्टितो वापि पुण्यकर्मप्रवर्त्तिता. ॥१२
ते गच्छति धराधारा शाश्वत वैष्णव पदम् ।
तडागार्द्ध फल राजन्कासारे परिकीर्तितम् ॥१३
कूपे पादफल ज्ञेय वाप्या पद्माकरोन्मितम् ।
वापीशतगुण प्रोक्त कुल्याया भूपते. फलम् ॥१४

इसके उपरान्त योगाभ्यास के द्वारा भगवान विष्णु का ध्यान करके परम शाश्वत मोक्ष की प्राप्ति किया करता है। जो काष्ठ के द्वारा किसी देवालय का निर्माण कराया करता है उसको इससे भी द्विगुणित पुण्य का फल प्राप्त हुआ करता है ॥८॥ ईंटों के द्वारा देव मन्दिर के बनवाने वाले को चौगुना पुण्य प्राप्त हुआ करता है। जो स्फटिक मणि के पाषाणों के द्वारा देवालय की रचना कराता है उसको उपर्युक्त पुण्य फल से दशगुना पुण्य मिला करता है ॥९॥ ताम्रधातु से देव मन्दिर की रचना कराने वाले को सौगुना और सुवर्ण के द्वारा देव मन्दिर के निर्माण कराने वाले को करोड गुना फल प्राप्त हुआ करता है। जो किसी भी देव मन्दिर का, तालाब का और ग्राम का परिपालन एवं सरक्षण किया करता है उस पुरुष को निर्माण कराने वाले से भी सौगुना पुण्य मिला करता है जो लेपन-अभिषिञ्चन और पुताई आदि के द्वारा इनका रक्षण एवं उद्धार किया करता है तथा परम भक्ति भाव से सब प्रकार से सेवा किया करता है उसको अनन्त पुण्य मिला करता है। हे राजन् ! जो धनिक अथवा राजा महाराजा

वेतन देकर या बिना ही वेतन के ऐसे पुण्य कर्म को प्रवृत्त किया करते हैं। उनको विष्णुलोक सर्वदा के लिए ही प्राप्ति हो जाता है। हे राजन्! तालाब से आधा पुण्य जाहड के निर्माण कराने का हुआ करता है ॥ १०-१३ ॥ कूप के निर्माण कराने पर चौथाई फल मिला करता है। बावडी बनवाने वाले पुरुष को दश खर्व गुना फल प्राप्त हुआ करता है। बावडी से भी सौ गुना पुण्य नहर बनवाने वाले राजा को प्राप्त हुआ करता है ॥१४॥

दृषद्भिस्तु धनी कुर्यान्मृदा निष्किञ्चनो जन ।
तयो फल समान स्यादित्याह कमलोद्भव ॥१५
दद्यादाढ्यस्तु नगर हस्तमात्रमकिंचन ।
भुव तयो समफल प्राहुर्वेदविदो जना ॥१६
धनाढ्य कुरुते यस्तु तडाग फलसाधनम् ।
दरिद्र कुरुते कूप सम पुण्य प्रकीर्तितम् ॥१७
आराम कारयेद्यस्तु बहुजन्तूपकारकम् ।
स याति ब्रह्मभुवन कुलत्रयसमन्वित ॥१८
धेनुर्वा ब्राह्मणो वापि यो वा को वापि भूपते ।
क्षणार्द्धं तस्य छायाया तिष्ठन्स्वर्गं नयत्यमुम् ॥१९
आरामकारका राजन्देवतागृहकारिण ।
तडागग्रामकर्त्तार पूज्यन्ते हरिणा सह ॥२०
सर्वलोकोपकारार्थं पुष्पाराम जनेश्वर ।
कुर्वते देवतार्थं वा तेषा पुण्यफल शृणु ॥२१

ब्रह्माजी ने कहा—यदि कोई धनिक पुरुष पाषाणो से देवालय तालाब आदि का निर्माण कराये और साधारण आर्थिक स्थिति का मनुष्य मृत्तिका से ही निर्माण करावे तो दोनो का एक सा ही फल प्राप्त करता है ॥१५॥ कोई समृद्धिशाली पुरुष एक विशाल नगर को दान मे प्रदान करके दे देवे और सामान्य आर्थिक स्थिति का मनुष्य केवल एक ही हाथ भर के प्रमाण वाली भूमि का दान करे उन दोनो को भी

समकोटिकुलैर्युक्तो मातृत पितृतस्तथा ।
वसेत्कल्पशतं साग्र नारायणपदे नृप ॥२५
ऊर्ध्वपुण्ड्रधरो यस्तु तुलसीमूलमृत्स्नया ।
गोपिकाचन्दनेनापि चित्रकूटमृदापि वा ।
गङ्गामृत्तिकया चैव तस्य पुण्यफल शृणु ॥२६
विमानवरमारूढो गन्धर्वाप्सरसा गणैः ।
सङ्गीयमानचरितो मोदते विष्णुमन्दिरे ॥२७
पत्राणि तुलसीमूलाद्यावन्ति पतितानि वै ।
तावन्ति ब्रह्महत्यादिपातकानि हतानि च ॥२८

उस उद्यान मे जितने भी फूल और पत्र होते हैं उतने ही वर्षों तक वह मनुष्य जिसने वृक्षो का आरोपण किया है अपनी करोडो पीढियो के सहित स्वर्ग लोक मे आनन्द का उपभोग किया करता है ॥२२॥ जो लोग उस उद्यान की सुरक्षा के लिए परदे की दीवार बनवाते हैं या काटों की बाड लगाया करते हैं वे एक मन्वन्तर के समय पर्यन्त ब्रह्म-लोक मे निवास किया करते हैं ॥२३॥ हे राजन् ! जो तुलसी के पौधे का आरोपण किया करते हैं उनके पुण्य फल को आप मेरे द्वारा कहे जाने पर ही जान सकते हैं ॥२४॥ हे राजन् ! जो तुलसी का पौधा लगाने वाला व्यक्ति अपने माता पिता की सात करोड पीढियो के सहित सौ कल्प के समय तक नारायण लोक मे निवास प्राप्त किया करते हैं ॥२५॥ जो तुलसी के मूल के समीप की मृत्तिका से, गोपी चन्दन से, चित्रकूट की मृत्तिका से अथवा गङ्गाजी के तट की मृत्तिका से ऊर्ध्व पुण्ड्र धारण किया करता है उसको महान् पुण्य फल प्राप्त होता है । उसको भी मैं अब आपको ज्ञान प्राप्त कराने के लिए बतलाता हूँ । इसे लोग एक साधारण सी बात ही समझा करते हैं और इसकी वास्तविक महिमा का ज्ञान नही होता है । वह पुरुष विष्णुलोक मे पहुँचकर परमश्रेष्ठ विमान मे बैठा करता है और गन्धर्व गण तथा अप्सराओ का दल

उसके यश का गान किया करते हैं ।।२६-२७।। तुलसी के मूल मे जितने भी पत्ते स्वय झडकर गिर जाया करते हैं उस पौधे के आरोपित करने वाले पुरुष के उतने ही ब्रह्म हत्या आदिक महापातकों को दूर करा दिया करते है ।।२८।।

तुलस्या सेचयेद्यस्तु जलं चुलुकमात्रकम् ।
क्षीरोदवासिना सार्द्धं वसेदाचन्द्रतारकम् ।।२६
ददाति ब्राह्मणाना य कोमल तुलसीदलम् ।
स याति ब्रह्मसदने कुलत्रितयसयुतः ।।३०
शालग्रामेऽर्पयेद्यस्तु तुलस्यास्तु दलानि च ।
स वसेद्विष्णुभवने यावदाभूतसप्लवम् ।।३१
कण्टकावरण यस्तु प्राकार वापि कारयेत् ।
सोऽप्येकविंशतिकुलैर्मोदते विष्णुमन्दिरे ।।३२
योऽर्च्चयेद्धरिपादाब्ज तुलस्या कोमलैर्दलै. ।
न तस्य पुनरावृत्तिर्विष्णुलोकान्नरेश्वर ।।३३
द्वादश्या पौर्णमास्या य क्षीरेण स्नापयेद्धरिम् ।
कुलायुतयुत सोऽपि मोदते वैष्णवे पदे ।।३४
प्रस्थमात्रेण पयसा य. स्नापयति केशवम् ।
कुलायुतायुतयुत सोऽपि विष्णुपुरे वसेत् ।।३५

जो कोई एक चुल्लू भर जल से भी तुलसी के पौधे को सींच दिया करता है वह क्षीर सागर मे निवास करने वाले भगवान के साथ जब तक सूर्य और चन्द्र इस विश्व मे स्थित रहा करते हैं तब तक निवास किया करता है ।।२६।। जो ब्राह्मणो को लाकर परम कोमल तुलसी के दल अर्पित किया करता है वह अपने तीनो कुलो के सहित ब्रह्मलोक मे गमन किया करता है ।।३०।। जो पुण्यात्मा पुरुष श्रीशाल-ग्राम भगवान पर नित्य तुलसी के दलो को चढाया करता है वह प्रलय-काल तक विष्णुलोक मे निवास किया करता है ।।३१।। जो सुरक्षा

के लिए तुलसी के पौधो की काँटो की बाढ लगाता है अथवा तुलसी का घमला बना देता है वह भी अपनी इक्कीस पुश्तो तक स्वर्ग लोक आनन्द का अनुभव किया करता है ॥३२॥ जो भगवान विष्णु के चरण कमलो की तुलसी के कोमल दलो से पूजा किया करता है वह विष्णुलोक को प्राप्त कर वहाँ से फिर वापिस नही लौटा करता है ॥३३॥ जो कोई मनुष्य द्वादसी तिथि अथवा पूर्णिमा के दिन दुग्ध से विष्णु भगवान का स्नान कराया करता है वह अपनी दश करोड पुश्नो के सहित विष्णु भगवान के लोक मे रहा करता है ॥३४॥ जो एक प्रस्थ भर प्रमाण वाले अर्थात् ६४ तोले दूध से भगवान केशव को स्नान करता है ॥३५

घृतप्रस्थेन यो विष्णु द्वादश्या स्नापयेन्नर ।
कुलकोटियुतो राजन्सायुज्य लभते हरे ॥३६
पञ्चामृतन य स्नानमेकादश्या तु कारयेत् ।
विष्णो सायुज्यक तस्य भवेत्कुलशतायुतं ॥३७
एकादश्या पौर्णमास्या द्वादश्या वा नृपोत्तम ।
नालिकेरोदकैर्विष्णु स्नापयेत्तत्फल शृणु ॥३८
दशजन्मार्जितै. पापैर्विमुक्तो नृपसत्तम ।
शतद्वयकुलैर्युक्तो मोदते विष्णुना सह ॥३९
इक्षुतोयेन देवेश य स्नापयति भूपते ।
केशवं लक्षपितृभि सार्द्धं विष्णुपद व्रजेत् ॥४०
पुष्पोदकेन गोविन्द तथा गन्धोदकेन च ।
स्नापयित्वा हरिं भक्त्या वैष्णव पदमाप्नुयात् ॥४१
जलेन वस्त्रपूतेन य स्नापयति माधवम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुना सह मोदते ॥४२

जो एक प्रस्थ भर घृत मे द्वादशी तिथि के दिन भगवान विष्णु को स्नान कराया करता है । हे राजन् ! वह अपने करोड़ो पुश्तों म

सहित भगवान की सायुज्यता को प्राप्त किया करता है ।।३६।। जो एकादशी के दिन या पूर्णिमा तिथि मे नारियल के जल से भगवान विष्णु की प्रतिमा का स्नपन कराता है उसके पुण्य फल को भी आप मुझ से श्रवण कीजिए ।।३७ ३८।। हे नृपते ! वह दश जन्मो मे बने हुए पातकों से छुटकारा पाकर अपने दो सौ वशज पीढियों के सहित विष्णु भगवान के समकक्ष पहुँच कर निवास किया करता है ।।३९।। हे राजन् ! जो कोई भक्त गन्ने के रस से भक्तिभाव से भगवान केशव का स्नान कराया करता है वह मनुष्य अपने लाखो पितृगणो के सहित विष्णुलोक मे प्रवेश प्राप्त किया करता है ।।४०।। जो पुष्पों के रस अथवा परम सुगन्धित पुष्पो के अर्क से या इत्र से गोविन्द का स्नान कराता है वह भी विष्णुलोक का निवास प्राप्त करता है ।।४१।। जो भक्त वस्त्र से छान कर जल से भगवान माधव प्रभु का स्नान कराता है वह सभी प्रकार के घोरातिघोर पाप से मुक्ति प्राप्त करके भगवान विष्णु के सन्निधि म ही आनन्दावास किया करता है ।।४२।।

क्षीराद्यै स्नापयेद्यस्तु रविसङ्क्रमणे हरिम् ।
स वसेद्विष्णुसदने निसप्तपुरुषै सह ।।४३
शुक्लपक्षे चतुर्दश्यामष्टम्या पूर्णिमादिने ।।४४
एकादश्या भानुवारे द्वादश्या पचमीतिथौ ।
सोमसूर्योपरागे च मन्वादिषु युगादिषु ।।४५
अर्द्धोदये च सूर्यस्य पुष्यार्के रोहिणीबुधे ।
तथैव शनिरोहिण्या भौमाश्विन्यां तथैव च।।४६
शन्या भृगुमृगे चैव भृगुरेवतिसङ्गमे ।
तथा बुधानुराधाया श्रवणार्के तथैव च ।।४७
तथा च सोमश्रवणे हस्तयुक्ते बृहस्पतौ ।
बुधाष्टम्या बुधाषाढे पुण्ये चान्ये दिने तथा ।।४८
स्नापयेत्पयसाविष्णु शान्तिमान् वाग्यत शुचि ।
घृतेन मधुना वापि दध्ना वा तत्फल शृण ।।४९

जो भक्त सूर्य सक्रमण के (सक्रान्ति) समय मे दुग्ध आदि गव्यो से भगवान की प्रतिमा का स्नान भक्ति पूर्वक कराया करता है वह अपने इक्कीस पूर्वजो को साथ मे लेकर विष्णु लोक मे निवास किया करता है ।।४३।। जो कोई भक्त शुक्लपक्ष की चतुर्दशी, अष्टमी, पूर्णिमा अथवा एकादशी रविवार के दिन पञ्चमी, सूर्य अथवा चन्द्र के ग्रहण, मन्वन्तरादि तथा युगादि की तिथियो मे ग्रस्तोदय सूर्य-ग्रहण, अर्धोदित सूर्य, पुष्य नक्षत्र युक्त सूर्य, रोहिणी युक्त बुध, शनि सयुक्त रोहिणी, अश्विनी नक्षत्रयुत भौमवार तथा शनिवार, मृगशिरा से युक्त भृगुवार, रेवती से समन्वित शुक्रवार, अनुराधा से युक्त बुधवार, श्रवण समन्वित सोमवार, हस्त नक्षत्र वाले गुरुवार, बुधवार वाली अष्टमी उत्तराषाढा से युक्त बुधवार तथा अन्य किसी परम पुण्यमय दिवस मे भगवान विष्णु को हृदय मे शान्त रहकर तथा वाणी को नियम नियन्त्रित रखते हुए परम पवित्रता के साथ घृत, दधि और मधु से भगवान को स्नान कराया करता है उसके पुण्यफल का श्रवण करिये ।।४४ ४६।।

सर्वयज्ञफल प्राप्य सर्वपापविवर्जित ।
वसेद्विष्णुपुरे सार्द्ध त्रिसप्तपुरुषैर्नृ प ।।५०
तत्रैव ज्ञानमासाद्य योगिनामपि दुर्लभम् ।
मोक्षमाप्नोति नृपते पुनरावृत्तिदुर्लभम् ।।५१
कृष्णपक्षे चतुर्दश्या सोमवारे च भूपते ।
शिव सस्नाप्य दुग्धेन शिवसायुज्यमाप्नुयात् ।।५२
नलिकेरोदकेनापि शिव सस्नाप्य भक्तित ।
अष्टम्यामिन्दुवारे वा शिवसायुज्यमश्नुते ।।५३
शुक्लपक्षे चतुर्दश्यामष्टम्या वापि भूपते ।
घृतेन मधुना स्नाप्य शिव तत्साम्यता व्रजेत् ।।५४
तिलतैलेन सस्नाप्य विष्णु वा शिवमेव च ।

स याति तत्तत्सारूप्यं पितृभिः सह सप्तभिः ॥५५
शिवमिक्षुरसेनापि यः स्नापयति भक्तितः ।
शिवलोके वसेत्कल्प स सप्तपुरुषैः सह ॥५६

हे राजन् ! वह उपर्युक्त द्रव्यों से भगवान का स्नपन कराने वाला भक्त सब पापों से रहित होकर समस्त प्रकार के यज्ञों के पुण्य को प्राप्त किया करता है। और अन्त में २१ पुरुषों के सहित विष्णु-लोक में वास करता है॥५०॥हे राजन् ! वहाँ पर ही योगियों को भी दुर्लभ ज्ञान को प्राप्त करके जिसके प्राप्त करने से फिर आवृत्ति दुर्लभ होती है ऐसे मोक्ष पद को प्राप्त कर लिया करता है।।५१॥ हे नरपति देव ! जो मास के कृष्णपक्ष की सोमवार से युक्त चतुर्दशी तिथि के दिन भगवान शिव को दुग्ध से स्नान करा कर अर्चन किया करता है वह शिव की सायुज्यता का लाभ लिया करता है और शिवलोक को गमन किया करता है ॥५२॥ सोमवार के दिन जब अष्टमी तिथि हो उस दिन नारियल के अन्दर रहने वाले जल से भक्ति की भावना से संयुत होकर भगवान श्री शङ्कर की प्रतिमा का स्नान कराया करता है वह भी शिव के लोक को गमन किया करता है ॥५३॥ हे भूपते ! मास के शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी अथवा अष्टमी तिथि के दिन घृत और शहद से शिवजी का स्नपन कराता है भगवान का वह सरूप भाव प्राप्त कर लेता है ॥५४॥ जो तिल के तैल से भगवान विष्णु या शिव का स्नान कराता है वह अपने सात पितरों के साथ एक कल्प तक शिव के लोक में निवास किया करता है ॥५५॥ जो शिव की मूर्ति का स्नान भक्ति भाव युक्त होकर ईख के रस से कराया करता है वह भी अपनी सात पुश्तों के सहित कल्पभर तक शिव के लोक में निवास प्राप्त किया करता है ॥५६॥

घृतेन स्नापयेल्लिङ्गमुत्थाने द्वादशीदिने ।
क्षीरेण वा महाभाग तत्फलं शृणु मद्गिरा ॥५७

जन्मायुतार्जितैः पापैर्विमुक्तो मनुजो नृप ।
कोटिसङ्ख्य समुद्धृत्य स्वकुलं शिवतां व्रजेत् ॥५८
सम्पूज्य गन्धकुसुमैर्विष्णुं विष्णुतिथौ नृप ।
जन्मायुतार्जितैः पापैर्मुक्तो व्रजति तत्पदम् ॥५९
पद्मपुष्पेण यो विष्णुं शिवं वा पूजयेन्नरः ।
स याति विष्णुभवनं कुलकोटिसमन्वितः ॥६०
हरिं च केतकीपुष्पैः शिवं धत्तूरजैर्निशि ।
सपूज्य पापनिर्मुक्तो वसेद्विष्णुपुरे युगम् ॥६१
हरिं तु चाम्पकैः पुष्पैरर्कपुष्पैश्च शङ्करम्।
समभ्यर्च्य महाराज तत्तत्सालोक्यमाप्नुयात् ॥६२
शङ्करस्याथवा विष्णोर्घृतयुक्तं च गुग्गुलुम् ।
दत्त्वा धूपं नरो भक्त्या सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥६३

हे महाभाग ! जो सूर्य के उदयकालीन द्वादशी तिथि के दिन भगवान् शङ्कर की लिंगमयी प्रतिमा का क्षीर से स्नान कराया करता है उसको जो पुण्य होता है उसका मैं आपके सामने बतलाता हूँ ॥५७॥ हे राजन् ! वह मनुष्य अपने दश सहस्र जन्मों में किये हुए समस्त महा पापों से छूटकर अपने कुल के करोड़ो पुरुषों का उद्धार करके अपने सम्पूर्ण कुल को भगवान् शिव में ही लीन कर दिया करता है ॥५८॥ हे राजन् ! भगवान् विष्णु की देवोत्थापिनी द्वादशी तिथि के दिन भगवान् विष्णु की सुगन्धित पुष्पों से पूजा करने वाला अपने दश सहस्र जन्मों में किये हुए पापों से मुक्त होकर अन्त में विष्णु लोक को प्राप्त हो जाता है ॥५९॥ जो कमल के पुष्पों से भगवान् विष्णु या शिव का समर्चन किया करता है वह करोड़ो ही कुलों के सहित वैकुण्ठ लोक में निवास किया करता है ॥६०॥ जो भक्त विष्णु भगवान् का केतकी के पुष्पों से और भगवान् शिव का धतूरे के पुष्पों से यजन किया करता है वह सभी पापों से मुक्त होकर एक युग तक विष्णु के लोक में रहा करता है ॥६१॥ हे राजन् ! जो भक्त भगवान् विष्णु को चम्पा के पुष्पों से

तथा भगवान् शिव को आक के पुष्पों से पूजता है वह मनुष्य इन दोनों ही देवों के लोकों की प्राप्ति किया करता है ॥६२॥ जो मनुष्य भक्तिभाव के साथ भगवान् शङ्कर अथवा विष्णु को घृतमिश्रित गूगल की धूप दिया करता है उसके समस्त पाप दूर भाग जाया करते हैं ॥६३॥

तिलतैलान्वितं दीपं विष्णोर्वा शंकरस्य वा ।
दत्त्वा नरः सर्वकामान्सम्प्राप्नोति नृपोत्तम ॥६४
घृतेन दीपं यो दद्याच्छंकरायाथ विष्णवे ।
स मुक्तः सर्वपापेभ्यो गङ्गास्नानफलं लभेत् ॥६५
ग्राम्येन वापि तैलेन राजन्नन्येन वा पुनः ।
दीपं दत्त्वा महाविष्णोः शिवस्यापि फलं शृणु ॥६६
सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वैश्वर्यसमन्वितः ।
तत्तत्सालोक्यमाप्नोति त्रिःसप्तकुलान्वितः ॥६७
यद्यदिष्टतमं भोज्यं तत्तदीशाय विष्णवे ।
दत्त्वा तत्तत्पदं याति चत्वारिंशत्कुलान्वितः ॥६८
यद्यदिष्टतमं वस्तु तत्तद्विप्राय दापयेत् ।
स याति विष्णुभवनं पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥६९
भ्रूणहा स्वर्णदानेन शुद्धो भवति भूपते ।
अन्नतोयसमं दानं न भूतं न भविष्यति ॥७०

जो भक्त भगवान् विष्णु अथवा शिव के लिये तिल के तैल का दीपक प्रज्वलित किया करता है उसकी सब मनोकामनायें पूर्ण होजाया करती हैं ॥६४॥ जो भक्ति के सहित भगवान् शङ्कर अथवा विष्णु के लिये घृत का दीपक जलाता है वह सभी पापों से छुटकारा पाजाता है और गङ्गा में स्नान करने के पुण्य फल की प्राप्ति किया करता है ॥६५॥ जो ग्राम में निर्माण के तैल से अथवा घृत से विष्णु भगवान का दीपक प्रज्वलित किया करता है उसका पुण्य फल सुनाता हूँ ॥६६ वह मनुष्य सभी पापों से छूट जाया करता है और सब प्रकार के

ऐश्वर्य प्राप्त कर अपने इक्कीस पुरुखाओं के साथ शिव या विष्णुलोक मे निवास किया करता है ॥६७॥ भोजन के पदार्थो मे जो जो पदार्थ आपको अधिक प्रिय हो उसे भगवान विष्णु या शिव की सेवा मे समर्पित करने से वह अपने २ इष्टदेव के लोको मे अपने चालीस कुल के पुरुषों को लेजाया करता है ॥ ६८ ॥ जो वस्तु स्वयं अपने आपको अत्यधिक प्रिय लगती हो उसका दान ब्राह्मण को देने से ऐसा विष्णु लोक की प्राप्ति किया करता है जहां से लौटकर फिर पुनर्जन्म नही मिला करता है ॥६९॥ हे राजन् ! जो भ्रूण हत्या करने वाला पुरुष है वह सुवर्ण के दान देने से इस पाप से शुद्ध हो जाता है। अन्न का दान और जल का दान जैसा दान तो न आज तक कोई दान हुआ है और न भविष्य मे होगा ॥७०

अन्नद प्राणद प्रोक्त प्राणदश्चापि सर्वद ।
सर्वदानफल यस्मादन्नदस्य नृपोत्तम ॥७१
अन्नदो ब्रह्मसदन याति वशायुतान्वित ।
न तस्य पुनरावृत्तिरिति शास्त्रेषु निश्चितम् ॥७२
सद्यस्तुष्टिकर ज्ञेय जलदान यतोऽधिकम् ।
अन्नदानान्नृपश्रेष्ठ निर्दिष्ट ब्रह्मवादिभि ॥७३
महापातकयुक्तो वा युक्तो वाप्युपपातकै ।
जलदो मुच्यते तेभ्य इत्याह कमलोद्भव ॥७४
शरीरमन्नज प्राहु प्राणानप्यन्नजान्विदु ।
तस्मादन्नप्रदो ज्ञेय प्राणद पृथ्वीपते ॥७५
यत्तुष्टिकर दान सर्वकामफलप्रदम् ।
तस्मादन्नसम दान नास्ति भूपाल भूतले ॥७६
अन्नदस्य कुले जाता आसहस्र नृपोत्तम ।
नरक त न पश्यन्ति तस्मादन्नपदा वर ॥७७

जो अन्न का दान देता है उसको प्राण दाता कहा जाता

है। प्राणों का दाता तो सर्व दाता कहा जाया करता है। हे नृप-श्रेष्ठ ! अत अन्न के दान करने वाले मनुष्य को सभी के दान का पुण्य फल प्राप्त होजाया करता है। अन्न के दान की बडी भारी महिमा है क्योंकि इससे प्राणों की रक्षा हुआ करती है ॥७१॥ अन्न का दान देने वाले मनुष्य अपने दश सहस्र कुल के पुरुषों को साथ लेकर ब्रह्म लोक में गमन करता है और फिर उसका पुनर्जन्म नही हुआ करता है ऐसा सभी शास्त्रों का निश्चय है ॥७२॥ जल के दान का भी बडा भारी महत्व है क्योंकि इससे तुरन्त ही तुष्टि होजाया करती है अतएव इसकी महिमा अन्न के दान से भी अधिक होती है। हे उत्तम राजन् ! ऐसा ब्रह्मवादियों ने निश्चय किया है ॥७३॥ ब्रह्माजी ने कहा है—महापातकों और उपपातकों से दूषित पुरुष अन्न का दान करने से शुद्ध होजाया करता है ॥७४॥ शरीर और प्राण दोनों को अन्न से पुष्ट होने वाला कहते हैं अतएव हे भूमिपते ! अन्न के दाता को प्राणों का ही दान देने वाला समझ लेना चाहिए ॥७५॥ जितने भी सन्तुष्ट करने वाले दान हैं व सभी मन की समस्त कामनाओं को पूर्ण कर देने वाले होते हैं किन्तु हे राजन् ! इस भूमण्डल में अन्न के दान की समता करने वाला अन्य कोई भी दान नही है ॥७६॥ हे नृपोत्तम ! अन्न-दाता के कुल में चाहे जैसा ही प्राणी समुत्पन्न हुए हों व सभी नरक का दर्शन कभी भी नही किया करते हैं अतएव यह सिद्ध होता है कि अन्न का दान करने वाला पुण्य श्रेष्ठ होता है ॥७७॥

पादाभ्यङ्ग भक्तियुक्तो योऽतिथे कुरुते नर ।
स स्नान सर्वतीर्थेषु गङ्गास्नानपुर सरम् ॥७८
तैलाभ्यङ्ग महाराज ब्राह्मणाना करोति य ।
स स्नातोऽष्टशत साग्र गङ्गाया नात्र सशय ॥७९
रोगितान्ब्राह्मणान्यस्तु प्रेम्णा रक्षति रक्षक ।
स कोटिकुलसयुक्तो वसेद् ब्रह्मपुरे युगम् ॥८०
यो रक्षेत्पृथिवीपाल रुग्ण वा रोगिण नरम् ।

तस्य विष्णु प्रसन्नात्मा सर्वान्कामान्प्रयच्छति ॥८१
मनसा कर्मणा वाचा यो रक्षेदामयान्वितम् ।
सर्वान्कामानवाप्नोति सर्वपापविवर्जित ॥८२
यो ददाति महीपाल निवास ब्राह्मणाय वै ।
तस्य प्रसन्नो देवेश. स्वलोक सप्रयच्छति ॥८३
ब्राह्मणाय ब्रह्मविदे यो दद्यादना पयस्विनीम् ।
स याति ब्रह्मसदनमन्येपामतिदुर्लभम् ॥८४

जो मनुष्य समागत अतिथि के चरणो को दबाता है वह मनुष्य गङ्गा स्नान के सहित सभी पुण्य तीर्थों के अवगाहन करने का पुण्य फल प्राप्त कर लेता है ॥७८॥ हे राजन् ! जो ब्राह्मणों को तैल मलता है उसको एकसौ आठ बार गङ्गा के जल मे स्नान करने का पुण्य-फल मिला करता है। जो रोग से अवस्थित ब्राह्मण की प्रेम के साथ रक्षा किया करता है वह अपने एक करोड़ कुलो के साथ युग भर पर्यन्त ब्रह्म लोक मे निवास किया करता है ॥७६।८०॥ हे पृथिवीपाल ! जो किसी गरीब अथवा रुग्ण की रक्षा करता है उस पर भगवान विष्णु-देव का चित्त अधिक प्रसन्न होजाया करता है। फिर वे देवेश्वर उसकी सम्पूर्ण मनोकामनायें पूर्ण कर दिया करते हैं ॥८१॥ जो मन, वाणी और कर्म से रोगी पुरुष की रक्षा करता है वह सभी पापो से पृथक् होकर विशुद्ध होजाया करता है और उसकी सब कामनाये सिद्ध होती हैं ॥८२॥ हे महीपाल ! जो कोई भी पुरुष ब्राह्मण को निवास करने का स्थान देता है भगवान उस पर परम प्रसन्न होकर अपने लोक का निवास प्रदान कर दिया करते हैं ॥८३ जो ब्रह्म के ज्ञाता ब्राह्मण को दूध देने वाली गाय का दान किया करता है उसको वह लोक परलोकगामी होने पर मिला करता है जो अन्यों को बहुत ही कठिनाई से प्राप्त हुआ करता है ॥८४

अन्यस्य प्रतिगृह्यापि यो दद्याद्गापयस्विनीम् ।

तस्य पुण्यफलं वक्तुं नाहं शक्तोऽस्मि पण्डित ॥८५
कपिलां वेदविदुषे यो ददाति पयस्विनीम् ।
स एव रुद्रो भूपाल सर्वपापविवर्जित. ॥८६
विप्राय वेदविदुषे दद्यादुभयतोमुखीम् ।
यस्तस्य पुण्यं सख्यातुं न शक्तोऽब्दशतैरपि ॥८७
तस्य पुण्यफलं राजञ्शृणु वक्ष्यामि तत्वत ।
एकत क्रतव. सर्वे समग्रवरदक्षिणा. ॥८८
एकतो भयभीतस्य प्राणिन प्राणरक्षणम् ।
यो रक्षति महीपाल यो विप्रभयविह्वलम् ॥८९
स स्नात· सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षित ।
वस्त्रदो रुद्रभवन कन्यादो ब्रह्मण पदम् ॥९०

जो स्वय दूसरे से गौ का दान ग्रहण करके दूध देने वाली गौ का दान कर दिया करता है उसके पुण्य फल का तो वर्णन करने की मुझमें सामर्थ्य ही नही है इतना महान उसे पुण्य-फल हुआ करता है ।८५। जो कोई मनुष्य दुग्धवती कपिला गाय का दान किसी वेदो के ज्ञान रखने वाले ब्राह्मण का देता है वह सभी पापों के दोषो से छूट जाया करता है ।८६। जो मनुष्य वेदो के पढित ब्राह्मण को उभयतो-मुखी (दोनो तरफ मुख वाली अर्थात् अधब्याई हुई) गौ का दान देत. है उसको इतना पुण्य प्राप्त होता है जिसका वर्णन सौ वर्षों तक बराबर कहते रहने पर भी वर्णन नहीं करने मे आता है ॥८७॥ हे राजन् ! जो मनुष्य किसी भय से विकल ब्राह्मण की रक्षा किया करता है उसका पुण्य-फल ऐसा होता है कि एक तरफ तो सब दक्षिणा वाले यज्ञों का पुण्य होता है और उतना ही पुण्य दूसरी ओर भयभीत प्राणी की रक्षा का पुण्य हुआ करता है ॥८८।८९॥ उस भीत की त्राण करने वाले पुण्य का तो ऐसा पुण्य हुआ करता है जैसा समस्त प्रकार के यज्ञों की दीक्षा ग्रहण करने वाले का तथा समस्त महान तीर्थों मे

स्नान करने वाले को हुआ करता है। जो वस्त्रों का दान करता है उसको रुद्रलोक मिलता है और जो किसी कन्या का दान किया करता है उसको ब्रह्मलोक की प्राप्ति हुआ करती है ॥६०

हेमदो विष्णुभवनं प्रयाति स्वकुलान्वित ।
यस्तु कन्यामलकृत्य ददात्यध्यात्मवेदिने ॥६१
शतवशसमायुक्त स व्रजेद् ब्रह्मण पदम् ।
कार्तिक्या पौर्णमास्या वा आषाढ्या वापि भूपते ॥६२
वृषभ शिवतुष्ट्यर्थमुत्सृजेत्तत्फल शृणु ।
सप्तजन्मार्जितै पापैर्विमुक्तो रुद्ररूपभाक् ॥६३
कुलसप्ततिसयुक्तो रुद्रेण सह मोदते ।
शिवलिङ्गाकित कृत्वा महिष य समुत्सृजेत् ॥६४
न तस्य यातनालोको भवेन्नृपतिसत्तम ।
ताम्बूलदान य कुर्याच्छक्तितो नृपसत्तम ॥६५
तस्य विष्णु प्रसन्नात्मा ददात्यायुर्यश श्रियम् ।
क्षीरोदो घृतदश्चैव मधुदो दधितस्तथा ॥६६
दिव्याब्दायुतपर्यंत स्वर्गलोके महीयते ।
प्रयाति ब्रह्मसदनमिक्षुदाता नृपोत्तम ॥६७

सुवर्ण का दान देने वाला अपने कुल के सहित विष्णु लोक को गमन किया करता है तथा जो किसी की कन्या को वस्त्राभरणों से विभूषित करके किसी आत्मज्ञानी पुरुष को दान दिया करता है वह अपनी सौ पुस्तों को भी अपने साथ ब्रह्मलोक को ले जाया करता है। जो कोई मनुष्य आषाढ अथवा कार्तिक मास की पूर्णिमा के दिन में भगवान शिव का प्रसन्न करने के लिये वृषभ का उत्सर्ग किया करता है अर्थात् विजार छोडा करता है उसको इतना भारी पुण्य होता है कि उसके प्रभाव से वह सब जन्मो के किये हुये पूरवले पापो से मुक्त होकर भगवान रुद्र के ही स्वरूप को प्राप्त कर लेता है ॥६१।६२॥

वह अपनी सत्तर पीढियो के सहित रुद्रलोक मे भगवान रुद्र-देव के साथ निवास किया करता है। जो मनुष्य अंकित करके अर्थात शिवलिंग का चिन्ह करके किसी भैंसे को विजार बनाकर छोड दिया करता है उसको कभी भी नरक यातना पाने के स्थानो को नही देखना पडता है। हे नृपोत्तम ! जो अपनी शक्ति के अनुकूल ही ताम्बूलो का दान किया करता है। भगवान् विष्णु उस पर अपने हृदय मे बहुत प्रसन्न हुआ करते हैं और उसे आयु, लक्ष्मी, यश प्रदान किया करते हैं। जो क्षीर, घृत, मधु और दधि का दान किया करते हैं वे दश सहस्र दिव्य वर्षो तक स्वर्ग मे सुखी रहा करते हैं। हे नृपवर ! ईख का दान देने से स्वर्ग लोक का सुख प्राप्त होता है।।९३-९७

गन्धद. पुण्यफलद प्रयाति ब्रह्मण: पदम् ।
गुडेक्षुरसदश्चैव प्रयाति क्षीरसागरम् ।।९८
भटाना जलदो याति सूर्यलोकमनुत्तमम् ।
विद्यादानेन सायुज्य माधवस्य व्रजेन्नर. ।।९९
विद्यादान महीदान गोदान चोत्तमोत्तमम् ।
नरकादुद्धरन्त्येव जपवाहनदोहनात् ।।१००
सर्वेषामपि दानाना विद्यादान विशिष्यते ।
विद्यादानेन सायुज्य विष्णोर्याति नृपोत्तम ।।१०१
नरस्त्विन्धनदानेन मुच्यते ह्युपपातकै: ।
शालग्रामशिलादान महादान प्रकीर्त्तितम् ।।१०२
यद्दत्वा मोक्षमाप्नोति लिंगदान तथा स्मृतम् ।
ब्रह्माण्डकोटिदानेन यत्फल लभते नर· ।।१०३
तत्फल समवाप्नोति लिङ्गदान सशय: ।
शालग्रामशिलादाने ततोऽपि द्विगुण फलम् ।।१०४

गन्ध और पवित्र फलो का दान देने पर भी ब्रह्म लोक मिला करता है। गुड और ईख का रस दान देने वाले मनुष्य को क्षीरसागर

प्राप्त हुआ करता है ॥ ६८ ॥ योधा पुरुषों को जल का दान करने वाला मनुष्य परम श्रेष्ठ सूर्य लोक की प्राप्ति किया करता है और विद्या के दान से मनुष्य को भगवान विष्णुदेव की सायुज्य प्राप्ति होती है ॥६६॥ विद्या का दान, गोदान, पृथ्वी दान ये सब दान एक से एक उत्तम दान होते है । जाप, अन्न प्राप्ति और दोहन के द्वारा ये तीनो दान नरको से उद्धार किया करते हैं ॥१००॥ तथापि विद्या का दान सभी दानो मे उत्तम दान होता है क्योंकि इस विद्या के दान से भगवान विष्णु की सायुज्यता का लाभ प्राप्त होता है ॥१०१॥ ईधन के दान से मनुष्य सभी उपपातको से मुक्त हो जाया करता है । शालग्राम शिला का दान महादान कहा गया है ॥ १०२ ॥ शिवलिंग के दान को महादान बताया गया है । इसको देने से मोक्ष की प्राप्ति हुआ करती है । करोडो ब्रह्माडो के दान से जो फल होता है वही पुण्य का फल शिव की लिंगमयी प्रतिमा के दान से प्राप्त हो जाता है तथा शालग्राम शिला के दान देने से उससे भी दुगुना पुण्य फल हुआ करता है ॥१०३॥१०४

शालग्रामशिलारूपी विष्णुरेवेति विश्रुत ।
यो ददाति नरो दोप गृहेषु महत्ता प्रभो ॥१०५
गङ्गास्नानफला तस्य निश्चित नृप जायते ।
रत्नान्वितसुवर्णस्य प्रदानेन नृपोत्तम ॥१०६
भुक्तिमुक्तिमवाप्नोति महादान यतः स्मृतम् ।
नरो माणिक्यदानेन पर मोक्षमवाप्नुयात् ॥१०७
ध्रुवलोकमवाप्नोति वज्रदानेन मानव ।
स्वर्ग विद्रुमदानेन रुद्रलोक मवाप्नुयात् ॥१०८
प्रयाति यानदानेन मुक्तादानेन चैन्दवम् ।
वैडूर्यदो रुद्रलोक पुष्परागप्रदस्तथा ॥१०६

पुष्परागप्रदानेन सर्वत्र सुखमश्नुते ।
अश्वदो ह्यस्वसानिध्य चिर व्रजति भूमिप ।११०,
गजदानेन महता सर्वान्कामानवाप्नुयात् ।
प्रयाति यानदानेन स्वर्ग स्वर्यानमास्थित ॥१११
महिषीदो जयत्येव ह्यपमृत्यु न सशय ।
गवा तृणप्रदानेन रुद्रलोकमवाप्नुयात् ॥११२

भगवान् विष्णु शालग्राम की शिला के रूप वाले हैं ऐसा परम प्रसिद्ध है। जो मनुष्य किसी भी देवालय मे दीपक जलाया करता है हे नृप। उसका गङ्गा के स्नान करने का पुण्य होता है। रत्नो से जटित स्वण क-दान से भोग और मोक्ष दाना मिला करते हैं। पहिले परमोत्तम भोगो का सुख का उपभोग करके अन्त मे मुक्ति होजाया करती है। यह महादान कहा जाता है। माणिक के दान देने से भी मोक्ष की प्राप्ति हुआ करती है ॥१०५।१०७ हीरा के दान देने से अटल लोक की प्राप्ति हुआ करती है, मूँगा के दान से रुद्र लोक मिला करता है ॥१०८॥ किसी सवारी और मुक्ता के दान से चन्द्र-लोक मिला करता है। वेडूर्य मणि का दाता और पुष्प राग का दाता य दोनों रुद्रलोक को पाया करते हैं ॥१०६॥ पुष्पराग रत्न के दान देने से सब जगह सुख की प्राप्ति हुआ करती है। हे राजन्! जो अश्व का दान देता है उस प्राणी को बहुत अधिक समय तक अश्विनीकुमारो के लोक की प्राप्ति हुआ करता है ॥११०॥ गज के दान का बडा महत्व होता है उस दान के होता की सभी कामनाये पूर्ण होजाया करती हैं। गाडी के दान देने से स्वण की गाडी म समारूढ होकर स्वर्ग लोक का गमन किया करता है ॥१११॥ जो मनुष्य भैंस का दान देता है वह मनुष्य अपमृत्यु पर विजय पा लेता है। गौओं को घास खिलाने से रुद्रलोक मिला करता है ॥११२

वारण लोकमाप्नोति महीश लवणप्रद ।

स्वाश्रमाचारनिरता सर्वभूतहिते रता ॥११३
अदाम्भिका गतासूया प्रयान्ति ब्रह्मण पदम् ।
परोपदेशनिरता वीतरागा विमत्सरा ॥११४
हरिपादार्चनरता प्रयान्ति सदन हरे ।
सत्सङ्गाह्लादनिरता सत्कमसु सदोद्यता ॥११५
परापवादविमुखा प्रयान्ति हरिमन्दिरम् ।
नित्य हितकरा ये तु ब्राह्मणेषु च गोषु च ॥११६
परस्त्रीसङ्गविमुखा न पश्यन्ति यमालयम् ।
जितेन्द्रिया जिताहारा गोपु क्षान्ता सुशीलिन ॥११७

हे राजन् ! नमक के दान से वरुण लोक मिला करता है। जो अपने आश्रम के समाचरण मे परम तत्पर, समस्त प्राणियो के मङ्गल म मग्न, पाखण्ड और असूया से जो रहित हैं वे लोग सीधे ब्रह्मलोक को गमन किया करते हैं। जो राग और मत्सरता से रहित होकर भगवान विष्णु के चरणो की शुश्रूषा मे रत रहा करते हैं और अन्य जनो को भी ऐसा ही उपदेश दिया करते हैं वे सीधे श्री हरि भगवान के भवन को जाया करते हैं। जो सत्सङ्ग आनन्द मे मग्न हो जाया करते हैं तथा सदा सत्कर्मो के करने मे ही परायण रहा करते हैं तथा दूसरो की निन्दा से दूर ही रहा करते हैं वे लोग भी विष्णु लोक को गमन किया करते हैं। जो गौ और ब्राह्मणो का सर्वदा हित किया करते हैं तथा पराई स्त्री के सङ्ग से मुक्त रहा करते हैं तथा जो सदा सयम से रहा करते हैं उनको कभी भी यमलोक के दर्शन करने का अवसर नही मिला करता है। जो अपनी इन्द्रियो को नियन्त्रण म रक्खा करते हैं और आहार के लोलुप नही हुआ करते हैं, गौ और ब्राह्मणो पर क्षमा किया करते हैं वे सदाचरण से रहने वाले मानव भी हरि के भवन को जाया करते हैं ॥११३-११७

ब्राह्मणेषु क्षमाशीला प्रयाति भवन हरे ।

अग्निशुश्रूपवश्चैव गुरुशुश्रूपकास्तथा ॥११८
पतिशुश्रूपणरता न वै संसृतिभागिन ।
सदा देवार्चनरता हरिनामपरायणा ११९
प्रतिग्रहनिवृताश्च प्रयान्ति परम पदम् ।
अनाथ विप्रकुणप ये दहेयुर्नृपोत्तम ॥१२०
अश्वमेधसहस्राणा फलमश्नुवते सदा ।
पत्रै पुष्पै फलैर्वापि जलैर्वा मनुजेश्वर॥१२१
पूजया रहित लिङ्गमचर्यंत्तत्फल शृणु ।
अप्सरोगणगन्धर्वै स्नूयमानो विमानग ॥१२२
प्रयाति शिवसान्निध्यमित्याह कमलोद्भव ।
चुलुकोदकमात्रेण लिङ्ग सस्नाप्यभूमिप ॥१२३
लक्षाश्वमेधज पुण्य साप्नोति न सशय. ।
पूजया रहिता लिङ्ग कुसुमैर्योऽर्चयेत्सुधी ॥१२४
अश्वमेधायुतफल भवेत्तस्य जनेश्वर।
भक्ष्यैर्भोज्य फलैर्वापि शून्य लिङ्ग प्रपूज्य च ।
शिवसायुज्यमाप्नोति पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥१२५

जो पुरुष अग्नि होम करने वाले और अपने गुरु की सेवा मे रति रखने वाले हुआ करत हैं और जो स्त्रिया अपन पति की सेवा मे सदा परायण रहा करती हैं वे ससार के चक्र स छुटकारा पा लिया करती हैं। जो सर्वदा देवो की पूजा किया करत है, जो सदा श्री हरि के उच्चारण करने मे ही संलग्न रहा करते हैं, जो दूसरो के दिये हुय प्रतिग्रह स दूर रहा करत हैं वे सब परम पद को प्राप्त हो जाया करत हैं। जो मनुष्य किसी भी अनाथ शव का दाह कर दिया करत हैं हे नृपवर ! उनको एक सहस्र अश्वमेध यज्ञा के करने का पुण्य मिला करता है। जिसको कोई न पूजे ऐसे शिवलिङ्ग को जो पत्र-पुष्पादि से अर्चन करता है उसका पुण्यफल का श्रवण करो। ब्रह्माजीने कहा है—

अप्सरा, गन्धर्व उस पूजा करने वाले भक्त की स्तुति किया करते है और विमान मे वैठकर सीधा शिव के समीप मे पहुँच जाया करता है ११८-॥१२२ ॥ हे राजन् ! जो एक चुल्लू भर पानी से भगवान् शिव के लिंग को स्नान कराता है उसे एक लाख अश्वमेधो का फल मिला करता है। जो सुन्दर बुद्धि वाला पुरुष पूजा से रहित शिव के लिंग की पुष्पों से पूजा करता है हे जनेश्वर। उसको दश सहस्र अश्वमेध यज्ञो के करने का पुण्य-फल मिला करता है। जो परम शून्य स्थल मे विराजमान शिवलिंग का भक्ष्य-भोज्य और फलो के द्वारा यजन करता है वह शिव के सायुज्य को प्राप्त करता है जहाँ से फिर पुनरागमन नही हुआ करता है ॥१२३।१२५

पूजया रहित विष्णु योऽर्चयेदर्कवंशज ।
जलेनापि स सालोक्य विष्णोर्याति नरोत्तम ॥१२६

देवतायतने यस्तु कुर्यात्समार्जनं सुधीः ।
यावत्पासु युगावास वैष्णवे मन्दिरे लभेत् ॥१२७
शीर्णं स्फटिकलिग तु य संदध्यान्नृपोत्तम ।
शतजन्मार्जितैः पापैर्मुच्यते स तु मानवः ॥१२८
यस्तु देवालये राजन्नपि गोचर्ममात्रकम् ।
जलेन सिञ्चेद् भूभागं सोऽपि स्वर्गं लभेन्नरः ॥१२६
गन्धोदकेन यः सिञ्चेद्देवतायतने भुवम् ।
यावत्कणानुकल्प तु तिष्ठेत देवसन्निधौ ॥१३०
मृदा धातुविकारैर्वा यो लिम्पेद्देवतागृहम् ।
स कोटिकुलमुद्धृत्य याति साम्य मधुद्विपः ॥१३१
शिलाचूर्णेन यो मर्त्यो देवागार तु लेपयेत् ।
स्वस्तिकादीनि वाकुर्यात्तस्य पुण्यमनन्तकम् ॥१३२
यः कुर्याद्दीपरचना देवतायतने नृप ।
तस्य पुण्य प्रसङ्ख्यातु नोत्सहेऽब्दशतैरपि ॥१३३

हे सूर्यवंश मे समुत्पन्न भागीरथ ! जो पूजा से रहित भगवान विष्णु की पूजा केवल जल के द्वारा भी किया करता है हे नरोत्तम ! उसको भी भगवान विष्णुलोक प्रदान करा दिया करते हैं । जो मनुष्य किसी भी देवालय मे बुहारी लगाकर मार्जन किया करता है तो वह जितने भी धूलि के कणो को बुहारा करता है उतने ही युगो तक वह भगवान विष्णु के मन्दिर मे निवास प्राप्त किया करता है ॥१२६।१२७॥ जो किसी जीर्ण-शीर्ण स्फटिक से निर्मित लिंग को ठीक कर दिया करता है हे नृपवर ! वह मनुष्य अपने सैकडो जन्मो के पापो से मुक्त होकर सद्गति पा लिया करता है ॥१२८॥ हे राजन् ! जो किसी भी देवालय मे गोचर्म मात्र भूमि पर जल से छिड़काव कर दिया करता है वह जितने भी धूलि के कणो पर छिड़काव किया करता है वह उतने ही कल्पो तक देव के समीप मे निवास किया करता है ॥१२९।१३०॥ जो पुरुष किसी भी देव मन्दिर को मिट्टी से अथवा पीतल तांबे के पत्तरो आदि से सजाता है वह अपने करोडो कुलो का उद्धार कर मधु के वध करने वाले भगवान विष्णु के सायुज्य को पा लिया करता है ॥१३१॥ जो मनुष्य किसी देव मन्दिर को चूने (सफेदी) से पुतवा देता है तथा स्वस्तिक आदि की रचना कराता है ॥१३२॥ हे नृपोत्तम ! जो मनुष्य किसी भी देव के मन्दिर मे दीप रचना किया करता है उसका फल तो मैं सौ वर्षों मे भी वर्णन नही कर सकता हूँ ॥१३३

अखण्डदीप य कुर्याद्विष्णोर्वा शंकरस्य च ।
क्षणे क्षणेऽश्वमेधस्य फल तस्य न दुर्लभम् ॥१३४
अर्चित शकर दृष्ट्वा विष्णु वापि नमेत्तु य ।
स विष्णुभवन प्राप्य मोदते च युगायुतम् ॥१३५
देव्या प्रदक्षिणामेका सप्त सूर्यस्य भूमिप ।
तिस्रो विनायकस्यापि चतस्रो विष्णुमन्दिरे ॥१३६
दृष्ट्वा तदगृहं प्राप्य मोदते युगलक्षकम् ॥१३७

यो विष्णोर्भक्तिभावेन तथैव गोद्विजस्य च ।
प्रदक्षिणा चरेत्तस्य ह्यश्वमेधः पदे पदे ॥१३८
काश्यां माहेश्वरं लिंग संपूज्य प्रणमेत्तु यः ।
न तस्य विद्यते कृत्यं ससृतिर्नैव जायते ॥१३९
शिवं प्रदक्षिण कृत्वा सव्येनैव विधानतः ।
नरो न च्यवते स्वर्ग्छिंकरस्य प्रसादतः ॥१४०

जो विष्णु या शिव के मन्दिर में अखण्ड दीपक जलाया करता है उसके लिये प्रत्येक क्षण में अश्वमेध के यज्ञ का फल प्राप्त करता कोई भी दुर्लभ कर्म नहीं होता है ॥१३४॥ जो मनुष्य समर्चित शिव अथवा विष्णु को प्रणाम करता है वह विष्णु के भवन में प्राप्त होकर दश सहस्र युगों तक आनन्द प्राप्त किया करता है ॥१३५॥ हे राजन् ! देवों की प्रदक्षिणा करने का क्रम यह है कि सूर्य की सात परिक्रमा करे । गणेश की तीन प्रदक्षिणा करनी चाहिए । विष्णु की चार और देवी की केवल एक परिक्रमा करे । इस परिक्रमा का ऐसा फल होता है कि प्रदक्षिणा करने वाला मनुष्य उन-उन ही देवों के भुवनों में एक एक लाख युगों तक निवास कर सुख प्राप्त किया करता है ॥१३६॥ जो मनुष्य भक्तिभाव के सहित गौ और ब्राह्मण की परिक्रमा किया करता है उसको एक २ पद में अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है ॥१३७-१३८॥ जो मनुष्य काशी में माहेश्वर लिङ्ग की पूजा करके उनको प्रणाम करता है फिर उस मनुष्य को इस भूतल में कोई भी कृत्य करना शेष नहीं रहा करता है और न वह फिर इस संसार में ही लौट कर आया करता है ॥१३९॥ जो मनुष्य विधिपूर्वक सव्य प्रदक्षिणा किया करता है वह फिर भगवान शङ्कर की कृपा से कभी भी स्वर्ग से च्युत नहीं हुआ करता है ॥१४०

स्तुत्वा स्तोत्रैर्जगन्नाथं नारायणमनामयम् ।
सर्वान्कामानवाप्नोति मनसा यदिच्छति ॥१४१

देवतायतने यस्तु भक्तियुक्तः प्रनृत्यति ।
गायते वा स भूपाल रुद्रलोके च मुक्तिभाक् ॥१४२
ये तु वाद्य प्रकुर्वन्ति देवतायतने नराः ।
ते हसयानमारुढा व्रजन्ति ब्रह्मण. पदम् ॥१४३
करताल प्रकुर्वन्ति देवतायतने तु ये ।
ते सर्वपापनिर्मुक्ता विमानस्था युगायुतम् ॥१४४
देवतायतने ये तु घण्टानाद प्रकुर्वते ।
तेषा पुण्य निगदितु न समर्थ. शिव. स्वयम् ॥१४५
भेरीमृदङ्गपटहमुरजैश्च सडिण्डिमैः ।
सप्रीणयन्ति देवेश तेषा पुण्यफल शृणु ॥१४६
देवस्त्रीगणसयुक्ता सर्वकामै समर्चिता ।
स्वर्गलोकमनुप्राप्य मोदन्ते कल्पपञ्चकम् ॥१४७

इस सम्पूर्ण विश्व के स्वामी अनामय भगवान नारायण की स्तवो के द्वारा जो स्तवन किया करता है उसके सभी मनोवाछित मनोरथ पूर्णतया सफल होजाया करते हैं ॥१४१॥ हे भूपाल ! जो किसी भी देव के मन्दिर मे भक्तिभाव के सहित नृत्य किया करता है अथवा भगवद् भजन का गान करता है वह रुद्रलोक मे प्राप्त होकर मुक्ति का लाभ लिया करता है ॥१४२॥ जो मनुष्य देवालय मे कोई भी वाद्य बजाया करते हैं वे हसयुक्त विमान मे बैठकर ब्रह्मलोक मे गमन किया करते हैं ॥१४३॥ जो मनुष्य देवालय मे ताली बजाकर भगवद्भजन किया करते हैं वे सब पापो से शुद्ध होकर दश सहस्र युग पर्यन्त विमानो मे बैठा करते हैं ॥१४४॥ जो मनुष्य देव मन्दिरो मे घन्टा नाद किया करते हैं उनके फल का वर्णन करने मे साक्षात् भगवान शिवजी थक जाया करते हैं ॥१४५॥ जो मनुष्य भगवान को नगाड़े, पखावज, ढोल तथा सिगी नाद आदि बाजे बजाकर रिझाया करते हैं उनके पुण्य फल का आप श्रवण करिए ॥१४६॥ वे मनुष्य

धर्मराज ने कहा—हे नृपो मे परमश्रेष्ठ ! अब मैं वेदो मे तथा स्मृतियो मे वर्णन किये गये समस्त वर्णो के धर्म का वर्णन करता हू और क्रमश खुलाशा बतलाता हूँ। आप समाहित होकर श्रवण कीजिए ॥१॥ जो कोई पुरुप भोजन करने के समय मे क्रोधावेश मे वा अज्ञान के वशीभूत होकर किसी अशुचि पुरुप अथवा पतित एव चाण्डाल का स्पर्श कर लेता है तो उसके दोप का निवारण करने के लिए क्या प्रायश्चित होता है, यहो बतलाया जाता है ॥२॥ ऐसे स्पर्श दोप से युक्त ब्राह्मण का कर्तव्य है कि वह तीन अथवा छै दिन तक तीनो समयो मे स्नान करके पचगव्य का प्राशन करे तो वह पवित्र हो जाया करता है और स्पश दोप छूट जाता है ॥३॥ यदि भोजन करने के समय मे किसी ब्राह्मण का मल बाहिर निकल आवे तो उससे होने वाली अप-वित्रता का प्रायश्चित मैं बतलाता हूँ। उस विप्र का कर्त्तव्य है कि सर्व प्रथम वह शौच कर्म कर जल का आचमन कर और फिर दिन रात का उपवास करे और पञ्चगव्य मे गौ की ही पाँच वस्तुऐ होती हैं—गौ दुग्ध, गो दधि गोमय, गो घृत, गोमूत्र। ऐसा करने से शुद्धि हुआ करती है ॥४-५॥ यदि भोजन करने के समय मे पेशाब (प्रश्रव) बाहिर निकल आवे तो दिनरात का उपवास करके अग्नि मे घृत की आहुतियाँ देनी चाहिए ॥६॥ यदि भोजन के समय मे ब्राह्मण अशुचि हो जाव तो हाथ मे ग्रहण किये हुए ग्रास को भूमि मे रख देना चाहिए और फिर उठकर स्नान करने से शुद्ध हो जाया करता है ॥७॥

भक्षयित्वा तु तद् ग्रासमुपवासेन शुद्धयति ।
अशित्वा चैव तत्सर्वं त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥८
अश्नतश्चेद्वमि स्याद्वै ह्यस्वस्थस्त्रशत जपेत् ।
स्वस्थस्त्रीणि सहस्राणि गायत्र्या शोधन परम् ॥९
चाण्डालं श्वपच स्पृष्टो विण्मूत्रे च कृत द्विज ॥१०
त्रिरात्र तु प्रकुर्वीत भक्तोच्छिष्ट षडाचरेत् ।

उदक्या सूतिका वापि सस्पृशेदन्त्यजौ यदि ॥११
निरात्रेण विशुद्धि स्यादिति शातातपोऽब्रवीत् ।
रजस्वला त सस्पृष्टा श्वभिर्मातङ्गवायसैः ॥१२
निराहारा शुचिस्तिष्ठेत्काले स्नानेन शुद्धयति ।
रजस्वल यदा नायावन्योन्य स्पृशत क्वचित् ॥१३
शुध्येते ब्रह्मकूर्चेन ब्रह्मकूर्चेन चोपरि ।
उच्छिष्टेन च सस्पृष्टो यो न स्नान समाचरेत् ॥१४

यदि जो वमन म स मुख म डालकर खा चुका हो तो फिर शुद्धि के लिये उपवास का करना नितान्त आवश्यक होता है और यदि खूब डट कर पूरा भोजन कर चुका हो तो तीन दिन पर्यन्त अशुद्धि रहा करती है ॥८॥ यदि भोजन करते हुए को वमन हो जावे तो यदि अस्वस्थता होवे तो शुद्धि के लिये तीन सौ गायत्री म त्र का जाप करे और स्वस्थ हो तो उसको तीन सहस्र गायत्री म त्र का जाप करना चाहिए। तभी परम पवित्रता होती है ॥९॥ यदि मल मूत्र के त्याग करने के समय में द्विज का किसी चाडाल अथवा श्वपच से स्पर्श हो जावे तो तीन रात्रि पर्यन्त उपवास करना चाहिए। यदि भोजन करने के पश्चात् अथवा उच्छिष्ट दशा में स्पर्श हो जावे तो छै रात्रि पर्यन्त उपवास करना चाहिए। यदि किसी रजस्वला अथवा सूतिका स्त्री को अन्त्यज स्पर्श कर लेवे तो वह फिर तीन रात्रि में बाद शुचि हुआ करती है। ऐसा शास्त्रों के ज्ञाता मुनियों का मत है। यदि रजस्वला का श्वान कौआ और किरात से स्पर्श हो जावे तो उस निराहार रहना चाहिए ॥१० १२॥ और आहार का त्याग कर फिर उसे समय आने पर स्नान करना चाहिए तभी उसकी शुद्धि हुआ करती है। यदि रजस्वला स्त्रियां परस्पर में स्पर्श कर लेवें तो ब्रह्मकूर्च व्रत के करने शुद्धि हुआ करती है जिसका वर्णन पराशर स्मृति में किया गया है। से जो उच्छिष्ट पुरुष से छूकर स्नान न कर सकें तो ब्रह्मकूर्च व्रत करना चाहिए ॥१३ १४॥

दिव्य अङ्गनाओ के साथ समस्त कामनाओ को प्राप्त कर पाँच कल्प तक स्वर्ग लोक म निवास किया करते हैं ॥१४७॥

देवतामन्दिरे कुर्वन्नर शखरव नृप।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुना सह मोदते ॥१४८
तालकास्यादिनिनद कुर्वन् विष्णुगृहे नर ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥१४६
यो देव सर्वदृग्विष्णुर्ज्ञानरूपी निरञ्जन ।
सर्वधर्मफल पूर्ण सतुष्ट प्रददादि च ॥१५०
यस्य स्मरणमात्रेण देवदेवस्य चक्रिण ।
सफलानि भवन्त्येव सर्वकर्माणि भूपते ॥१५१
परमात्मा जगन्नाथ सर्वकर्मफलप्रद ।
सत्कर्मकर्तृभिर्नित्य स्मृत सर्वार्तिनाशन ।
तमुद्दिश्य कृत यच्च तदानन्त्याय कल्पते ॥१५२
धर्माणिविष्णुश्च फलानि विष्णु कर्माणिविष्णुश्च फलानिभोक्ता
कार्यचविष्णु करणानिविष्णुरस्मान्नकिंचिद्व्यतिरिक्तमस्ति ॥१५३

हे राजन् ! जो मनुष्य किसी भी देव मन्दिर मे शख की ध्वनि किया करता है वह सभी पापो से छुटकारा प्राप्त करके सदा भगवान् विष्णु की सन्निधि मे आन द को प्राप्त किया करता है ॥ १४८ ॥ जो मनुष्य विष्णु मन्दिर मे काँसे की झाँझनादि बजा कर देवेश्वर को रिझाते हैं वे सर्व पाप विमुक्त होकर विष्णु लोक की प्राप्ति किया करते हैं ।१४६ भगवान् विष्णु देव ज्ञान रूपी निरजन और सब दृष्टा हैं उनके पूर्ण सन्तुष्ट एव प्रसन्न हो जाने पर वे सभी धर्मों का पूर्ण फल प्रदान कर दिया करते हैं ॥ १५० ॥ हे राजन् ! उन शख चक्रादि आयुधो के धारण करने वाले देवेश्वर के स्मरण मात्र स ही समस्त कर्म सफल हो जाया करते हैं और फिर कुछ भी शेष नही रहा करता है ॥१५१॥

परमात्मा इस सम्पूर्ण जगत् के स्वामी हैं, सभी कर्मों के फल दाता हैं। जो सदा सत्कर्मों का अनुष्ठान करने वाले यदि उनका स्मरण किया करते हैं तो वे सभी पीडाओं से मुक्त होकर परम सुखी रहा करते हैं क्योंकि भगवान् उनको कोई भी व्यथा रहने ही नहीं दिया करते हैं। भगवान् के निमित्त से जो भी कुछ भक्ति पूर्वक किया जाता है वह अनन्त और अक्षय फल का देने वाला हुआ करता है ॥१५२॥ यह परम सिद्धात सम्पन्न बात है कि धर्म धर्म फल, कर्म और कर्मो का फल, भोक्ता, कार्य और कारण सब मे भगवान् विष्णु व्याप्त होते हैं तथा भगवान् विष्णु से भिन्न इस ससार मे अन्य कुछ भी नही है ॥१५३॥



॥ द्विज-धर्म निरूपण ॥

श्रुतिस्मृत्युदित धर्म वर्णानामनुपूर्वश ।
प्रब्रवीमि नृपश्रेष्ठ त शृणुष्व समाहित ॥१
यो भुञ्जानोऽशुचिर्वापि चाण्डाल पतित स्पृशेत् ।
क्रोधादज्ञानतो वापि तस्य वक्ष्यामि निष्कृतिम् ॥२
त्रिरात्र वाथ षड्रात्र यथासख्य समाचरेत् ।
स्नान त्रिषवण विप्र पचगव्येन शुध्यति ॥३
भुञ्जानस्य तु विप्रस्य कदाचित्स्रवते गुदम् ।
उच्छिष्टत्वेऽशुचित्वे च तस्य शुद्धि वदामि ते ॥४
पूर्व कृत्वा द्विज शौच पश्चादप उपस्पृशेत् ।
अहोरात्रोषितो भूत्वा पचगव्येन शुध्यति ॥५
निगिरन्यदि मेहेत भुक्त्वा वा मेहन कृने ।
अहोरात्रोषितो भूत्वा जुहुयात्सर्पिषाऽनलम् ॥६
यदा भोजनकाले स्यादशुचिर्ब्राह्मण क्वचित् ।
भूमौ निधाय त ग्रास स्नात्वा शुद्धिमवाप्नुयात् ॥७

ऋतौ तु गर्भ शङ्कित्वा स्नानं मैथुनिनः स्मृतम् ।
अनृतौ तु स्त्रियं गत्वा शौचं मूत्रपुरीषवत् ॥१५
उभावप्यशुची स्यातां दम्पती याभसंगतौ ।
शयनादुत्थिता नारी शुचिः स्यादशुचिः पुमान् ॥१६
भर्त्तुः शरीरशुश्रूषां दौरात्म्यादप्रकुर्वती ।
दण्ड्या द्वादशकं नारी वर्षं त्याज्या धनं विना ॥१७
त्यजन्तो पतितान्बन्धून्दण्ड्यानुत्तमसाहसम् ।
पिता हि पतितः कामं न तु माता कदाचन ॥१८
आत्मानं घातयेद्यस्तु रज्ज्वादिभिरुपक्रमैः ।
मृते मेध्येन लेप्तव्यो जीवतो द्विशतं दमः ॥१९
दण्ड्यास्तत्पुत्रमित्राणि प्रत्येकं पाणिकं दमम् ।
प्रायश्चित्तं ततः कुर्युर्यथाशास्त्रप्रचोदितम् ॥२०
जलाग्न्युद्बन्धनभ्रष्टाः प्रव्रज्यानाशकच्युताः ।
विषप्रपतनप्रध्वस्ताः शस्त्रघातहताश्च ये ॥२१
न चैते प्रत्यवसिताः सर्वलोकबहिष्कृताः ।
चान्द्रायणेन शुद्ध्यन्ति तप्तकृच्छ्रद्वयेन वा ॥२२

ऋतु काल में यदि कोई गर्भ की आशङ्का होवे तो मैथुन करने वाले को स्नान करने का विधान बतलाया गया है । ऋतु में स्त्री के समीप जाने पर मूत्र पुरीष के समान ही पवित्रता करनी चाहिए ॥१५ मैथुन करने के समय में स्त्री पुरुष दोनों ही अपवित्र हो जाया करते हैं । नारी तो शय्या को छोड़कर उठ जाने पर ही पवित्र होजाया करती है परन्तु पुरुष अपवित्र ही रहता है ॥१६॥ जो स्त्री दुष्ट स्वभाव के कारण अपने स्वामी की सेवा न करे तो उस प्रकार की स्त्री को बारह वर्ष तक त्याग देने का दण्ड देना चाहिये । स्त्री का उसके साथ सम्बन्ध न करने का ही दण्ड होता है । धन का दण्ड उसको नहीं देवे ॥१७॥ पतित और दण्ड के पात्र बन्धुओं को त्यागकर उत्तम साहस का

प्रदर्शन करना चाहिए। पतित पुत्र को पिता भले ही त्याग देवे किन्तु माता को उसका त्याग नहीं करना चाहिए ॥१८॥ जो रस्सी आदि के द्वारा आत्मघात करना चाहे ८। उसके मृत हो जाने पर पवित्र वस्तुओं से उसके शरीर का लेपन करना चाहिए और वह जीवित रह जावे तो उसे दो सौ पण दण्ड करना चाहिए ॥१६॥ उसके जो पुत्र एव मित्र हों उन पर एक एक पण का दण्ड करना चाहिये। इसके उपरान्त उन्हें शास्त्र से वर्णित विधान के अनुसार प्रायश्चित्त करना चाहिए तब शुद्धि हुआ करती है क्यो कि आत्मघात करने का बड़ा अपराध शास्त्र मे बताया गया है ॥२०॥ जो जल, अग्नि और बन्धन से मरने की इच्छा करके भ्रष्ट हो गये हो— सन्यासी या व्रत भङ्ग करने से पतित होगये होवें—विषपान कर या कूद कर मरने के पाप से दूषित होगये होवें —जो शस्त्र का प्रहार कर आत्म हत्या करने के दोष से दूषित होगये होवे वे मनुष्य फिर व्यवहार के पात्र नहीं रहा करते हैं। सब को चाहिए इनका बहिष्कार कर देवे ऐसे मरने की चेष्टा करने वाले लोगो की शुद्धि पराशर स्मृति म वर्णित चान्द्रायण व्रत अथवा दो तप्त कृच्छ्र व्रतो के करने पर ही विशुद्धि हुआ करती है ॥२१-२२॥

उभयावसित पापश्यामच्छवलकाच्च्युत. ।
चान्द्रायणाभ्या शुद्धयेत दत्वा धेनु तथा वृषम् ॥२३
श्वशृगालप्लवङ्गैश्च मानुषैश्च रति विना ।
स्पृष्टा स्नात्वा शुचि सद्यो दिवा सध्यासु रात्रिषु ॥२४
अज्ञानाद्वा तु यो भुक्त्वा चाडालान्न कथचन ।
गोमूत्रयावकाहारो मासार्द्धेन विशुद्धयति ॥२५
गोब्राह्मणगृह दग्ध्वा मृत चोद्बन्धनादिना ।
पाश छित्वा तथा तस्य कृच्छ्रमेक चरेद् द्विज ॥२६
चाडालपुल्कसाना च भुक्त्वा हत्वा च योषितम् ।

कृच्छ्रार्द्धमाचरेज्ज्ञानाज्ञानादैन्दवद्वयम् ॥२७

जो पुरुष महा पातक और उप पातक दोनों प्रकार से भ्रष्टता प्राप्त कर चुके होवे अथवा अन्य अनेक प्रकार के पापों के समाचरण करने से भ्रष्ट हो गये होवें उनको शुद्ध होने के लिये दो चान्द्रायण व्रत और धेनु या वृष के दान करने पर ही शुद्धता प्राप्त हुआ करती है ॥२३॥ रति के अतिरिक्त दिन, रात अथवा सन्ध्या के समय में कुत्ता, गीदड़, बन्दर और पतित पुरुष से स्पर्श हो जावे तो स्नान कर पर तत्काल में ही पवित्र हो जाया करते हैं ॥२४॥ यदि अज्ञानता के वश में आकर किसी चाण्डाल का अन्न खा लेवे तो पन्द्रह दिन तक गो मूत्र में बने हुए जौ के भोजन करने से पवित्र हो जाया करता है। गौ अथवा किसी ब्राह्मण के घर को प्रज्वलित करने पर अथवा पाश के द्वारा बाँधने से मरने की चेष्टा करते हों तो इनके पाश को काट कर द्विज को एक कृच्छ्र व्रत करना चाहिए ॥२५।२६॥ यदि अज्ञान होने के कारण किसी पुल्कस या चाण्डाल के अन्न का भक्षण कर लेवे और इनकी स्त्रियों को मारे तो शुद्धि के लिये अर्ध कृच्छ्र व्रत करने का प्रायश्चित करना चाहिए। यदि ज्ञान पूर्वक भोजन करे तो दो चान्द्रायण व्रतों को करना चाहिए ॥२७॥

कापालिकान्नभोक्तॄणां तन्नारीगामिनां तथा ।
अगम्यागमने विप्रो मद्यगोमांसभक्षणे ॥२८
तप्तकृच्छ्रपरिक्षिप्तो मौर्वीहोमेन शुद्ध्यति ।
महापातककर्त्तारश्चत्वारोऽथ विशेषतः ॥२९
अग्निं प्रविश्य शुद्ध्यन्ति स्थित्वा वा महति क्रतौ ।
रहस्यकरणोऽप्येवं मासमभ्यस्य पूरुषः ।
अघमर्षणसूक्तं वा शुद्ध्येदन्तर्जले जपन् ॥३०
रजकश्चर्मकारश्च नटो बुरुड एव च ।
कैवर्त्तमेदभिल्लाश्च सप्तैते ह्यन्त्यजाः स्मृताः ॥३१

भुक्त्वा चैषां स्त्रियो गत्वा पीत्वा य. प्रतिगृह्यते ॥३२
कृच्छ्रार्द्ध माचरेज्ज्ञानादज्ञानाद्वैन्दवद्वयम् ॥३३
अमूषु पितृगोत्रासु मातृगोत्रगतासु च ॥३४
परदारेषु सर्वेषु कृच्छार्द्धं तपने चरेत् ॥३५

कोपालिका अर्थात् एक अन्त्यजों की विशेष जाति का नाम है । इसका अन्न खाने पर, उनकी स्त्री के साथ गमन करने पर, जो स्त्री गमन करने के योग्य नहीं होती है उनके साथ गमन करने पर, मदिरा तथा गो माँस का सेवन करने पर ब्राह्मण की शुद्धि तप्त कृच्छ्र व्रत के करने पर और तेल के तानों से होम करने पर शुद्धि हुआ करती है । जो चार प्रकार के महा पातकी होते हैं उनकी शुद्धि तो अग्नि में प्रवेश करने पर अथवा महा ऋतु में प्रवेश करने पर ही शुद्धि हुआ करती है । यदि एकान्त में कोई भी पाप बन जावे तो एक मास पर्यन्त जलके अन्दर "ऋत च सत्यम्" इत्यादि अघामर्षण मन्त्र का जाप करें तो शुद्धि हुआ करती है ॥ २८-३० ॥ धोबी, चमार, नट, पुरुड, कैवर्त, मेद और भिल्ल (भील) इन सात को अन्त्यज कहा जाता है ॥ ३१ ॥ इन उन उपर्युक्त सात जातियों का अज्ञान वश अन्न का भक्षण कर लेवे अथवा इनकी स्त्रियों के साथ सगम कर लेवे या इनके घर के जल का पान कर लेवे या इन जातियों का दान ग्रहण कर लेवे तो पराशर स्मृति में बताया हुआ अर्ध कृच्छ्र व्रत करे और जान बूझ कर ऐसा करे तो शुद्धि के लिये दो चान्द्रायण व्रत करने चाहिए इस पाप का यही प्रायश्चित है ॥३४॥ माता पिता के गोत्र की पराई दाराओं से गमन करने पर भी शुद्धि के लिये अर्द्ध कृच्छ्र व्रत करना चाहिए ॥३२-३५॥

वेश्याभिगमने पाप व्यपोहन्ति द्विजास्तथा ॥३६
पीत्वा सकृत्सुतप्त च पञ्चरात्र कुशोदकम् ।
गुरुतल्पगतो कुर्याद् ब्राह्मणो विधिवद् व्रतम् ॥३७

गोघ्नस्य केचिदिच्छन्ति केचिच्चैवावकीर्णिनः ।
दण्डादूर्ध्वं प्रहारेण यस्तु गा विनिपातयेत् ॥३८
द्विगुण गोव्रत तस्य प्रायश्चित विशोधयेत् ।
अङ्गुष्ठमात्रस्थूलस्तु वाहुमात्रप्रमाणक ॥३६
सार्द्रकस्सपलाशश्च गोदण्ड परिकीर्त्तित. ।
गवा निपातने चैव गर्भोऽपि सभवेद्यदि ॥४०
एकैकशश्चरेत्कृच्छ्र एषा गोघ्नस्य निष्कृति. ।
वन्धने रोधने चैव पोषणे वा गवा रुजाम् ॥४१

द्विजो के वेश्या गमन का पाप भी इस भांति दूर हो सकता है ॥३६॥ गुरु पत्नी गामी ब्राह्मण एक बार तो अत्यधिक गरम जल और पाँच रात तक कुशोदक का पान कर विधि पूर्वक व्रत करना चाहिए ॥३७॥ कोई-कोई आचार्य गौ का बध करने वाले और अवकीर्णी (धर्म से भ्रष्ट) को भी इसी प्रायश्चित को कहा करते हैं। जो कोई गाय के ऊपर दण्ड से चोट मारे और वह प्रहार से भूमि पर गिर पड़े तो उसकी शुद्धि द्विगुणित प्रायश्चित्त से हुआ करती है। एक अंगुष्ठ के बराबर स्थूल और भुजा के समान प्रमाण वाला गीला ढाक का दण्ड ही गोदण्ड कहा जाया करता है। यदि गाय को इतना या ऐसा पीटा जावे कि उसका गर्भ गिर जावे तो उसकी शुद्धि के लिए एककृच्छ्र व्रत करना आवश्यक है। यह तो केवल कष्ट देने मात्र को ही प्रायश्चित्त होता है। बांधने से, रोकने से, पोषण करने में अथवा पीड़ा देने से गाय का प्राणान्त हो जावे तो एक-एक पाद कृच्छ्र व्रत करे ॥४०-४१॥

सपद्यते चेन्मरण निमित्ते नैव लिप्यते ।
मूर्छित पतितो वापि दण्डेनाभिहतस्तत ॥४२
उत्थाय षट्पद गच्छेत्सप्त पञ्चदशापि वा ।
ग्रास वा यदि गृह्णीयात्तोय वापि पिवेद्यदि ॥४३
सर्वव्याधिप्रनष्टाना प्रायश्चित्त न विद्यते ।

काष्ठलोष्टाश्मभिर्गावं शस्त्रैर्वा निहता यदि ॥४४
प्रायश्चित्त स्मृत तत्रशस्त्रे शस्त्रं निगद्यते ।
काष्ठे सान्तमन प्रोक्त प्राजापत्य तु लोष्टके ॥४५
तप्तकृच्छ्र तु पाषाणे शस्त्रे चाप्यतिकृच्छ्रकम् ।
औषधं स्नेहमाहार दद्याद्गोब्राह्मणेषु च ॥४६
दीयमाने विपत्ति स्यात्प्रायश्चित्त तदा नहि ।
तैलभेषजपाने च भेषजाना च भक्षणे ॥४७
निशल्यकरणे चैव प्रायश्चित्त न विद्यते ।
वत्सानां कण्ठबन्धेन क्रियया भेषजेन तु ॥४८
साय सगोपनार्थं च त्वदोषो रोधबन्धयो ।
पादे चैवास्य रोमाणि द्विपादे श्मश्रु केवलम् ॥४६

यदि दण्ड से पिटने पर मूर्छित होकर गिरने पर फिर उठकर दश पाँच कदम तक चल लेवे और घास खाकर जल पान कर लेवे तो इस तरह से उसके पिटने की व्याधि दूर हो गई है अत फिर कोई भी प्रायश्चित करने की जरूरत नही रहती है। यदि काष्ठ पाषाण डला या शस्त्र से गाय की मृत्यु हो जावे तो शास्त्र मे उनके भिन्न भिन्न प्रायश्चित कहे गये हैं। यथा काष्ठ से मौत होने पर सा तमन व्रत दण्ड से मरने पर प्राजापत्य व्रत करना चाहिए ॥४२-४५॥ पाषाण के द्वारा मृत्यु होने पर तप्त कृच्छ और शस्त्र द्वारा मर जाने पर अति कृच्छ व्रत करना चाहिए। गौ तथा ब्राह्मणो के निमित्त औषध घृत तैलादि स्नेह एव आहार का वितरण करे ॥ ४६ ॥ यदि तल या किसी औषध के खाने पीने से ऐसी विपत आ जावे तो उस देन वाले को किसी प्रायश्चित करने की आवश्यकता नही होती है। यदि बछडी के गले म बाधकर कोई दवा पिलाई जावे अथवा सायङ्काल म रक्षा के लिए कण्ठ म रस्सी बाधी जावे तो उसके रोध अथवा बन्धन से भी कोई दोष नही होता है। एक पाद जो प्रायश्चित होता है उसम लोमो का मुण्डन कराव। द्विपाद प्रायश्चित म मूछ मुडावे ॥४७-४६॥

त्रिपादे तु शिखावर्त मूले सर्वं समाचरेत् ।
सर्वान्केशान्समुद्धृत्य छेदयेदगुलद्वयम् ॥५०
एवमेव तु नारीणा मुण्डन शिरस स्मृतम् ।
न स्त्रिया वपन कार्यं न च वीरासन स्मृतम् ॥५१
न च गोष्ठे निवासोऽस्ति न गच्छन्तीमनुव्रजेत् ।
राजा वा राजपुत्रो वा ब्राह्मणो वा बहुश्रुत ॥५२
अकृत्वा वपन तेषा प्रायश्चित्त विनिर्दिशेत् ।
केशाना रक्षणार्थं च द्विगुण व्रतमादिशेत् ॥५३
द्विगुणे तु व्रते चीर्णे द्विगुणा व्रतदक्षिणा ॥५४
पाप न क्षीयते हन्तुर्दाता च नरक व्रजेत् ।
अश्रौतस्मार्तविहित प्रायश्चित्त वदन्ति ये ॥५५

त्रिपाद मे शिखा का मुण्डन करावे । पूर्ण प्रायश्चित मे पूरा मुण्डन कराना चाहिए । स्त्रियो के सब केशो को पकडकर दो अगुल काट देना चाहिए । नारियो का यही शिरोमण्डन शास्त्र विधान मे बताया गया है । इसके अतिरिक्त स्त्रियो के लिए मुण्डन और वीरासन करना शास्त्र मे निषिद्ध होते है ॥५०–५४॥ स्त्री गोठ मे न रहे और गाय के पीछे-पीछे घूमे । यदि राजा या राज-पुत्र अथवा बहुश्रुत ब्राह्मण को पाप दुर्भाग्य से लग जावे तो उनका प्रायश्चित मुण्डन रहित कराना चाहिए और केशो की रक्षा के बदले मे दुगुना व्रत करना चाहिए ॥५५–५६॥ दुगुने व्रत प्रायश्चित मे जब किये जाते है तो उन व्रतो की दक्षिणा भी दुगुनी होनी चाहिए ॥५७॥ अगर श्रुति, स्मृतियो मे जो नही बताया गया है ऐसा प्रायश्चित बताया जाता है तो अपराधी के पाप का कभी भी क्षय नही हुआ करता है और वह प्रायश्चितो का उपदेश देने वाला स्वय नरक गामी हो जाया करता है ॥५५॥

तान्धर्मविघ्नकर्तृश्च राजा दण्डेन पीडयेत् ।
न चैतान्पीडयेद्राजा कथचित्काममोहित ॥५६

तत्पाप शतधा भूत्वा तमेव परिसर्पति ।
प्रायश्चित्तो ततश्चीर्णे कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम् ॥५७
विंशतिर्गा वृष चैकं दद्यात्तेषां च दक्षिणाम् ।
क्रिमिभिस्तृणसंभूतैर्मक्षिकादिनिपातितैः ॥५८
कृच्छ्रार्द्धं स प्रकुर्वीत शक्त्या दद्याच्च दक्षिणाम् ।
प्रायश्चित्तं च कृत्वा वै भोजयित्वा द्विजोत्तमान् ॥५६
सुवर्णमानिकं दद्यात्तत शुद्धिर्विधीयते ।
चाण्डालश्वपचैः स्पृष्टे निशि स्नानं विधीयते ॥६०
न वसेत्तत्र रात्रौ तु सद्यः स्नानेन शुद्धयति ।
वसेदथ यदा रात्रावज्ञानादविचक्षणः ।
तदा तस्य तु तत्पापं शतधा परिवर्तते ॥६१
उद्गच्छन्ति च नक्षत्राण्युपरिष्टाच्च ये ग्रहाः ।
संस्पृष्टे रश्मभिस्तेषामुदकस्नानमाचरेत् ॥६२
याश्चान्तर्जलवल्मीकमूषिकोपरवर्त्मसु श्मशाने ।
शौचशेषे च न ग्राह्याः सप्त मृत्तिकाः ॥६३

इस तरह के अशास्त्रोक्त प्रायश्चितों को बनाकर धर्म के कार्य मे जो विघ्न डाला करते हैं उनको तत्कालीन राजा को दण्ड अवश्य ही देना चाहिए। यदि मोह के कारण इन लोगों को दण्ड नहीं देता है तो वही पाप सैंकडो भागो मे बँट जाता है और राजा पर भी जाकर चढ बैठा करता है। प्रायश्चित पूर्ण कर लेने के पश्चात् ब्राह्मणो को भोजन करावें तथा उनको समुचित दक्षिणा भी देनी चाहिए ॥५६-६०॥ एक वृष और बीस गायो को दक्षिणा देवे। यदि गौ के शरीर पर प्रहार करने से कोई क्षत हो गया हो और उस घाव मे घास से कीडे पड जायें और उसमे मक्खी पड जावे तो अर्धकृच्छ्र व्रत का प्रायश्चित करना चाहिए यथा शक्ति दक्षिणा देकर ब्राह्मणो को भोजन करावे तथा थोडा सुवर्ण भी देवे तभी शुद्धि होती है। यदि किसी चाण्डाल अथवा श्वपच

से रात्रि के समय मे स्पर्श हो जावे तो प्रात काल मे स्नान करने से शुद्धि होती है ॥६१–६३॥ यदि उनके स्पर्श होन पर रात्रि मे न रहे तो तत्काल ही मे स्नान करके शुद्ध हो जाया करता है। यदि चातुर्य हीन पुरुष अज्ञान होने के कारण रात्रि मे चाण्डालो के पास मे रहता है तो उनका पाप शत गुना होकर लिपट जाया करता है ॥६१॥ मनुष्यो के ऊपर जो भी ग्रह तथा नक्षत्र निकले उनकी किरणो का स्पश हो जाने पर फिर जल से स्नान करे ॥६२॥ जल के अन्दर रहने वाली, सप के वमई की चूहे के बिल की, करलड भूमि की मार्ग, की श्मशान भूमि की और शौच शेष की इन सात स्थलो की मिट्टी कभी ग्रहण नही करनी चाहिए ॥६३

इष्टापूर्ते तु कर्त्तव्ये ब्राह्मणेन प्रयत्नत ।
इष्टेन लभते स्वर्ग मोक्ष पूर्त्तेन चाप्नुयात् ॥६४
वित्तक्षेपो भवेदिष्ट तडाग पूर्त्तमुच्यते ।
आरामश्च विशेषेण देवद्रोण्यस्तथैव च ॥६५
वापीकूपतडागानि देवतायतनानि च ।
पतितान्युद्धरेद्यस्तु स पूर्तफलमश्नुते ॥६६
शुक्लाया आहरेन्मूत्र कृष्णाया गो शकृत्तथा ।
ताम्रायाश्च पयो ग्राह्य श्वेतायाश्च दधि स्मृतम् ॥६७
कपिलाया घृत ग्राह्य महापातकनाशनम् ॥६८
कुशैस्तीर्थनदीतोयै सर्वद्रव्य पृथक्-पृथक् ।
आहृत्य प्रणवेनैव उत्थाप्य प्रणवेन च ॥६९
प्रणवेन समालोड्य प्रणवेनैव सपिवेत् ॥७०

ब्राह्मण का कर्त्तव्य है कि उस इष्ट और पूर्त्त कर्मों को प्रबल प्रयत्नो के साथ करना चाहिए। इष्ट कर्म के करने से स्वर्ग वास का लाभ हुआ करता है तथा पूर्त्त कार्यों के करने से मोक्ष मिला करता है ॥६४॥ धन का दान देना इष्ट कहा जाता है तथा तालाव, उद्यान

तथा देवार्पण की हुई वावडी पूर्त कर्म कहा जाया करता है ॥६५॥ जो कोई तालाब, वावडी और कूप तथा देवालय जीर्ण-शीर्ण दशा मे होकर नष्ट हो रहे हो उनका जो उद्धार कराता है यह भी पूर्त कर्म कहा जाया करता है। इस का वही फल भी मिलता है ॥६६॥ शुक्ल वर्ण वाली गौ का मूत्र और कृष्ण वर्ण की गौ का गोवर ग्रहण करना चाहिए। ताम्र के समान जिस का वर्ण हो उस गौ का दूध और सफेद रङ्ग वाली गौ का दही लना चाहिए। जो कपिला गौ हो उसका सदा घृत लेवे। ये सब महा पातकों के नाश करने वाले होते हैं। पञ्चगव्य जो वनाया जावे तो ऐसा ही बनाना चाहिए वही पञ्चगव्य परमोत्तम हुआ करता है ॥६७-६८॥ कुश, नदी और तीर्थ जल इनसे सभी द्रव्यो का पृथक् २ लना चाहिए। जब भी इन वस्तुओ को उठावे तो उस समय म प्रणव का उच्चारण करना चाहिए और प्रणव (ॐकार के) जप करते हुए ही आलोडन करे तथा प्रणव का उच्चारण कर के पान भी करना चाहिए ॥६९ ७०॥

पालाशे मध्यमे पर्णे भाण्डे ताम्रमये शुभे ।
पिवेत्पुष्करपर्णे वा मृन्मये वा कुशोदकम् ॥७१
सूतके तु समुत्पन्ने द्वितीये समुपस्थिते ।
द्वितीये नास्ति दोषस्तु प्रथमेनैव शुध्यति ॥७२
जातेन शुध्यते जातं मृतेन मृतकं तथा ।
गर्भस्रावे मासतुल्या निशाः शुद्धेस्तु कारणम् ॥७३
रात्रिभिर्मासतुल्याभिर्गर्भस्रावेविशुद्धचति ।
रजस्युपरतेसाध्वी स्नानेन स्त्री रजस्वला ॥७४
स्वगोत्राद् भ्रश्यते नारी विवाहात्सप्तमे पद ।
स्वामिगोत्रेण कर्त्तव्यास्तस्या पिण्डोदकक्रिया ॥७५
उद्देश्य पिण्डदान स्यात्पिण्डे पिण्डे द्विनामत ।
षण्णां देयास्त्रय पिण्डा एव दाता न मुह्यति ॥७६

स्वेन भर्त्रा सहस्राब्द माता भुक्ता सुदैवतम् ।
पितामह्यपि स्वेनैव स्वेनैव प्रपितामही ॥७७
वर्षे वर्षे तु कुर्वीत मातापित्रोस्तु सत्कृतिम् ।
अदैव भोजयेच्छ्राद्धं पिण्डमेकं तु निर्वपेत् ॥७८

इस पञ्चगव्य को पलाश (ढाक) के पत्ते में जो एक दोना के रूप में होता है लेवे अथवा ताम्र के परम शुभ पात्र में, मृत्तिका के पात्र में कुशोदक का पान करना चाहिये ॥७१॥ किसी एक आशौच (सूतक) में यदि कोई दूसरा भी सूतक आजावे तो फिर दूसरे का दोष नहीं लगा करता है ।।७२॥ जनना शौच के साथ ही जनना शौच उतर जाया करता है तथा इसी भाँति मृता शौच के साथ मृता शौच दूर हो जाया करता है। गर्भ का स्राव होजावे तो तीन दिन के लिये सूतक लगा करता है ॥७३॥ जितने मास के गर्भ का स्राव होता है उतने ही दिन का सूतक भी होता है फिर उतनी ही रात्रियों के पश्चात् शुद्धि होजाया करती है ॥७४॥ सप्तपद में नारी अपने पिता के गोत्र से पृथक् होजाया करती है। इसके पश्चात् उसका पिण्डदान और जलदान उसे अपने स्वामी के गोत्र से ही करना चाहिए ॥७५॥ प्रत्येक पिण्ड पर दो दो नाम बोलना चाहिए। माता-पिता को, पितामह पितामही को और प्रपितामह प्रपितामही को तीन पिंड देवे। इस रीति से दाता कभी मोह में नहीं पड़ा करता है ॥७६॥ माता अपने स्वामी अर्थात् पिता के साथ सहस्रों वर्ष तक पिंड का उपभोग किया करती है। इसी रीति से पितामही अपने स्वामी (पितामह) के साथ में और प्रपितामही अपने स्वामी (प्रपितामह) के साथ में पिंड का उपभोग किया करती है ॥७७॥ प्रत्येक वर्ष में माता-पिता मरण के दिन दिन श्राद्ध सत्कार करना चाहिए। विश्वदेव रहित श्राद्ध में जिमावे तथा एक पिंड दान देवे ॥७८

नित्य नैमित्तिकं काम्यं वृद्धिश्राद्धमथापरम् ।

पार्वण चेति विज्ञेय श्राद्ध पचविध बुधै ॥७६
ग्रहोपरागे सक्रान्तौ पर्वोत्सवमहालये ।
निर्वपेत् त्रीन्नर पिण्डानेकमेव मृतेऽहनि ॥८०
अनूढा न पृथक्कन्या पिण्डे गोत्रे च सूतके ।
पाणिग्रहणमन्त्राभ्या स्वगोत्राद्भ्रश्यते तत ॥८१
येन येन तु वर्णेन या कन्या परिणीयते ।
तत्सम सूतक याति तथा पिण्डोदकेऽपि च ॥८२
विवाहे चैव सवृत्ते चतुर्थेऽहनि रात्रिषु ।
एकत्व सा व्रजेद्भर्तु पिण्डे गोत्रे च सूतके ॥८३
प्रथमेऽह्नि द्वितीये वा तृतीये वा चतुर्थके ।
अस्थिसाचयन कार्य बन्धुभिर्हितबुद्धिभि ॥८४

विद्वान् पुरुषो का पाच तरह से श्र द्ध समझ लेना चाहिए। वे पाँच ये होते हैं—नित्य, नैमित्तिक काम्य, वृद्धि श्राद्ध और पार्वण श्राद्ध ॥७६॥ ग्रहण सक्राति, महालय पर्वोत्सव (कनागत) म मनुष्य को तीन पिण्ड देने चाहिए ॥८०॥ जिस कन्या का विवाह नही हुआ हो वह पिण्ड, गोत्र और सूतक म पृथक नही होती है और जिस समय म उस कन्या का पाणिग्रहण होजाया करता है तो वह फिर अपने गोत्र स पृथक् हो जाया करती है और अपने स्वामी के गोत्र म जाकर मिल जाया करती हैं ॥८१॥ जिस जिस वण की कन्या विवाही जाया करती हैं उन २ वर्णो के अनुसार ही सूतक, पिण्ड तथा उदक क्रियाऐ हुआ करती है ॥८२॥ विवाह के सम्पन्न होने पर चौथे दिन म रात्रि के समय मे कन्या पिण्ड, गोत्र और सूतक म अपने पति से मिल जाया करती है ॥८३॥ मरण होने पर हितचिन्तक बन्धुओ का प्रथम, द्वितीय, तृतीय अथवा चतुथ दिन मे अस्थि सचय करना चाहिए ॥८४

चतुर्थे पञ्चम चैव सप्तमे नवमे तथा ।
अस्थिसचयन प्रोक्त वर्णानामनुपूवश ॥८५

एकादशाहे प्रेतस्य यस्य चोत्सृज्यते वृष ।
मुच्यते प्रेतलोकात्स स्वर्गलोके महीयते ॥८६
नाभिमात्रे जले स्थित्वा हृदयेन तु चिन्तयेत् ।
आगच्छन्तु मे पितरो गृह्णन्त्वेताजलाजलीन् ॥८७
हस्तौ कृत्वा तु मयुक्तौ पूरयित्वा जलेन च ।
गोशृङ्गमात्रमुद्धृत्य जलमध्ये विनि क्षिपेत् ॥८८
आकाशे च क्षिपेद्वारि वारिस्थो दक्षिणामुख ।
पितृणा स्थानमाकाश दक्षिणादिक् तथैव च ॥८९
आपो देवगणा प्रोक्ता आप पितृगणास्तथा ।
तस्मादस्य जल देव पितृणा हितमिच्छता ॥९०
दिवासूर्यांशुसतप्त रात्रौ नक्षत्रमारुतै ।
मध्ययोरप्युभाभ्या च पवित्र सर्वदा जलम् ॥९१

चतुर्थ, पचम और सप्ताह तथा नवम दिन मे भी वर्णों के क्रम से अग्नियो का नमयन बताया गया है ॥८५॥ जिस प्रेत के एकादशाह मे वृष का उत्सग किया जाता है वह प्रेत लोक से मुक्त होकर स्वर्ग निवास का आनन्द भोगा करता है ॥८६॥ नाभि पर्यन्त जल मे खडे होकर हृदय मे विचार करे कि मेरे पितरगण आयें और मेरे द्वारा प्रदत्त जलाजलियो को ग्रहण करे ॥८७॥ अपने दोना हाथो को मिला कर जल से भरे और गौ की सीग की ऊँचाई तक उछाल कर जल मे ही उस जल का छोड देवे ॥८८॥ दक्षिण दिशा की ओर मुख करके आकाश म जल को प्रक्षिप्त कर देना चाहिए क्यो कि दक्षिण दिशा म ही आकाश मे पितरो का स्थान है ॥८९॥ जल ही देवता और जल को ही पितरगण कहा गया है अतएव जो अपने पितृगण की भलाई चाहता है उस जल का दान करना चाहिए। जलदान म पितर तृप्त हो जाया करते हैं ॥९०॥ जल दिन म सूर्य की किरणो के ताप म तप्त होता रहा करता है तथा रात्रि के समय म नक्षत्र तारो

की वायु से वह विशुद्ध होता है एव दानो सन्ध्याओ मे भी दोनो के योग होने से उसकी शुद्धि होती है अतएव सदा परम पवित्र रहता है ।।६१

स्वभावयुक्तमव्यक्तममेध्येन सदा शुचि ।
भाडस्थ धरणीस्थ वा पवित्र सर्वदा जनम् ।।६२
देवताना पितृणा च जल दद्याज्जलाजलीन् ।
असस्कृतप्रमीताना स्थले दद्याद्विचक्षण ।।६३
श्राद्धे हवनकाले च दद्यादेकेन पाणिना ।
उभाभ्या तर्पणे दद्यादेष धर्मो व्यवस्थित ।।६४

किसी भी अशुचि वस्तु जिससे जल का स्पर्श न हुआ हो और वह अपने ही स्वभाव मे स्थित हो, चाहे वह किसी भी पात्र मे रहे या भूमि में रहे वह सर्वदा परम पवित्र होता है। चतुर पुरुष का कर्त्तव्य है कि वह देवगण एव पितृगण को जलाजलि अर्पित करे। जो बिना ही सस्कार हुए मृत हो गये हो उनको स्थल में जल की अजलि देनी चाहिये ।।६२-६३।। श्राद्ध और हवन मे एक हाथ से जल देना चाहिये और जब केवल तर्पण करना हो तो 'दोनो ही हाथों से जल दान करना चाहिए, यह इसी प्रकार से धर्म की व्यवस्था है ।।६४।।



।। पापियों को नरक दण्ड वर्णन ।।

पाप भेदान्प्रवक्ष्यामि यथा स्थूलाश्च यातना ।
शृणुस्व धैर्यमास्थाय रौद्रा ये नरका यत ।।१
पापिनो य दुरात्मानो नरकाग्निपु सन्ततम् ।
पच्यन्ते येपु तान्वक्ष्ये भयकरफलप्रदान् ।।२

तपनो वालुकाकुम्भौ महारौवरौरवौ ।
कुम्भीपाको निरुच्छ्वास: कालसूत्र: प्रमर्दन: ॥३
असिपत्रवनं घोर लालाभक्षो हिमोत्कट: ।
मूढावस्था वसाकूपस्तथा वैतरणी नदी ॥४
भक्ष्यन्ते मूत्रपान च पुरीषह्नद एव च ।
तप्तशूल तप्तशिला शाल्मलीद्रुम एव च ॥५
तथा शोणितकूपश्च घोर. शोणितभोजन. ।
स्वमासभोजनं चैव वह्निज्वालानिवेशनम् ॥६
शिलावृष्टि शस्त्रवृष्टिर्वह्निवृष्टिस्तथैव च ।
क्षारोदक चोष्णतोय तप्ताय: पिण्डभक्षणम् ॥७
अथ शिर: शोषण च मरुत्प्रपतन तथा ।
तथा पाषाणवर्षंच कृमिभोजनमेव च ॥८

धर्मराज ने कहा—अब मैं समस्त पापों के भेद-प्रभेद तथा महान् भीषण यातनाओं से पूर्ण नरकों के विषय में वर्णन करता हूँ। आप बहुत ही धीरज के साथ उनका श्रवण करिये क्योंकि नरकों का वर्णन बहुत ही भयानक सा प्रतीत हुआ करता है और उसे सुनकर दिल काँप उठता है ॥ १ ॥ दुष्ट पापात्मा नर नरक की भीषण अग्नि में निरन्तर जला करते हैं उन्ही महान् भयावह नरकों का वर्णन अब किया जाता है ॥२॥ उन नरकों का सर्व प्रथम नामों को श्रवण कराया जाता है, तपन, वालुका, कुम्भ, रौरव, महारौरव, कुम्भीपाक, निरुच्छ्वास, कालसूत्र और प्रमर्दन ये नरकों के नाम हैं ॥३॥ असिपत्रवन, हिमोत्कट मूढावस्थ, वसाकूप, वैतरणी सरिता जहाँ पर मूत्र का पान करना पड़ता है, पुरीष ह्नद, तप्तशूल, तप्तशिला और शाल्मली द्रुम ये सभी नामों वाले बड़े भीषण नरक हैं ॥४-५॥ शोणित कूप, घोर शोणित भोजन, स्वमांस भोजन, वह्नि ज्वाला निवेशन, शिलावृष्टि, शस्त्रवृष्टि, वह्नि वृष्टि, क्षारोदक, उष्णोदक, तप्ताय पिण्ड भक्षण ये सभी नरकों के नाम

हैं ॥ ६-७ ॥ शिरशोषण, मरुत्प्रयतन, पाषाण वर्ष और कृमि भोजन ये सभी मैंामो वाले महान् घोर नरक होते हैं ॥८॥

क्षारोदपान भ्रमण तथा क्रकचदारणम् ।
पुरीषलेपन चैव पुरीषस्य च भोजनम् ॥६
रेत पान महाघोर सर्वसन्धिषु दाहनम् ।
धूमपान पाशवन्ध नानाशूलानुलेपनम् ॥१०
अङ्गारशयन चैव तथा मुसलमर्द्दनम् ।
वहूनि काष्ठयन्त्राणि कर्पण छेदन तथा ॥११
पतनोत्पन चैव गदादण्डादिपीडनम् ।
गजदन्तप्रहरण नानासर्पैश्च दशनम् ॥१२
शीताम्बुसेचन चैव नासाया च मुखे तथा ।
घोरक्षाराम्बुपान च तथा लवणभक्षणम् ॥१३
स्नायुच्छेद स्नायुवन्धमस्थिच्छेद तथैव च ।
क्षाराम्बुपूर्णनन्ध्राणा प्रवेश मासभोजनम् ॥१४
पित्तपान महाघोर तथैव श्लेष्मभोजनम् ।
वृक्षाग्रात्पातन चैव जलान्तर्मज्जन तथा ॥१५

क्षारोदक पान, भ्रमण, ककच विदारण पुरीष लेपन, पुरीषा हार, रेतःपान, महाघोर सर्व सन्धि विदाहन, धूमपान, पाशवन्ध नाना शूलानु लेपन ये सभी नरक होते हैं ॥६-१०॥ अङ्गार शयन मुसलमर्दन, जिसमे अधिक काष्ठ मे यन्त्र बने हुए हैं जो छीलकर काटने वाला नरक है पतनोत्पतन जिसमे गर्त मे गिराया जाया करता है, ऊपर का जार म धुमाकर फैंक दिया जाता है। जिस नरक म गदा तथा दण्डे स ताडित किया जाता है ऐसा गदा दण्डादि पीडा नाम वाला नरक है। हार अ[illegible] रित ऐसे भी नरक हैं जहाँ पर दाता म प्रहार होता है अनेक तरह के विषधर सर्पो मे डसाया जाया करता है ॥११-१३॥ मुख तथा नाक मे अधिक शीतल जल घुसेड दिया जाता है अत्यन्त खारी जल [illegible]

पिलाया जाता है तथा केवल नमक ही खिलाया जाता है ऐसे भी नरक यमलोक मे होते हैं ॥१३॥ नरको मे बडी-बडी भयानक यातनायें दी जाया करती है, वहाँ पर शरीर की नस काटी जाती है, नसें बाधी जाया करती हैं, हड्डियाँ तोडी जाती है, अत्यन्त खारी जल मे डुबा दिया जाता है, मास, पित्त, कफ खिलाया जाता है तथा वृक्ष पर चढ़ाकर गिराया जाता है और जल मे डुबा दिया जाता है ॥१४-१५॥

पाषाणधाण चैव शयनं कण्ठकोपरि ।
पिपीलिकादशन च वृश्चिकैश्चापि पीडनम् ॥१६
व्याघ्रपीडा शिवापीडा तथा महिषपीडनम् ।
कर्दमे शयन चैव दुर्गन्धपरिपूरणम् ॥१७
बहुशश्चार्धशयनं महातिक्तनिषेवणम् ।
अत्युष्णतैलपानं च महाकटुनिषेवथम् ॥१८
कषायोदकपान च तप्तपाषाणतक्षणम् ।
अत्युष्णशीतस्नान च तथा दशनशोर्णनम् ॥१९
तप्ताय शयन चैव ह्ययोभारस्य वन्धनम् ।
एवमाद्या महाभाग यातना. कोटिकोटिश. ॥२०
अपि वर्षसहस्रेण नाह निगदितु क्षमः ।
एतेषु यस्य यत्प्राप्त पापिनः क्षितिरक्षक ॥२१

ऐसे भी नरक होते हैं जहाँ पर शिर पर भारी पत्थर की शिलाऐ रख दी जाती हैं, काटो पर सुलाया जाता है, चीटियो से कटाया जाता है औरभयानक बिच्छुओ से दशन कराया जाता है ॥१६॥ व्याघ्र- गीदड और भैंसो से मुठभेट कराई जाती है कीच मे लिटा दिया जाता है और घोर दुर्गंध ऊपर स छोड दी जाती है ॥१७॥ जब तब नीद नही भरती है उठाकर बिठा दिया जाता है, ऐसे भी नरक हैं जहाँ पर अत्यन्त असह्य तीक्ष्ण पदार्थ खिलाए जाते हैं, खौलता हुआ तप्त तैल पिलाया जाता है तथा महान् कड़री वस्तु खिलाई जाया करती है

॥१८॥ नारकीय यातनाओं में कसैला जल पिलाया जाता है, जलते हुए पत्थर तुड़वाये जाते हैं, अत्यन्त ठण्डे और अधिक खोलते हुए पानी में स्नान कराया जाता है ॥ १६ ॥ अग्रन्त तप्त लौह की चादर पर लिटाया जाता है, लोहे का भार मस्तक पर रख दिया जाता है। हे महाभाग! नरकों में ऐसी करोड़ों प्रकार की यातनायें दी जाती हैं जिनको मैं स्वयं भी हजारों वर्षों में भी पूरा वर्णन नहीं कर सकता हूँ ॥२०-२१॥

तत्सर्वं सम्प्रवक्ष्यामि तन्मे निगदतः शृणु ।
ब्रह्महा च सुरापी च स्तेयी च गुरुतल्पगः ॥२२
महापातकिनस्त्वेते तत्संसर्गी च पञ्चमः ।
पवित्रभेदी वृथापावी नित्यं ब्राह्मणदूषकः ।
आदेशी वेदविक्रेता पञ्चैते ब्रह्मघातकाः ॥२३
ब्राह्मणं य समाहूय दास्यामीति धनादिकम् ।
पश्चान्नास्तीति यो ब्रूयात्तमाहुर्ब्रह्मघातिनम् ॥२४
स्नानार्थं पूजनार्थं वा गच्छतो ब्राह्मणस्य यः ।
समायात्यन्तरायत्वं तमाहुर्ब्रह्मघातिनम् ॥२५
परनिन्दासु निरतश्चात्मोत्कर्षरतश्च यः ।
असत्यनिरतश्चैव ब्रह्महा परिकीर्तितः ॥२६
अधर्मस्यानुमन्ता च ब्रह्महा परिकीर्तितः ।
अन्याद्वेगरतश्चैव अन्येषां दोषसूचकः ॥२७
दम्भाचाररतश्चैव ब्रह्महेत्यभिधीयते ।
नित्यं प्रतिग्रहरतस्तथा प्राणिवधे रतः ॥२८

हे भूमिपाल! अब मैं आपको यह सबका में बतलाता हूँ कि किन किन पापियों को वहाँ पर क्या-क्या नरक की यातनाएं भोगनी पड़ती हैं। जो ब्राह्मण की हत्या करने वाला, मदिरापान करने वाला, चोर और गुरु पत्नी के साथ गमन करने वाला ये चारों और पाँचवाँ

मुरापानसमं पापं लभते स नराधमः ।
एव वहुविधं पापं सुरापानसमं स्मृतम् ॥३४

अब मैं सुरापान के तुल्य होने वाले पापो का अति सक्षेप मे वर्णन करता हूँ गणिकाओ के अन्न का भोजन तथा गणिकाओं का सेवन करना, पतितो के अन्न का भोजन करना भी सुरापान के ही समान होता है । उपासना करने का त्याग, देवलो का भोजन, शराब पीने वाली स्त्री के साथ गमन करना भी सुरापान के समान ही पाप होता है । जो विप्र शूद्र के यहाँ पर बुलाया जाने पर उसके यहाँ भोजन कर लेता है उसको भी शराबी ही समझना चाहिए और ऐसे ब्राह्मण को कभी भी किसी धार्मिक कृत्य करने का अधिकार नही देना चाहिए । जो शूद्रो की आज्ञा से पुण्य कर्म करता है उस नराधम को भी सुरापान के ही समान पाप लगता है । ऐसे अनेक तरह के पाप भी सुरापान के ही तुल्य ही होते हैं ॥२६-३४॥

हेमस्तेयसम पापं प्रवक्ष्यामि निशामय ।
कन्दमूलफलाना च कस्तूरीपटवाससाम् ॥३५
सदा स्तेय च रत्नाना स्वर्णस्तेयसम स्मृतम् ।
ताम्रायस्त्रपुकास्यानामाज्यस्य मधुनस्तथा ॥३६
स्तेय सुगन्धद्रव्याणा स्वर्णस्तेयसम स्मृतम् ।
क्रमुकस्यापि हरणमम्भसा चन्दनस्य च ॥३७
पर्णरसापहरण स्वर्णस्तेयसम स्मृतम् ।
पितृयज्ञपरित्यागो धर्मकार्यविलोपनम् ॥३८
यताना निन्दन चैव स्वर्णस्तेयसम स्मृतम् ॥३६
भक्ष्याणा चापहरण धान्याना हरण तथा ॥४०
रुद्राक्षहरण चैव स्वर्णस्तेयसम स्मृतम् ॥४१

अब हम सुवर्ण की चोरी के तुल्य होने वाले पापो के विषय मे वतलाते हैं, कन्द, मूल, फलो की चोरी करना, कस्तूरी, वस्त्र और रत्नो

की चोरी करना भी सदा सुवर्ण की चोरी के ही समान होती है। ताम्र लोहा, शीशा, कांसा, घृत, शहद, सुपारी तथा चन्दन से मिश्रित जल की चोरी भी सुवर्ण की चोरी के ही समान पाप होता है ॥ ३५-३७ ॥ शरबत की चोरी, पितृ यज्ञ का त्याग कर देना और किसी भी धर्म के कार्य का लोप कर देना भी सुवर्ण की चोरी के समकक्ष ही पाप होता है ॥३८॥ सन्यासियों की निन्दा, भक्ष्य पदार्थों का अपहरण और धान्यों का अपहरण करना भी सुवर्ण चोरी के ही समान है ॥४०-४१॥

धर्मलोपः शास्त्रनिन्दा गुरुतल्पसमं स्मृतम् ॥४२
इत्येवमादयो राजन्महापातकसंज्ञिताः ॥४३
एतेष्वेकतमेनापि सङ्कृत्तत्समो भवेत ॥४४
यथाकथंचित्पापानामेतेषां परमर्षिभिः ॥४५
शान्तैस्तु निष्कृतिर्दृष्टा प्रायश्चित्तादिकल्पनैः ।
प्रायश्चित्तविहीनानि पापानि शृणु भूपते ॥४६
समस्तपापतुल्यानि महानरकदानि च ।
ब्रह्महत्यादिपापानां कथंचिन्निष्कृतिर्भवेत् ॥४७
ब्राह्मणं द्वेष्टि यस्तस्य निष्कृतिर्नास्ति कुत्रचित् ।
विश्वस्तघातिनां चैव कृतघ्नानां नरेश्वर ॥४८
शूद्रस्त्रीसङ्गिनां चैव निष्कृतिर्नास्ति कुत्रचित् ।
शूद्रान्नपुष्टदेहानां वेदनिन्दारतात्मनाम् ॥४९

धर्म का लोप और शास्त्रों की निन्दा ये समस्त पाप गुरु तल्प गमन के ही समान होते हैं। हे राजन् ! इन उपर्युक्त महान् पापियों का साथ देने वाला भी उसी के समान पातकी हो जाया करता है। शमादि गुणों से विभूषित महर्षियों ने प्रायश्चित आदि के द्वारा इन सब पापों से विशुद्ध होने का मार्ग बतलाया है किन्तु हे भूपते ! कुछ ऐसे भी महान् पाप होते हैं जिनका कि कोई भी प्रायश्चित हो ही नहीं सकता है। मैं अब आपके सामने उन पापों का वर्णन करता हूँ, आप

श्रवण करिये ॥४२-४६॥ ऊपर मे बतलाये हुए सभी पाप महान् घोर नरकों को देने वाले होते हैं किन्तु ब्रह्म हत्या आदि वे महान पापो से भी किसी प्रकार से छुटकारा हो भी जाया करता है क्योकि ये जैसे महान पाप हैं वैसे ही इसके परम उग्र प्रायश्चित भी बतलाये गये हैं ॥४७॥ किन्तु जो मनुष्य ब्राह्मणो से द्वेष करता है उसके पाप से छुटकारा किसी भी प्रकार से नही हो सकता है। हे नरेश्वर ! विश्वासघातियो की, किये हुए उपकार को न मानने वालो की, शूद्र की स्त्री से गमन करने वालो की, शूद्रान्न से पुष्ट शरीर वालो की और देवो की निन्दा करने वालो की निष्कृति (उद्धार होने की गति) तो कही पर है ही नही ॥४८-४६॥

सत्कथानिन्दकाना च नेहामुत्र च निष्कृति ॥५०
बौद्धालय विशेद्यस्तु महपाद्यपि वै द्विज ।
न तस्य निष्कृतिर्दृष्टा प्रायश्चित्तशतैरपि ॥५१
बौद्धा पाषण्डिन प्रोक्ता यतो वेदविनिन्दका ।
तस्माद् द्विजस्तान्नेक्षेत यो धर्मवहिष्कृता ॥५२
ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि द्विजो बौद्धालय विशेत् ।
ज्ञात्वा चेन्निष्कृतिर्नास्ति शास्त्राणामिति निश्चय. ॥५३
एतेषा पापबाहुल्यान्नरक कोटिकल्पकम् ।
प्रायश्चित्तविहीनानि प्रोक्तान्यन्यानि च प्रभो ॥५४
पापानि तेषा नरकान्गदतो मे निशामय ॥५५
महापातकिनस्तेषु प्रत्येक युगवासिन ।
तदन्ते पृथिवीमेत्य सप्तजन्मसु गर्दभा ॥५६

जो सत्कथा की निन्दा करने वाले लोग हैं उनकी निष्कृति तो इस लोक मे तथा परलोक मे कही भी नही है ॥५०॥ महान आपदा मे ग्रस्त हो जाने पर भी जो द्विज बौद्धो के मन्दिर मे प्रवेश करता है उसकी शतश प्रायश्चितो से भी शुद्धि नहीं हो सकती है ॥५१॥ इसका कारण

यही है कि बौद्ध लोग वेदो के महान् निन्दक होते है, वे पाषण्डी हैं और धर्म से बहिष्कृत होते हैं, अतएव द्विज को तो उनकी ओर अपनी दृष्टि भी नही डालनी चाहिए ॥५२॥ इन्ही बातो के कारण से द्विज यदि जान-बूझकर ऐसा करता है तो फिर उसका छुटकारा कभी भी नही होता है, ऐसा धर्म शास्त्रो का सत्य सिद्धात है ॥५३॥ इन ऐसे बहुत मे पापो का फल भी करोडो कल्पो तक नरको मे यातनाएँ सहन करना ही होता है। हे प्रभो ! जिन महा पापो का कुछ भी कही प्रायश्चित्त नही है ऐसे भी बहुत से पापो का वर्णन किया गया है। अब उन महा पापो से प्राप्त होने वाले नरको के विषय मे आप मुझसे श्रवण कीजिए। मैं उन्हे अब बतलाता हूँ ॥५४-५५॥ जो पातकी होते हैं वे प्रत्येक नरक मे एक-एक युग पर्यन्त रहा करते हैं। फिर इसके अनन्तर इस पृथ्वी मे आकर उनको सात बार गधो की योनि मे जन्म ग्रहण करना पडता है ॥५६॥

ततः श्वानो विद्धदेहा भवेयुर्दशजन्मसु ।
आशताब्द विट्कृमयः सर्पा द्वादशजन्मसु ॥५७
ततः सहस्रजन्मानि मृगाद्या. पशवो नृप ।
शताब्द स्थावराश्चैव ततो गोधाशरीरिणः ॥५८
ततस्तु सप्तजन्मानि चण्डाला पापकारिणः ।
ततः षोडश जन्मानि शूद्राद्या हीनजातय ॥५९
ततस्तु जन्मद्वितये दरिद्रा व्याधिपीडिताः ।
प्रतिग्रहपरा नित्य ततो निरयगा. पुन. ॥६०
असूयाविष्टमनसो रौरवे नरके स्मृतम् ।
तत्र कल्पद्वय स्थित्वा चाण्डाला शतजन्मसु ॥६१
मा ददस्वेति यो ब्रूयान्दवाग्निब्राह्मणेपु च ।
शुना यो योनिशत गत्वा चाण्डालेषूपजायते ॥६२
ततो विष्ठाकृमिश्चैव ततो व्याघ्रस्त्रिजन्मसु ।

तदते नरक याति युगानामेकविंशतिम् ॥६३

इसके उपरान्त दश जन्मो तक के फटे हुए शरीर वाले कुत्ते की योनि मे जन्म धारण किया करते हैं। फिर एकसौ वर्ष तक विष्ठा के कीड़े होते हैं। इसके पश्चात् बारह जन्मो तक सर्प हुआ करते हैं ॥५७॥ इसके अनन्तर एक हजार जन्म मृग आदि पशुओ मे लिया करते हैं। इसके पश्चात् सौ वर्ष तक उनको स्थावर योनि प्राप्त हुआ करती हैं। फिर गोह का शरीर प्राप्त होता है ॥५८॥ इसमे भी सात जन्म तक पापकारी चाण्डालोके यहाँ उत्पन्न हुआ करताहै। इसके पश्चात हीन जातियो मे सोलह बार जन्म लिया करता है ॥५९॥ इसके पीछे वे दूसरे जन्मो मे रोग ग्रस्त एव दरिद्र होते हुये जन्म ग्रहण किया करते हैं और सर्वदा प्रतिग्रह ग्रहण किया करते हैं। उस समय मे भी असूया होने के कारण से रौरव नरक मे जाकर यातनायें भोगा करते हैं। वहाँ दो कल्पो तक निवास करके फिर एक सौ जन्म चाडाल के घर मे ग्रहण किया करते हैं ॥६०।६१॥ जो कोई गौ, अग्नि और ब्राह्मणों के लिये यह कहता है कि इनको कुछ भी मत दो, इनको देने से क्या होता है वह एक सौ जन्मो तक कुत्ते की योनि को भोगा करता है और फिर चाण्डाल होता है ॥६२॥ इसके पश्चात् विष्ठा का कीडा होता है तथा इसके पश्चात् तीन जन्मो तक बाघ का शरीर धारण किया करता है और इसके बाद मे इक्कीस युगो तक नरक वास किया करता है ॥६३

परनिन्दापरा ये च ये च निष्ठुरभाषिण ।
दानाना विघ्नकर्त्तारस्तेषा पपफल शृणु ॥६४
मुशलोलूखलाभ्या तु चूर्ण्यन्ते तस्करा भृशम् ।
तदन्ते तप्तपाषाणग्रहण वत्सरत्रयम् ॥६५
ततश्च कालसूत्रेण भिद्यन्ते सप्त वत्सरान् ।
शोचन्त. स्वानि कर्माणि परद्रव्यापहारका ॥६६

कर्मणा तत्र पच्यन्ते नरकाग्निषु सन्ततम् ॥६७
परस्वसूचकाना च नरकं शृणु दारुणम् ।
यावद्युगसहस्रं तु तप्ताय पिण्डभक्षणम् ॥६८
सर्पीड्यते च रसना सदंशैर्भृशदारुणैः ।
निरुच्छ्वासं महाघोरे कल्पार्द्धं निवसन्ति ते ॥६९
परस्त्रीलोलुपाना च नरकं कथयामि ते ।
तप्तताम्रास्त्रियस्तेन सुरूपाभरणैर्युता ॥७०
यादृशीस्तादृशीस्ताश्च रमन्ते प्रसभ वहु ।
विद्रवन्तं भयेनासा गृह्णन्ति प्रसभं च तम् ॥७१

जो मनुष्य दूसरो की निन्दा किया करते है, कठोर वचन मुख से बोला करते हैं, दान देने मे विघ्न बाधाये उपस्थित किया करते हैं उनको जो इस बात का फल प्राप्त हुआ करता है उसका फल श्रवण कर लो ।।६४।। वे चोर होते हैं और उनको नरको मे लोहे के मूसल तथा काठ के मूसलो से पीटा जाया करता है फिर इसके पश्चात् तीन वर्ष तक तपे हुये पत्थर को पकडा करते है । इसके उपरान्त वे काल सूत्र से सात वर्ष तक विधा करते हैं । उस समय मे दूसरो का द्रव्य हरण करने वाले प्राणी अपने किये हुये कर्मो के विषय मे सोचते हुए नरक की अग्नि मे पका करते है ।।६६।६७।। अब मैं उनके पापो के विषय मे बतलाता हूँ जो चोरो को दूसरो के धन का पता ठिकाना बता कर माल का अपहरण कराया करते हैं उनको भी महा दारुण नरको की यातनाये भोगनी पडती हैं । ऐसे पापी एक सहस्र वर्षो तक तप्त लोहे के पिण्डो को खाया करते है ।।६८।। इन लोगो की जीभ को यमदूत चीमटो से खींचा करते है क्योकि जीभ से ही कहकर उन्होने दूसरो के धन का पता बताया था । ये लोग आधे कल्प तक उच्छ्वास रहित दशा मे पडे रहा करते हैं ।।६९।। अब हम पराई स्त्री से सङ्गम करने के लालचियो को प्राप्त होने वाले नरको का वर्णन करते है ।

ये लोग जिस प्रकार की स्त्रियों के साथ भोग करने की कामना किया करते थे उसी प्रकार की तपे हुये ताम्र की आभूषणो से भूषित हुयी स्त्रियाँ उनके साथ बल पूर्वक रमण किया करती हैं ॥७०।७१

कथयन्तश्च तत्कर्म नयन्ते नरकान्क्रमात् ।
अन्य भजन्ते भूपाल पति त्यक्त्वा च या स्त्रिय ॥७२
तप्ताय पुरुषास्तास्तु तप्ताय शयने बलात् ।
पातयित्वा रमन्ते च बहुकाल बलान्विता ॥७३
ततस्तैर्योपितो मुक्ता हुताशनसमोज्ज्वलम् ।
अय स्तम्भ समाश्लिष्य तिष्ठन्त्यब्दसहस्रकम् ॥७४
तत क्षारोदकस्नान क्षारोदकनिषेवणम् ।
तदन्ते नरकान् सर्वान् भुञ्जतेऽब्दशत शतम् ॥७५
यो हन्ति ब्राह्मण गा च क्षत्रिय च नृपोत्तमम् ।
स चापि यातना सर्वा भुक्ते कल्पेषु पञ्चसु ॥७६

वे ताम्र की तप्त स्त्रियाँ इनके किये हुये दुष्कर्मों का बखान करके पुन नरकों मे ढकेल लाया करती हैं। हे भूपाल ! जो स्त्रियाँ अपने पति का त्याग करके दूसरे और पुरुषों का सेवन किया करती हैं। उनको भी लोहके जलते हुए शरीर वाले पुरुष लोहेके तप्त पलङ्गों पर लिटा कर बलपूर्वक उनके साथ रमण किया बहुत समय तक करा करते है ॥७२।७३॥ इनसे पिंड छूट जाने पर अग्नि के समान लाल धधकते हुए लोहे के खम्भो से एक हजार वर्ष तक चिपटा दी जाया करती हैं ॥७४॥ इसके उपरान्त उनको अत्यन्त खारी जल से स्नान कराया जाता है खारी पानी ही पिलाया जाता है फिर एकसौ वर्षों तक वे सभी नरको की यातनाये भोगा करती है ॥७५॥ जो पुरुष गौ ब्राह्मण तथा परम श्रेष्ठ क्षत्रिय राजा का वध किया करते हैं वह पाँच कल्प तक नरक की समस्त घोर यातनाओं को भोगा करते हैं ॥७६॥

य शृणोति महन्निन्दा सादर तत्फल शृणु ।

तेषा कर्णेषु दाप्यन्ते तप्ताय कीलसचया ॥७७
ततश्च तेषु छिद्रेषु तैलमत्युष्णमुल्वणम् ।
पूर्यते च ततश्चापि कुम्भीपाक प्रपद्यते ॥७८
नास्तिकाना प्रवक्ष्यामि विमुखाना हरे हरौ ।
अब्दाना कोटिपर्यन्त लवण भुञ्जते हि ते॥७९
ततश्च कल्पपर्यन्त रौरवे तप्तसैकते ।
भज्यते पापकर्माणोऽन्येष्वप्येव नराधिप ॥८०
ब्राह्मणान्ये निरीक्षन्ते कोपदृष्ट्या नराधमा ।
तप्तसूचीसहस्रेण चक्षुस्तेषा प्रसूयते ॥८१
तत क्षाराम्बुधाराभि सेच्यन्ते नृपसत्तम ।
ततश्च क्रकचैर्घोरैर्भिद्यन्ते पापकर्मण ॥८२
विश्वासघातिना चैव मर्यादाभेदिना तथ ।
परान्नलोलुपाना च नरक शृणु दारुणम् ॥८३

जो अपने से बडो की बुराई किया करते हैं या बडो की निन्दा को सादर श्रवण किया करते हैं उनके कानो मे गर्म लोहे की कीलो को यमपुर मे ठोका जाया करता है ॥७७॥ जब कानो मे घाव होजाते हैं तो उन पर गर्म तेल डाला जाया करता है। इसके पश्चात् उस पापी को कुम्भीपाक नामक नरक मे डाल दिया जाता है ॥७८॥ अब उन पापियो की गति का वर्णन किया जाता है जो नास्तिक भगवान शिव तथा भगवान विष्णु से विमुखता रक्खा करते हैं उनको एक करोड वर्ष तक नमक का आहार करना पडता है ॥७९॥ हे राजन् ! इसके अनन्तर उन पापियो को एक कल्प तक जलती हुई रेत वाले रौरव नरक मे पड कर भुनना होता है ॥८०॥ जो अधम मनुष्य ब्राह्मणो को क्रोध से पूर्ण दृष्टि से देखा करते हैं उनकी आँखे तपी हुई एक सहस्र सुइयो से फाडी जाती हैं ॥८१॥ हे श्रेष्ठ नृप ! इसके बाद उसके ऊपर खारी जल छिडका जाया करता है और उनके शरीर को

कुण्डियों में खूब गोदा जाता है ॥८२॥ अब हम विश्वास का घात करने वाले पराये अन्न के लालची तथा मर्यादा का भङ्ग करने वाले लोगों को जो महा दारुण नरक यातना भोगनी पड़ती हैं उनका वर्णन करते हैं । आप सावधान होकर श्रवण करिये ॥८३

स्वमांसभोजिनो नित्यं भक्षमाणं स्वभिन्नुते ।
नरकेषु समस्तेषु प्रत्येकं ह्यब्दसागिनः ॥८४
प्रतिग्रहरता ये च ये वै नक्षत्रपाठका ।
ये च देवलकान्नानां भोजिनस्तान्छृणुष्व मे ॥८५
राजन्नाकल्पपर्यन्तं यातनास्वासु दुःखिता ।
पच्यन्ते सततं पापाविष्टा भोगरता सदा ॥८६
ततस्तेनैव वर्तन्ते कालसूत्रप्रपीडिता ।
ततः क्षारोदकस्नानं मूत्रविष्टानिषेवणम् ॥८७
तदन्ते भुवमागाद्य भवन्ति म्लेच्छजातयः ।
अन्योद्वेगरता ये तु यान्ति वैतरणीं नदीम् ॥८८
स्वसत्पञ्चमहायज्ञा लालाभक्ष व्रजन्ति हि ।
उपासनापरित्यागी रौरवं नरकं व्रजेत् ॥८९
विप्रग्रामाग्रदानं कुर्वाणा शृणु भूपते ।
यातनास्वासु पच्यन्ते यावदाभूतसम्प्लवम् ॥९०

से आक्रान्त होकर एक कल्प पर्यन्त परम दुःखित होकर घोर नरकों में पड़े रहा करते हैं ॥८६॥ इसके अनन्तर उनको तेल के कुण्डों में जला दिया जाता है और फिर काल सूत्र से उत्पीडित किया जाता है। इसके पश्चात् वे लोग खारी जल से स्नान करके विष्ठा तथा मूत्र का सेवन किया करते हैं ॥८७॥ जब नरकों की यातनायें समाप्त होजाती हैं तो यहाँ पृथ्वी पर ये लोग शेष पापों को भोगने के लिये म्लेच्छ जाति में जन्म ग्रहण किया करते हैं। जो दूसरों को घडबडाया करते हैं वे वैतरणी नदी में जाकर पडा करते हैं ॥८८॥ जो मनुष्य सन्ध्या, तर्पण आदि पाँच महा यज्ञों में से कोई सा एक यज्ञ भी नहीं किया करते हैं वे नर लालाभक्ष नरक में जाया करते हैं और वहाँ पर गोते खाया करते हैं। जो मनुष्य देवोपासना का त्याग कर देता है वह रौरव नरक में गिरा करता है ॥ ८९ ॥ हे राजन्! जो भूमिपति ब्राह्मणों के परिवार से बहुत कड़ाई के साथ वसूलयाबी किया करता है उसकी यह गति होती है कि वह जब तक सूर्य-चन्द्र स्थित रहा करते हैं तब तक नरकों में पड़ा रहा करता है ॥९०

ग्रामेषु भूपालवरो यः कुर्यादधिकं करम्।
स सहस्रकुलो भुङ्क्ते नरकं कल्पपञ्चसु ॥९१
विप्रग्रामकरादाने योऽनुमन्ता तु पापकृत्।
स एव कृतवान् राजन्ब्रह्महत्यासहस्रकम् ॥९२
कालसूत्रे महाघोरे स वसेद् द्विचतुर्युगम्।
अयोनौ च वियोनौ च पशुयोनौ च यो नरः ॥९३
त्यजेद्रेतो महापापी स रेतोभोजनं लभेत्।
वसाकूपं ततः प्राप्य स्थित्वा दिव्याब्दसप्तकम् ॥९४
रेतोभोजी भवेन्मर्त्यः सर्वलोकेषु निन्दितः।
उपवासदिने राजन्दन्तधावनकृन्नरः ॥९५
स घोरं नरकं याति व्याघ्रपक्षं चतुर्युगम्।

य. स्वकर्मपरित्यागी पाषण्डीत्युच्यते बुधैः ॥६६
तत्सङ्गकृतमोघ स्यात्तावुभावतिपापिनो।
कल्पकोटिसहस्रेषु प्राप्नुतो नरका क्रमान् ॥६७
देवद्रव्यापहर्त्तारो गुरुद्रव्यापहारका ।
ब्रह्महत्याव्रतसम दुष्कृत भुञ्जते नृप ॥६८

जो राजा अपनी प्रजा से अधिक कर खीच लिया करता है वह अपनी एक हजार पुश्त तक पाँच कल्प पर्यन्त नरक की यातनायें भोगा करता है ।६१॥जो ब्राह्मणो के ग्राम पर अधिक कर लगाने की या कर मे वृद्धि करन की सम्मति एव अनुमति दिया करता है उसको ऐसा ही समझ लेना चाहिए कि हजारो ही ब्रह्महत्या कर चुका है ॥६२॥ इस महा पाप का यह परिणाम होता है कि वह महान घोर काल सूत्र नरक मे चतुर्युगा की दो कडियो तक पडा रहता है। जो गमन के अयोग्य पुत्र वधू आदि नारियो की योनि-अयोनि म अथवा अन्य वर्ण की योनि-वियोनि मे या किसी पशु की योनि मे अपना वीर्यपात किया करता है व महा पापी नरक म वीर्य का खाया करता है। इसके पश्चात् चर्बी के गर्त म सात दिव्य वर्षों तक पडा हुआ वीर्य भक्षण किया करता है और इसकी लोक मे भी सब निन्दा किया करते हैं। हे राजन्! जो जो मनुष्य उपवास के दिन दन्त धावन (दाँतुन) किया करता है वह व्याघ्र भक्ष चौयुगी तक परम घोर नरक मे जाकर गिरा करता है जो अपन कर्त्तव्य कर्म का परित्याग कर दिया करता है विद्वज्जन उसको पाखण्डी कहा करत हैं ॥६३ ६६॥ जो पाखण्डी पुरुष की सगति किया करता है वह म्लेच्छ कहा जाया करता है और दोनो ही अति पापी हैं जो कि दश सव कल्पो तक क्रमण सभी नरको म वास करते हुए यातनायें भोगा करते हैं ॥ ६७ ॥ हे नृप! जो मनुष्य देवद्रव्य या गुरुद्रव्य का अपहरण किया करते हैं वे ब्रह्म हत्यारे के ही समान पाप के भागी होते हैं ॥६८॥

अनाथधनहर्त्तारो ह्यनाथ ये द्विषन्ति च ।
कल्पकोटिसहस्राणि नरके ते वसन्ति च ॥६६
स्त्रीशूद्राणा समीपे तु ये वेदाध्ययने रता ।
तेषा पापफल वक्ष्ये शृणुष्व सुसमाहित ॥१००
अध शीर्षोर्ध्वपादाश्च कीलिता स्तम्भकद्वये ।
धूम्रपानरता नित्य तिष्ठन्त्याब्रह्मवत्सरम् ॥१०१
जले देवालये वापि यस्त्यजेद्देहज मलम् ।
भ्रूणहत्यासम पाप सप्राप्नोत्यतिदारुणम् ॥१०२
दन्तास्थिकेशनखरान्ये त्यजन्त्यमरालये ।
जले वा भुक्तशेष च तेषा पापफल शृणु ॥१०३
प्रासप्रोता हलैर्भिन्ना आर्त्तरावविराविण ।
अत्युष्णतैलपाकेऽतितप्यन्ते भृशदारुणे ॥१०४

जो पुरुष किसी अनाथ का द्रव्य अपहृत किया करता है और अनाथ से द्वेष किया करते है वे करोड़ो हजारो कल्पो तक नरको मे सडा करते हैं ॥६६॥ जो पुरुष स्त्रियो अथवा शूद्रो के निकट वेदो के अध्ययन मे परायण रहा करते हैं उनको जो फल प्राप्त होता है उसे आप सावधानता के साथ श्रवण करिये ॥१००॥ वे लोग ब्रह्मा के एक दिव्य वर्ष पर्यन्त नीचे की ओर मस्तक और ऊपर की ओर टागे करके दो खम्भो के बीच मे टाँग दिये जाया करते हैं और कीलें ठोक दी जाया करती है। उस समय मे नीचे का धुँआ उनको बरबश पीना पडता है ॥१०१॥ जो मनुष्य देवालय मे या किसी जलाशय मे अपने मल का त्याग किया करता है उसको भ्रूण हत्या का महान् पाप एव परम दारुण पाप हुआ करता है ॥१०२॥ जो मनुष्य किसी भी देवता के आलय मे अथवा किसी जलाशय मे दाँत, हड्डी, केश, नाखून अथवा भोजन मे बचे हुए उच्छिष्ट अन्न को डाल दिया करते हैं उनका जो पाप का फल होता है उसको भी आप मुझसे श्रवण करिए ॥ १०३ ॥

इन पापियो को भालो से छेदे जाते हैं, हलो से भेदित किया जाता है और अत्यन्त घोर उष्ण खौलते हुए तैल मे डाल दिया जाता है जिसकी वेदना से वे चीखा करते हैं ।।१०४।।

कुर्वन्ति दु खसतप्तास्ततोऽन्येपु व्रजन्ति च ।
ब्रह्म सहरते यस्तु गन्धकाष्ठ तथैव च ।।१०५
स याति नरक घोर यावदाचन्द्रतारकम् ।
ब्रह्मस्वहरण राजन्निहामुत्र च दु खदम् ।।१०६
इह सपद्विनाशाय परत्र नरकाय च ।
कूटसाक्ष्य वदेद्यस्तु तस्य पापफल शृणु ।।१०७
स याति यातना सर्वा यावदिन्द्राश्चतुर्दश ।
इह पुत्राश्च पौत्राश्च विनश्यन्ति परत्र च ।।१०८
रौरव नरक भुड् क्ते ततोऽन्यानपि च क्रमात् ।
ये चातिकामिनो मर्त्या ये च मिथ्याप्रवादिन ।।१०९
तेषा मुखे जलौकास्तु पूर्यन्ते पन्नगोपमा ।
एव षष्टिसहस्राब्दे तत क्षाराम्बुसेचनम् ।।११०
ये वृथामासनिरतास्ते यान्ति क्षारकर्दमम् ।
ततो गर्तेनिपात्यन्तो मरुत्प्रपतन यथा ।।१११

इसी भाँति परम दुःख से सन्तप्त होते हुए फिर दूसरे नरकों में जाकर पड़ा करते हैं। जो शब्द ब्रह्म (वेद) और सुगन्धित काष्ठ (चन्दनादि) की चोरी करता है वह महा पापी पुरुष जब तक चन्द्र, सूर्य संसार में स्थित रहते हैं तब तक नरकों में पड़ा रहा करता है। हे राजन् ! ब्राह्मण के धन का हरण करने से इस लोक और परलोक दोनों में ही दुःख पाया करता है ।।१०५।१०६।। इसका तात्पर्य यह है कि इस लोक में उसकी सम्पत्ति नष्ट हो जाती है और परलोक में उसे नरक प्राप्त हुआ करता है। जो झूठी गवाही दिया करता है उसके पाप का फल यही होता है कि उसको तब तक [illegible] सभी नरकों मे

आकर यातना भोगनी पडती हैं। इस लोक मे उसके पुत्र पौत्रादि सब नष्ट होजाया करते है और परलोक मे रौरव आदि नरको का कष्ट क्रमश भोगना पडता है ॥१०७ १०८॥ जो अधिक कामी और झूठे होते हैं इनके मुख मे साप के सदृश जोक डाल दी जाती है। इस रीति से साठ हजार वर्षो के पश्चात खारी जल उन पर छिडकवाया जाता है ॥११०॥ वृथा मास खाने वाले लोग क्षारकदम नाम वाले नरको मे डाले जाया करते है। वहाँ उनका बडे २ हाथी पछाड लगाते हैं और वायु धक्का दिया करता है ॥१११

तदन्तो भवमासाद्य हीनाङ्गा प्रभवन्ति च।
यस्त्वृतौ नाभिगच्छेत स्वस्त्रियं मनुजेश्वर ॥११२
स याति रौरव घोर ब्रह्महत्या च विन्दति।
अत्याचाररत दृष्ट्वा य शक्तो न निवारयेत् ॥११३
तत्पाप समवाप्नोति नरक तावुभावपि।
पापिना पापगणना कृत्वान्येभ्यो दिशान्त च ॥११४
अस्तित्वे तुल्यपापास्तो मिथ्यात्वे द्विगुणा नृप।
अपापे पातक यस्तु समारोप्य विनिन्दति ॥११५
स याति नरक घोर यावच्चद्रार्कतारकम्।
पापिना निन्द्यमानाना पापार्द्ध क्षयमेति च ॥११६
यस्तु व्रतानि सगृह्य असमाप्य परित्यज्येत्।
सोऽसिपत्रमनुभूयाति हीनाङ्गो जायते भुवि ॥११७
अन्यै सगृह्यमाणाना व्रताना विघ्नकृन्नर।
अतीव दुखद रौद्र स याति श्लेष्मभोजनम् ॥११८
न्याये च धर्मशिक्षाया पक्षपात करोति य।
न तस्य निष्कृतिर्भूय प्रायश्चित्तायुतैरपि ॥११९

इसके पश्चात इस ससार मे हीन अङ्ग वाले होकर ही जन्म लिया करते है। हे मनुजेश्वर! जो पुरुष ऋतुकाल मे भी अपनी स्त्री

से सङ्गम नही किया करता है वह रौरव नरक मे पडता है और उसको ब्रह्महत्या का भी पाप लगता है । जो सामर्थ्य रखने पर भी अत्याचार करने वाले को देखकर नही रोका करता है उसको भी पाप लगा करता है और वे दोनो ही नरक म गमन किया करते हैं । जो पापियो के पापो की गणना करके दूसरो को बताते जाते है वे पाप होने पर तो उनके ही बराबर पाप किया करते हैं और जो हे राजा ! मिथ्या ही दोष लगाया करते हैं उनको दुगुना पाप लगा करता है । जो बिना पाप वाले का पाप लगाकर उसकी बुराई किया करता है वह जबतक चन्द्र-सूर्य लोक म स्थित रहतहैं तबतक नरको का ही सेवन किया करता है । पापो का जो कीर्त्तन किया जाता है उससे पापियो का आधा पाप नष्ट हो जाया करता है ॥ ११२-११६ ॥ जो कोई भी मनुष्य किसी व्रत को प्रथम तो ग्रहण कर लेता है और पीछे उसको बिना पूर्ण हुए ही छोड दिया करता है वह मनुष्य असिपत्र वन नामक नरक म निवास किया करता है । वहा पर बहुत नरक की यातनाए भोगकर फिर इस ससार म विकलाङ्ग होकर जन्म ग्रहण किया करता है ॥११७॥ जो कोई व्रत को ग्रहण करने वाले दूसरे के व्रत म विघ्न डाल दिया करते हैं वह अधिक दुःख देने वाले महान् भयङ्कर श्लेष्म भोजन नाम वाले नरक म गमन किया करते हैं ।११८। जो न्याय तथा धर्म की शिक्षा म पक्षपात किया करता है उसका एक-दो क्या दश हजार भी प्रायश्चित करे तो भी उद्धार नहीं हुआ करता है ॥११९

अभोज्यभोजी सप्राप्य विड्भोज्य तु समायुतम् ।
ततश्चाण्डालयानौ तु गोमासाशी सदा भवेत् ।१२०
अवमान्य द्विजान्वाग्भिब्रह्महत्या च विन्दति ।
सर्वाश्च यातना भुक्त्वा चाण्डालो दशजन्मसु ॥१२१
विप्राय दीयमाने तु यस्तु विघ्न समाचरेत् ।
ब्रह्महत्यासम तेन कर्तव्य व्रतमेव च ॥१२२

अपहृत्य परस्पार्थं यः परेभ्यः प्रयच्छति ।
अपहर्त्ता तु निरयी यस्यार्थस्तस्य तत्फलम् ॥१२३
प्रतिश्रुत्याप्रदानेन लालाभक्ष व्रजेन्नरः ।
यतिनिन्दापारो राजन् शिलामात्रे प्रयाति हि ।१२४
आरामच्छेदिनो यान्ति युगानामेकविंशतिम् ।
श्वभोजनं ततः सर्वा भुञ्जते यातनाः क्रमात् ॥१२५
देवतागृहभेत्तारस्तडागाना च भूपते ।
पुष्पारामभिदश्चैव या गति यान्ति तच्छृणु ॥१२६

जो अभक्ष्य पदार्थो को खाया करता है वह दश सहस्र वर्षों तक विष्ठा खाया करता है और इस नरक यातना भोगने के पीछे भी गाय के माँस का भक्षण करने वाले चाडाल के घर मे जन्म लिया करता है ॥१२०॥ विप्रो का अपमान करने से ब्रह्महत्या लग जाती है और इस अपराध से वह समस्त नरको को भोगने के बाद चाडालो मे ही दश बार जन्म लिया करता है ॥१२१॥ ब्राह्मणो के दिये जाने वाले दान मे जो विघ्न उपस्थित किया करता है उसको भी एक ब्रह्महत्या करने वाले के तुल्य ही व्रत प्रायश्चित के लिये करने चाहिए ॥१२२॥ जो दूसरो का धन छीन कर दूसरो को दान देता हे वह अपहरण करने वाला नरकगामी हुआ करता है और जिसका वास्तव मे धन होता है उसको उस दान का पुण्य-फल प्राप्त हुआ करता है ॥ १२३ ॥ जो पहिले देने की प्रतिज्ञा करले और पीछे नही दे वह लालाभक्ष नाम वाले नरक मे गमन करता है और सन्यासियो की निन्दा करने वाला प्राणी पाषाण हो जाया करता है ॥१२४॥ अब हे राजन् ! जो देव मन्दिर, जलाशय और पुष्पित उद्यानो को नष्ट-भ्रष्ट किया करते हैं उनकी जो गति हुआ करती है उसके विषय मे भी मुझ से आप श्रवण करें ॥१२५॥ उद्यान को उजाड़ने वाले पापी को इक्कीस युग पर्यन्त कुत्ते खाया करते हैं। फिर जो महापातकी होते हैं वे प्रत्येक

नरक म एक-एक युग पर्यन्त रहा करते हैं । फिर वह क्रमश सभी नरको म भाग भोगा करते हैं ॥१२६॥

यातनास्वासु सुर्वासु पच्यन्ते वै पृथक् पृथक् ।
ततश्च विष्ठाकृमय कल्पानामेकविंशतिम् ॥१२७
ततश्चाण्डालयोनौ तु शतजन्मानि भूपते ।
ग्रामविध्वसकाना तु दाहकाना च लुम्पताम् ॥१२८
महत्पाप तदादेष्टु न क्षमोऽह निजायुषा ।
उच्छिष्टभोजिनो ये च मित्रद्रोहपराश्च ये ॥१२९
एतेषा यातनास्तीव्रा भवन्त्याचन्द्रतारकम् ।
उच्छिन्नापितृदेवेज्यावेदमार्गवहि स्थिता ॥१३०
पाषण्डा इति विख्यातास्तेषा वै सर्वयातना ।
एव बहुविधा भूप यातना पापकारिणाम् ॥१३१
तेषा तासा च सख्यान कर्तु नालमह प्रभो ।
पापाना यातनाना च धर्माणाचापि भूपते ॥१३२
सख्या निगदितु लोके क क्षमो विष्णुना विना ।
एतेषा सर्वपापाना धर्मशास्त्रविधानत ॥१३३

इन सभी नरको म वे पृथक्-पृथक् दुख भोगा करते हैं और पीछे इक्कीस कल्प तक विष्ठा के कीड़े हुआ करते हैं ॥१२७॥ हे राजन् ! इसके भी पीछे उनके सौ बार जन्म चाण्डाल योनि म हुआ करते हैं। जो ग्रामो के विध्वसक होते हैं या ग्रामो म आग लगा कर नष्ट-भ्रष्ट कर दिया करते हैं उनके पापो की सख्या इतनी अधिक होती है कि मैं अपनी पूरी आयु भी लगा दू ना भी उनके पापो की गणना नहीं कर सकता हूँ। जो सदा उच्छिष्ट भोजन करने वाले हैं और अपने मित्रो से ही द्रोह किया करते हैं उनको जब तक सूर्य शनि की स्थिति रहा करती है तभी तक नरको के कष्ट भोगने पड़ते हैं। जो

देव-यजन और पितृ तर्पण नहीं किया करते हैं तथा वेदोक्त मार्ग के विपरीत चला करते हैं वे महान् पाखण्डी कहे जाया करते है और उनको सभी तरह के नरको के कष्ट भोगने पडते है। हे राजन्! इस प्रकार के पाप करने वालो को अनेक प्रकार की यातनाये भोगनी पडा करती हैं ॥१३०।१३१॥ हे प्रभो! उन ऐसे पापियो और नरको की गणना मुझसे नहीं की जा सकती है। हे भूप! पापियो की, धर्मों की और नरको की गणना भगवान् विष्णु ही करने की शक्ति रखते है उनके बिना अन्य कौन कर सकता है? धर्म शासन के विधानानुसार प्रायश्चित करने पर पाप राशि नष्ट होजाया करती है ॥१३२।१३३॥

प्रायश्चित्तेषु चीर्णेषु पापराशि प्रणश्यति ।
प्रायश्चित्तानि कार्या ण समीपे कमलापते ॥१३४
न्यूनातिरिक्तकृत्याना सपूर्तिकरणाय च ।
गङ्गा च तुलसी चैव सत्सङ्गो हरिकीर्तनम् ॥१३५
अनसूया ह्यहिसा च सर्वेप्येते हि पापहा ।
विष्ण्वर्पितानि कर्माणि सफलानि भवन्ति हि ॥१३६
अनर्प्पितानि कर्माणि भस्मविन्यस्तहव्यवत् ।
नित्य नैमित्तिक काम्य यच्चान्यन्मोक्षसाधनम् ॥१३७
विष्णौ समर्पित सर्वं सात्त्विक सफल भवेत् ।
हरि भक्ति परा नृ णा सर्वपापप्रणाशिनी ॥१३८
सा भक्तिर्दशधा ज्ञेया पापारण्यदवोपमा ।
तामसी राजसैश्चैव सात्त्विकैश्च नृपोत्तम ॥१३९
यच्चान्यस्य विनाशार्थं भजन श्रीपतेर्नृप ।
सा तामस्यधमा भक्ति खलभावधारा यत ॥१४०

धर्मों की न्यूनाधिकता सागोपागता सम्पादन करने के लिये ये सभी प्रायश्चित भगवान् विष्णु की प्रतिमा के समीप मे ही करने

चाहिय । गङ्गा, तुलसी, सत्सगति, अनसूया, अहिंसा और श्री हरि भगवान् के नाम गुण और लीला-धामो की महिमा का कीर्त्तन ये सभी पापा का विनाश करने वाले होते हैं । जो कर्म सभी पापो का विनाश करने को किये जाते हैं, जो कर्म श्रीभगवदर्पण करने की बुद्धि से किये जाते हैं व ही साग सफल हुआ करते है और उनका फल भी पूर्ण होता है ॥१३४-१३६॥ जो कर्म भगवान की सेवा मे समर्पित किये जाते हैं वे सभी कृत कर्म राख मे हवि के होम के ही समान निष्फल हुआ करते हैं । नित्य कर्म, नैमित्तक कर्म, काम्य अनुष्ठान तथा अन्य मोक्ष के बन्धन स्वरूप सभी कार्य-कलाप श्री भगवान की सेवा मे ही सादर समर्पित कर देने पर परम सात्विक एव सफल हुआ करते हैं । श्री हरि की भक्ति मनुष्य के सम्पूर्ण पापा को भगा दिया करती है ॥१३७-१३८॥ हे राजन् ! दूसरे प्राणिया का विनाश करने के लिय श्री भगवान का भजन करना अत्यन्त तामसी भक्ति कही जाती है क्योकि इसमे हृदय के अन्दर दुष्टता का भाव निहित रहा करता है । हे भूपाल ! पापरूपी वन के लिये भगवान् की भक्ति दावानल की तरह ही हुआ करती है । यही हरि भक्ति सात्विक, राजस और तामस भेद से दश प्रकार की हुआ करती है ॥१३६।१४०॥

योऽर्च्चयेत्कैतवधिया स्वैरिणी स्वपति यथा ।
नारायण जगन्नाथ तामसी मध्यमा तु सा ॥१४१
देवपूजापरान्दृष्ट्वा मात्सर्याद्योऽर्चयेद्धरिम् ।
सा भक्ति पृथिवीपाल तामसी चोत्तमा स्मृता ।१४२
धनधान्यादिक यस्तु प्रार्थयन्नर्चयेद्धरिम् ।
श्रद्धया परया युक्त सा राजस्यधमा स्मृता ॥१४३
य सर्वलोकविख्यातकीर्तिमुद्दिश्य माधवम् ।
अर्चयेत्परया भक्त्या सा मध्या राजसी मता ॥१४४
सालोक्यादि पद यस्तु समुद्दिश्यार्चयेद्धरिम् ।
सा राजस्युत्तमा भक्ति कीर्तिता पृथिवीपते ॥१४५

यस्तु स्वकृतपापाना क्षयार्थं प्रार्चयेद्धरिम् ।
श्रद्धया परयोयेपेत. सा सात्त्विक्यधमा स्मृता ॥१४६
हरेरिद प्रियमिति शुश्रूषा कुरुते तु य ।
श्रद्धयासयुतो भूय सात्त्विकी मध्यमा तु सा ॥१४७

जो धूर्त्तता के साथ व्यभिचारिणी स्त्री अपने ही पति के समान जगत् के स्वामी श्री भगवान नारायण की अर्चना किया करता है वह मध्यम श्रेणी की तामसी भक्ति हुआ करती है ॥१४१॥ जो दूसरे लोगो को देव-यजन करते हुए देखकर मत्सरता के वशीभूत हो कर स्वय भी श्री भगवान का पूजन किया करते हैं वह भक्ति भी तामसी अवश्य है क्योकि मात्सर्य ही उसका महान दोष हुआ करता है किन्तु वह उत्तम श्रेणी की तामसी कही जाया करती है ॥१४२॥ धन-धान्यादि के लाभ की कामना रखकर परम श्रद्धा के साथ श्री हरि के चरणो की उपासना करना अत्यधम राजसी भक्ति कही जाया करती है ॥१४३॥ जो मनुष्य अपने हृदय मे ऐसी भावना रखता है कि मेरी कीर्ति सर्वत्र विस्तृत होकर फैल जावे और इसी उद्देश्य को लेकर भगवान की भक्ति भाव से पूजा किया करता है वह मध्यम श्रेणी की राजसी भक्ति हुआ करती है ॥१४४॥ हे पृथिवीपते ! जो सालोक्य मुक्ति आदि की उपलब्धि की इच्छा से श्री हरि की पूजा-अर्चा किया करता है वह उत्तम-कोटि की राजसी भक्ति कही जाया करती है ॥१४५॥ जो मनुष्य अपने इस जन्म के तथा पूर्वजन्मोर्जित समस्त सचित पापो के क्षय कराने के लिये परम श्रद्धा की भावना से श्री हरि का यजन किया करता है वह स्वार्थ की भावना हृदय मे भरी होने के कारण से अधम सात्त्विकी भक्ति होती है क्योकि भगवान् से कुछ अपना मनरथ पूर्ण करता है ॥१४६॥ भक्ति का करना श्री हरि को परम प्रिय लगा करता है यही समझकर उनकी प्रीति का सम्पादन कर कृपापात्र बनने की भावना से श्रद्धा पूर्वक उनकी सेवा

किया करता है वह मध्यम श्रेणी की सात्विक भक्ति कही जाया करती है ॥१४७॥

विधिवुद्धयाचयेद्यस्तु दासवच्छ्रीपतिं नृप ।
भक्तीना प्रवरा सा तु उत्तमा सात्विकी स्मृता॥१४८
महिमान हरेर्यस्तु किंचित्कृत्वा प्रियो नर ।
तन्मयत्वेन सन्तुष्ट सा भक्ति रुत्तमोत्तमा ॥१४६
अहमेव परो विष्णुर्मति सर्वमिद जगत् ।
इति य सनत पश्येत्ता विद्यादुत्तमोत्तमम् ॥१५०
एव दशधविा भक्ति ससारच्छेदकारिणी ।
तत्रापि सात्विको भक्ति सर्वकामफनप्रदा ॥१५१
तस्माच्छृणुष्व भूपाल ससारविजिगीषुणा ।
स्वकर्मणोऽविरोधेन भक्ति कार्या जनार्दने ॥१५२
य स्वधर्म परित्यज्य भक्तिमात्रेण जीवति ।
न तस्य तुष्यते विष्णुराचारेणैव तुष्यते ।१५३
सर्वागमानामाचार प्रथम परिकल्पते ।
आचारप्रभवो धर्मो धर्मस्य प्रभुरच्युत ॥१५४

हे नृप । शास्त्र सम्मत विधान को समझ कर अपने कर्त्तव्य का परिपालन करने के लिये दास का भाव लेकर उसी के समान श्रीपति की समाराधना किया करता है वह समस्त प्रकार की परमोत्तम सात्विकी भक्ति कही जाती है ॥ १४८ ॥ जो नर नारायण की महान् महिमा को हृदय म धारण करके उनका परम प्रिय दास बनकर तन्मय होता हुआ सदा सन्तुष्ट रहा करता है वही उत्तमोत्तम परम श्रेष्ठ भक्ति हुआ करती है ॥१४६॥ जो मैं स्वय ही परम विष्णु का स्वरूप हूँ जो कि मनुज के चोले मे रहकर ससार मे भ्रमण किया करता हूँ और यह सम्पूर्ण जगत मुझम ही व्याप्त है। इस रीति से जो सदा विचार किया करता है उसको परमोत्तम भक्ति समझना

चाहिए क्योंकि उसे सर्वदा ही विष्णु के स्वरूप का ध्यान बना रहा करता है और उसका दृष्टिकोण परम निश्चल होता है ।। १५० ।। ये दशो प्रकार की भक्ति चाहे तामस ही क्यो न हो इस ससार का समुच्छेद कर देने वाली हुआ करती है क्योंकि भगवान की भक्ति तो होती ही है । इनमे जो सात्त्विकी भक्ति होती है वह सम्पूर्ण कर्मो के स्वन: ही पुण्य फलो को प्रदान करने वाली हुआ करती है ।।१५१।। अतएव हे राजन् ! आप समाहित होकर सिद्धान्त की बात का श्रवण करिए । जो इस ससार यात्रा मे आकर अपनी पूर्ण विजय चाहता है उसका परम कर्त्तव्य है कि अपने वर्णाश्रम धर्म का पूर्ण पालन करते हुए उसे इस प्रकार से भगवान की भक्ति करनी चाहिए ।।१५२।। जो अपने वर्णाश्रम का परित्याग करके केवल भगवान की भक्ति का करना अपना कर्त्तव्य समझा करता है उस पर भगवान् पूर्णतया प्रसन्न नही हुआ करते हैं क्योंकि उसकी प्रसन्नता तो सर्वदा सदाचार से ही हुआ करती है ।।१५३।। इसका एक मात्र कारण यही है कि सभी शास्त्रो का सिद्धान्त यही है कि सर्व प्रथम धर्म आचार ही है । धर्म आचार से ही हुआ करता है और उस धर्म के स्वामी भगवान श्री विष्णु देव ही हैं ।।१५४।।

तस्मात्कार्या हरेर्भक्त. स्वधर्मस्याविरोधिनी ।
सदाचारविहीनाना धर्मा अप्यसुखप्रदा: १५५
स्वधर्महीना भक्तिश्चाप्यकृतैव प्रकीर्तिता ।
यत्तु पृष्टं त्वया भूयस्तत्सर्वं मदित मया ।।१५६
तस्माद्धर्मपरोभूत्वा पूजयस्व जनार्दनम् ।
नारायमणीयास सुखमेष्यसि शाश्वतम् ।१५७
शिव एव हरिः साक्षाद्धरिरेव शिव: स्वयम्
द्वयोरन्तरदृग्याति नरकान्कोटिश. पल. ।।१५८
तस्माद्विष्णुं शिव वापि मम वुद्ध्वा समर्चय ।

भेदकृद् दु:खमाप्नोति इह लोके परत्र च ॥१५६
तदर्थमहमायातस्त्वत्समीप जनाधिप ।
तत्ते वक्ष्यामि सुमते सावधानं निशामय ॥१६०
आत्मघातकपाप्मानोदग्धाः कपिलकोपतः ।
वसन्ति नरके ते तु राजंस्तव पितामहाः ॥१६१

अतएव भगवद्भक्त मानव का परम कर्त्तव्य यही है कि अपने वर्णाश्रम प्रयुक्त धर्म का किसी प्रकार से भी भूल कर भी विरोध न करे। ऐसी ही स्वधर्म विरुद्ध श्री हरि भगवान की भक्ति करनी चाहिये क्योकि जो सदाचार से विहीन पुरुष होते हैं वे यदि धर्म भी करते हैं तो वह दु खप्रद ही हुआ करता है ॥१५५॥ अपने धर्म का त्याग करके जो भगवान की भक्ति की जाया करती है उसका करना भी व्यर्थ ही माना जाता है। हे राजन्! आपने मुझ से जो भी कुछ प्रश्न किये थे उन सबका समाधान मैंने भली भांति कर दिया है ॥१५६॥ अतएव आप परम धर्म परायण रहते हुए अत्यन्त सूक्ष्म स्वरूप भगवान श्री नारायण जनार्दन का यजन करें तो आप निश्चय ही परम सुख को प्राप्त कर लेंग ॥१५७॥ भगवान् शिव साक्षात् श्री हरि का ही एक स्वरूप होता है और उसी भांति श्री हरि साक्षात भगवान् का ही स्वरूप हुआ करता है। वस्तुत. इन दोनो स्वरूप मे तात्त्विक रूप मे कोई भी भेद नही होता है। वैसे इनके रूपो मे ही भेद है जो दर-असल भेद नहीं होता है। इन दोनो के रूपों मे जो भी मूढ मानव भेद समझा करता है उस दुष्ट पुरुष को करोडो नरको की भीषण यातनाएँ सहन करनी पडती हैं ॥१५७॥ अतएव आपका परम कर्तव्य यही है कि शिव तथा विष्णु का समान ही समझकर पूजित किया करो। जो इन दोनो के स्वरूपों मे भेदभाव समझता है उनको इस लोक तथा परलोक में कहीं भी सुख प्राप्त न होकर केवल दुःख ही उठाना पड़ता है ॥१५८॥ हे राजन्! इस समय मे मैं जिस बात के लिये आपके

समीप मे उपस्थित हुआ हूँ उसको आप परम समाहित होकर श्रवण कीजिए ॥१६०॥ हे राजन् ! आपके साठ हजार पितामह भगवान् कपिल देव के कोपभाजन बनकर भस्म हो गये थे एवं अपने आत्मघात के पाप को भोगते हुए नरको मे पडे हुए हैं ॥१६१॥

तानुद्धर महाभाग गङ्गानयनकर्मणा ।
गङ्गा सर्वाणि पापानि नाशयत्येव भूपते ॥१६२
केशास्थिनखदन्ताश्च भस्मापि नृपसत्तम ।
नयति विष्णुसदनं स्पृष्टा गाङ्गेन वारिणा ॥१६३
यस्यास्थि भस्म वा राजन् गङ्गायां क्षिप्यते नरैः ।
स सर्वपापनिर्मुक्तः प्रयाति भवनं हरेः ॥१६४
यानि कानि च पापानि प्रोक्तानि तत्र भूपते ।
तानि सर्वाणि नश्यन्ति गङ्गाबिन्दुभिषेचनात् ॥१६५
इत्युक्त्वा मुनिशार्दूल महाराज भगीरथम् ।
धर्मात्मन धर्मराज सद्यश्चान्तर्दधे तदा ॥१६६
स तु राजा महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रार्थपारग ।
निक्षिप्य पृथिवीं सर्वां सचिवेषु ययौ वनम् ॥१६७
तुहिनाद्रौ ततो गत्वा नरनारायणाश्रमात् ।
पश्चिमे तुहिनाक्रान्ते शृङ्गे षोडशयोजने ॥१६८
तपस्तप्त्वानयामास गङ्गां त्रैलोक्यपावनीम् ॥१६९

हे महाभाग ! अब आप त्रिपथगा श्री गङ्गा देव नदी को यहाँ भूमण्डल मे लाने के कर्म मे प्रवृत्त हो जाइये और उन सब का उद्धार करिये। हे राजन् ! गङ्गा का जल सभी पापो का आमूल मूल विनाश कर दिया करता है ॥१६२॥ हे परम श्रेष्ठ भूपत ! यदि गङ्गा जल से मनुष्यो के केश अस्थि नाखून दांत या भस्म का थोडा सा भी स्पर्श हो जावे तो गङ्गा मे यह सामर्थ्य है कि उनको विष्णु लोक मे पहुँचा दिया करती है ॥१६३॥ जो बान्धव अपने मृत मनुष्य की अस्थियाँ या भस्म को गङ्गा के प्रवाह मे प्रक्षिप्त कर दिया करते हैं। वे पुरुष

समस्त पापो के समुदाय से मुक्ति पाकर सीधे विष्णुलोक मे चले जाया करते हैं ॥१६४॥ हे राजन् । मैंने आप के समक्ष मे जितने भी पापो का वर्णन किया है वे सभी पाप एक ही गङ्गाजल की बूँद के पड जाने पर नष्ट भ्रष्ट होजाया करते हैं ॥१६५॥ श्री सौनकजी ने कहा—हे मुनि शार्दूल नारद । धर्मराज ने परम धार्म्मिक राजा भगीरथ से ये वातें समाप्त करके तुरन्त ही वही पर अन्तर्धान होगये थे ॥१६६॥ उस समस्त शास्त्रो के अर्थों के ज्ञाता और पारगामी वह महान् बुद्धिमान राजा भगीरथ भूमण्डल के सम्पूर्ण शासन के भार को मन्त्रियो के लिय सौंप कर तपश्चर्या करने के लिये वन को चला गया था ॥१६७॥ वहाँ पर भगव न नरनारायण के आश्रम म पश्चिम दिशा की ओर हिम से समाच्छादित ६४ कोस के परिमाण वाले शिखर पर तपस्या करके त्रैलोक्य म व्याप्त रहने वाली पतित पावना गङ्गाजी को लेकर आया था ॥१६८ १६९॥

॥ भगीरथ द्वारा गंगाजी का लाना ॥

हिमवद्गिनरिमाद्य नि चकार महीपति ।
कथमानीतवान्गङ्गामेतन्मे वक्तुमर्हसि ॥१
भगीरथो महाराजो जटाचीरधरो मुने ।
गच्छन्हिमाद्रि तपसे प्राप्तो गोदावरीतटम् ॥२
तत्रापश्यन्महारण्ये भृगोराश्रममुत्तमम् ।
कृष्णसारसमाकीर्णं मातङ्गगणसेवितम् ॥३
भ्रमद्भ्रमरसघुष्ट कूजद्विहगसकुलम् ।
व्रजद्वराहनिकर चमरीपुच्छवीजितम् ॥४
नृत्यन्मयूरनिकर सारङ्गादिनिषेवितम् ।
[illegible] मुनिकन्याभिरादरात् ॥५

शालतालतमालाढ्य नूनहिन्तालमण्डितम् ।
।।६

वेदशास्त्रमहाघोपमाश्रम प्राविशद् भृगो ।।७
गृणन्त परम ब्रह्म वृत शिष्यगणैर्मुनिम् ।
तेजसा सूर्यसदृश भृगु तत्र ददर्श स ।।८

देवर्षि श्री नारद जी ने कहा— राजा भगीरथ ने हिमालय पर्वत पर पहुँच कर क्या किया था और वह किस रीति से गङ्गाजी को लाये थे —इसका स्पष्ट वर्णन मुझे करके कृपा कर सुनाइये ।।१।। श्री सनक जी ने कहा—हे मुनिवर ! जटाचीर धारी राजा भगीरथ हिमालय पर्वत पर तपस्या करने के लिए विचरण करते हुए, गोदावरी के तट पर पहुँच गये थे ।।२।। उस महावन मे भगीरथ नृप ने भृगु जी के परम श्रेष्ठ आश्रम का निरीक्षण किया था जहाँ पर कि कृष्णसार मृग और वाय हाथी भ्रमण कर रहे थे ।।३।। चारो आर मँडराते हुए भ्रमर गुञ्जार कर रहे थे—पक्षियो की चहचहाहट कानो को परम प्रिय पुनीत हो रही थी—इधर-उधर सूकरा के झुण्ड के झुण्ड घूम रहे थे और चमरी गाये अपनी श्वेत पूँछो को हिला रही थी ।।३-४।। मयूरो का वहाँ पर नृत्य हो रहा था ।)सारङ्ग (पहीहा) बोल रहे थे और वहाँ पर मुनि कन्याओ के द्वारा सीचे गये पौधे जो बडे प्रेम से समारोपित किये गये थे बडे होकर परम शोभायमान दिखाई दे रहे थे ।।५।। वह परम शुभ आश्रम साखू, ताड तथा तमाखू के पेड पौधो से समन्वित था एव शहतूत, हिताल (बाड वृक्ष का ही एक भिन्न रूप) के वृक्षो की उसमे बहुत अधिक शोभा हो रही थी । जूही, कनेर, चमेली, चम्पा और अश्वत्थ के वृक्ष एव लताओ से वह आश्रम परम विभूषित हो रहा था ।। ६ ।। वहा पर चारो आर विकसित पुष्पो की अद्भुत छटा फैली हुई थी । इधर-उधर ऋषियो का समुदाय निवास

किया करता था। सब ओर वेदो के मन्त्रो के उच्चारण का बडा भारी घोष सुनाई दे रहा था। उस आश्रम मे राजा भगीरथ ने भृगुमुनि का दर्शन किया था जो परम ब्रह्म का विस्तृत वर्णन करते हुए चारो ओर मे शिष्यो से घिरे हुए थे और तेज मे सूर्य के समान दिखलायी दे रहे थे ॥७८॥

प्रणनामाय विप्रेन्द्र पादसग्रहणादिना।
आतिथ्य भृगुरप्यस्य चक्रे सन्मानपूर्वकम् ॥६
कृतातिथ्यक्रियो राजा भृगुणा परमर्षिणा।
उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा विनयान्मुनिपुङ्गवम् ॥१०
भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वशास्त्रविशारद।
पृच्छामि भवभीतोऽह नृणामुद्धारकारणम् ॥११
भगवास्तुष्यते येन कर्मणा मुनिसत्तम।
तन्ममाख्याहि सर्वज्ञ अनुग्राह्योऽस्मि ते यदि ॥१२
राजस्तवेप्सिता ज्ञाता त्व हि पुण्यवता वर।
अन्यथा स्वकुल सर्वं कथमुद्धर्तु महर्षि ॥१३
यो वा को वापि भूपाल स्वकुल शुभकर्मणा।
उद्धर्तुकामस्ता विद्यान्नररूपधर हरिम् ॥१४

राजा भगीरथ ने उस मह महर्षि प्रवर के चरणो का स्पर्श करके सादर प्रणाम किया था। भृगु मुनि ने भी बहुत ही सम्मान के साथ राजा का अतिथि सत्कार एव आदर किया था ॥६॥ महामुनि भृगु से आतिथ्य ग्रहण करके राजा भगीरथ को मुनिवर से सविनय एव साञ्जलि प्रार्थना की थी ॥१०॥ राजा भगीरथजी ने कहा— हे समस्त शास्त्रो के महान पण्डित भगवन। इस महान भयङ्कर से भयभीत हुआ मैं कुछ मानवो के उद्धार का उपाय आप से पूछने की इच्छा रखता हू ॥११॥ हे सवज्ञ। आप तो मुनियो मे परम श्रेष्ठ है। यदि मुझ से रकपर अपना अनुग्रह करना चाहते हैं तो जिस कर्म के करने

पर भगवान को प्रसन्नता होवे उस कलाप का वर्णन मेरे समक्ष मे करने की कृपा कीजिए ।। १२ ।। श्री भृगु मुनि ने उत्तर दिया—हे राजन् ! आपका हार्दिक मनोरथ मैं समझ गया हूँ। आप तो पुण्यात्मक पुरुषो मे परम श्रेष्ठ पुरुष हैं अन्यथा अपने सम्पूर्ण कुल के उद्धार करने का विचार ही कैसे करते ? ।।१३।। हे भूमिपते ! जो आपके शुभ कर्म के द्वारा अपने कुल के उद्धार करने की इच्छा करे वह भले ही कोई भी क्यो न हो, उसको मनुष्य के स्वरूप का धारण करने वाला साक्षात् श्री हरि ही समझ लेना चाहिए ।।१४।।

कर्मणा येन देवेशो नृणामिष्टफलप्रद ।
तत्प्रवक्ष्यामि राजेन्द्र शृणुष्व सुसमाहित ।।१५
भव सत्यपरो राजन्नहिंसानिरतस्तथा ।
सर्वभूतहितो नित्य मानृत वद वै क्वचित् ।।१६
त्यज दुर्जनससर्ग भज साधुसमागमम् ।
कुरु पुण्यमहोरात्र स्मर विष्णु सनातनम् ।।१७
कुरु पूजा महाविष्णोर्याहि शान्तिमनुत्तमाम् ।
द्वादशाष्टाक्षर मन्त्र जप श्रेयो भविष्यति ।।१८
सत्य तु कीदृश प्रोक्त सर्वभूतहिता मुने ।
अनृत कीदृश प्रोक्त दुर्जनाश्चापि कीदृशा ।।१९
साधव कीदृशा प्रोक्तास्तथा पुण्य च कीदृशम्
स्मर्तव्यश्च कथ विष्णुस्तस्य पूजा च कीदृशी ।।२०
शान्तिश्च कीदृशी प्रोक्ता को मन्त्रोऽष्टाक्षरो मुने ।
को वा द्वादशवर्णश्च मुने तत्त्वार्थकोविद ।।२१

हे राजेन्द्र प्रवर ! देवेश्वर भगवान विष्णु जिस कर्म से मानवो को अभीष्ट फल प्रदान किया करते हैं उसको ही मैं अब आपको बतलाता हूँ आप परम समाहित होकर उसका श्रवण करिये ।।१५।। हे राजन् ! ... करते हैं उनमें मैं आपको बत-

लाता हूँ—आप सदा सत्य भाषण करो, पूर्णत अहिंसा व्रत का परिपालन करो, सर्वदा समस्त प्राणियो के हित का सम्पादन करो और भूल कर भी किसी भी दशा मे झूठ मत बोलो ॥१६॥ दुष्ट दुर्जन पुरुषो की सङ्गति कभी मत करो और सदा सत्पुरुषो का सङ्ग करते रहा करो और अहर्निश परम पुण्यमय सत्कर्मों को करते हुए सत्य एव सनातन विष्णु भगवान का भजन करते रहना चाहिए ॥१७॥ महा विष्णु भगवान का अर्चन करने से परमोत्तम शान्ति का लाभ होगा तथा द्वादशाक्षर (ओ नमो भगवते वासुदेवाय) एव अष्टाक्षर (श्री कृष्ण शरणं मम) मन्त्र का जाप किया करो । इसमे आपका परम कल्याण होगा ॥१८॥ राजा भगीरथ ने कहा—हे मुनिवर ! सत्य का क्या लक्षण होता है ? समस्त भूतो (प्राणियो) का हित किसको कहा जाता है ? मिथ्या किसका नाम है और दुर्जनो का स्वरूप कैसा होता है ? ॥ १९ ॥ साधु तथा पुण्य किसको कहा जाया करता है ? पुण्य का वास्तविक स्वरूप क्या हुआ करता है ? भगवान विष्णु का स्मरण किस रीति से किया जाता है ? तथा उन भगवान का अर्चन किस विधान से किया जाता है ॥ २० ॥ शान्ति का सच्चा स्वरूप क्या बतलाया गया है ? अष्टाक्षर मन्त्र कौन-सा है ? हे पत्ता के अर्थों के जानने वाले महा पण्डित ! हे मुनिवर ! आप यह भी बतलाइये कि वह द्वादशाक्षर मन्त्र कौन-सा है ॥२१॥

कृपा कृत्वा मयि परा सर्वं व्याख्यातुमर्हसि ।
साधु साधु महाप्राज्ञ तव बुद्धिरनुत्तमा ॥२२
यत्पृष्टोऽहं त्वया भूप तत्सर्वं प्रवदामि ते ।
यथार्थकथनं यत्तत्सत्यमाहुर्विपश्चितः ॥२३
धर्माविरोधतो वाच्यं तद्धि धर्मपरायणै ।
देशकालादि विज्ञाय स्वयमप्याविरोधतः ॥२४
यद्वच प्रोच्यते सद्भिस्तत्सत्यमभिधीयते ।
सर्वेषामेव जंतूनामक्लेशजननं हि तत् ॥२५

अहिंसा सा नृप प्रोक्ता सर्वकामप्रदायिनी ।
कर्मकार्यसहायत्वमकार्यपरिपन्थिता ॥२६
सर्वलोकहितत्व वै प्रोच्यते धर्मकोविदै ।
इच्छानुवृत्तकथन धर्माधर्माविवेकिन ॥२७
अनृत तद्धि विज्ञय सर्वश्रे योविरोधि तत् ।
ये लोके द्वे षिणो मूर्खा कुमार्गरतबुद्धय ॥२८

हे महामुने ! इन सभी मेरे प्रश्नों की आप कृपा कर विशद व्याख्या कीजिए । श्री भृगुमुनि ने कहा— हे महान् बुद्धि वाले राजन् ! बहुत ही अच्छी बातें आपने जनहित करने वाली पूछी हैं क्योंकि आप आपकी बुद्धि तो बहुत ही श्रेष्ठ है ॥ २२ ॥ हे राजन् ! आपने इस समय जो भी कुछ पूछा है । उसका मैं यथातक वर्णन करता हूँ–विद्वान पुरुष जो यथार्थ कहा जाता है उसको ही स य कहा करते हैं । सत्य वही है जिसका श्रवणकर मनुष्य सही बात को ठीक समझ जावे ।२३। उस सत्य को ऐसी रीति से धर्म मे तत्पर पुरुष को कहना चाहिए कि धर्म मे कोई भी विरोध न आवे । देश और काल को भी भली भाँति समझकर जिसमे कोई विरोध न होवे ऐसा जो वचन कहा जाता है उसी को सत्पुरुष सत्य वचन कहा करत हैं । जिसमे किसी प्राणी को कोई कष्ट नही पहुँचता है ।२४-२५। हे नृपोत्तम ! अहिंसा उसी का नाम है जिसमे समस्त कामनाएँ पूर्ण हो जाया करती हैं । सभी सत्कर्मों मे सहायता देना और कुत्सित कर्मों से दूर रहना ही धर्म म चतुर पुरुषो के द्वारा सर्व लोगो का हित कहा करते हैं । धर्म और अधर्म का कुछ भी विचार न कर विवेक रहित होकर स्वेच्छा पूवक कार्य करना ही झूठ है ॥२६-२७॥ इस झूठ से सभी कल्याणो का दरवाजा बन्द हो जाया करता है । जो इस जगत म द्वेष करने वाले लोग हैं तथा मूर्ख हैं इनकी मति सर्वदा बुरे मार्गों की ओर ही जाया करती है ॥२८॥

ते राजन्दुर्ज्जना ज्ञेया सर्वधर्मव हृष्कृता ।
धर्माधर्मविवेकेन वेदमार्गानुसारिण ॥२६
सर्वलोकहितासक्ता साधव परिकीर्त्तिता ।
हरिभक्तिकर यत्तत्सद्भिश्च परिरञ्जितम् ॥३०
आत्मन प्रीतिजनक तत्पुण्य परिकार्तितम् ।
सर्वं जगदिद विष्णुर्विष्णु सर्वस्य कारणम् ॥३१
अह च विष्णुर्यज्ज्ञान तद्विष्णुस्मरण विदु ।
सर्वदेवमयो विष्णुर्विधिना पूजयामि तम् ॥३२
इति या भवति श्रद्धा सा तद्भक्ति प्रकीर्त्तिता ।
सर्वभूतमयो विष्णु परिपूर्ण सनातन ॥३३
इत्यभेदेन या बुद्धि समता सा प्रकीर्त्तिता ।
समता शत्रुमत्रेपु वशित्व च तथा नृप ॥३४
यदृच्छालाभसतुष्टि सा शान्ति परिकीर्त्तिता ।
एते सर्वे समाख्यातास्तव सिद्धिप्रदा नृणाम् ॥३५

हे राजन् ! उन्ही पुरुषो को दुष्ट एव दुर्जन समझना चाहिए और ऐसे लोग समस्त धर्म कृत्यो से वहिष्कृत रहा करते हैं। जो पुरुष सदा धर्म एव अधर्म का विचार गहराई के साथ करके ही वेद प्रतिपादित मार्गों पर गमन किया करते हैं। सर्वदा सब प्राणियो का हित सम्पादन करने मे परायण रहा करते वे ही साधु पुरुष कहे जाया करते हैं, जिससे श्री हरि भगवान के चरणो की प्रीति बढती है और सज्जन जिससे परम प्रसन्नता प्राप्त करें और अपने हृदय मे भी जिसके करने मे प्रसन्नता उत्पन्न होती है उसी को पुण्य कहा जाया करता है। यह सम्पूर्ण विश्व भगवान विष्णु का ही एक व्यापक स्वरूप है और इस सब के भगवान विष्णु ही परम कारण हैं ॥२६-३१॥ मैं भी विष्णु का ही एक स्वरूप हूँ, ऐसा ज्ञान का होना ही विष्णु का स्मरण कहा जाया करता है। भगवान विष्णु तो सर्व देवमय हैं, मैं उनकी सविधि अर्चना

करूँ, इस प्रकार की श्रद्धा-भावना का समुत्पन्न होना ही भक्ति कही जाती है। परिपूर्ण सनातन भगवान विष्णु सर्वभूतमय होते हैं ॥३२-३३॥ इसी प्रकार की जो ये दया से शून्य बुद्धि है वही समता कही जाती है। हे राजन् शत्रु-मित्र में समता का व्यवहार रखना, इन्द्रियों को अपने वश में रखना, जो कुछ भी यहच्छया प्राप्त हो जावे उसी में सन्तुष्ट रहना शान्ति कही जाया करती है। ये सभी बातें, सिद्धान्त पूर्ण हैं और मनुष्यों को ये तपस्या की सिद्धि प्रदान करने वाली हुआ करती हैं जिनको मैंने अभी आपको बतलाया है ॥३४ ३५॥

समस्तपापराशीनां तरसा नाशहेतव. ।
अष्टाक्षर महामन्त्रं सर्वपापप्रणाशनम् ॥३६
वक्ष्यामि तव राजेन्द्र पुरुषार्थैकसाधनम् ।
विष्णोः प्रियकर चैव सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥३७
नमो नारायणायेति जपेत्प्रणवपूर्वकम् ।
नमो भगवते प्रोच्य वासुदेवाय तत्परम् ॥३८
प्रणवाद्यं महाराज द्वादशार्णमुदाहृतम् ।
द्वयो. सम फलं राजन्नष्टद्वादशवर्णयो ॥३९
प्रवृत्तौ च निवृत्तौ च साम्यमुद्दिष्टमेतयोः ।
शंखचक्रधर शान्त नारायणमनयमयम् ॥४०
लक्ष्मीसंश्रितवामाङ्कं तथाभयङ्कर प्रभुम् ।
किराटकुण्डलधर नानामण्डनशोभितम् ॥४१
भ्राजत्कौस्तुभमालाढ्य श्रीवत्साङ्कितवक्षसम् ।
पीताम्बरधर देव सुरासुरनमस्कृतम् ॥४२
ध्यायेदनादिनिधन सर्वकामफलप्रदम् ।
अन्तर्यामी ज्ञानरूपी परिपूर्णः सनातनः ॥४३

इन सब का परिपालन करने से शीघ्र ही सब पापों के समुदाय

का विनाश हो जाया करता है। अष्टाक्षर महामन्त्र सभी पापो का नाश कर देने वाला होता है ॥३६॥ हे राजन् ! यह महामन्त्र सभी पुरुषार्थों की प्राप्ति का एकमात्र साधन है और यह भगवान विष्णु को प्रिय बना देने वाला है तथा सभी सिद्धियों को प्रदान करने वाला है। उसे अब मैं आपको बतलाता हूँ ॥३७॥ "ॐ नमो नारायणाय", यह अष्टाक्षर मन्त्र है। इसका जाप करना चाहिए। "ॐ नमो भगवते वासुदेवाय", यह द्वादशाक्षर मन्त्र है। आठ और बारह अक्षरो से युक्त इन दोनों ही मन्त्रो का फल समान ही हुआ करता है ॥३८-३९॥ प्रवृत्ति और निवृत्ति मे इन उपर्युक्त दोनो मन्त्रो की समता बतलाई गयी है। सांसारिक कर्मों से अनुराग सहित सम्पादन करने को प्रवृत्ति कहा जाता है और सभी लौकिक कार्यों से निर्वेद प्राप्त कर उनसे दूर हटने को निवृत्ति कहा करते हैं। अब भगवान के ध्यान करने के लिए उनके स्वरूप का वर्णन किया जाता है—शङ्ख-चक्र धारण करने वाले, परम शान्त स्वरूप, अनामय अर्थात् परमानन्दमय, अपने बाये भाग मे सर्वदा लक्ष्मी देवी को साथ रखने वाले, किरीट और कुण्डलो को धारण करने वाले, सदा अभय का प्रदान करने वाले, विविध बहु मूल्य भूषणो से विभूषित, दमकने वाली कौस्तुभ मणियो की माला को धारण करने वाले, श्री वत्स के चिह्न से युक्त वक्षस्थल वाले, पीताम्बर को पहिने हुए, सब देवासुरो के द्वारा वन्द्यमान, अनादि निधन और सब कामनाओ को परिपूर्ण करने वाले भगवान विष्णु हैं—ऐसा ही उनका ध्यान करना चाहिए। ये भगवान विष्णु अन्तर्यामी हैं, ज्ञान स्वरूप हैं, परिपूर्ण एवं सनातन है ॥४०-४३॥

एतत्सर्वं समाख्यातं तत्तु पृष्टं त्वया नृप ।
स्वस्ति तेऽस्तु तपःसिद्धिं गच्छ लब्धुं यथासुखम् ॥४४
एवमुक्तो महीपालो भृगुणा परमर्षिणा ।
परमां प्रीतिमापन्नः प्रपेदे तपसे वनम् ॥४५

।५३। देवों ने प्रार्थना की थी—हे भगवान आप तो अपने स्मरण करने वालों की सभी पीडाओं को दूर कर दिया करते हैं । आप सर्वोपरि विराजमान परमात्मा हैं। आप अपने स्वभाव से परम विशुद्ध हैं और सब प्रकार से परिपूर्ण हैं । इस जगत के एक मात्र आप ही स्वामी हैं। ऐसे भगवान श्री विष्णु की सेवा मे हम सबका सादर एवं सविनय प्रणाम समर्पित है। आपके स्वरूप का ज्ञान करने वाले मनीषी आपको ज्ञानात्मक ही कहा करते हैं ॥५४॥ योगी लोग जिस महान आत्मा वाले का हमेशा ध्यान किया करते है और जो स्वेच्छा से ही शरीर धारण करके देवगणो का काय सफल किया करते हैं। यह सम्पूण ससार जिनका ही स्वरूप है तथा इस समस्त विश्व के जो आदि स्वामी हैं उन महा पुरुष की सेवा मे हम सब नमस्कार करते है ॥५५॥ जिनके परम पावन नामो का सकीर्त्तन करने से दुष्टों के सब पापों का नाश होजाया करता है उन्ही परम पूजनीय महान पुराण पुरुष भगवान विष्णु को हम लोग अपने अर्थ की सुसिद्धि प्राप्त करने के लिये प्रणाम करते हैं ॥५६

यत्तेजसा भान्ति दिवाकराद्या नातिक्रमत्यस्य कदापि शिक्षा ।
कालात्मक त त्रिदशाधिनाथ नमामहे वै पुरुषार्थरूपम् ॥५७
जगत्करोऽप्यब्जभवोऽस्ति रुद्र पुनाति लोकाञ् श्रुतिभिश्च विप्रा ।
तमादिदेव गुणसन्निधान सर्वोपदेष्टारमिता शरण्यम् ॥५८
वर वरेण्य मधुकैटभारि सुरासुराभ्यर्चितपादपीठम् ।
सद्भक्तसकल्पितसिद्धिहेतु ज्ञानैकवेद्य प्रणता स्म देवम् ॥५९
अनादिमृध्यान्तमज परेशमनाद्यविद्यध्यतमोविनाशम् ।
सच्चित्परानन्दघनस्वरूप रूपादिहीन प्रणता स्म देवम्॥६०
नारायण विष्णुमनन्तमीश पीताम्बर पद्मभवादिसेव्यम् ।
यज्ञप्रिय यज्ञकर विशुद्ध नता स्म सर्वोत्तममव्यय तम् ॥६१

इति स्तुतो महाविष्णुर्देवैरिन्द्रादिभिस्तदा ।
चरित तस्य राजर्षेर्देवाना सन्यवेदयत् ॥६२
ततो देवान्नमाश्वास्य दत्वाभयमनञ्जन. ।
जगाम यत्र राजर्षिस्तपस्तपति नारद ॥६३

सूर्य आदि समस्त ग्रह जिनके तेज के द्वारा ही प्रकाश प्रदान किया करते हैं और आज्ञा एव शिक्षा का कभी उल्लघन नही किया करते हैं उन्ही कलारूप देवो के प्रभु परम पुरुषार्थ स्वरूप भगवान विष्णु की सेवा मे हमारा प्रणाम सादर निवेदित किया जाता है ।।५७।। जो ब्रह्मा का स्वरूप धारण कर इस विश्व की रचना किया करते हैं । श्री रुद्रदेव के स्वरूप मे अवस्थित होकर इस जगत का सहार किया करते हैं और विप्र के स्वरूप मे आकर सब लोगो को श्रुतियो के द्वारा पवित्र करते हैं उन्ही आदि देव गुणो के सन्निधान, सबको उपदेश देने वाले और शरण करने के योग्य भगवान् विष्णु की हम शरणागति लेते हैं ।।५८।। परम श्रेष्ठ शिरोमणि, मधु और कैटभ दैत्यो के विनाश करने वाले, देवासुरो के द्वारा पूजित चरण, अपने भक्तो के मनोरथो की सिद्धि के कारण स्वरूप और केवल ज्ञान के द्वारा ही जानने योग्य भगवान विष्णु देव को हम सब प्रणाम करते हैं ।।५९।। जो आदि मध्यान्त से रहित है, जिनका जन्म कभी नही होता है, जो परम परेश आदि पुरुष और जो अविद्या के अन्धकार का नाश करने वाले तथा स्वरूप विहीन, सच्चिदानन्द हैं उन भगवान विष्णु देव की सेवा मे हम सब लोगो का प्रणाम है ।।६०।। जो साक्षात् नारायण, ईश, अनन्त विष्णु, पीताम्बर धारण करने वाले वाले,ब्रह्मादि सब देवो के वन्दनीय, यज्ञप्रिय, यज्ञकर, परम विशुद्ध स्वरूप, सर्व शिरोमणि और अविनाशी हैं उन देवेश्वर की सेवा मे हम सबका प्रणाम है ।।६१।। इस भांति इन्द्रादि सब देवताओ ने भगवान का स्तवन करके फिर प्रार्थना की थी तो उन्होने राजर्षि भगीरथ के परम चरित्र का

वर्णन किया था और हे नारद ! उस समय मे भगवान विष्णु ने समस्त देवो को समास्वासन दिया था । जहाँ पर राजर्षि भगीरथ तपश्चर्या कर रहे थे वहा भगवान् स्वय पहुँच गये थे ॥६२।६३

शखचक्रधरो देव सच्चिदानन्दविग्रह ।
प्रत्यक्षतामगात्तस्य राज्ञ सर्वजगद्गुरु ॥६४
त दृष्ट्वा पुण्डरीकाक्ष भाभासितदिगन्तरम् ।
अतसीपुष्पसकाश स्फुरत्कुण्डलमण्डितम् ॥६५
स्निग्धकुन्तलवक्त्राब्ज विभ्राजन्मुकुटोज्ज्वलम् ।
श्रीवत्सकौस्तुभधर वनमालाविभूषितम् ॥६६
दीर्घबाहुमुदाराग लोकेशार्जितपकजम् ।
नमामि दण्डवद् भूमौ भूपतिर्नम्रकधर ॥६७
अत्यन्तहर्षसपूर्ण सरोमाञ्च सगद्गद ।
कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति श्रीकृष्णेति समुच्चरन् ॥६८
तस्य विष्णु प्रसन्नात्मा ह्यन्तर्यामी जगद्गुरु ।
उवाच कृपयाविष्टो भगवान्भूतभावन ॥६९
भगीरथ महाभाग तवाभीष्ट भविष्यति ।
आगमिष्यन्ति मल्लोक तव पूर्वपितामहा ॥७०

इस सम्पूर्ण जगत् के गुरु सच्चिदानन्द भगवान् विष्णु राजा भगीरथ के समक्ष म शख-चक्र आदि को धारण कर प्रकट होगये थे वह राजर्षि भगीरथ ने अपनी दिव्य प्रभा से दिशाओ को प्रकाशित करते हुये जिस समय मे भगवान के अलसी के पुष्प के समान कान्ति वाले हिलत हुए कुण्डलो से विभूषित परम स्निग्ध और घुँघराले केशो से शोभायमान मुख कमल वाले, ददीप्यमान समुज्वल मुकुट को मस्तक पर धारण करने वाले, वक्षस्थल पर कौस्तुभ मणि और श्रीवत्स को धारण किये हुए, वनमालाधारी, परम विशाल भुजाओ से युक्त, लोक-

पालो द्वारा वन्द्यमान, उदार अङ्गो से शोभित पुण्डरीकाक्ष भगवान का दर्शन किया तो वे अपना शिर झुका कर भगवान के चरणो में दण्डवद् प्रणाम करने लगे थे ॥६५—६७॥ उस समय में भगवान का दर्शन प्राप्त करके राजा भगीरथ के मन मे अत्यधिक आह्लाद हो रहा था। उनका प्रत्येक रोम हर्षोल्लास के कारण खड़ा हो गया था, उनकी वाणी गद्गद् हो गई थी वे केवल मुख से श्रीकृष्ण ही श्रीकृष्ण उच्चारण करने लग गये थे ॥६८॥ भगवान विष्णु के हृदय मे भक्त की भाव विह्वल दशा को देखकर बहुत ही प्रसन्नता हुई और उस समय मे अन्तर्यामी सब प्राणियो पर कृपा करने वाले जगद्गुरु राजा भगीरथ से कहने लगे थे ॥६९॥ भगवान ने कहा—हे महाभाग ! भगीरथ ! तेरा हार्दिक मनोरथ पूर्ण होगा और तेरे पूर्वजो का उद्धार होकर वे सब मेरे लोक को प्राप्त होजायेंगे ॥७०

मम मूर्त्यन्तर शम्भु राजन्स्तोत्रै स्वशक्तित ।
स्तुहि ते सकल काम स वै सद्य करिष्यति ॥७१
यस्तु जग्राह शशिन शरण समुपागतम् ।
तस्मादाराधयेशान स्तोत्रै स्तुत्य सुखप्रदम् ॥७२
अनादि निधनो देव सर्वकाम फलप्रद ।
त्वया सपूजितो राजन्सद्य श्रेयो विधास्यति ॥७३
इत्युक्त्वा देवदेवेशो जगता पतिरच्युत ।
अन्तर्दधे मुनिश्रेष्ठ उत्तस्थौ सोऽपि भूपति ॥७४
किमिद स्वप्न आहोस्वित्सत्य साक्षाद् द्विजोत्तम ।
भूपतिर्विस्मय प्राप्त किं करोमीति विस्मित ॥७५
अथान्तरिक्षे वागच्चै प्राह त भ्रान्तचेतसम् ।
सत्यमेतदिति व्यक्त न चिन्ता कर्तु मर्हसि ॥७६
तन्निशम्यावनीपाल ईशान सर्वकारणम् ।
समस्तदेवताराजमस्तौषीद्भक्तितत्पर ॥७७

भगवान ने कहा—हे राजन् ! यह शम्भु मेरी ही दूसरी मूर्ति हैं। अब तुमको चाहिए कि उन शम्भु भगवान का स्तवन अपनी शक्ति के अनुसार करो। वे तुम्हारे सभी मनोरथों को पूर्ण अवश्य ही कर देंगे क्योंकि शम्भु बहुत ही दयालु हैं ।।७१।। भगवान् शम्भु ने शरण मे समागत चन्द्र को ग्रहण किया है। अब उन्ही स्तुत्य भगवान परम सुहृदायक ईश्वर की स्तोत्रो के द्वारा स्तुति करो ।।८२।। जन्म-मरण से रहित सब मनोरथो को पूर्ण करने वाले भगवान शङ्कर की हे राजा ! यदि तुम अर्चना करोगे तो वे भोलेनाथ परम कृपालु प्रभु अति शीघ्र आपका कल्याण कर देंगे ।।७३।। हे मुनि शिरोमणि ! देवो के भी देव भगवान जगत के स्वामी अच्युत राजा भगीरथ से यह कहकर वहीं पर अन्तर्हित हो गये थे। तब राजा भगीरथ उठकर खड़ा हो गया था ।।७४।। उस समय मे राजा ने मन मे विचार किया था कि क्या यह मेरा स्वप्न था अथवा सर्वथा सत्य घटना घटित हुई है। मैं इस समय मे क्या करूँ। राजा भगीरथ को उस समय में ऐसा विस्मय-सा हो रहा था ।।७५।। उसी समय में इस भ्रान्ति से पूर्ण राजा को आकाशवाणी सुनाई दी थी कि यह सब स्पष्टतया सत्य है, तुमको अब कुछ भी मनमे चिन्ता नही करनी चाहिये ।।७६।। इस प्रकार से उस नभोवाणी के द्वारा श्रवण करके राजा भगीरथ ने सब के कारण स्वरूप और सब देवो मे महान भगवान शङ्कर की स्तुति करने में भक्ति भाव से सलग्न हो गये थे ।।७६

प्रणमामि जगन्नाथं प्रणतार्तिप्रणाशनम् ।
प्रमाणागोचरं देवमीशानं प्रणवात्मकम् ।।७८
जगद्रूपमजं नित्यं सर्गस्थित्यंतकारणम् ।
विश्वरूपं विरूपाक्षं प्रणतोऽस्म्युग्ररेतसम् ।।७६
यम ।

समामनन्ति योगीन्द्रास्त वन्दे पुष्टिवर्धनम् ॥८०
नमो लोकाधिनाथाय वञ्चते परिवञ्चते ।
नमोऽस्तु नीलग्रीवाय पशूना पतये नमः ॥८१
नमश्चैतन्यरूपाय पुष्टाना पतये नम ।
नमोऽकल्पप्रकल्पाय भूताना पतये नम ॥८२
नम. पिनाकहस्ताय शूलहस्ताय ते नमः ।
नम. कपालहस्ताय पाशमुद्गरधारिणे ॥८३
नमस्ते सर्वभूताय घण्टाहस्ताय ते नम. ।
नमः पञ्चास्यदेवाय क्षेत्राणा पतये नम ॥८४
नमः समस्तभूतानामादिभूताय भूभृते ।
अनेकरूपरूपाय निर्गुणाय परात्मने ॥८५

राजर्षि भगीरथ ने प्रार्थना की थी—मैं इस समस्त जगत् के परम प्रभु प्रगतिशील पुरुषो के दुखो के विनाशक, प्रमाणो के द्वारा अगोचर और प्रणयस्वरूप भगवान शम्भु की सेवा मे अपना प्रणाम अर्पित करता हूँ ॥७८॥ यह सम्पूर्ण जगत ही जिनका स्वरूप है, जो अजन्मा और नित्य हैं। उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय मे जो मूल कारण है उन विरूपाक्ष, विश्वरूप एव उग्र वीर्य वाले भगवान शिव के चरणों मे मेरा प्रणाम है ॥७६॥ बडे २ योगी जन जिन प्रभु को आदि मध्यान्त न रहित, अनन्त, अज और अव्यय बतलाया करते हैं उन्ही पुष्टि के बढाने वाले भगवान शङ्कर को मैं प्रणाम करता हूँ ।८० आप सभी लोको के स्वामी हैं अपनी अद्भुत अचिन्त्य माया के द्वारा सबको मोह जाल मे डाले हुए हैं उन्ही नीलकण्ठ, अज्ञजीवो को ज्ञान प्रदान करने वाले भगवान शङ्कर के चरण कमलों मे मेरा प्रणाम है ॥८१॥ जो स्वय चैतन्य स्वरूप से युक्त हैं। परिपुष्टो को सुमार्ग मे लगाने वाले भगवान शम्भु की सेवा मे मेरा प्रणाम प्रस्तुत है। असम्भव को भी सम्भव कर देने वाले, पाँच भूतो पर प्रभुता रखने वाले भगवान शङ्कर को मरा प्रणाम है।।८२॥

कपाल को धारण करने वाले तथा पाश और मृदङ्ग को ग्रहण करने वाले भगवान शङ्कर को मेरा प्रणाम है ॥८३॥ सर्वभूत, हाथ मे घण्टा धारण करने वाले, पाँच मुखो से युक्त, क्षेत्र रक्षक भगवान शम्भु की सेवा मे समादर सहित मेरा प्रणाम है ॥८४॥ सब भूतो मे आदि भूत, भूभृत, अनेक स्वरूपो वाले, निर्गुण निरजन भगवान शम्भु को मेरा प्रणाम है ॥८५॥

नमो गणाधिदेवाय गणाना पतये नम ।
नमो हिरण्यगर्भाय हिरण्यपतये नम ॥८६
हिरण्यरेतसे तुभ्य नमो हिरण्यबाहवे ।
नमो ध्यानस्वरूपाय नमस्ते ध्यानसाक्षिणे ॥८७
नमस्ते ध्यानसस्थाय ध्यानगम्याय ते नम ।
येनेद विश्वमखिल चराचरविराजितम् ॥८८
वर्पवाभ्रेण जनित प्रधानपुरुषात्मना ॥८९
स्वप्रकाश महात्मान पर ज्योति सनातनम् ।
यमामनन्ति तत्त्वज्ञा सवितार नृचक्षुषाम् ॥९०
उमाकान्तन्नन्दिकेश नीलकण्ठ सदाशिवम् ।
मृत्युञ्जय महादेव परात्परतर विभुम् ॥९१
पर शब्दब्रह्मरूप त वन्देऽखिलकारणम् ।
कपर्दिने नमस्तुभ्य सद्योजाताय वै नम ॥९२

समस्त गणो के आदि देव, सब गणो के अधिदेव तथा गणो के पति आपको मेरा प्रणाम है। हिरण्यगर्भ और हिरण्य पति को मेरा प्रणाम है ॥८६॥ जिनका यह सुवर्ण वीय है उन हिरण्यबाहु भगवान शिव का मेरा प्रणाम है। ध्यान के स्वरूप मे समवस्थित तथा ध्यान के साक्षी के लिए मेरा प्रणाम है ॥८७॥ सर्वदा ध्यान मे मग्न रहने वाले तथा परम ध्यान के द्वारा ही प्राप्त होने वाले भगवान शम्भु को मेरा प्रणाम समर्पित है। जिस परम प्रधान पुरुष से यह सम्पूर्ण स्थावर,

जङ्गम विश्व मेघ वर्षा के समान ही प्रकट हुआ है और जिनको तत्व-वेत्ताजन मनुष्य दृष्टि का सूर्य कहते हैं उन स्वप्रकाश, महान् आत्मा वाले, परम ज्योति रूप भगवान शिव को मैं प्रणाम करता हूँ ।।८८-९०।। जगदम्बा उमा देवी के पति, नन्दिकेश, नील कण्ठ, मृत्युञ्जय सदाशिव, महान देव, परम श्रेष्ठत्तम, विभु, शब्द ब्रह्म स्वरूप और सबके कारण स्वरूप भगवान शिव को मेरा प्रणाम है। मस्तक पर जटा जूट धारण करने वाले, अपने भक्तजनों की रक्षा करने के लिए तुरन्त प्रकट होने वाले सद्योजात भगवान शङ्कर को मेरा प्रणाम है ।।९१-९२।।

> भवोद्भवाय शुद्धाय ज्येष्ठाय च कनीयसे ।
> मन्यवे त इषे त्रय्या पतये यज्ञतन्तवे ।।९३
> ऊर्जे दिशा च पतये कालायाघोररूपिणे ।
> कृशानुरेतसे तुभ्य नमोऽस्तु सुमहात्मने ।।९४
> यत ससुद्रा सरितोऽद्रयश्च गन्धर्वयक्षात्सुरसिद्धसघा ।
> स्याणुश्चरिष्णुर्महदल्पक च असच्च सज्जीवमजीवमास ।।९५
> नतोऽस्मि त योगिनतात्रिपद्म सर्वान्तरात्मानमरूपमीशम् ।
> स्वतन्त्रमेक गुणिना गुण च नमामि भूय प्रणमामि भूय ।।९६
> इत्य स्तुतो महा देव शङ्करो लोकशङ्कर ।
> आविर्बभूव भूपस्य सतप्तस्तपसोग्रत ।।९७

इस समस्त जगत् के उत्पत्ति स्थान, सर्वव्यापक, महान् और परम सूक्ष्म स्वरूप वाले, यज्ञ स्वरूप, वेदत्रयी (ऋक्, यजु और साम) की रक्षा करने वाले, यज्ञ तन्तु, महाबलवान्, दिशाओं के स्वामी कालरूप, अघोर रूपी और कृशानुरेता, महान् आत्मा भगवान् शिव को प्रणाम है ।।९३-९४।। जिन भगवान् से य समुद्र, नदियाँ, पर्वत, यक्ष, गन्धर्व, असुर, सिद्ध समुदाय, स्थावर जङ्गम, छोटे-बड़े सत् असत् और चेतन एव अचेतन समुत्पन्न हुए हैं उन प्रभु शिव को मैं प्रणाम करता हूँ ।।९५।।

योगीजन जिनके चरणो की सदा वन्दना किया करते है उन शिव को मेरा प्रणाम है। जो सबके अन्तरात्मा है, रूप रहित ईश, एक, स्वतन्त्र और गुणीजनो के गुण हैं, उन भगवान शङ्कर की मैं वन्दना करता हूँ ।९६।। जिस समय मे समस्त ससार का कल्याण करने वाले भगवान शिव की इस भाँति स्तुति की गई तो वे उस भगीरथ के अत्युग्र तप से सन्तुष्ट होकर वही पर प्रकट हो गये थे ।।९७।।

पञ्चवक्त्र दशभुज चन्द्रार्द्ध कृतशेखरम् ।
त्रिलोचनमुदाराङ्ग नागयज्ञोपवीतिनम् ।।९८
विशालवक्षस देव तुहिनाद्रिसमप्रभम् ।
गजचर्माम्बरधर सुरार्चितपदाम्बुजम् ।।९९
दृष्ट्वा पपात पादाग्रे दण्डवद्भुवि नारद ।
तत उत्थाय सहसा शिवाग्रे विहिताञ्जलि ।।१००
प्रणनाम महादेव कीर्तयञ्शङ्करह्वयम् ।
विज्ञाय भक्ति भूपस्य शङ्कर शशिशेखर ।।१०१
उवाच राज्ञे तुष्टोऽस्मि वर वरय वाछितम् ।
तोषितोस्मि त्वया सम्यक् स्तोत्रेण तपसा तथा ।।१०२
एवमुक्त स देवेन राजा सतुष्टमानस ।
उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा जगतामीश्वरेश्वरम् ।।१०३
अनुग्राह्योस्मि यदि ते वरदानान्महेश्वर ।
तदा गङ्गा प्रयच्छास्मत्पितॄणा मुक्तिहेतवे ।।१०४
दत्ता गङ्गा मया तुभ्य पितृणा ते गति परा ।
तुभ्य मोक्ष परश्चेति तमुक्त्वान्तर्दधे शिव ।।१०५

हे नारद । राजर्षि भगीरथ ने अपने समक्ष मे जब भगवान शङ्कर के स्वरूप का दर्शन किया था तो उस समय मे उनका स्वरूप परम सुन्दर था। शिव के पाँच मुख थे दश भुजाये थी, माथे पर अर्ध चन्द्र शोभित था, तीन नेत्र थे, विशाल अङ्ग था जिस पर नागो का यज्ञोपवीत धारण किया हुआ था। विशाल वक्षस्थल था, हिमालय के

सदृश कान्ति सम्पन्न थे। गज के चर्म को धारण करने वाले, देवों द्वारा वन्दित चरण वाले भगवान शङ्कर को साक्षात् सामने उपस्थिति देखते ही भगीरथ प्रेम विभोर होकर उनके चरणों में लोट गया था। दण्डवत् लेटकर उनके चरणों का स्पर्श किया और फिर उठकर दोनों हाथ जोड़ कर शिव के शुभ श्रेयस्कर नामों का कीर्त्तन करने लग गया था। भगवान शङ्कर उस राजा की भक्ति को भली-भाँति समझ गये थे ॥६८-१०१॥ भगवान शंकर राजा भगीरथ से कहने लगे—मैं तुझ पर बहुत ही प्रसन्न हूँ अब तेरी जो भी इच्छा हो वही वरदान मुझसे माँग ले। तुम्हारे इस स्तोत्र से और तपश्चर्या क्षर्या से मैं बहुत ही अधिक सन्तुष्ट एवं प्रसन्न हो गया हूँ ॥१०२॥ भगवान शिव के इस कथन से भगीरथ के मन को बहुत कुछ सन्तोष हो गया था और फिर वह हाथ जोड़कर जगदीश्वरों के भी ईश्वर से प्रार्थना करने लगा था ॥१०३॥ राजर्षि भगीरथ ने कहा—हे महेश्वर! यदि आप वरदान प्रदान करके मुझ सेवक पर पूर्ण अनुग्रह करना चाहते हैं तो मेरे भस्मीभूत पितरों के उद्धार करने के लिए गङ्गाजी को दीजिए ॥१०४॥ भगीरथ की इस प्रार्थना पर भगवान शिव ने उत्तर दिया था कि मैं तुमको गङ्गा देता हूँ। इससे तेरे पितरों की तो परम श्रेष्ठ गति होगी ही और तेरी भी मुक्ति हो जायगी, इतना ही कहकर शंकर वहीं पर अन्तर्धान हो गया था ॥१०५॥

कपर्दिनो जटामस्ता गङ्गा लोकैकपावनी ।
पावयन्ती जगत्सर्वमन्वगच्छद्भगीरथम् ॥१०६
ततः प्रभृति सा देवी निर्मला मलहारिणी ।
भागीरथीति विख्याता त्रिषु लोकेष्वभून्मुने ॥१०७
सगरस्यात्मजा पूर्वं यत्र दग्धा स्वपाप्मना ।
तं देशं प्लावयामास गङ्गा सवसरिद्वरा ॥१०८
यदा सप्लावितं भस्म सागराणां तु गङ्गया ।
तदैव नरके मग्ना उद्धृताश्च गतैनसः । १०९

पुरासन्न् ुश्यमानेन ये यमेनातिपीडिता ।
तदैव नरके मग्ना उद्धृताश्च गतैनस ॥११०
गतपापान्स विज्ञाय यम सगरसभवान् ।
प्रणम्याभ्यर्च्य विधिवत्प्राह तान्प्रीतमानस ॥१११

इधर भगवान को जटाओ की लट से नटखट गङ्गा जो सम्पूण ससार को पवित्र करने वाली है इस ससार को पवित्र करती हुई राजा भगीरथ के पीछे पीछे चल रही थी ॥१०६। उसी दिन से यह गङ्गा हे मुनिवर । मल को दूर करने वाली परम निमल तीनो लोको म भागीरथी के नाम से प्रसिद्ध हो गई थी ॥१०७॥ सब प्रथम सगर के पुत्र अपने पाप के कारण भस्मीभूत हो गये थे उसी स्थान पर पहुँचकर गङ्गा नदी ने पवित्र एव प्लवित किया था ॥१०८॥ गङ्गाजी ने सगर के साठ हजार पुत्रो की भस्म को प्रक्षालित किया था कि नरको म पडे हुए सगर सुत निष्पाप होकर परम शुद्ध हो गये थे और उनका उद्धार हो गया था ॥१०६॥ इसके पूव यमराज ने बहुत ही डाट डपट कर घोर दण्ड जिनको दिया था उ ही की गङ्गा जल से स्नान से स्नान करने पर बहुत आदर के साथ पूजा की थी ॥११०॥ यमराज ने जब सगर के पुत्रो का निष्पाप हुआ जान लिया तब उनको प्रणाम और सत्कार करके परम प्रसन्नता से कहने लगा था ॥१११॥

भो भो राजसुता यूय नरकाद् भृशदारुणात् ।
मुक्ता विमानमारुह्य गच्छध्व विष्णुमन्दिरम् ॥११२
इत्युक्तास्ते महात्मानो यमेन गतकल्मषा ।
दिव्यदेहधरा भूत्वा विष्णुलोक प्रपेदिरे ॥११३
एवप्रभावा सा गङ्गा विष्णुपादाग्रसभवा ।
सदलोकपु विख्याता महापातकनाशिनी ॥११४
य इद पुण्यमाख्यान महापातकनाशनम् ।
पठेच्च शृणुयाद्वापि गङ्गास्नानफल लभेत् ॥११५
यस्त्वेतत्पुण्यमाख्यान कथयेद्ब्राह्मणाग्रत ।

स याति विष्णुभवनं पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥११६

यमराज ने कहा—हे राज पुत्रो ! अब आप इस परम भयानक नरक से मुक्त हो गये हैं। अब तो श्री गङ्गाजी की कृपा से आप लोग दिव्य विमानों का पर समारूढ होकर सीधे विष्णु लोक को गमन करिए ॥११२॥। यमराज के द्वारा इस तरह में कहने पर उन समस्त सगर के पुत्रों ने दिव्य देह धारण करके निष्प्राण होते हुए विष्णु भगवान के लोक में गमन किया था ॥११३॥ भगवान विष्णु के चरणों के नखो से प्रकट हुई गङ्गा का ऐसा अद्भुत प्रभाव है। फिर वह गङ्गा समस्त लोको म महान् से भी महान् पापों का विनाश करने वाली पतितपावनी प्रसिद्ध हो गई थी ॥११४॥ जो मनुष्य पाप नाशक परम पवित्र आख्यान का श्रवण किया करता है अथवा इसको पढ़ता है उसको गङ्गाजी के स्नान करने के तुल्य ही पुण्य फल प्राप्त हुआ करता है ॥११५॥ जो इस परम पवित्र आख्यान का विप्रो की सभा में वर्णन किया करता है वह भी पुनर्जन्म से छूटकर विष्णु लोक को गमन किया करता है ॥११६॥



॥ शुक्ला द्वादशी व्रत का उद्यापन ॥

साधु सूत महाभाग त्वयातिकरुणात्मना।
श्रावित सर्वपापघ्न गङ्गामाहात्म्यमुत्तमम् ॥१

श्रुत्वा तु गङ्गामाहात्म्य नारदो देवदर्शन.।
कि पप्रच्छ पुन सूत सनक मुनिसत्तमम् ॥२

शृणुध्वमृषय. सर्वे नारदेन सुरर्षिणा।
पृष्ट पुनर्यथा प्राह प्रवक्ष्यामि तथैव तत् ॥३
नानाख्यानेतिहासाढ्य गङ्गामाहात्म्यमुत्तमम्।
श्रुत्वा ब्रह्मसुतो भूय. पृष्टवानिदमादरात् ॥४

अहोऽतिधन्य मुकृतैकसार श्रुत मया पुण्यमसवृतार्थम् ।
गाङ्गेयमाहात्म्यमघप्रणाशि त्वत्तो मुने कारुणिकादभीष्टम् ॥५
ये साधव साधु भजन्ति विष्णु स्वार्थ परार्थ च यतन्त एव ।
नानोपदेशै सुविमुग्धचित्त प्रबोधयन्ति प्रसभ प्रसन्नम् ॥६
तत समाख्याहि हरेर्व्रतानि कृतैश्च यै प्रीतिमुपैति विष्णु ।
ददाति भक्ति भजता दयालुर्मुक्तिस्तु तस्या विदिता हि दासी ॥७

शौनकादि महर्षियो ने श्री सूतजी से कहा—हे महाभाग ! आपने समस्त महान् भीषण पापो के विनाश करने वाली गङ्गाजी के माहात्म्य का श्रवण करा कर हम लोगो पर अत्यधिक कृपा का प्रदर्शन किया है । अब आप हम को यह बताइये कि देवर्षि नारद जी ने गङ्गा जी के इस माहात्म्य का श्रवण कर इसके पीछे मुनि श्रेष्ठ श्री सनकजी से क्या जिज्ञासा की थी ॥१-२॥ इस पर सूतजी ने कहा—हे ऋषिगणों ! देवर्षि श्री नारद जी के पूछने पर महर्षि सनक देव ने जो उनसे कहा था उस सबको मैं बिलकुल उसी भांति आप लोगो को सुनाता हूँ ॥३॥ ब्रह्मा क पुत्र नारदजी विविध कथानको तथा इतिहास से परिपूर्ण गङ्गाजी के इस उत्तमोत्तम आख्यान को सुनकर फिर सनकजी से बडे ही समादर के साथ पूछने लगे थे ॥४॥ श्री नारद जी ने कहा था—हे मुनिवर ! आपके मुखारविन्द से परम पुण्यो का सार और परम पुण्य स्वरूप एव महा पाप विनाशक गङ्गा माहात्म्य सुना है ? आप तो स्वय ही बहुत दयालु हैं आपको धन्यवाद है ॥५॥ साधु पुरुषो का ऐसा स्वभाव ही हाता है कि वे सर्वदा भगवान् विष्णु का भजन किया करते हैं और वे अपने तथा दूसरो के उद्धार की सदा चेष्टा किया करते हैं । जिनका मन महान् घोर मोह म पडा रहता है उनको अनेक प्रकार का सदुपदेश प्रदान कर उन्हे वह यश प्रसन्नता दिया करते हैं ॥६॥ अतएव जिन व्रतो के करने से भगवान विष्णु की प्रसन्नता हुआ करती है उन व्रतो का अवश्य वर्णन कीजिए । भगवान तो स्वय ही बहुत दयालु हैं ।

जो लोग उनका भजन किया करते हैं। उनको भक्ति दे दिया करते हैं और मुक्ति तो उनकी परम प्रसिद्ध दासी है ॥७॥

ददाति मुक्तिं भजता मुकुन्दा व्रतार्चनध्यानपरायणानाम् ।
भक्तानुमेवामु महाप्रयासा विमृश्य कस्यापि न भक्तियोगम् ॥८
प्रवृत्त च निवृत्त च यत्कर्म परितोषणम् ।
तदाख्याहि मुनिश्रेष्ठ विष्णुभक्तोऽसि मानद ॥९
साधु साधु मुनिश्रेष्ठ भक्तस्त्वं पुरुषोत्तमे ।
भूयो भूयो यत पृच्छेश्वरिग शार्ङ्गधन्वन. ॥१०
व्रतानि ते प्रवक्ष्यामि लोकोपकृतिमन्ति च ।
प्रसीदति हरिर्यैस्तु प्रयच्छत्यभय तथा ॥११
यस्य प्रसन्नो भगवान्यज्ञलिङ्गो जनार्दनः ।
इहामुत्र सुख तस्य तपोवृद्धिश्च जायते ॥१२
येन केनाप्युपायेन हरिपूजापरायणा. ।
प्रयान्ति परम स्थानमिति प्राहुर्महर्षयः ॥१३
मार्गशीर्षे सितेपक्षे द्वादश्या जलशायिनम् ।
उपोषितोऽर्चयेत्सम्यङ् नर श्रद्धासमन्वित ॥१४

जो लोग भगवान का व्रत-पूजन और ध्यान किया करते हैं उनको भगवान मुक्ति दे दिया करते हैं किन्तु भक्तों को सेवा करने में बहुत झंझट भोगना पड़ता है—ऐसा समझ कर किसी को भी भक्ति-योग देना नहीं चाहते हैं ॥८॥ हे मानद। भले ही प्रवृत्ति मार्ग का हो या चाहे निवृत्ति मार्ग का हो, जा सत्कर्म भगवान श्री हरि की प्रसन्नता समुत्पन्न कराने वाला हो उसी का अब आप मेरे सामने वर्णन करिए। आप तो स्वयं भगवान विष्णु के परम शिरोमणि भक्त हैं और आप सभी कुछ जानते हैं ॥९॥ श्री सनत्जी ने कहा—हे परम श्रेष्ठ मुने। बहुत अच्छा प्रश्न किया है, यह अत्यधिक अच्छी बात है। आप भी तो भगवान पुरुषोत्तम के परम भक्त हैं क्योंकि शार्ङ्ग धनुष के धारण करने

वाले भगवान के चरित को बारम्बार पूछते ही चले जा रहे हैं। बिना भक्ति के ऐसी बात अन्य कौन पूछ सकता है ? ॥१०॥ मै अब आपके प्रश्न के अनुसार ही अपने समक्ष मे ससार का परम उपकार करने वाले व्रतो का विशद वर्णन करता हूँ जिन व्रतो के करने पर भगवान विष्णु परम प्रसन्न हुआ करते हे और अभय का दान दिया करते है ॥११॥ यज्ञ स्वरूप भगवान की जिस जीव पर प्रसन्नता होती है उस जीवात्मा को दोनो लोको मे सर्वदा सुख की प्राप्ति हुआ करती है और उसकी तपस्या की वृद्धि हुआ करती है।।१२॥ महर्षियो का ऐसा कहना है कि हरि का पूजन करने वाले चाहे जिस प्रकार स उनका अर्चन करने वाले चाहे जिस प्रकार से उनका अर्चन करने वाले हो उनको अवश्य ही परम पद की प्राप्ति हो जाया करती है ॥१३॥ जो परम श्रद्धा से सयुत होते है वे मार्गशीर्ष मास की शुक्ल पक्ष की द्वादशी तिथि के दिन को व्रत धारण कर जलशायी भगवान का भली-भाति पूजन किया करते हैं ॥१४॥

स्नात्वा शुक्लाम्बरधरो दन्तधावनापूर्वकम् ।
गन्धपुष्पाक्षतैर्धूपैर्दीपैर्नैवेद्यपूर्वकै ॥१५
वाग्यतो भक्तिभावेन मुनिश्रेष्ठार्चयेद्धरिम् ।
केशवाय नमस्तुभ्यमिति विष्णुं च पूजयेत् ॥१६
अष्टोत्तरशत हुत्वा वह्नौ घृततिलाहुतीः ।
रात्री जागरण कुर्याच्छालग्रामसमीपतः ॥१७
स्नापयेत्प्रस्थपयसा नारायणमनामयम् ।
गीतैर्वाद्यैश्च नैवेद्यैर्भक्ष्यैर्भोज्यैश्च केशवम् ॥१८
त्रिकाल पूजयेद्भक्त्या महालक्ष्म्या समन्वितम् ।
पुन प्रत्यूषे समुत्थाय कृत्वा कर्म यथोचितम् ॥१६
पूर्ववत्पूजयेद्देव वाग्यतो नियत. शुचिः ।
पायस घृतसमिश्र नालिकेरफलान्वितम् ॥२०

नारायणपरो भूत्वा स्वय भुञ्जीत वाग्यत ।
इति य कुरुते भक्त्या केशवार्चनमुत्तमम् ॥२३
स पौंडरीकयज्ञस्य फलमष्टगुण लभेत् ।
पौषमास सिते पक्षे द्वादश्या समुपोषित ॥२४
नमो नारायणायेति पूजयेत्प्रयतो हरिम् ।
पयसा स्नाप्य नैवेद्य पायस च समर्पयेत् ॥२५
रात्रौ जागरण कुर्यात्त्रिकालार्चनतत्पर ।
धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैर्गन्धै पुष्पैर्मनोरमै ॥२६
तृणैश्च गीतवाद्याद्यै स्तोत्रैश्चाप्यर्चयेद्धरिम् ।
कृशरान्न च विप्राय दद्यात्सघृतदक्षिणम् ॥२७
सर्वात्मा सर्वलोकेश सवव्यापी सनातन ।
नारायण प्रसन्न स्यात्कृशरान्नप्रदानत ॥२८
म न्त्रेणानेन विप्राय दत्त्वा वै दानमुत्तमम् ।
द्विजाश्च भोजेच्छक्त्या स्वयमद्यात्सबान्धव ॥२९

इसके अनन्तर अपनी वाणी को नियम नियन्त्रित रखते हुए नारायण का ध्यान रखकर स्वय प्रसाद ग्रहण करना चाहिये । इस विधान के अनुसार जो भी कोई भक्तिभाव पूर्वक भगवान केशव का पूजन किया करता है ॥२३॥ वह मनुष्य पौण्डरीक यज्ञ का अठगुना पुण्य-फल प्राप्त किया करता है । फिर पौष शुक्ला द्वादशी के दिन भी व्रत रक्खे तथा अपनी इन्द्रियों को वश म रख कर 'नमो नारायण' इस मन्त्र का उच्चारण कर श्री हरि का पूजन करना चाहिये । दूध से भगवान् का स्नान करावर फिर नैवेद्य और क्षीर का भाग लगाना चाहिये ॥२४।२५॥ रात्रि के समय म जागरण करे तथा तीनों कालो मे भगवान का सविधि अचन करना चाहिये । धूप, दीप, नैवेद्य, पुष्प, गन्ध, घसादि तृण, गान वाद्य और स्तात्र आदि से श्री हरि का पूजन करे । 'सर्वात्मा, सव लाकेश सर्वव्यापी सनातन । नारायण प्रसन्न

स्यात्कृशरान्न प्रदानतः' अर्थात् सर्वव्यापी, समस्त लोकों के स्वामी, सब में अन्तर्यामी रूप से निवास करने वाले सनातन भगवान नारायण इस खिचड़ी के दान से प्रसन्नता प्राप्त करें, इस मन्त्र के द्वारा घृत तथा दक्षिणा द्रव्य रखकर ब्राह्मण को दान देवे। इस विधि से ब्राह्मण को श्रेष्ठ दान देकर फिर अपनी शक्ति के अनुसार विप्रों को भोजन करावे और अपने बन्धु बान्धवों के सहित स्वयं भी भोजन करे ॥२६-२६॥

एवं संपूजयेद्भक्त्या देवं नारायणं प्रभुम् ।
अग्निष्टोमाष्टकफलं स संपूर्णमवाप्नुयात् ॥३०
माघस्य शुक्लद्वादश्यां पूर्ववत्समुपोषितः ।
नमस्ते माधवायेति हुत्वाष्टौ च घृताहुतीः ॥३१
पूर्वमानेन पयसा स्नापयेन्माधवं तदा ।
पुष्पगन्धाक्षतैरर्चेत्समवधानेन चेतसा ॥३२
रात्रौ जागरणं कुर्यात्पूर्ववद्भक्तिसंयुत ।
कल्यकर्म च निर्वर्त्य माधवं पुनरर्चयेत् ॥३३
प्रस्थं तिलानां विप्राय दद्याद्वै मन्त्रपूर्वकम् ।
सदक्षिणं स वस्त्रं च सर्वपापविमुक्तये ॥३४
माधवः सर्वभूतात्मा सर्वकर्मफलप्रदः ।
तिलदानेन महता सर्वान्कामान्प्रयच्छतु ॥३५

इस विधि से भगवान् नारायण का भक्तिपूर्वक अर्चन करने से आठ अग्निष्टोम यज्ञों का पुण्य-फल मिला करता है। भगवान इससे परम प्रसन्न होते हैं। इसी भाँति माघ मास की द्वादशी तिथि के दिन भी व्रत रखना चाहिये। इस दिन 'नमस्ते माधवाय' इस मन्त्र का उच्चारण करके घृत की आठ आहुतियाँ अग्नि में देनी चाहिए। एक प्रस्थ दुग्ध से भगवान माधव की प्रतिमा को स्नान कराना चाहिये और परम समाहित चित्त से गन्धाक्षत पुष्पादि के द्वारा भगवान् का

पूजन करना चाहिये ॥३०–३२॥ पूर्ववत् भक्तिभाव पूर्वक रात्रि मे जागरण करे और प्रात काल का सर्व कर्म करके भगवान माधव का पुन. पूजन करना चाहिए ॥३३॥ इसके उपरान्त मन्त्र पढ कर एक प्रस्थ तिल तथा दक्षिणा एवं वस्त्र रख कर ब्राह्मण को दान देना चाहिये। ऐसा करने से समस्त पापो का विनाश होजाया करता है ॥३४॥ इसका मन्त्र यह है—'माधव सर्वभूतात्मा सर्व कर्म फल-प्रद। तिल दानेन महता सर्वान् कामान् प्रयच्छतु'—अर्थात् समस्त प्राणियो की आत्मा, सब कर्मो का फल प्रदान करने वाले भगवान माधव इन तिलो के दान से समस्त मनोरथों को पूर्ण करें ॥३५

मन्त्रेणानेन विप्राय दत्त्वा भक्तिसमन्वित ।
ब्राह्मणान्भोजयेच्छक्त्या सस्मरन्माधव प्रभुम्॥३६
एव य कुरुते भक्त्या तिलदाने व्रत मुने ।
वाजपेयशतस्यासौ सपूर्ण फलमाप्नुयात् ॥३७
फाल्गुनस्य सिते पक्षे द्वादश्या तमुपोषित. ।
गोविन्दाय नमस्तुभ्यमिति सपूजयेद् व्रती ॥३८
अष्टोत्तरशत हुत्वा घृतमिश्रतिलाहुती ।
पूर्वमानेन पयसा गोविन्द स्नापयेच्छुचि. ॥३९
रात्रौ जागरण कुर्यात्त्रिकाल पूजयेत्तथा ।
प्रात कृत्य समाप्याथ गोविन्द पूजयेत्पुन· ॥४०
व्रीह्याढक च विप्राय दद्याद्वस्त्र सदक्षिणम् ।
नमो गोविन्द सर्वेश गोपिकाजनवल्लभ ॥४१
अनेन धान्यदानेन प्रीतो भव जगद्गुरो ।
एव कृत्वा व्रत सम्यक् सर्वपापविवर्जित. ॥४२
गोमेघमखज पुण्य सम्पूर्ण लभते नरः ।
चैत्रमासेसिते पक्षे द्वादश्या समुपोषित ॥४३

इस मन्त्र से ब्राह्मण को भक्तिभाव के साथ दान देकर भगवान

माधव का हृदय मे स्मरण करता हुआ अन्य ब्राह्मण को अपनी शक्ति के अनुसार भोजन कराना चाहिये ॥३६॥ हे मुनिवर ! इस विधि से भक्ति की भावना से तिलों को दान मे प्रदान किया करता है उसको एक सौ वाजपेय यज्ञो के करने का फल मिला करता है ॥३७॥ व्रत करने वाले पुरुष को फाल्गुन मास की शुक्ल पक्ष की द्वादशी तिथि के दिन पूर्व की ही भांति व्रत रखकर 'गोविन्दाय नमस्तुभ्यम्' इस मन्त्र का उच्चारण करके भगवान का पूजन करना चाहिये तथा घृत मिश्रित तिलो से एकसौ आठ आहुतिया देकर एक प्रस्थ दुग्ध से पवित्रता के साथ श्री गोविन्द को स्नान करावे ॥३८।३६॥ व्रत के दिन मे रात्रि मे जागरण करे, तीनो कालो मे भगवान का पूजन करे और प्रात.-कालीन सम्पूर्ण कृत्य समाप्त करके फिर श्री गोविन्द भगवान का यजन करना चाहिये ॥४०॥ 'नमो गोविन्द सर्वेश गोपिका जन वल्लभ । अनेन धान्य दानेन प्रीतो भव जगद्गुरो ।' अर्थात् हे गोपीजनो के परम प्रिय गोविन्द ! आप सबके ईश है । आपकी सेवा मे मेरा प्रणाम समर्पित है । इस धान्य के दान से आप मुझ पर प्रसन्न होइये । इस रीति से प्रार्थना करने पर चार सेर (एक आटक) धान, वस्त्र और दक्षिणा ब्राह्मणो को दान देवे । इस विधि से व्रत कराने पर मनुष्य सब पापो से मुक्त होकर गोमेध यज्ञके पूरे फल को प्राप्त किया करता है ॥४१ —४३॥

नमोऽस्तु विष्णवे तुभ्यमिति पूर्ववदर्चयेत् ।
क्षीरेण स्नापयेद्विष्णु पूर्णमानेन शक्तित ॥४४
तथव स्नापयेद्विप्रघृतप्रस्थेन सादरम् ।
कृत्वा जागरण रात्रौ पूजयेत्पूर्ववद्व्रती ॥४५
तत कल्ये समुत्थाय प्रात कृत्य समाप्य च ।
अष्टोत्तरशत हुत्वा मध्वाज्यतिलमिश्रितम् ॥४६
सदक्षिण च विप्राय दद्याद्वै तण्डुलाढकम् ।

प्राणरूपी महाविष्णु प्राणद सर्ववल्लभ ॥४७
तण्डुलाढकदानेन प्रीयता मे जनार्दन ।
एव कृत्वा नरो भक्त्या सर्वपापविवर्जित. ॥४८
अत्यग्निष्टोमयज्ञस्य फलमष्टगुण लभेत् ।
वैशाखशुक्लद्वादश्यामुपोष्य मधुसूदनम् ॥४६
द्रोणक्षीरेण देवेश स्नापयेद्भक्ति सयुत ।
जागर तत्र कर्त्तव्य त्रिकालार्चनसयुतम् ॥५०

इसी रीति से चैत्र शुक्ला द्वादशी के दिन व्रत करना चाहिये। इस दिन पे 'नमोऽस्तुऽविष्णवे'—इस मन्त्र से पूर्व के समान ही भगवान का पूजार्चन करे तथा एक सेर दुग्ध से भगवान विष्णु का स्नान करावे ॥४४॥ इसके अनन्तर एक सेर घृत से स्नान कराना चाहिये। व्रती पुरुष को पूर्व की भाँति ही रात्रि जागरण करके पुन पूजन करना चाहिय ॥४५॥ प्रात काल मे उठ कर सम्पूर्ण कृत्यो से निवृत्त होकर मधु, घृत और तिला से निर्मित शाकल्य से एकसौ आठ अग्नि मे आहुतिया देनी चाहियें ॥४६॥ प्राण रूपी महा विष्णु प्राणद सर्व वल्लभ । तण्डुलाढक दानेन प्रीयता मे जनार्दन ' अर्थात् जो भगवान् विष्णु प्राणो के स्वरूप वाले हैं, प्राणो का बल का प्रदान करने वाले हैं और सभी के परम प्रिय हैं वे भगवान जनार्दन मेरे इस चार सेर चावलो के दान से प्रसन्न होवे,भक्तिभाव से समन्वित होकर ऐसी विधि करने पर मनुष्य समस्त पापों से मुक्त होकर परम विशुद्ध होजाया करता है॥४७।४८॥वह मनुष्य अग्निष्टोम यज्ञके अठगुने पुण्य-फल को प्राप्त करने का अधिकारी हो जाया करता है। इसी भाति वैशाख मास के शुक्ल पक्ष की द्वादशी के दिन भी व्रत रखे और परम भक्ति की भावना से मधुसूदन भगवान की प्रतिमा का एक द्रोण (३२ सेर) दूध से अभिषेक करा दे तथा तीनो समय मे सविधि पूजन करे और रात्रि मे जागरण भी पूर्ववत् करना चाहिये ॥४६।५०

नमस्ते मधुहन्गे च जुहुयाच्छक्तितो घृतम् ।
अष्टोत्तरशता प्रार्च्यविधिवन्मधुसूदनम् ॥५१
विपापो ह्यश्वमेधानामष्टाना फलमाप्नुयात् ।
ज्येष्ठमासे सिते पक्षे द्वादश्यापुपवासकृत् ॥५२
क्षीरेणाढकमानेन स्नापयेद्यस्त्रिविक्रमम् ।
नमस्त्रिविक्रमायेति पूजयेद्भक्तिसयुत ॥५३
जुहुयात्पायसेनैव ह्यष्टोत्तरशताहुती ।
कृत्वा जागरण रात्रौ पुन पूजा प्रकल्पयेत् ॥५४
अपूर्पविशति दत्त्वा ब्राह्मणाय सदक्षिणम् ।
देवदेव जगन्नाथ प्रसीद परमेश्वर ॥५५
उपायन च सगृह्य ममाभीष्टप्रदो भव ।
ब्राह्मणान्भोजयेच्छक्त्या स्वय भुञ्जीत वाग्यत ॥५६

नमस्ते मधुहन्ते इस मन्त्र का उच्चारण करके घी की अष्टोत्तर शत आहुतियाँ अग्नि मे अर्पित करे। इस तरह अपनी शक्ति के अनुसार शास्त्रो मे वर्णित विधि विधान से भगवान का अर्चन करने से सब पापो से छुटकारा प्राप्त कर व्रती मनुष्य आठ अश्वमेध यज्ञो के समाचरण का पुण्य फल प्राप्त कर लिया करता है ॥ ५१।५२ ॥ इसी प्रकार से ज्येष्ठ शुक्ला द्वादशी के दिन मे उपवास करने वाला पुरुष चार सेर दूध से त्रिविक्रम प्रभु का स्नान करावे और 'नमस्त्रि विक्रमाय' – इस मन्त्र के द्वारा भक्ति भाव पूर्वक भगवान त्रिविक्रम का पूजन करे ॥५३॥ गोदुग्ध मे पायस बना कर उसकी एकसौ आठ आहुतियाँ देवे। रात्रि जागरण और पूजन करना चाहिये ॥५४॥ इसके अनन्तर बीस गुलगुले और दक्षिणा 'देव देव जगन्नाथ प्रसीद परमश्वर। उपायन च सगृह्य ममाभीष्ट प्रदोभव' अर्थात् हे देवो के भी देव इस जगत् के स्वामी ! आप मुझ पर प्रसन्न होइए। हे परमात्मन् ! आप मेरी इस तुच्छ भेट को स्वीकार करके

मेरी मनोवाछित वस्तु का दान मुझको कृपा कर प्रदान कीजिये । इसका उच्चारण करे और ब्राह्मण को दान देवे । फिर अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मणो को भोजन कराकर स्वय भी मौन रहकर भोजन करे ॥५५।५६॥

एव यः कुरुते विप्र व्रत त्रैविक्रम परम् ।
सोऽष्टाना नरमेधाना विपाप फलमाप्नुयात् ॥५७
आषाढशुक्लद्वादश्यामुपवासी जितेन्द्रिय. ।
वामन पूर्वमानेन स्नापयेत्पयसा व्रती ॥५८
नमस्ते वामनायेति दूर्वाज्याष्टोत्तर शतम् ।
हुत्वा च जागर कुर्याद्वामन चार्चयेत्पुनः ॥५९
सदक्षिण च दध्यन्न नालिकेरफलान्वितम् ।
भक्त्या प्रदद्याद्विप्राय वामनार्चनशीलिने ॥६०
वामनो बुद्धिदो होता द्रव्यस्थ वामन. सदा ।
वामनस्तारकोऽस्माच्च वामनाय नमो नम' ॥६१
अनेन दत्वा दध्यन्न शक्तितो भोजयेद् द्विजान् ।
कृत्वैवमग्निष्टोमाना शतस्य फलमाप्नुयात् ॥६२
श्रावणस्य सिते पक्षे द्वादश्यामुपवासकृत् ।
क्षीरेण मधुमिश्रेण स्नापयेच्छ्रीधर व्रती ॥६३

हे विप्र ! जो कोई भी मनुष्य इस विधि-विधान से इस परम श्रेष्ठ त्रिविक्रम व्रत को किया करता है उस मानव के समस्त पाप नष्ट हो जाया करते है और वह फिर आठ नरमेध यज्ञो के द्वारा होने वाले पुण्यो को प्राप्त कर लिया करता है ॥५७॥ इसी रीति से आषाढ मास की शुक्ल पक्ष की द्वादशी का भी व्रतोपवास का विधान है । जो इस दिन उपवास किया करता है उसको जितेन्द्रिय रहकर प्रथमोक्त तोल के समान ही दुग्ध मे वामन देव प्रभु का अभिषेचन करावे ॥५८॥ फिर दूध और घी की—'नमस्ते वामनाय' इस मन्त्र से

अष्टोत्तर शत आहुतियाँ अग्नि मे देनी चाहिये । रात्रि मे जागरण तथा वामनदेव का यजन करे और इसके पश्चात उस उपवास एव पूजन करने वाले मनुष्य को चाहिये कि वह किसी सुयोग्य ब्राह्मण को 'वामनो बुद्धिदो होता द्रव्यस्थो वामनो सदा वामनस्तारकोऽस्माच वामनाय नमोनम.' इसका अर्थ यह है कि वामन भगवान बुद्धिदाता हैं और इन सब द्रव्यो मे वामन देव विराजमान हैं। वामन देव के द्वारा बुद्धि देने से ही मैं इस समय मे हवन कर रहा हूँ। इस जगत मे वामन देव ही उद्धार करने वाले हैं। ऐसे वामन देव भगवान की सेवा मे मेरा प्रणाम अर्पित है। इस मन्त्र से दधि, अन्न और नारियल तथा दक्षिणा का दान करे ॥६०।६१॥ इसी मन्त्र के द्वारा अपनी शक्ति के अनुसार ही ब्राह्मणो को दधि और अन्न से भोजन कराना चाहिय। ऐसी रीति इस व्रत दान और पूजन से एक सौ अग्निष्टोम यज्ञो के यजन करने का फल प्राप्त हुआ करता है ॥६२॥ इस प्रकार से श्रावण शुक्ला द्वादशी के दिन का भी उपवास होता है। इस दिन व्रती व्यक्तियो को चाहिये कि दूध और मधु से भगवन श्रीधर प्रभु को स्नान करावे ॥६३

नमोऽस्तु श्रीधरायेति गन्धाद्यै पूजयेत्क्रमात् ।
जुहुयात्पृषदाज्येन शतमष्टोत्तर मुने ॥६४
कृत्वा च जागर रात्रौ पुन पूजा प्रकल्पयेत् ।
दातव्य चैव विप्राय क्षीराढकमनुत्तमम् ॥६५
दक्षिणा च सवस्त्रा वै प्रदद्याद्धेमकुण्डले ।
मन्त्रेणानेन विप्रेन्द्र सर्वकामार्थसिद्धये ॥६६
क्षीराब्धिशायिन्देवेश रमाकान्त जगत्पते ।
क्षीरदानेन सुप्रीतो भव सर्वसुखप्रद ॥६७
सुखप्रदत्वाद्विप्राश्च भोजयेच्छक्तितो व्रती ।
एव कृत्वाश्वमेधाना सहस्रस्य फल लभेत् ॥६८

मासि भाद्रपदे शुक्ले द्वादश्या समुपोषितः ।
स्नापयेद् द्रोणपयसा हृषीकेश जगद्गुरुम् ॥६६
हृषीकेश नमस्तुभ्यमिति सपूज्येन्नर ।
चरुणा मधुयुक्तेन शतमष्टोत्तर हुनेत् ॥७०

'नमोऽस्तु श्रीधराय'—इस मन्त्र का मुख से उच्चारण करते हुये गन्धाक्षत पुष्पादि पूजन के औपचारिक द्रव्यो से भगवान का पूजन करना चाहिये । फिर हे मुनिवर ! फिर पृषदाज्य दधि घृत मिश्रित हव्य मे एकसौ आठ आहुतियाँ अग्नि मे देवे ॥६४॥ रात्रि मे यथा विधि जागरण करके पुन भगवान् का अर्चन करे और इस मन्त्र को पढता हुआ हे विप्र ! फिर चार सेर उत्तम दुग्ध, वस्त्र, सुवर्ण के कुण्डल तथा दक्षिणा किसी सुयोग्य सत्पात्र ब्राह्मण को दान मे देना चाहिए । इससे मनुष्यो की सम्पूर्ण मनोकामनाये सिद्ध हो जाया करती है ॥६५।६६॥ 'क्षीराब्धि शायिन् देवेश रमाकान्त जगत्पते । क्षीर दानेन सप्रीतो भव सर्वसुखप्रद' । अर्थात् हे क्षीर सागर मे सुख शयन करने वाले, भगवती लक्ष्मी के पति तथा देवो के ईश जगत्पते ! आप मेरे द्वारा प्रदत्त इस क्षीर के दान से परम प्रसन्न होकर मुझे सभी प्रकार के सुखो को प्रदान कीजिए । इसके उपरान्त व्रती को ब्रह्मभोज कराना चाहिय क्योकि विप्रो को भोजन कराना परम सुखो का देने वाला हुआ करता है । ऐसी विधि से इस व्रत को साङ्ग सम्पादित करने पर एक सहस्र अश्वमेघो का फल मिला करता है ॥ ६७।६८ ॥ इसी भाँति भाद्रपद मास की शुक्ल पक्ष की द्वादशी के व्रत का भी विधान है । इस दिन उपवास करके ३२ सेर दूध से भगवान जगत् के गुरु हृषीकेश का स्नान कराना चाहिए ॥६९॥ 'हृषीकेश नमस्तुभ्यम्' इस मन्त्र को पढकर भगवान का अर्चन करे तथा मधु मिश्रित चरु की अष्टोत्तर शत आहुतियाँ देनी चाहिय ॥७०

जागरादीनि निर्वर्त्य दद्यादात्मविदे तव ।

साधर्धाढकं च गोधूमान्दक्षिणां हेम शक्तितः ॥७१
हृषीकेश नमस्तुभ्य सर्वलोकैकहेतवे ।
मह्यं सर्वसुख देहि गोधूमस्य प्रदानतः ॥७२
भोजयेद्ब्राह्मणाशक्तया स्वय चाश्नीत वाग्यत. ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्ममेधफल लभेत् ॥७३
आश्विने मासि शुक्लाया द्वादश्या समुपोषितः ।
पद्मनाभ च पयसा स्नापयेद्भक्तितः शुचि. ॥७४
नमस्ते पद्मनाभाय होम कुर्यात्स्वशक्ति ।
तिलव्रीहियवाज्यैश्च पूजयेच्च विधानत' ॥७५
जागर निशि निर्वर्त्य पुन पूजा समाचरेत् ।
दद्याद्विप्राय कुडव मधुनस्तु सदक्षिणम् ॥७६
पद्मनाभ नमस्तुभ्य सर्वलोकपितामह ।
मधुदानेन सुप्रीतो भव सर्व सुखप्रद. ॥७७

इसके अनन्तर पूर्ववत् जागरण कर पुन पूजन करे । इस समस्त कृत्य के अवसान मे किसी आत्मवेत्ता ब्राह्मण को ६ सेर गेहूँ तथा शक्ति के अनुरूप द्रव्य दक्षिणा अर्पित करे । दान करने के समय मे—'हृषीकेश नमस्तुभ्य सर्वलोकैक हेतवे । मह्यं सर्व सुख देहि गोधूमस्य प्रदानत ॥ अर्थात् हे हृषीकेश ! आपकी सेवा मे सादर प्रणाम है । आप ही समस्त लोको के एक मात्र कारण हैं । अब इन गेहूँओ के दान से मुझे सभी प्रकार के सुखो को प्रदान कीजिए ॥७१॥७२॥ इसके उपरान्त अथाशक्ति ब्रह्मभोज करावे और स्वय भी मौन रहकर भोजन करे । ऐसा विधान करने से मनुष्य समस्त इन महा पापो से मुक्त होकर ब्रह्ममेध यज्ञ के पुण्य फल को प्राप्त किया करता है ॥ ७३ ॥ इसी रीति से आश्विन मास की शुक्ला द्वादशी के दिन उपवास रख कर परम पवित्र होता हुआ भक्ति के सहित दूध के द्वारा यज्ञनाभ भगवान का स्नान कराना चाहिए ॥७४॥ "नमस्ते पद्मनाभाय'—इस

मन्त्र का उच्चारण करके तिल, धान जौ और घृत की अपनी शक्ति के अनुसार अग्नि मे आहुतिया देवे और शास्त्र वर्णित विधि से ही पूजन करना चाहिए ॥ ७५ ॥ रात्रि मे भी सविधि जागरण करके पुन रात्रि मे भी पूजन करना चाहिए तथा एक कुडव (एक पाव) शहद और द्रव्य दक्षिणा किसी सत्पात्र विप्र को—पद्मनाभ नमस्तभ्य सव लोक पितामह ! मधु दानेन सुप्रीतो भव मव सुखप्रद' अर्थात् हे समस्त लोको की रचता करने वाले पितामह ! आपकी सेवा मे मेरा प्रणाम है । आप इस मधु के दान से परम सन्तुष्ट होकर मुझे सब सुखो को दीजिए । इसका उच्चारण कर दान देना चाहिये ॥७७

एव य कुरुते भक्त्या पद्मनाभव्रत सुधी ।
ब्रह्मवेधसहस्रस्य फलमाप्नोति निश्चितम् ॥७८
द्वादश्या कार्तिके शुक्ले उपवासी जितेन्द्रिय ।
क्षीरेणाढकमानेन दध्ना वाज्येन तावता ॥७६
नमो दामोदरायेति स्नापयेदभक्तिभावन ।
अष्टोत्तरशत हुत्वा मध्वाज्याक्तिलाहुता ॥८०
जागर नियत कुर्यात्त्रिकालार्चनतत्पर ।
प्रात सपूजयद्व पद्मपुष्पैर्मनोरम ॥८१
पुनरष्टोत्तरशत जुहुयात्सघृतैस्तिले ।
पञ्चभक्ष्ययुत चान्न दद्याद्विप्राय भक्तित ॥८२
दामादर जगन्नाथ सवकारणकारण ।
त्राहि मा कृपया देव शरणागतपालक ॥८३
अनेन दत्त्वा दान च श्रोत्रियाय कुटुम्बिन ।
दक्षिणा च यथा शक्त्या ब्राह्मणाश्चापि भाजयेत् ॥८४

जो बुद्धिमान पुरुष इस रीति से भक्ति भाव पूर्वक इस पद्म नाभ भगवान के व्रत को किया करता है उसको एक सहस्र अश्व-

मेध यज्ञो के यजन करने का पुण्य-फल मिला करता है ॥७८॥ इसी रीति से कार्त्तिक मास मे शुक्ल पक्ष की द्वादशी का फल होता है । इस दिन अपनी सब इन्द्रियो को पूर्ण नियन्त्रण मे रख कर उपवास करना चाहिये । व्रत मे चार सेर दूध, दही अथवा घृत से 'नमो दामोदराय' इस मन्त्र के द्वारा भक्ति भाव से समन्वित होकर भगवान का स्नान कराना चाहिये तथा पुनः घृत, मधु मिश्रित तिलो के सकल्प से अष्ठोत्तर शत आहुतियाँ अग्नि मे डाल कर होम करे । प्रातः मध्याह्न और सायङ्काल इन तीनो कालो मे भगवान का अर्चन करे । रात्रि मे जागरण करे । प्रातः काल मे कमल के परम सुन्दर पुष्पो से भगवान का पूजन करना चाहिए और फिर घृत मिश्रित तिलो की एक सौ आठ आहुतियाँ देवे । "दामोदर जगन्नाथ सर्व कारण । माहिमा कृपया देव शरणागत पालक अर्थात् हे दामोदर ! हे जगत् के नाथ ! आप सब कारणो के कारण हैं । हे देव ! कृपा करके मेरी रक्षा कीजिए । आप भक्तोका पालन करने वाले हैं । इस मन्त्र से ब्राह्मणो को भक्ति भाव के साथ पाँच प्रकार के व्यजनो का दान करे ॥७६—८३॥ इस मन्त्र के द्वारा किसी कुटुम्ब वाले श्रोत्रिय ब्राह्मण को दान एव द्रव्य दक्षिणा देकर यथा शक्ति ब्रह्मभोज करावे ॥८४

एव कृत्वा व्रत सम्यगश्नीयाद्वन्धुभिः सह ।
अश्वमेधसहस्राणा द्विगुण फलमश्नुते ॥८५
एव कुर्याद्व्रती यस्तु द्वादशीव्रतमुत्तमम् ।
सवत्सर मुनिश्रेष्ठ स याति परम पदम् ॥८६
एकमासे द्विमासे वा य कुर्याद्भक्तितत्परः ।
तत्तत्फलमवाप्नोति प्राप्नोति च हरेः पदम् ॥८७
पूर्ण सवत्सर कृत्वा कुर्यादुद्यापन व्रती ।
मार्गशीर्षासिते पक्षे द्वादश्या च मुनीश्वर ॥८८
स्नात्वा प्रातर्यथाचार दन्तधावनपूर्वकम् ।

शुक्लमाल्याम्वरधर. शुक्लगन्धानुलेपन.॥८६
मण्डप कारयेद्दिव्य चतुरस्र सुशोभनम् ।
घण्टाचामरसयुक्त किङ्किणीरवशोभितम् ॥६०
अलकृत पुष्पमाल्यैर्वितानध्वजराजितम् ।
छादित शुक्लवस्त्रेण दीपमालाविभूषितम् ॥६१

इस विधि से व्रत पूर्ण करके फिर अपने बान्धवो के साथ मे बैठ कर स्वय भी भोजन करना चाहिए। इस उपवास को करके दो सहस्र अश्वमेध यज्ञो के यजन का पुण्य फल प्राप्त हुआ करता है हे मुनिवर! जो कोई भी मनुष्य इस विधान से पूरे वर्ष भर के उपवास किया करता है उस द्वादशी के व्रती को अन्त मे परमपद की प्राप्ति होती है ॥८६॥ जो कोई मनुष्य भक्ति भाव पूर्वक एक या दो मास भी इस व्रत का अनुष्ठान करता है उसको उन मासो का पुण्य फल प्राप्त होजाया करता है और अन्त मे विष्णु लोक की प्राप्ति हुआ करती है ॥८७॥ यदि पूरे वर्ष तक सभी मासो मे यह व्रत पूर्ण करे तो उस उपवास करने वाले पुरुष का इस व्रत का उद्यापन भी अवश्य ही करना चाहिये। उद्यापन का विधान यह है कि मार्गशीर्ष मास की शुक्ल पक्ष की द्वादशी तिथि के दिन प्रात काल के समय मे दातुन करके स्नानादि नित्य कृत्य समाप्त करे इसके पश्चात् श्वेत एव सुगन्धित पुष्पो की माला बनवा कर उसे धारण करे और श्वेत चन्दन का लेपन करे। एक चौकोर परम दिव्य मण्डप की रचना कर उसमे सब ओर घण्टे, चमर और घुँघरू लटकाने चाहिए ॥८८--६०॥ इस सुन्दर मण्डपको भली भाँति पुष्पो की मालायें लटका कर विभूषित करे। बीच मे चँदोवा, उस पर ध्वजा और चारो ओर शुक्ल वस्त्र की सुन्दर झालर लटकानी चाहिये तथा दीपमालाओ से उसे दीप्ति युक्त करे ॥६१

तन्मध्ये सर्वतोभद्र कुर्यात्सम्यगलकृतम् ।

तस्योपरि न्यसेत्कुम्भान्द्वादशाम्बुप्रपूरितान् ॥६२
एकेन शुक्लवस्त्रेण सम्यक्सशोधितेन च ।
सर्वानाच्छादयेत्कुम्भान्पञ्चरत्नसमन्वितान् ॥६३
लक्ष्मीनारायणं देवं कारयेद्भक्तिमान्व्रती ।
हेम्ना वा रजतेनापि तथा ताम्रेण वा द्विज ॥६४
स्थापयेत्प्रतिमां तां च कुम्भोपरि सुसंयमी ।
तन्मूल्यं वा द्विजश्रेष्ठ काञ्चनं च स्वशक्तितः ॥६५
सर्वव्रतेषु मतिमान्वित्तशाठ्यं विवर्जयेत् ।
यदि कुर्यात्क्षयं यान्ति तस्यायुर्धनसंपदः ॥६६
अनन्तशायिनं देवं नारायणमनामयम् ।
पञ्चामृतेन प्रथमं स्नापयेद्भक्तिसंयुतः ॥६७
नामभिः केशवाद्यैश्च ह्युपचारान्प्रकल्पयेत् ।
रात्रौ जागरणं कुर्यात्पुराणश्रवणादिभिः ॥६८

उस मण्डित मंजुल मण्डप के मध्य में सुन्दर सर्वतोभद्र मण्डप की रचना करवावे । उसके ऊपर जल से भरे हुए बारह घट रक्खे ॥६२॥ भली भाँति स्वच्छ शुक्ल वस्त्र से पञ्चरत्न जिनमें पड़े हुए हैं उन घटों को ढाँक देना चाहिए ॥६३॥ हे द्विजवर्य ! भक्त व्रत धारी पुरुष को चाहिए कि सुवर्ण, चाँदी अथवा ताम्र की श्री लक्ष्मी नारायण भगवान् की प्रतिमा बनवावे ॥६४॥ उस संयमशील उपवास करने वाले पुरुष के द्वारा उस सुन्दर भगवान् की प्रतिमा की स्थापना घट के ऊपर करनी चाहिए । यदि किसी विशेष कारणवश भगवान की मूर्ति का निर्माण न कराया जा सके तो उतने ही मूल्य का अथवा वित्तशाठ्य से रहित होकर अपनी शक्ति के अनुसार वहाँ पर सुवर्ण रख देना चाहिए ॥६५॥ बुद्धिमान पुरुष को अत्यन्त उदारता से भक्ति पूर्वक इस कर्म का समाचरण करना चाहिए । इन भगवान के प्रीति के लिये किए हुए व्रतों में कंजूसी कभी न करे । यदि कृपणता

से काम करता है तो भगवान असन्तुष्ट हो जाया करते हैं ॥ ६६ ॥ सर्व प्रथम अनन्तशायी लक्ष्मीनारायण प्रभु का भक्ति के सहित पंचामृत से स्नान अर्थात् अभिषेक कराना चाहिए ॥६७॥ फिर केशव आदि भगवान् के परम पावन एवं शुभ नामों से भगवान की सेवा करते हुए तथा पवित्र पुराणादि की कथा का श्रवण करते हुये रात्रि में जागरण करना चाहिये ॥६८॥

जितनिद्रो भवेत्सम्यक्सोपवासो जितेन्द्रियः ।
त्रिकालमर्चयेद्देवं यथाविभवविस्तरम् ॥६६
ततः प्रातः समुत्थाय प्रायः कृत्यं समाप्य च ।
तिलहोमान्व्याहृतिभिः सहस्रं कारयेद्द्विजैः ॥१००
ततः संपूजयेद्देवं गन्धपुष्पादिभिः क्रमात् ।
देवस्य पुरतः कुर्यात्पुराणश्रवणं ततः ॥१०१
दद्याद् द्वादशविप्रेभ्यो दध्यन्नं पायसं तथा ।
अपूपैर्दशभिर्युक्तं सघृतं च सदक्षिणम् ॥१०२
देवदेव जगन्नाथ भक्तानुग्रहविग्रह ।
गृहाणोपायनं कृष्ण सर्वाभीष्टप्रदो भव ॥१०३
अनेनोपायनं दत्त्वा प्रार्थयेत्प्राञ्जलिः स्थितः ।
आधाय जानुनी भूमौ विनयावनतो व्रती ॥१०४
नमो नमस्ते सुरराजराज नमोऽस्तु ते देव जगन्निवास ।
कुरुष्व संपूर्णफलं ममाद्य नमोऽस्तु तुभ्यं पुरुषोत्तमाय ॥१०५

निद्रा न कर उसको जीत लेवे । उपवास करते हुए अपनी समस्त इन्द्रियों को विषयों की ओर न जाने देकर अपने वश में ही रक्खे । अपने वैभव के अनुरूप ही तीनों समयों में भगवान का अर्चन करना चाहिए । इसके अनन्तर जागरण समाप्त कर प्रातःकाल में सब कृत्य करके ब्राह्मणों के द्वारा व्याहृतियों से अग्नि में एक सहस्र आहुतियां डलवानी चाहिए । वे व्याहृतियां ये हैं—"ॐ भूः, ॐ भुवः, ॐ

स्वः, ॐ महः, ॐ जनः, ॐ तपः, ॐ सत्यम् ॥९९-१००॥ इसके अनन्तर सुगन्धित पुष्प और गन्धाक्षतादि के द्वारा भगवान का अर्चन करे। इसके उपरान्त भगवान के समीप में ही स्थित होकर पुराणों का श्रवण करे ॥१०१॥ इसके पश्चात् दश विप्रों को दधि, अन्न, क्षीर, दश-दश पुनपुने, घृत और द्रव्य दक्षिणा देकर "देवदेव जगन्नाथ भक्तानुग्रह विग्रह। गृहाणो पायनं कृष्ण सर्वाभीष्ट प्रदोभव।" अर्थात् हे देवों के देव! अपने भक्तजनों पर अनुकम्पा करने के ही लिये शरीर धारण करने वाले अर्थात् अवतार लेने वाले। जगत् के स्वामिन् हे कृष्ण! मेरे द्वारा समर्पित इस भेंट को अङ्गीकार करके मुझे मेरी सभी मनोवाछित वस्तुऐं प्रदान कीजिए। इस मन्त्र को पढना चाहिए ॥१०२-१०३॥ इस विधि से उपयुक्त मन्त्र का पाठ करते हुए भेंट समर्पित करे और पीछे व्रतधारी पुरुष का कर्त्तव्य है कि वह अपने दोनों घुटने भूमि पर टेक कर हाथ जोडते हुए सविनय श्री भगवान् से प्रार्थना करे ॥ १०४॥ प्रार्थना इस भाँति है—"नमोनमस्ते सुरराज राजनमोऽस्तुते देव जगन्निवास। कुरुष्व सम्पूर्ण फल ममाय नमोऽस्तु तुभ्यं पुरुषोत्तमाय" अर्थात् हे देवों के देव के भी राजा! आपकी सेवा में मेरा बारम्बार प्रणाम निवेदित है। हे जगत् के निवास! हे देव आपको मेरा अनेकशः प्रणाम है। आप अब मुझे सम्पूर्ण फल प्रदान कीजिये ॥ १०५ ॥

इति सम्प्रार्थयेद्विप्रान्देवं च पुरुषोत्तमम्।
दद्यादर्घ्यं च देवाय महालक्ष्मीयुताय वै ॥१०६
लक्ष्मीपते नमस्तुभ्यं क्षीरार्णवनिवासिने।
अर्घ्यं गृहाण देवेश लक्ष्म्या च सहित. प्रभो॥१०७
यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु।
न्यून सपूर्णता याति सद्यो वन्दे तमच्युतम् ॥१०८
इति विज्ञाप्य देवेश तत्सर्वं सयमी व्रते।
प्रतिमां दक्षिणायुक्तामाचार्याय निवेदयेत् ॥१०९

ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाच्छक्त्या दद्याच्च दक्षिणाम् ।
भुञ्जीत वाग्यतः पश्चात्स्वय बधुजनैर्वृ तः ॥११०
आसायं शृणुयाद्विष्णोः कथां विद्वज्जनैः सह ।
इत्येव कुरुते यस्तु मनुजो द्वादशीव्रतम् ॥१११
सर्वान्कामान्स आप्नोति परत्रेह च नारद ।
त्रिसप्तकुलसयुक्तः सर्वपापविवर्जितः ।
प्रयाति विष्णुभवनं यत्र गत्वा न शोचति ॥११२
य इद शृणुयाद्विप्र द्वादशीव्रतमुत्तमम् ।
वाचयेद्वापि स नरो वाजपेयफल लभेत् ॥११३

इस रीति से श्री भगवान् से तथा तत्कालीन समुपस्थित ब्राह्मणो से प्रार्थना करनी चाहिए। फिर देवी महालक्ष्मी और भगवान् श्री नारायण की सेवा मे—"लक्ष्मीपते नमस्तुभ्य क्षीरार्णवनिवासिने। अर्घ्यं गृहाण देवेश लक्ष्म्या च सहितः प्रभो।" अर्थात् हे क्षीरसागर मे निवास करने वाले हे प्रभो! हे लक्ष्मीदेवी के स्वामिन्! आपको मेरा प्रणाम है। हे प्रभो! आप अपनी प्रियतमा लक्ष्मी माता के सहित मेरे द्वारा प्रदत्त इस अर्घ्य को ग्रहण कीजिये। इस मन्त्र उच्चारण करता हुआ भगवान् को अर्घ्य अर्पित करना चाहिए ॥ १०६, १०७ ॥ इसके पश्चात् सयमशील व्रतधारी पुरुष को देवेश्वर की सेवा मे प्रार्थना करनी चाहिए। "यस्य स्मृतया च नामोतजा तपोयज्ञ क्रियादिषु। न्यून सम्पूर्णता याति सद्यो वन्दे तमच्युतम्" अर्थात् जिस भगवान् का स्मरण करने से अथवा जिनके नाम लेने से समस्त तप-यज्ञ तथा सत्कर्मों की न्यूनता भी पूर्ण हो जाया करती है उन्ही अच्युत भगवान् की सेवा में मैं अपना समादर सहित प्रणाम अर्पित करता हूँ। इसके अनन्तर वह सम्पूर्ण सामग्री और प्रतिमा तथा दक्षिणा आचार्य की सेवा मे भेट कर देनी चाहिये ॥ १०८, १०६॥ इसके पश्चात् ब्रह्मभोज कराना चाहिए और अपनी शक्ति अनुरूप उन विप्रो को दक्षिणा देनी चाहिए। तथा

पीछे मौन व्रत मे रहकर बान्धवो के साथ बैठकर स्वय भी आहार का ग्रहण करना चाहिए ॥ ११० ॥ इसके उपरान्त सुयोग्य विद्वानो की परिषद् मे स्थित होकर सायकाल पर्यन्त भगवान् विष्णु की कथाओ का श्रवण करना चाहिए। इस प्रकार से द्वादशी–व्रत का विधान है ॥ १११ ॥ जो भक्त इस व्रत को इसी विधान से साङ्गोपाङ्ग किया करता है। हे नारद ! उसकी इस लोक मे सभी कामनाये पूर्ण हुआ करती है और परलोक म सब पापो से छूटकर अपनी इक्कीस पुश्तो के पूर्व पुरुषो के साथ विष्णुलोक का निवास प्राप्त किया करता है जहाँ पर उसको किसी भी शोक का मुकाबला नही करना पडता है ॥ ११२ ॥ हे विप्रवर ! जो भक्त इस परमोत्तम द्वादशी व्रत के विधान का श्रवण किया करता है अथवा इसको पढता है उस मनुष्य को भी वाजपेय यज्ञ का पुण्य-फल प्राप्त हो जाता है ॥११३॥



॥ पूर्णिमा वृत का उद्यापन ॥

अन्यद्व्रतवर वक्ष्ये शृणुष्व मुनिसत्तम ।
सर्वपापहर पुण्य सर्वदु खनिवर्हणम् ॥१
ब्राह्मणक्षत्रियविशा शूद्राणा योषिता तथा ।
समस्तकामफलद सर्वव्रतफलप्रदम् ॥२
दु स्वप्ननाशन धर्म्यं दुष्टग्रहनिवारणम् ।
सर्वलोकेषु विख्यात पूर्णिमाव्रतमुत्तमम् ।
येन चीर्णेन पापाना राशिकोटि प्रशाम्यति ॥३
मार्गशीर्षे सिते पक्षे पूर्णाया नियत शुचि ।
स्नान कुर्याद्यथाचार दन्तधावनपूर्वकम् ॥४
शुक्लाम्बरधर शुद्धो गृहमागत्य वाग्यत ।
प्रक्षाल्य पादावाचम्य स्मरन्नारायण प्रभुम् ॥५

नित्य देवार्चनं कृत्वा पश्चात्संकल्पपूर्वकम् ।
लक्ष्मीनारायणं देवमर्चयेद्भक्तिभावतः ॥६
आवाहनासनाद्यैश्च गन्धपुष्पादिभिर्व्रती ।
नमो नारायणायेति पूजयेद्भक्तितत्परः ॥७

श्री सनक जी ने कहा—हे परम श्रेष्ठ मुने ! अब मैं आपके समक्ष मे समस्त पापो एवं दुःखो को दूर भगाने वाले एक अन्य परम पवित्र व्रत का वर्णन करता हूँ। यह ऐसा व्रत है जो चारों ही वर्णों के पुरुषो की तथा स्त्रियो की भी सम्पूर्ण कामनाऐं पूरी कर दिया करता है और सभी व्रतो के करने का पूरा पुण्य-फल प्रदान किया करता है ॥ १ । २ ॥ यह कहे जाने वाला व्रत बुरे स्वप्नो के फल को नष्ट किया करता है तथा दुष्ट ग्रहो के फल को भी दूर भगा दिया करता है। यह परमोत्तम व्रत सभी लोको मे "पूर्णिमा व्रत" के नाम से प्रसिद्ध है। इस व्रत का अनुष्ठान करने से करोड़ो पापो का समुदाय नष्ट हो जाया करता है ॥ ३ ॥ मार्गशीर्ष मास की पूर्णिमा के दिन इस व्रत की साधना करने वाले को परम पवित्रता और सयम-नियम के साथ दांतुन कर विधिपूर्वक स्नान करना चाहिए ॥ ४ ॥ इसके उपरान्त श्वेत वस्त्र धारण करके घर मे बैठकर मौन व्रत मे समास्थित होकर अपने चरणो को धोकर भगवान् नारायण का सस्मरण करते हुए आचमन करना चाहिए ॥ ५ ॥ इसके पश्चात् नैत्यिक देव-पूजन करके सङ्कल्प पढे और फिर परम भक्तिभाव के साथ श्री लक्ष्मीनारायण देवेश्वर की अर्चना करनी चाहिए ॥ ६ ॥ जो इस व्रत को करे उसे भक्ति भाव के साथ "नमोनारायण"—इसका उच्चारण करके भगवान का गन्ध पुष्पादि से अर्चन करना चाहिए। प्रथम उनका आवाहन करे और फिर आसनादि को अर्पित करे ॥ ७ ॥

गीतैर्वाद्यैश्च नृत्यैश्च पुराणपठनादिभिः ।
स्तोत्रैर्वाराधयेद्देवं व्रतकृत्सुसमाहितः ॥८

देवस्य पुरत कृत्वा स्थण्डिल चतुरस्रकम् ।
अरत्निमात्र तत्राग्नि स्थापयेद् गृह्यमार्गत ।
आज्यभागान्तर्पयन्त कृत्वा पुरुषसूक्तत ।
चरुणा च तिलैश्चापि घृतेन जुहुयात्तथा ॥६
एकवार द्विवार वा त्रिवार वापि शक्तित ।
होम कुर्यात्प्रयत्नेन सर्वपापनिवृत्तये ॥१०
प्रायश्चित्तादिक सर्वं स्वगृह्योक्तविधानत ।
समाप्य होम विधिवच्छान्तिसूक्त जपेद्बुध ॥११
पश्चाद्देव समागत्य पुन पूजा प्रकल्पयेत् ।
तथोपवास देवाय ह्यर्पयेद्भक्तिसयुत ॥१२
पौर्णमास्या निराहार स्थित्वा देव तवाज्ञया ।
भोक्ष्यामि पुण्डरीकाक्ष परेऽह्नि शरण भव ॥१३
इति विज्ञाप्य देवाय ह्यर्घ्य दद्यात्तथेन्दवे ।
जानुभ्यामवनी गत्वा शुक्लपुष्पाक्षतान्वित ॥१४
क्षीरोदार्णवसभूत अत्रिगोत्रसमुद्भव ।
गृहाणार्घ्य मया दत्त रोहिणीनायक प्रभो ॥१५

(जो भी इस व्रत को करे उसे बहुत ही सावधानी के सहित गायन—वादन—नृत्य—पुराण—पठन और स्तोत्र पाठादि के द्वारा भगवान् की समाराधना करनी चाहिए ॥ ८ ॥) भगवान् के समक्ष मे एक चौकार वेदी की रचना करावे उस वेदी मे गृह्य सूत्र के कथनानुसार पांच भूसस्कार करे। उसमे फिर अरत्नि प्रमाण (कनिष्ठ अँगुलि स रहित मुट्ठी के बराबर) अग्नि की स्थापना करनी चाहिए। फिर पुरुष सूक्त स आज्य भाग तक कर घृतमिश्रित तिलो की आहुतियाँ अग्नि मे डाल कर होम करना चाहिए ॥ ६ ॥ सम्पूर्ण पापो को दूर भगाने के लिये अपनी शक्ति के अनुरूप एक—दो अथवा तीन बार होम करने का प्रयत्न करना चाहिए ॥ १० ॥ बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिए

कि अपने गृह्य सूत्र के अनुसार प्रायश्चित प्रभृति करके होम समाप्त करे और अन्त मे शान्ति सूक्त का पाठ भी करना चाहिए ।। ११ ।। पुन श्री भगवान् के निकट उपस्थित होकर फिर उनका यजन करे तथा भक्ति सहित भगवान् को उपहारो का समर्पण करे ।। १२ ।। इसके अनन्तर भगवान् से निम्न मन्त्र पढकर प्रार्थना करनी चाहिए—"पौर्णमास्या निराहार स्थितादेव नवाज्ञया । भोक्ष्यामि पुण्डरीकाक्ष परेऽह्नि शरणभव —अर्थ इसका यह है कि—हे पुण्डरीक के तुल्य नेत्रो वाले देव । मैं पूर्णिमा तिथि मे आहार न करते हुए उपोषित होकर आपकी आज्ञा से कल भोजन करूँगा । आप मेरे रक्षक हो जाइए । इसके उपरान्त शुक्ल एव सुगन्धित पुष्प और चावल हाथ मे लेकर भूमि पर अपने घुटनो को टेकते हुए चन्द्रमा को अर्घ समर्पित करके यह प्रार्थना करे—"क्षीरोदार्णव सम्भूत अत्रिगोत्र समुद्भव । गृहाणार्घ्यं मया दत्त रोहिणी नायक प्रभो ।" अर्थात् हे क्षीर सागर के नाथ प्रभो ! आप मेरे द्वारा अर्पित किये गये इस अर्घ को अङ्गीकार करिए । ।। १४–१५ ।।

एवमर्घ्यं प्रदायेन्दो प्रार्थयेत्प्राञ्ज लस्तत ।
तिष्ठ-पूर्वमुखो भूत्वा पश्यन्निन्दु च नारद ।।१६
नम शुक्लाशवे तुभ्य द्विजराजाय ते नम ।
रोहिणीपतये तुभ्य लक्ष्मीभ्रात्रे नमोऽस्तु ते ।।१७
ततश्च जागर कुर्यात्पुराणश्रवणादिभि ।
जितेन्द्रियश्च सशुद्ध पाषण्डालोकवर्जित ।।१८
तत प्रात प्रकुर्वीत स्वाचार च यथाविधि ।
पुन सपूजयेद्देव यथाविभवविस्तरम् ।।१६
ब्राह्मणान्भोजयेच्छक्त्या ततश्च प्रयतो नर ।
बन्धुभृत्यादिभि साध स्वय भुञ्जीत वाग्यत ।।२०
एव पौषादिमासेषु पूर्णमास्यामुपोषित ।

अर्चयेद्भक्तिसयुक्तो नारायणमनामयम् ॥२१

हे नारद ! इस विधि से चन्द्रदेव को अर्घ देकर अपना मुख पूर्व दिशा मे करके हाथ जोडकर पुन प्रार्थना करनी चाहिए ॥ १६ ॥ "नम शुक्लाशवे तुभ्य द्विजराजायते नम । रोहिणी पतये तुभ्य लक्ष्मी भ्रात्रे नमोऽस्तुते ।" अर्थात्—परम शुभ्र किरणो वाले द्विजराज आपकी सेवा मे मेरा प्रणाम है । हे रोहिणी के स्वामिन् ! हे लक्ष्मी देवी के भाई ! मेरा आपको सादर प्रणाम है ॥ १७ ॥ इसके अनन्तर सब पाखण्डियो से दूर रहते हुए परम शुद्धता और जितेन्द्रियतापूर्वक पुराणो का श्रवण करते हुए रात्रि मे जागरण करना चाहिए ॥१८॥ प्रात काल मे शास्त्रोक्त विधि के अनुसार अपने नैत्यिक आचार को करके अपने ऐश्वर्य के ही अनुरूप भगवान् विष्णु का अर्चन करना चाहिए ॥ १६ ॥ इसके पश्चात यथाशक्ति ब्रह्मभोज करा कर स्वय सवान्धव भोजन करे ॥ २० ॥ इसी विधि से पौष आदि मासो की पूर्णिमा तिथियो मे व्रत करके भक्तिभाव से अनामय भगवान् श्री नारायण का अर्चन करना चाहिए ॥ २१ ॥

एव सवत्सर कृत्वा कार्तिकया पूर्णिमादिने ।
उद्यापन प्रकुर्वीत तद्विधान वदामि ते ॥२२
मण्डप कारयेद्दिव्य चतुरस्र सुमङ्गलम् ।
शोभित पुष्पमालाभिर्वितानध्वजराजितम् ॥२३
बहुदीपसमाकीर्ण किङ्किणीजालशोभितम् ।
दर्पणैश्चामरैश्चैव कलशैश्च समावृतम् ॥२४
तन्मध्ये सर्वतोभद्र पञ्चवर्णविराजितम् ।
जलपूर्ण तत कुम्भ न्यसेत्तस्योपरि द्विज ॥२५
पिधाय कुम्भ वस्त्रेण सुसूक्ष्मेणातिशोभितम् ।
हेम्ना वा रजतेनापि तथा ताम्रेण वा द्विज ।
लक्ष्मीनारायण देव कृत्वा तस्योपरि न्यसेत् ॥२६

पञ्चामृतेन सस्नाप्याभ्यर्च्य गन्धादिभिः क्रमात् ।
भक्ष्यैर्भोज्यादिनैवेद्यैर्भक्तितः संयतेन्द्रियः ॥२७
जागरं च तथा कुर्यात्सम्यक्छ्रद्धासमन्वितः ।
परेऽह्नि प्रातर्विधिवत्पूर्ववद्विष्णुमर्चयेत् ॥२८

इसी विधि से पूरे वर्ष की पूर्णिमाओ का उपवास करे और फिर कार्तिक मास की पूर्णिमा मे इस परम पावन व्रत का उद्यापन साल भर पूरे होने पर करना चाहिए। उस उद्यापन का विधान भी अब मैं आपको बतलाता हूँ ॥ २२ ॥ चार कोणो वाला एक परम दिव्य और माङ्गलिक मण्डप की रचना करवावे उस मण्डप को भली भाति विभूषित करे और उसमे सब ओर फूलो की सुन्दर मालाऐं—चँदोवा और ध्वजा—पताकाऐ लटकानी चाहिए ।। २३ ।। मण्डप मे बहुत-से दीपक ज्लावे और घुंघरू, दर्पण—चमर और कलश आदि पदार्थों से भली भाँति मण्डप को सुशोभित करना चाहिए ॥ २४ ॥ इसकी पूरी सजावट करके हे द्विजवर ! उस मण्डप के बीच मे पाँच वर्णो का सर्वतोभद्र मण्डल की रचना करवावे। उसके ऊपर जल से भरे हुए कलशो की स्थापना करे ॥ २५ ॥ उस कलश को बारीक श्वेत वस्त्र से समाच्छादित करे और फिर उसके ऊपर शक्ति के अनुसार सुवर्ण —रजत या ताम्र की श्री भगवान् लक्ष्मी नारायण की मूर्ति की स्थापना करे ।। २६ ॥ उस देव मूर्ति का स्नान पञ्चामृत से कराकर गन्ध पुष्प—धूप—दीप—रजत या ताम्र की श्री भगवान् लक्ष्मीनारायण की पूर्ति का स्नान पञ्चामृत से कराकर गन्ध पुष्प—धूप - दीप—नैवेद्य आदि पूजन के समस्त उपचारो के द्वारा अर्चन भक्तिभाव के सहित करना चाहिए ॥ २७ ॥ फिर श्रद्धा के सहित रात्रि जागरण कर पुन प्रात काल मे विधि के सहित देव—यजन करना चाहिए ॥ २८ ॥

आचार्याय प्रदातव्या प्रतिमा दक्षिणान्विता ।

हेमभारसहस्रं तु यो ददाति कुटुम्बिने ।
तत्फल तुल्यमात्र स्याद्ध्वजारोपणकर्मणः ॥३
ध्वजारोपणतुल्य स्यादगङ्गास्नानमनुत्तमम् ।
अथवा तुलसीसेवा शिवलिङ्गप्रपूजनम् ॥४
अहोऽपूर्वमहोऽपूर्वमहोपूर्वमिद द्विज ।
सर्वपापहर कर्म ध्वजारोपणसज्ञितम् ॥५
सन्ति वै यानि कार्याणि ध्वजारोपणकर्मणि ।
तानि सर्वाणि वक्ष्यामि शृणुष्व गदतो मम ॥६
कार्तिकस्य सिते पक्षे दशम्या प्रयतो नरः ।
स्नान कुर्यात्प्रयत्नेन दन्तधावनपूर्वकम् ॥७

श्री सनकाचार्य ने कहा—अब मैं एक अन्य ध्वजारोपण नाम वाले व्रत के विषय मे सुनाता हूँ । यह परमोत्तम व्रत भी भगवान् विष्णु की प्रसन्नता करने वाला है । तथा इस व्रत से समस्त सञ्चित पाप दूर भाग जाया करते हैं और परम पुण्य का लाभ इसके करने वाले को हुआ करता है ॥१॥ यह व्रत भगवान् श्री विष्णु के मन्दिर मे उत्तम ध्वजा के समारोपण करने वाला है । जो भी कोई मनुष्य भगवान् विष्णु के मन्दिर मे उत्तम ध्वजा लगाता है उसका इतना अधिक पुण्य प्रभाव होता है कि ब्रह्मादिक देव भी उस भक्त की पूजा किया करते हैं—इससे अधिक इस व्रत की महिमा को क्या वर्णन किया जा सकता है ॥२॥ एक कुटुम्बी पुरुष को एक सहस्र भार सुवर्ण का दान करने से जो पुण्य-फल प्राप्त होता है उतना ही पुण्य का फल ध्वजा के समारोपण करने वाले भक्त को प्राप्त हुआ करता है ॥३॥ इस विष्णु मन्दिर मे ध्वजारोपण व्रत की समानता रखने वाला पुण्य श्रेष्ठ गङ्गा स्नान—तुलसी सेवन और शिव लिङ्ग के पूजन का हो सकता है ॥४॥ हे द्विजवर ! यह ध्वजारोपण नामक व्रत एक परम अद्भुत एव अपूर्व होता है इसका अपरिमित महत्व होने से यह अपूर्व ही है । इस ध्वजा-

रापण व्रत के करने मे जो लाभ हुआ करते हैं उन सबका वर्णन मैं आपके सामने करता हूँ। आप परम समाहित होकर सुनिए ॥५॥६॥ इस व्रत के करने वाले मनुष्य को कार्तिक मास की शुक्ल पक्ष की दशमी तिथि के दिन प्रात काल मे दाँतुन आदि कृत्यो से निवृत्त होकर स्नान करना चाहिए ॥७॥

एकाशी ब्रह्मचारी च स्वपेन्नारायण स्मरन् ।
धौताम्वरधर शुद्धो विप्रो नारायणाग्रत ॥८
तत प्रात समुत्थाय स्नात्वाचम्य यथाविधि ।
नित्यकर्माणि निर्वर्त्य पश्चाद् विष्णु समर्चयेत् ॥९
चतुर्भिर्ब्राह्मणै सार्द्ध कृत्वा च स्वस्तिवाचनम् ।
नान्दीश्राद्ध प्रकुर्वीत ध्वजारोपणकर्मणि ॥१०
ध्वजस्तम्भौ च गायत्र्या प्रोक्षयेद् वस्त्रसयुतौ ।
सूर्यं च वैनतेय च हिमाशु तत्परोऽर्चयेत् ॥११
धातार च विधातार पूजयेद्ध्वजदण्डके ।
हरिद्राक्षतगन्धाद्यै शुक्लपुष्पैर्विशेषत ॥१२
ततो गोचर्ममात्र तु स्थण्डिल चोपलिप्य वै ।
आधायाग्नि स्वगृह्योक्तया ह्याज्यभागादिक क्रमात् ॥१३
जुहुयात्पायस चैव साज्यमष्टोत्तर शतम् ।
प्रथम पौरुष सूक्त विष्णोर्नुकमिरावतीम् ॥१४

उस दिन एक बार भोजन करे—ब्रह्मचर्य व्रत का पूर्णतया परिपालन करे—धुले हुए परम विशुद्ध वस्त्र धारण कर भगवान् श्री नारायण का ही मन मे स्मरण एव ध्यान करके उन्ही के सामने रात्रि मे भूमि पर शयन करना चाहिए ॥८॥ प्रात काल मे उठकर यथा विधि नित्य कृत्यो से निवृत्त होकर स्नानाचमन करे तथा भगवान् विष्णु का सविधि अर्चन करना चाहिए ॥९॥ चार अन्य सुयोग्य विप्रो को अपने साथ मे लेकर सब प्रथम स्वस्ति वाचन करके ध्वजारोपण

कर्म मे पहिले नान्दीमुख श्राद्ध करना चाहिए ।।१०।। फिर गायत्री महा मन्त्र के द्वारा एक वस्त्र से लिपटे हुए ध्वजा तथा स्तम्भ दोनो का सविधि प्रोक्षण करना चाहिए। इसके पश्चात सूर्यदेव, गरुड और चन्द्रदेव का पूजन करे ।।११।। उस ध्वजा के दण्ड मे हल्दी, गन्ध, अक्षत और विशेष रूप से श्वेत, सुगन्धित पुष्पो के द्वारा धाता-विधाता का यजन करना चाहिए ।।१२।। इसके पश्चात गौ चर्म मात्र अर्थात सौ गौयें और साँड जिनकी भूमि मे बैठ सके उतनी भूमि पर गोमय को लीप कर वहा पर फिर अपने गृह्य सूत्र के अनुसार विधि पूर्वक अग्नि की स्थापना करनी चाहिए और उसमे क्रम से घृत और पायस का अष्टोत्तर शत आहुतियाँ देकर होम करना चाहिये। पहिले पुरुष सूक्त का पाठ कर 'विष्णोर्नु कम्' मन्त्र से और 'इरावतीम्' इस मन्त्र से आहुति देनी चाहिये ।।१३।१४

ततश्च वैनतेयाय स्वाहेत्यष्टाहुतीस्तथा ।
सोमो धेनुमुदुत्य च जुहुयाच्च ततो द्विज ।।१५
सौरमन्त्राञ्जपेत्तत्र शान्तिसूक्तानि शक्तित ।
रात्रौ जागरण कुर्यादुपकण्ठे हरे शुचि ।।१६
तत प्रात समुत्थाय नित्यकर्म समाप्य च ।
गन्धपुष्पादिभिर्देवमर्चयेत्पूर्ववत्क्रमात् ।।१७
ततो मङ्गलवाद्यैश्च सूक्तपाठैश्च शोभनम् ।
नृत्यैश्च स्तोत्रपठनैर्नयेद्विष्णवालये ध्वजम् ।।१८
देवस्य द्वारदेशे वा शिखरे वा मुदान्वित ।
सुस्थिर स्थापयेद्विप्र ध्वज सुस्तम्भसयुतम् ।।१९
गन्धपुष्पाक्षतैर्देव धूपदीपैर्मनोहरै ।
भक्ष्यभोज्यादिसयुक्तैर्नैवेद्यैश्च हरि यजेत् ।।२०
एव देवालय स्थाप्य शोभन ध्वजमुत्तमम् ।
प्रदक्षिणमनुव्रज्य स्तोत्रमेतदुदीरयेत् ।।२१

नमस्ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन ।
नमस्तेऽस्तु हृषीकेश महापुरुष पूर्वज ॥२२

इसके अनन्तर 'ॐनेयाय स्वाहा' इसका समुच्चारण करके आठ आहुतियां देवे । दूसरे उपरान्त 'सोमो धेनुम्' और 'उहुत्यम्' इनसे आहुतियाँ देनी चाहिए । इसके अनन्तर यथा शक्ति ऐसे अन्य मन्त्रों का जिनका देवता सूय है तथा शान्ति सूक्त का जाप करे और उस दिन भी श्री हरि के सामने बैठ कर रात्रि जागरण करना चाहिये ॥१४-१६॥ इसके पश्चात प्रात काल उठ कर नित्य कर्म को पूर्ण करके पूर्ण कर्मानुसार ही गन्ध पुष्पादि के द्वारा देव पूजन करे ॥१७॥ यह सब पूण करने के पश्चात परम मांगलिक वाद्य, मूत पाठ, स्तान पाठ और नृत्य करता हुआ उस ध्वजा को श्री विष्णु क मन्दिर म ले जाना चाहिए ॥१८॥ वहा विष्णु मन्दिर के द्वार देश मे अथवा शिखर भाग म परम प्रसन्नता के साथ उस दण्ड सहित ध्वजा का समारोपण करे ॥१९॥ वहा पर भी ध्वजा की स्थापना करने के पश्चात् पुन गन्ध पुष्पादि के द्वारा भगवान विष्णु का अर्चन करना चाहिए ॥२०॥ इस विधि से देव मन्दिर म उस उत्तम ध्वजा को स्थापित करके उसकी प्रदक्षिणा करे और उस समय म 'नमस्ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन । इस पद्य से (२२वे मूल म लिखित श्लोक से) आरम्भ करके ३८ वे मूलोक्त श्लोक पर्यन्त स्तोत्र का पाठ करे । अर्थात् हे पुण्डरीकाक्ष ! हे सम्पूर्ण विश्व पर कृपा करने वाले ! आपकी सवा में प्रणाम है । हे महान पुरुष पूर्वज ! हे हृषीकेश! आपको मरा प्रणाम है ॥२१।२२

येनेदमखिल जात यत्र सर्व प्रतिष्ठितम् ।
लयमेष्यति यत्रैव त प्रपन्नोऽस्मि केशवम् ॥२३
न जानन्ति पर भाव यस्य ब्रह्मादय सुरा ।
योगिनो य न पश्यन्ति त वन्दे ज्ञानरूपिणम् ॥२४

अन्तरिक्ष तु यन्नाभिर्द्योर्मूर्द्धा यस्य चैव हि ।
पादोऽभूद्यस्य पृथिवी त वन्दे विश्वरूपिणम् ॥२५
यस्य श्रोत्रे दिश सर्वा यच्चक्षुर्दिनकृच्छशी ।
ऋक्सामयजुषी वाग्वै त वन्दे ब्रह्मरूपिणम् ॥२६
यन्मुखाद् ब्राह्मण जाता यद्बाहोरभवन्नृपा ।
वैश्या यस्योरुतो जाता पद्भ्या शूद्रो व्याजयत ॥२७

यह सम्पूर्ण जगत् जिन आपसे प्रादुर्भूत हुआ है और जिस आपके ही स्वरूप मे यह समस्त जगत प्रतिष्ठित है और अन्त मे यह सम्पूर्ण विश्व लय को प्राप्त हुआ करता है उन्ही भगवान केशव की मैं शरण ग्रहण करता हूँ ॥२३॥ जिन भगवान के परमोत्तम भाव का ज्ञान ब्रह्मा आदि महान देवता भी नही रख सकते है और योगीजन अपने योग मार्ग के द्वारा जिनका दर्शन नही कर पाते है उन्ही ज्ञान स्वरूप वाले भगवान को मै सादर प्रणाम समर्पित करता हूँ ॥२४॥ यह व्यापक अन्तरिक्ष जिन भगवान की नाभि है, दिव लोक जिनका मस्तक है, पृथ्वी जिनके चरण हैं उन्ही विश्वरूपी भगवान की सेवा मे मैं प्रणाम निवेदित करता हूँ ॥२५॥ ये समस्त दिशायें जिन प्रभु के श्रोत्र हैं—सूय और चन्द्र य दोनो प्रभु के नेत्र हैं। वेद रूपी (ऋक्, यजु और सामवेद) जिन प्रभु की वाणी हैं ऐसे ब्रह्म-स्वरूप वाले भगवान को मैं प्रणाम करता हूँ ॥२६॥ जिनके मुख कमल स ब्राह्मणो की उत्पत्ति हुई है, भुजाओ से क्षत्रिय वर्ण की उत्पत्ति हुई है। जिनके उरुओ मे वैश्य जाति का आविर्भाव हुआ है और चरणो से शूद्रो का समुद्भव हुआ है ॥२७

मायासङ्गमभागेण वदन्ति पुरुष त्वजम् ।
स्वभावविमल शुद्ध निर्विकार निरञ्जनम् ॥२८
क्षीराब्धिशायिन देवमनन्तमपराजितम् ।
सद्भक्तवत्सल विष्णु भक्तिगम्य नमाम्यहम् ॥२९

ही सवत्र प्राप्त होने वाले हैं वही भगवान विष्णु पर मुझ प्रसन्न होवे ॥३४॥

चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च द्वाभ्या पञ्चभिरेव च ।
हूयते च पुनर्द्वाभ्या स मे विष्णु प्रसीदतु ॥३५
ज्ञानिना कर्मिणा चैव तथा भक्तिमता नृणाम ।
गतिदाता विश्वमृग्य स मे विष्णु प्रसीदतु ॥३६
जगद्धितार्थ ये देहा ध्रियन्ते लीलया हरे ।
तानर्चयन्ति विबुधा स मे विष्णु प्रसीदतु ॥३७
यमामनन्ति वै सन्त सच्चिदानन्दविग्रहम् ।
निर्गुण च गुणाधार स मे विष्णु प्रसीदतु ॥३८
इति स्तुत्वा नमेद्विष्णु ब्राह्मणाश्च प्रपूजयेत् ।
आचार्य पूजयेत्पश्चाद्दक्षिणाच्छादनादिभि ॥३९
ब्राह्मणा भोजयेच्छक्त्या भक्तिभावसमन्वित ।
पुत्रमित्रकलत्राद्यै स्वय च सह बन्धुभि ॥४०
कुर्वीत पारण विप्र नारायणपरायण ।
मस्त्वेतकर्मकुर्वीत ध्वजारोपणमुत्तमम् ।
तस्य पुण्यफल वक्ष्ये शृणुध्व सुसमाहित ॥४१
पटो ध्वजस्य विप्रेन्द्र यावच्चलति वायुना ।
तावन्ति पापजालानि नश्यन्त्येव न सशय ॥४२

जो चारो वर्णों से—चारो आश्रम वालो के द्वारा—दिन तथा रात्रि मे और पाचो प्रकार के मनुष्यो से जिनकी पूजा की जाया करती है व ही भगवान् विष्णुदव मुझ पर प्रसन्न होवे ॥ ३५ । ३६ । ३७ ॥ साधुपुरुष जिन भगवान् को सच्चिदानन्द—निगुण और सगुण भी कहा करते हैं वह भगवान् विष्णु मुझ पर प्रसन्न होवें ॥ ३८ ॥ इस प्रकार से भगवान् का स्तवन कर विष्णु का तथा ब्राह्मणों का अचन करे और दक्षिणा द्रव्य तथा वस्त्रादि समर्पित कर आचाय का सत्कार करना

चाहिए ॥ ३६ ॥ फिर भक्ति भाव के सहित अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मणों को भोजन करावे । इसके अनन्तर पुत्र–मित्र–स्त्री और समस्त बन्धु-बान्धवों के साथ स्वयं भी भोजन करे ॥ ४० ॥ हे विप्रवर ! इस प्रकार से भगवान् नारायण—परायण होकर पारणा करनी चाहिए । जो पुरुष इस ध्वजारोपण कर्म को सुविधि किया करते हैं उनके पुण्य-फल का मैं अब वर्णन करता हूँ । आप सावधान होकर श्रवण करिए । ॥ ४१ ॥ हे विप्रेन्द्र ! इस समारोपित ध्वजा झण्डा शत्रु में जब तक चला करता है उतने ही पापों का समुदाय भस्म हो जाया करता है ॥ ४२ ॥

महापातकयुक्तो वा युक्तो वा सर्वपातकैः ।
ध्वजं विष्णुगृहे कृत्वा मुच्यते सर्वपातकैः ॥४३
यावद्दिनानि तिष्ठेत ध्वजो विष्णुगृहे द्विज ।
तावद्युगसहस्राणि हरिसाम्यमश्नुते ॥४४
आरोपितं ध्वजं दृष्ट्वा येऽभिनन्दन्ति धार्मिकाः ।
तेऽपि सर्वे प्रमुच्यन्ते महापातककोटिभिः ॥४५
आरोपितो ध्वजो विष्णुगृहे धुन्वन्पटं स्वकम् ।
कर्तुः सर्वाणि पापानि धुनोति निमिषार्द्धतः ॥४६
यस्त्वारोप्य गृहे विष्णोर्ध्वजं नित्यमुपाचरेत् ।
स देवयानेन दिवं यातीव सुमतिर्नृप ॥४७

जो कोई मनुष्य महापातकों से अथवा अन्य सभी प्रकार के महान् पापों से दूषित हो गया हो वह भगवान् विष्णु के मन्दिर में ध्वजा चढ़ाकर समस्त पापों से विमुक्त हो जाया करता है ॥४३॥ हे द्विजवर ! वह ध्वजा जितने दिनों तक विष्णु के मन्दिर में रहा करती है उतने ही सहस्र युगों तक वह श्री हरि की सन्निधि में निवास किया करता है । ॥ ४४ ॥ जो कोई भी धार्मिक पुरुष उस चढ़ी हुई ध्वजा को देखकर उसकी वन्दना किया करते हैं वे भी किये हुए अपने करोड़ों पातकों से

छूटकर विशुद्ध हो जाया करते है ॥ ४५ ॥ भगवान् विष्णु के मन्दिर मे चढाई हुई ध्वजा अपने झण्डे को फहराती हुई उस ध्वजारोपण करने वाले व्यक्ति के सभी पापो को आधे निमेष मे ही कम्पित कर दिया करती है ॥ ४६ ॥ जो पुरुष श्री विष्णु के मन्दिर मे ध्वजा को चढाकर सवदा उसकी वन्दना किया करता है। वह राजा सुमति के समान ही देव यान म बैठ कर सोधा स्वग लोक को चला जाया करता है ॥ ४७ ॥

॥ सुमति विभाण्डक संवाद ॥

भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वशास्त्रार्थपारग ।
सर्वकर्मवरिष्ठ च त्वयोक्त ध्वजधारणम् ॥१
यस्तु वै सुमतिर्नाम ध्वजारोपपरो मुने ।
त्वयोक्तस्तस्य चरित विस्तरेण ममादिश ॥२
शृणुष्वैकामना पुण्यमितिहास पुरातनम् ।
ब्रह्मणा कथित मह्य सर्वपापप्रणाशनम् ॥३
आसीत्पुरा कृतयुगे सुमतिर्नाम भूपति ।
सोमवशोद्भव श्रीमान्सप्तद्वीपैकनायक ॥४
धर्मात्मा सत्यसपन्न शुचिवश्योऽतिथिप्रिय ।
सर्वलक्षणसम्पन्न सर्वसपद्विभूपित ॥५
सदा हरिकथासेवी हरिपूजापरायण ।
हरिभक्तिपराणा च शुश्रूपुर्निरहकृति ॥६
पूज्यपूजारतो नित्य समदर्शी गुणान्वित ।
सर्वभूतहित शान्त कृतज्ञ कीर्तिमास्तथा ॥७

देवर्षि श्री नारद जी ने कहा—हे भगवन् ! आप तो समस्त शास्त्रो के वास्तविक प्रयोजनो के ज्ञाता हैं और सभी धर्मों के तत्व को

भी भली भाँति जानते हैं । आपने परम श्रेष्ठ ध्वजारोपण कर्म का वर्णन किया है । हे मुने ! आपने इसी प्रसङ्ग में राजा सुमति की जो चर्चा की है जिसने ध्वजारोपण किया था अब आप महती कृपा करके उस राजा सुमति का चरित्र विस्तृत रूप में मुझे श्रवण कराइये ॥ १ । २ ॥ इस तरह से नारदजी के पूछने पर सनक मुनि ने कहा—यह परम प्राचीन ऐतिहासिक घटना है । इसको आप मन लगाकर अब परम पवित्र एवं प्राचीन इतिहास को एकाग्रता से श्रवण करिए । ब्रह्माजी ने मुझसे इस समस्त पापों को दूर करने वाले इतिहास का वर्णन किया था ॥ ३ ॥ बहुत पहिले सत्ययुग में एक सुमति नामधारी राजा हुए थे । यह राजा सोमवंश में समुत्पन्न हुआ था तथा सातों द्वीपों का एक छत्र राजा हुआ था ॥ ४ ॥ यह राजा बहुत ही धार्मिक, सत्यभाषी पवित्र वंश में समुद्भूत, समागत, अतिथियों में अत्यधिक प्रेम किया करते थे । यह सभी सुन्दर लक्षणों से युक्त और सभी तरह की सम्पदाओं से समन्वित एवं भूषित थे ॥ ५ ॥ राजा सुमति नित्य ही श्री हरि भगवान की कथा का श्रवण किया करते थे और अहर्निश भगवान विष्णु के पूजन करने में मग्न रहा करते थे और अभिमान से रहित होकर सर्वदा भगवान् विष्णु के भक्तों की सेवा में तत्पर रहा करते थे ॥ ६ ॥ जो भी पूजा के करने के योग्य सत्पात्र होते थे उनकी पूजा किया करते थे । यह सबको समान दृष्टि से देखने वाले—गुण गणों से युक्त—समस्त प्राणियों के हितैषी—शम का परिपालन करने वाले एवं परम कृतज्ञ थे । इसीलिये उस राजा की कीर्त्ति का चारों तरफ विस्तार हो रहा था ॥ ७ ॥

तस्य भार्या महाभागा सर्वलक्षणसंयुता ।
पतिव्रता पतिप्राणा नाम्ना सत्यमतिर्मुने ॥८
तावुभौ दम्पती नित्य हरिपूजापरायणा ।
जातिस्मरौ महाभागौ सत्यज्ञौ सत्परायणौ ॥९

अन्नदानरतौ नित्य जलदानपरायणौ ।
तडागारामवप्रादीनसख्यातान्वितेनतु ॥१०
सा तु सत्यमतिर्नित्य शर्चिविष्णुगृहे सती ।
नृत्यत्यन्तसन्तुष्टा मनोज्ञा मञ्जुवादिनी ॥११
सोऽपि राजा महाभागो द्वादशीद्वादशोदिने ।
ध्वजमारोपयत्येव मनोज्ञ वहुविस्तरम् ॥१२
एव हरिपर नित्य राजान धर्मकोविदम् ।
प्रिया सत्यमति चास्य देवा अपि सदास्तुवन् ॥१३
त्रिलोके विश्रुतौ ज्ञात्वा दम्पती धर्मकोविदौ ।
आययौ वहुभि शिष्यैर्द्रष्टुकामोविभाण्डक ॥१४

हे मुनिवर । उस राजा की पत्नी का नाम सत्यमती था । वह भी महान् भाग्य वाली, समस्त शुभ लक्षणों से समुत्पन्न, अपने पति को प्राण के समान समझने वाली परम पतिव्रता थी ॥ ८ ॥ ये दोनों ही पति-पत्नी सर्वदा श्री हरि के अर्चन में सलग्न रहा करते थे । इन दोनों को अपने प्रथम जन्म का भी स्मरण था । ये दानों ही सत्य प्रतिज्ञा रखने वाले और सत्परायण रहा करते थे ॥ ९ ॥ ये सदा अन्न और जल का दान दिया करते थे । इन्होंने अगणित उद्यान—तालाब आदि स्थापित एव निर्मित किये थे ॥ १० ॥ (वह रानी सती सत्यमती विष्णु भगवान् के मन्दिर में जाकर सर्वदा परम पवित्रता पूर्वक नृत्य किया करती थी तथा सन्तोष के साथ अतीव मनोहर वाद्यों का वादन कर भगवान को रिझाया करती थी ॥ ११ ॥) इसी प्रकार से परम महाभाग वह राजा भी द्वादशी तिथि के दिन जो कि प्रत्येक मास में आती थी भगवान् के मन्दिर में सुन्दर ध्वजा का समारोहण किया करता था ॥ १२ ॥ इस प्रकार के अत्यन्त धर्म-तत्पर परम धार्मिक राजा और सती सत्यमति रानी की देवगण भी प्रशसा किया करते थे ॥ १३ ॥ त्रैलोक्य में परम प्रसिद्ध धार्मिक दम्पती के विषय

म श्रवण करके विभाण्डक मुनि अपने समस्त शिष्य वर्ग के साथ उस दम्पत्ति का दर्शन करने के लिये एक बार वहाँ पर समागत हुए थे ॥ १४ ॥

समायात मुनिं श्रुत्वा स तु राजा विभाण्डकम् ।
प्रत्युद्ययौ सपत्नीक पूजाभिर्बहुविस्तरम् ॥१५
कृतातिथ्यक्रिय शान्त कृतासनपरिग्रहम् ।
नीचासनस्थितो भूप प्राञ्जलिमुंनिमब्रवीत् ॥१६
भगवन्कृतकृत्योऽस्मि त्वदभ्यागमनेन वै ।
सतामागमन सन्त प्रशसन्ति सुखावहम् ॥१७
यत्र स्यान्महता प्रम तत्र स्यु सवसम्पद ।
तेज कीर्तिर्धनं पुत्रा इति प्राहुर्विपाश्चित ॥१८
तत्र वृद्धिमुपायान्ति श्रेयास्यनुदिन मुने ।
यत्र सन्त प्रकुर्वन्ति महतीं करुणा प्रभो ॥१९
यो मूर्ध्नि धारयेद् ब्रह्मन्महत्पादजल रज ।
स स्नात सर्वतीर्थेषु पुण्यात्मा नात्र सशय ॥२०
मम पुत्राश्च दाराश्च सपत्त्वयि समर्पिता ।
मामाज्ञापय विप्रन्द्र किं प्रिय करवाणि ते ॥२१

राजा ने जब सुना कि विभाण्डक मुनि वहाँ पर पधार रहे हैं तो उसने अपनी पत्नी को साथ में लेकर उनकी अगवानी करने के लिये आसन से उठ कर बाहर आगमन किया था । जब वे आगये तो उनका बहुत ही अच्छी तरह से आतिथ्य एवं सत्कार किया था । जब मुनिवर समर्पित उच्चासन पर विराजमान हो गये तो तब राजा नीचे एक आसन पर बैठ गया था और हाथ जोड़ कर मुनिवर से प्रार्थना करने लगा था ॥ १५।१६ ॥ राजा ने कहा—हे भगवन् ! आज आपके शुभागमन से मैं परम कृतार्थ हो गया हूँ क्योंकि सज्जनों के आगमन से बड़े भारी सुख की प्राप्ति हुआ करती है—यह ऐसा सत्पुरुषों

के दर्शन की महिमा ही होती है ॥२७॥ विद्वान् लोग कहा करते हैं कि जहा पर उदार सत्पुरुष प्रेम किया करते हैं वहाँ पर निश्चित रूप से कीर्त्ति—सम्पदा और पुत्रादि की प्राप्ति होने लगा करती हे ॥१८॥ हे मुनिवर ! हे प्रभो ! सत्पुरुष जहाँ पर अपनी बडी कृपा किया करते हैं वहा पर प्रतिदिन मङ्गल ही मङ्गल हुआ करते हैं ॥१६॥ हे ब्रह्मन् ! जो मनुष्य अपने पूज्य तम बडो के चरणोदक तथा चरण से स्पर्श की गई धूलि को अपने मस्तक पर धारण किया करते हैं उन परम पुण्यात्मा पुरुषो ने सभी पवित्र तीर्थों मे स्नान कर लिया है—इसमे लेशमात्र भी सशय नही है ॥२०॥ मैं अपने पुत्र—स्त्री और सम्पूर्ण वैभव को आपकी सेवा मे समर्पित करता हूँ। हे विप्रवर ! आप मुझे अपनी आज्ञा प्रदान कीजिए मैं इस समय मे आप का परम प्रिय कार्य क्या करू ? ॥२१॥

विनयावनत भूप स निरोक्ष्य मुनीश्वर ।
स्पृशन्करेण त प्रीत्या प्रत्युवाचातिहर्षित ॥२२
राजन्यदुक्त भवता तत्सर्व त्वत्कुलोचितम् ।
विनयावनत सर्वो वहुश्रेयो लभेदिह ॥२३
धर्मश्चार्थश्च कामश्च मोक्षश्च नृपसत्तम ।
विनयाल्लभते मर्त्यो दुर्लभ किं महात्मनाम् ॥२४
प्रीतोऽस्मि तव भूपाल सन्मार्गपरिवर्त्तिन ।
स्वस्ति ते सतत भूयाद्यत्पृच्छामि तदुच्यताम् ॥२५
पूजा वहुविधा सन्ति हरितुष्टिविधायिका ।
तासु नित्य ध्वजारोपे वर्त्तसे त्व सदोद्यत ॥२६
भार्यापि तव साध्वीय नित्य नृत्यपरायणा ।
किमर्थमेतद् वृत्तान्त यथावद्वक्तुमर्हसि ॥२७
शृणुष्व भगवन्सर्व यत्पृच्छसि वदामि तत् ।
आश्चर्यभूत लोकानामावयोश्चास्ति विद्‌ ॥२८

वह महा मुनि उस राजा की ऐसी नम्रता देखकर बहुत ही प्रसन्न हुए और बड़े ही प्रेम के साथ उस पर हाथ फेरते हुए कहने लगे—॥२२॥ श्री ऋषिवर ने कहा—हे राजन् ! आपने जो कुछ भी मुझ से प्रार्थना की है वह सब आपके इस परमोच्च एवं पवित्र कुलके योग्य ही है। ऐसा निश्चित नियम है कि जो विनम्र होता है उसे अनेक तरह के कल्याणों की स्वतः ही प्राप्ति हो जाया करती है ॥२३॥ हे नृप श्रेष्ठ ! यह विनय ऐसा उत्तम गुण है कि इसके द्वारा धर्म-अर्थ काम और मोक्ष सभी कुछ प्राप्त हो जाया करते हैं। महान् आत्मा वालों को इस संसार में कोई भी पदार्थ दुर्लभ नहीं रहा करता है ।२४। हे राजन् ! आप तो परम श्रेष्ठ मार्ग पर चल रहे हो—मैं आपसे बहुत ही प्रसन्न हो गया हूँ। मैं आशीर्वाद देता हूँ कि आपका सदा कल्याण होवे। अब मैं आपसे जो कुछ भी पूछता हूँ उसका उत्तर आप मुझे दीजिए ॥२५॥ ऋषि ने कहा— भगवान् विष्णु का प्रसन्न करने वाली अनेक प्रकार की अर्चन-पद्धतियाँ हैं उन सबमें से आप केवल ध्वजारोपण नाम वाली पूजा ही क्यों किया करते हैं ? ॥२६॥ (यह आपकी परम साध्वी पत्नी भी विष्णु मन्दिर में सदा नृत्य ही किया करती हैं—यह सब क्या बात है ?) आप दोनों ऐसा ही क्यों किया करते हैं जब कि अन्य अनेक भगवान् के प्रसन्न करने के उत्तमोत्तम साधन विद्यमान हैं ? इसका सत्य-सत्य उत्तर मुझे दीजिए ॥२७॥ राजा ने कहा—हे भगवन् ! आपने जो कुछ भी मुझ से इस समय में पूछा है उसको मैं बतलाता हूँ, आप सुनिए। हम दोनों के चरित्र में लोग आश्चर्य में पड़े रहा करते हैं ॥२८॥

अहमास पुरा शूद्रो मालिनिर्नाम सत्तम ।
कुमार्गनिरतो नित्य सर्वलोकाहिते रत ॥२९
पिशुनो धर्मविद्वेषी देवद्रव्यापहारक ।
गोघ्नश्च ब्रह्महा चोर सर्वप्राणवधे रत ॥३०

नित्य निष्ठुरवक्ता च पापी वेश्यापरायणः ।
एवं स्थितः कियत्कालमनादृत्य महद्वचः ॥३१
सर्वबन्धुपरित्यक्तो दुःखी वनमुपागतः ।
मृगमांसाशनो नित्यं तथा पान्थविलुम्पकः ॥३२
एकाकी दुःखबहुलो न्यवसन्निर्जने वने ।
एकदा क्षुत्परिश्रान्तो निदाघार्त्तः पिपासितः ॥३३
जीर्णं देवालयं विष्णोरपश्यं विजने वने ।
हंसकारण्डवाकीर्णं तत्समीपे महत्सरः ॥३४
पर्यन्तवनपुष्पौघच्छादितं तन्मुनीश्वर ।
अपिबं तत्र पानीयं तत्तीरे विगतश्रमः ॥३५
फलानि जग्ध्वा शीर्णानि स्वयं क्षुच्च निवारिता ।
तस्मिञ्जीर्णालये विष्णोर्निवासं कृतवानहम् ॥३६

हे मुनिवर ! मैं पहिले जन्म में मलिनि नाम वाला शूद्र था । मैं बहुत ही अधिक कुमार्गगामी था और सदा दूसरो के अहित के ही कार्य करने में लगा रहा करता था ॥२६॥ मैं बड़ा चुगलखोर—धर्म से द्वेष रखने वाला—देवद्रव्य का चोर और गौ ब्राह्मणो को मारने वाला था और सभी प्राणियो की हिंसा किया करता था ॥३०॥ मैं सदा कड़वी बातें कहा करता था और पाप कर्म ही किया करता था । मैं वेश्यागामी था और अपने बड़ो की बातें नही मानता था । इसी प्रकार से बहुत सा समय व्यतीत हो गया था ॥३१॥ ऐसी दशा मेरी देखकर मेरे सभी बान्धवों ने मुझे त्याग दिया था । तब मैं परम दुःखित होकर जंगल में चला गया था और वहा पर मैं मृगो के मांस का आहार करने लग गया था तथा मैं राहो में जाने आने वाले मुसाफिरो का लूटने का काम करने लग गया था ॥३२॥ इस प्रकार से मैं बहुत से दुःखों से संतप्त होकर वन में रहने लगा था । एक समय मैं भूख से पीड़ा पर भी से पीड़ित होकर प्यासा घूम रहा था । उस समय में मैंने

उस निर्जन बियावान जङ्गल मे भगवान विष्णु के जीर्ण-शीर्ण एक मन्दिर को देखा था । उस मन्दिर के समीप मे ही एक सरोवर भी था जो हंस और कारण्डवों से घिरा रहता था ॥ वह सरोवर हे मुनिवर ! जल पर्यन्त पुष्पों वाली लताओं से सुशोभित था । उसके तट पर मैंने पहुँच कर जल पान किया था । उससे मेरी थकान दूर होगई थी । उस समय पर मैंने देखा कि भूमि पर कुछ फल वृक्षों पर से टूट कर गिर गये हैं । मैंने उनको उठा कर अपनी क्षुधा को भी शान्त किया था । इसके उपरान्त मैं उसी जीर्ण मन्दिर मे रहने लग गया था ॥३५।३६॥

जीर्णस्फुटितसधानं तस्य नित्यमकारिषम् ।
पर्णैस्तृणैश्च काष्ठैश्च गृहं सम्यक् प्रकल्पितम् ॥३७
स्वसुखार्थं तु तद्भूमिर्मया लिप्ता मुनीश्वर ।
तत्राहं व्याधवृत्तिस्थो हत्वा बहुविधान्मृगान् ॥३८
आजीवं वर्ततन्नित्यं वर्षाणां विंशति स्थितः ।
अथेयमागता माध्वा विन्ध्यदेशसमुद्भवा ॥३९
निषादकुलजता विप्र नाम्ना ख्याताऽवकोकिला ।
बन्धुवर्गपरित्यक्ता दु खिता जीर्णविग्रहा ॥४०
क्षत्तृड्घर्मपरिश्रान्ता शोचन्ती स्वकृतं ह्यघम् ।
दैवयोगात्समायाता भ्रमन्ती विजने वने ॥४१
ग्रीष्मतापार्दिता बाह्ये स्वान्ते चाधिनिपीडिता ।
इमां दु खार्दितां दृष्ट्वा जाता मे विपुला दया ॥४२

जो उस मन्दिर के भाग टूटे फूटे हुए थे उनको धीरे-धीरे तृण और काष्ठों से ठीक करता रहता था । इस तरह से कुछ समय मे बहुत अच्छा निवास घर सा बना लिया था ॥३७॥ हे मुनीश्वर ! शनै शनै वहाँ की जो भूमि थी उसको भी मैंने अपने ही सुख के दृष्टिकोण से लीप कर ठीक बना लिया था । उस स्थान पर ही एक

बहेलिया का कम करता हुआ मैं नित्य ही बहुत-से मृगो को मार कर बीस वर्ष तक रहा था। हे विप्रवर ! इसके अनन्तर विन्ध्यदेश के एक निषाद कुल मे उत्पन्न अवकोकिला नाम वाली परम साध्वी स्त्री वहा पर आगयी थी। जिसको उसके बन्धु-बान्धवो ने त्याग कर निकाल दिया था। इसका शरीर बहुत जीर्ण हो गया था और वह भूख प्यास धूप से बहुत घबडाई हुई उस निर्जन वन मे इधर उधर घूम रही थी। वह अपने किय हुए पापो का पश्चाताप कर रही थी। इस तरह से वह दैवयोग से मेरे पास आ निकली थी ॥३८-४१॥ वह विचारी बाहिर तो धूप की गरमी से झुलस रही थी और अपने मनके अन्दर इन प्राप्त हुए क्लेशो के कारण बहुत ही सन्ताप वाली थी। उस समय में उम अत्यन्त दु खिनी को देख कर मेरे हृदय मे अत्यन्त करुणा उत्पन्न हो गई थी ॥४२

> दत्त मया जल चास्यै मास वन्यफलानि च।
> गतश्रमा स्थिय ब्रह्मन्मया पृष्टा यथा तथम् ॥४३
> अवेदयत्स्ववृत्तान्त तच्छृणुष्व महामुने।
> नाम्नावकोकिला चाह निषादकुलसम्भवा ॥४४
> दारुकस्य सुता चाह विन्ध्यपर्वतवासिनी।
> परस्वहारिणी नित्य सदा पैशुन्यवादिनी ॥४५
> पु श्चलीत्येवमुक्त्वा तु बन्धुवर्गे समुज्झिता।
> कियत्काल तत पत्या भृताह लोकनिन्दिता ॥४६
> दैवात्सोऽपि गतो लोक यमस्यात्र विहाय माम्।
> कान्तारे विजने चैका भ्रमन्ती दु खपीडिता ॥४७
> दैवात्त्वत्सविध प्राप्ता जीविताह त्वयाधुना।
> इत्येव स्ववृत्त वम मह्य सर्व न्यवेदयत् ॥४८
> ततो दयालय तस्मिन्दम्पतीभावमाश्रितौ।
> स्थितौ वर्षाणि दश च आवा मासफलाशिनौ ॥४९

एकदा मद्यपानेन प्रमत्तौ निर्भरं मुने।
तत्र देवालये रात्रौ मुदितौ मांसभोजनात् ॥५०

अतएव मैंने उसको जल और मांस तथा जङ्गली फल दे दिये थे अब। वह अपनी थकान दूरकर शान्त होगई थी तब मैंने उसका सब कारण पूछा था ॥४३॥ हे महामुने! उसने अपना सारा हाल सुनाया था उसे मैं आपके सामने कहता हूँ आप श्रवण कीजिये। उसने कहा था—मैं निषाद कुल में समुत्पन्न हुई हूँ और मेरा नाम अब कोकिला है।।४४॥ मेरे पिता का नाम दारुक है, मैं विन्ध्याचल पर्वत पर रहती थी, मैं सदा दूसरों का धन चुराया करती थी और सर्वदा दूसरों की चुगली खाया करती थी ॥४५॥ मेरे कुल वालों ने 'यह छिनाल है' यह कह कर घर से निकाल दिया था किन्तु मुझे लोक में निन्दित होने पर भी मेरे पति ने कुछ समय तक मेरा पोषण किया था ॥४६॥ मेरे दुर्भाग्य से वह भी मुझे असहाय छोड़कर परलोकगामी हो गया है। अब मैं इस निर्जन वन में अत्यन्त पीड़ित होकर अकेली घूम रही थी ॥४७॥ भाग्यवश मैं तेरे समीप में आ निकली हूँ। तूने मुझको मौत से उबार लिया है। ऐसे उसने मुझको अपना सब समाचार सुना दिया था ॥४८॥ इसके अनन्तर हम दोनों गृहस्थी बनकर उसी मन्दिर में मांस खाकर तथा मदिरा पान करके मत्त होते हुये प्रसन्न हो रहे थे ॥४९।५०

तनुवस्त्रापरिज्ञानौ नृत्य चक्रतु मोहितौ।
प्रारब्धकर्म भोगान्तभावा युगपदागतौ ॥५१
यमदूतास्तदायाता पाशहस्ता भयङ्करा।
नेतुमावां नृत्यरतौ सुघोरां यमयातनाम् ॥५२
ततः प्रसन्नो भगवान्कर्मणा मम मानद।
देवावमयमस्कारमजितेन कृतेन न ॥५३
स्वदूतान्प्रेषयामास स्वभक्तायनतत्पर।

ते दूता देवदेवस्य शखचक्रगदाधरा ॥५४
सहस्रसूयसकाशा सर्वे चारुचतुर्भुजा ।
किरीटकुण्डलधरा हारिणो वनमालिन ॥५५
दिशो वितिमिरा विप्र कुर्वन्त स्वेन तेजसा ।
भयकरा-पाशहस्ता-दंष्ट्रिणो यमकिङ्करान् ॥५६
आवयोर्ग्रहण यत्तानूचु कृष्णपरायणा ॥५७

(उस समय म अपन शरीर की सब सुधि खोकर हम मोह मे नृत्य करने लगे थे ।)हमको अपने शरीर और वस्त्रो का भी कुछ होश हवास नही रहा था । उस समय मे हम दोनो का ही प्रारब्ध भोग का अ त आ गया था ॥५१॥(हम दोनो नृत्य मे मस्त हो रहे थे कि महान भयकर यमदूत हाथ म फाँसी के पाश लिये हुये वहाँ नरको मे ले जान के लिये आ पहुँचे थे ॥५१॥)हे मानद ! उसी समय म भगवान विष्णु ने भी अपने देवालय की स्वच्छता रखने के कारण परम प्रसन्न होकर अपन दूतो को भेज दिया था ॥५३॥ भगवान सदा अपने भक्तो की सुरक्षा का ध्यान रखत हुये तत्पर रहा करत है । देवेश्वर के दूत शख चक्र और गदा धारण करन वाले थे ॥५४॥ वे सहस्रो सूर्यों क समान प्रकाश स युक्त थे सबके चार भुजाय थी किरीट कुण्डल और वन-माला धारण किय हुये थ ॥५५॥ हे परमपद । उनकी परम दिव्य कान्ति की रश्मियो से समस्त अन्धकार दूर हो गया था । इस प्रकार स श्रीकृष्ण भगवान के पार्षदो ने हम दोनो की घात म प्रस्तुत उन महान भयकर यमदूतो म जो बडी २ दाढा वाल पाशधारी वहाँ पर थ उनसे कहा था ॥५६।५७

भा भा [illegible] रा दुराचारा विवक्षपरिवर्जिता ।
मुञ्चध्वमतो निष्पापौ दम्पती हरि[illegible] लभा ॥५८
विवक्षमिश्रु [illegible] मपदामादिकारणम् ।
अपापपापधीय[illegible] विद्यात् [illegible]पाधमम् ॥५९

पापे त्वपापधीर्यस्तु तं विद्यादधमाधमम् ॥६०
युष्माभिः सत्यमेवोक्तं किं त्वेतौपापिसत्तमौ ।
यमेन पापिनो दण्ड्यास्तन्नेष्यामो वय त्विमौ ॥६१
श्रुतिप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्यय. ।
धर्माधर्मविवेकोऽय तन्नेष्यामो यमान्तिकम् ॥६२
एतच्छ्रुत्वातिकुपिता विष्णुदूता महौजस. ।
प्रत्यूचुस्तान्यमभटानधर्मे धर्ममानिन. ॥६३

श्री विष्णुदूतों ने कहा—अरे क्रूर पुरुषो ! तुम बहुत ही विवेक-हीन और दुराचारी हो । तुम इन हरि के निष्पाप दम्पतियों को छोड दो ॥५८॥ त्रैलोक्य में विवेक ही समस्त सम्पदाओं का आदि कारण माना जाया करता है । जो पाप रहित प्राणी में पाप बुद्धि रखता है तथा पापी को पाप रहित समझता है उसको महान अधम पुरुष ही समझना चाहिए ॥५९।६०॥ यमराज के दूतो ने उत्तर दिया—हे पार्षदो ! आपने जो कुछ भी कहा वह अक्षरशः सत्य है किन्तु ये दोनों तो छटे हुए बदमाश हैं । यमराज ऐसे महा पापियो को ही दण्ड दिया करते हैं । इसीलिए हम इनको पकड कर लिए जाते हैं ॥६१॥ वेद जिस कर्म का प्रतिपादन किया करता है वही धर्म होता है और वेद जिस कर्म का निषेध किया करता है वही अधर्म है । यही धर्माधर्म का विचार हम जानते हैं । इसीलिए हम इनको यमराज के सामने लिये जाते हैं ॥६२॥ इस उनके उत्तर को सुनकर महा पराक्रमी विष्णु के पार्षदों को बडा क्रोध हो गया और अधर्म को धर्म समझने वाले इन यमराज के दूतो म उन्होंने कहा—॥६३

अहो कष्ट धर्मदृशामधर्म स्पृशते सभाम् ।
सम्यग्विवेकशून्याना निदान ह्यापदा महत् ॥६४
तर्कणाद्यविशेषेण नरकाध्यक्षता गता ।
यूय किमर्थमद्यापि कर्त्तु पापानि सोद्यमा ॥६५

स्वकर्मक्षयपर्यन्तं महापातकिनोऽपि च ।
तिष्ठन्ति नरके घोरे यावच्चन्द्रार्कतारकम् ॥६६
पूर्वसंचितपापानामदृष्ट्वा निष्कृतिं वृथा ।
किमर्थं पापकर्माणि करिष्येऽथ पुनः पुनः ॥६७
श्रुतिप्रणिहितो धर्मः सत्यं सत्यं न संशयः ।
किन्त्वाभ्यां चरितान्धर्मान्प्रवक्ष्यामो यथातथम् ॥६८
एतौ पापविनिर्मुक्तौ हरिशुश्रूषणे रतौ ।
हरिणा त्रायमाणौ च मुञ्चध्वमविलम्बितम् ॥६९
एषा च नर्तनं चक्रे तथैव ध्वजरोपणम् ।
अन्तकाले विष्णुगृहे तेन निष्पापतां गतौ ॥७०

विष्णु दूतों ने कहा—अहो ! अत्यन्त ही दुःख की बात है कि धर्म के द्रष्टाओं की सभा को अधर्म स्पर्श करने की इच्छा कर रहा है । यह अधर्म जिसका ठीक २ विचार ही नहीं कर सकते हैं उनको बहुत अधिक आपत्ति मे डाल दिया करता है ॥६४॥ अरे ! तुम तो बहुत ही विवेक शून्य हो । तुमको ऐसा होने पर भी किसने नरकों का जेलर बना दिया है । अरे ! तुम अभी भी पाप करने के लिये ही कमर कसे खड़े हुए हो ? ॥६५॥ अरे ! जिस समय तक पाप कर्मों का क्षय नहीं हुआ करता है तब तक घोर महापातकी भीषण नरकों में रहा करते हैं और प्रलय काल तक भी वहीं पर घोर यातनायें सहन किया करते है ॥६६॥ अरे ! तुम लोगो का अभी तक पहिले किये हुए सञ्चित पापो से तो छुटकारा नहीं हुआ है और फिर भी तुम लोग पाप कर्मों के ही करने पर उतारू क्यों हो रहे हो ? ॥ ६७ ॥ तुमने जो यह कहा था कि वेद मे जिसका विधान है वही धर्म है । यह सर्वथा सत्य है । अब हम इन दोनो प्राणियो के किए हुए धर्मो को बतलाते हैं ॥६८॥ ये दोनो ही भगवान विष्णु की पूजा करने से विशुद्ध पाप रहित हो गये है । अब भगवान् विष्णु इनकी रक्षा करना

चाहते हैं अब आप लोग इन दोनों को तुरन्त ही छोड़ दो ॥ ६६ ॥ (इनने इस अन्तिम समय में इस भगवान् विष्णु के मन्दिर में ध्वजा लगाई है और नृत्य किया है। इसीलिये बिल्कुल निष्प होकर विशुद्ध भक्त हो गये हैं ॥७०॥)

अन्तकाले तु यन्नाम श्रुत्वोक्त्वापि च वै सकृत् ।
लभते परमं स्थानं किमु शुश्रूषणे रताः ॥७१
महापातकयुक्तो वा युक्तो वाप्युपपातकैः ।
कृष्णसेवी नरोऽन्तेऽपि लभते परमां गतिम् ॥७२
यतीनां विष्णुभक्तानां परिचर्यापरायणाः ।
ते दूताः सहसा यान्ति पापिनोऽपि परां गतिम् ॥७३
मुहूर्तं वा मुहूर्तार्द्धं यस्तिष्ठेद्धरिमन्दिरे ।
सोऽपि याति परं स्थानं किमु द्वात्रिंशवत्सरान् ॥७४
उपलेपनकर्त्तारौ समार्जनपरायणौ ।
एतौ हरिगृहे नित्यं जीर्णशीर्णाधिरोपकौ ॥७५
जलसेचनकर्त्तारौ दीपदौ हरिमन्दिरे ।
कथमेतौ महाभागौ यातनाभोगमर्हथ ॥७६
इत्युक्त्वा विष्णुदूतास्ते छित्त्वा पाशांस्तदैव हि ।
आरोप्यावां विमानाग्रं ययुर्विष्णोः परं पदम् ॥७७

जो प्राणी अपने जीवन के अन्त काल में एक बार भी भगवान् के परम पावन नाम का उच्चारण कर लेता है अथवा भगवन्नाम का श्रवण कर लेता है तो उसको परम पद की प्राप्ति हुआ करती है फिर जो स्वयं ही भगवान् की सेवा में लग्न हो उसको परम पद प्राप्त होता है तो क्या आश्चर्य की बात है ॥७१॥ चाहे कोई पापी हो या महा पातकी हो श्रीकृष्ण की सेवा करने वाले को अन्त में परम गति प्राप्त हुआ करती है ॥७२॥ अरे हे यमदूतो! देखो, जो संन्यासियों और विष्णु भक्तों के सेवा शुश्रूषा में निरत रहा करते हैं वे कैसे भी पापी हों

तो भी परम गति के पाने के अधिकारी होते हैं ।।७३।। अरे महामूढो ! जो एक बार भी या आधे मुहूर्त भी हरि मन्दिर मे निवास किया करता है वह भी परम पद प्राप्त कर लेता है फिर ये दोनो प्राणी तो बत्तीस वर्ष तक इस विष्णु मन्दिर मे रहे हैं ।।७४।। ये दोनो इस विष्णु भगवान के मन्दिर को लीपते रहा करते थे इसमे बुहारी लगा कर स्वच्छ रखते थे तथा जहाँ-तहाँ इसकी मरम्मत किया करते रहते थे जोकि इसका अत्यन्त जीर्ण-शीर्ण भाग था ।।७५।। ये इस मन्दिर मे जल का छिड़काव किया करते थे और दीपक जलाया करते थे । इतनी सेवा करने पर ये महाभागी नरक मे जाने के पात्र कैसे बने रह गये हैं ? ।।७६।। विष्णुदूतों ने यह कहते हुए यमदूतो के पाशो का छेदन कर दिया था और हम दोनो को एक दिव्य विमान मे बिठाकर वे विष्णु लोक को लेकर चल दिए थे ।।७७

तत्र सामीप्यमापन्नौ देवदेवस्य चक्रिणः ।
दिव्यान्भोगान्भुक्तवन्तौ तावत्काल मुनीश्वर ।।७८
दिव्यान्भोगास्तु तत्रापि भुक्त्वा यातौ महीमिमाम् ।
अत्रापि सपदतुला हरिसेवाप्रसादतः ।।७९
अनिच्छया कृतेनापि सेवनेन हरेर्मुने ।
प्राप्तमीदृक् फलं विप्र देवानामपि दुर्लभम् ।।८०
इच्छयाराध्य विश्वेशं भक्तिभावेन माधवम् ।
प्राप्स्याव परम श्रेय इति हेतुर्निरूपितः ।।८१
अवशेनापि यत्कर्म कृत स्यात्सुमहत्फलम् ।
जायते भूमिदेवेन्द्र किं पुन श्रद्धया कृतम् ।।८२
एतदुक्त निशम्यासौ स मुनीन्द्रो विभाण्डक. ।
प्रणम्य दम्पती तौ तु प्रययौ स्वतपोवनम् ।।८३
तस्माज्जानीहि देवर्षे देवदेवस्य चक्रिण. ।
परिचर्या तु सर्वेषा कामधेनूपमा स्मृता ।।८४

हरिपूजापराणां तु हरिरेव सनातनः ।
ददाति परमं श्रेयः सर्वकामफलप्रदः ॥८५
य इदं पुण्यमाख्यानं सर्वपापप्रणाशनम् ।
पठेच्च शृणुयाद्वापि सोऽपि याति परां गतिम् ॥८६

हे मुनीश्वर ! वहाँ पर भगवान् चक्रधारी विष्णु के समीप में पहुँच कर हमने दिव्य भागों का सुखोपभोग किया था ।।७८।। इस तरह से वहाँ पर चिरकाल तक दिव्य भोग प्राप्त कर अब पुनः हम भूमण्डल मे उत्पन्न हुए हैं तो यहाँ पर भी भगवान् विष्णु के प्रसाद से अतुल सुख-सम्पत्ति मिली है ।।७६।। हे विप्र ! हे मुनिवर ! इस रीति से इच्छा न होने पर भी बनी हुई विष्णु की सेवा से ही ऐसा देव दुर्लभ फल मिला है ।।८०।। हमारा अब सेवा करने का यही कारण है कि अब हम इच्छापूर्वक भक्ति-भाव से माधव की सेवा–आराधना करके परमोत्तम श्रेय की प्राप्ति करें ।।८१।। हे भूदेवेश्वर ! अवशता के होते हुए भी किया हुआ कर्म जब ऐसा महान् फल देता है तो फिर परम श्रद्धा के साथ किए हुए श्री हरि भजन का क्या कहना है ।।८२।। इस कथन का श्रवण कर विभाण्डक मुनि ने उन दोनों दम्पत्ति की बहुत प्रशंसा की और फिर वे अपने तपोवन को वापिस चले गये थे ।।८३।। अतः हे देवर्षे ! आप समझ लीजिए चक्रधारी भगवान की सेवा का फल सबको कामधेनु के ही समान हुआ करता है ।।८४।। श्री हरि भगवान् की पूजा मे निमग्न रहने वाले जनों को समस्त कामनायें पूर्ण करने वाले श्री हरि ही परम श्रेय प्रदान किया करते हैं ।। ८५ ।। जो कोई भी प्राणी समस्त पापो के विनाश करने वाले इस परम पावन आख्यान का श्रवण या वाचन करता है वह भी परम गति को प्राप्त हो जाया करता है ।।८६



॥ हरिपञ्चरात्र व्रत ॥

अन्यद्व्रत प्रवक्ष्यामि शृणु नारद तत्त्वत ।
दुर्लभ सर्वलोकेषु विख्यात हरिपञ्चकम् ॥१
नारीणा च नराणा च सर्वदु खनिवारणम् ।
धर्मकामार्थमोक्षाणा निदान मुनिसत्तम ॥२
सर्वाभीष्टप्रद चैव सर्वव्रतफलप्रदम् ।
मार्गशीर्ये सिते पक्षे दशम्या नियतेन्द्रिय. ॥३
कुर्यात्स्नानादिक कर्म दन्तधावनपूर्वकम् ।
कृत्वा देवार्चन सम्यक्तथा पञ्च महाध्वरान् ॥४
एकाशी च भवेत्तस्मिन् दिने नियममास्थित ।
तत प्रात. समुत्थाय ह्येकादश्या मुनीश्वर ॥५
स्नान कृत्वा यथाचार हरिं चैवार्चयेद् गृहे ।
स्नापयेद्देवदेवेश पञ्चामृतविधानत ॥६
अर्चयेत्परया भक्त्या गन्धपुष्पादिभि क्रमात् ।
धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैस्ताम्बूलैश्च प्रदक्षिणै ॥७

श्री सनकाचार्यजी ने कहा—हे नारद ! अब मैं आपके सामने एक अन्य व्रत का तत्त्व बतलाता हूँ—एक हरिपञ्चक नाम वाला व्रत इस त्रैलोक्य में परम प्रसिद्ध है और यह परम दुर्लभ है ॥ १ ॥ इस व्रत के करने से मनुष्यों के और नारियों के सभी दु ख दूर हो जाया करते हैं । हे मुनिश्रेष्ठ ! इस व्रत से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति हो जाया करती है ॥ २ ॥ इससे मानवों की सभी मनोकामनाऐं सफल हुआ करती हैं और अन्य सभी व्रतों का फल इसके करने में प्राप्त हो जाया करता है यह ऐसा ही है । मार्गशीर्ष मास में शुक्लपक्ष की दशमी के दिन अपनी समस्त इन्द्रियों को वश में कर दातुन एवं स्नान आदि नित्य एवं आवश्यक कर्मों को करके

भली भाँति से देव पूजन और पञ्च यज्ञ करे तथा उस दिन के नियमो का परिपालन करने के लिये एक समय मे आहार ग्रहण करना चाहिए। एकादशी तिथि के दिन प्रात काल मे सब शारीरिक कृत्यो से निपट कर श्री हरि का अर्चन करे और पञ्चामृत से भगवान् श्री हरि का स्नान कराना चाहिए ॥ ३-६ ॥ भगवान का अर्चन भक्ति भावना के सहित सभी आवश्यक गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य और ताम्बूल एव प्रदक्षिणा आदि से करना चाहिए ॥ ७ ॥

सपूज्य देवेदेवेश मिम मन्त्रमुदीरयेत् ।
नमस्ते ज्ञानरूपाय ज्ञानदाय नमोऽस्तु ते ॥८
नमस्ते सर्वरूपाय सर्वसिद्धिप्रदायिने ।
एव प्रणम्य देवेश वासुदेव जनार्दनम् ॥९
वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण ह्यु पवास समर्पयेत् ।
पञ्चरात्र निराहारो ह्यद्यप्रभृति केशव ॥१०
त्वदाज्ञया जगत्स्वामिन्ममाभीष्टप्रदो भव ।
एव समर्प्य देवस्य उपवास जितेन्द्रिय ॥११
रात्रौजागरण कुर्यादेकादश्यामथो द्विज ।
द्वादश्या च त्रयोदश्या चतुर्दश्या जितेन्द्रिय ॥१२
पौर्णमास्या च कर्तव्यमेव विष्ण्वर्चन मुने ।
एकादश्या पौर्णमास्या कर्तव्य जागर तथा ॥१३
पञ्चामृतादिपूजा तु सामान्या दिनपञ्चसु ।
क्षीरेण स्नापयेद्विष्णु पौर्णमास्या तु शक्तित ।
तिलहोमश्च कर्तव्यस्तिलद न तथैव च ॥१४

भगवान् की पूजा करके फिर उनके समक्ष मे निम्न मन्त्र का उच्चारण करके प्रार्थना करनी चाहिए । 'नमस्ते ज्ञानरूपाय ज्ञानदाय नमोऽस्तुते । नमस्त सर्वरूपाय सर्वसिद्धि प्रदायिने ।' अर्थात् हे भगवन् ! आप ज्ञान के स्वरूप वाले हैं आपको मेरा प्रणाम है । आप ज्ञान के

प्रदान करने वाले हे आपकी सेवा मे मेरा प्रणाम है। आप समस्त सिद्धियो के प्रदान करने वाले है आपको मेरा नमस्कार है। आप सर्ग रूप के लिये मेरा प्रणाम है। इस विधि से भगवान देवेश्वर वासुदेव का अर्चन करना चाहिए ॥ ८ । ६ ॥ इसके अनन्तर जो उपवास भगवत्प्रीत्यर्थ किया है उसे भगवान् की सेवा मे समर्पित कर देवे। उसका मन्त्र यह है—'पञ्चरात्र निराहारा ह्यद्य प्रभृति केशव। त्वदाज्ञया जगत्स्वामिन्। ममाभीष्टप्रदोभव' अर्थात् हे केशव! मैं आपकी ही आज्ञा प्राप्त कर पाँच रात्रि तक निराहार रहकर उपवास करने का इच्छुक हूँ। अतएव हे इस सम्पूर्ण जगत् के स्वामिन्! आप मेरे सभी मनोरथ पूर्ण करिये। इस रीति से भगवान की सेवा में उपवास का अर्पण करे। हे द्विजवर! फिर उस एकादशी के दिन रात्रि म जागरण करना चाहिए। हे मुनिवर! फिर द्वादशी–त्रयोदशी—चतुर्दशी तथा पूर्णिमा को भी इसी विधान से भगवत्पूजन करे। सिर्फ एकादशी और पूर्णिमा की रात्रियों में जागरण करे॥ १०–१३॥ साधारणतया पाचों दिन पञ्चामृत आदिसे पूजन करे। पूर्णिमा के दिन भगवान् को दूध से स्नान करावे और यथा शक्ति तिलों का दान तथा तिलों से होम करना चाहिए ॥१४॥

तत षष्ठे दिने प्राप्ते निर्वर्त्य स्वाश्रमक्रियाम्।
सम्प्राश्य पञ्चगव्य च पूजयेद्विधिवद्धरिम् ॥१५
ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाद्विभवे सत्यवारितम्।
तत स्वबन्धुभि सार्द्ध स्वय भुञ्जीत वाग्यत ॥१६
एव पौषादिमासेषु कार्त्तिकान्तेषु नारद।
शुक्लपक्षे व्रत कुर्यात्पूर्वोक्तविधिना नर ॥१७
एव सवत्सर कार्यं व्रत पापप्रणाशनम्।
पुन प्राप्ते मार्गशीर्षे कुर्यादुद्यापन व्रती ॥१८
एकादश्या निराहारो भवेत्पूर्वमिन द्विज।

द्वादश्या पञ्चगव्य च प्राशयेत्सुसमाहित ॥१६
गन्धपुष्पादिभि सम्यग्देवदेव जनार्दनम् ।
अभ्यर्च्योपायन दद्याद् ब्राह्मणाय जितेन्द्रिय ॥२०
पायस मधुसमिश्र घृतयुक्त फलान्वितम् ।
सुगन्धजलसयुक्त पूर्णकुम्भ सदक्षिणम् ॥२१

इसके उपरान्त छटवें दिन अपने आश्रम के नित्य कृत्यो से निवृत्त होकर पञ्च गव्य का प्राशन करे तथा विधि पूर्वक भगवान् का यजन करना चाहिए ॥ १५ ॥ यदि पास मे कुछ वैभव हो तो ब्राह्मणो को भोजन करावे और इसके पश्चात् बान्धवो के सहित एकत्र बैठकर स्वय भी प्रसाद ग्रहण करना चाहिए ॥१६॥ हे नारद । इसी रीति से पौष आदि मासो म भी आगे आने वाले कार्तिक मास पर्यन्त प्रतिमास इस व्रत का समाचरण करना चाहिए । सभी मासो के व्रतो मे विधान यही पूर्व म कहा हुआ है ॥१७॥ इस तरह से पूरे वर्ष म किया हुआ यह व्रत समस्त पापो का नाश कर दिया करता है । व्रतधारी पुरुष को पुन मार्गशीर्ष मास के आने पर ही इस महाव्रत का उद्यापन करना चाहिए ॥१८॥ हे द्विजवर । एकादशी तिथि के दिन पूर्व की भाति ही निराहार रहे तथा द्वादशी के दिन सावधानता के साथ पञ्चगव्य का प्राशन करना चाहिए ॥१६॥ देवेश्वर जनार्दन भगवान् का गन्ध पुष्पादि के द्वारा पूजन करे—जितेन्द्रिय रहे और ब्राह्मण का भेट देव । ॥२०॥ उस दान मे मधु और घृत मिश्रित पायस—फल—सुगन्धित जल से पूर्ण कलश और द्रव्य दक्षिणा होने चाहिए ॥२१॥

वस्त्रेणाच्छादित कुम्भ पञ्चरत्नसमन्वितम् ।
दद्याद्ध्यात्मविदु ब्राह्मणाय मुनीश्वर ॥२२
सर्वात्मन् सवभूतश सर्वव्यापि-सनातन ।
परमान्नप्रदानेन सुप्रीतो भव माधव ॥२३
अनन पायस दत्त्वा ब्राह्मणा-भाजयत्तत ।

शक्तितो वन्धुभि सार्द्ध स्वय भुञ्जीत वाग्यत ॥२४
व्रतमेतत्तु य कुर्याद्धरिपञ्चकसंज्ञितम् ।
न तस्य पुनरावृत्तिर्ब्रह्मलोकात्कदाचन ॥२५
व्रतमेतत्प्रकर्त्तव्यमिच्छद्भिर्मोक्षमुत्तमम् ।
समस्तपापकान्तारदावनलसम द्विज ॥२६
गवाकोटिसहस्राणि दत्त्वा यत्फलमाप्नुयात् ।
तत्फल लभ्यते पुम्भिरेतस्मादुपवासत ॥२७
यस्त्वेतच्छृणुयाद्भक्त्या नारायणपरायण ।
स मुच्यते महाघोरै पातकाना च कोटिभि ॥२८

जो कलश दिया जावे वह पञ्चरत्नो से युक्त और वस्त्र से समावृत होना चाहिए। इस दान को किसी अध्यात्मवेत्ता विद्वान ब्राह्मण को ही देना चाहिए ॥ २२ ॥ फिर निम्न मन्त्र का उच्चारण कर प्रार्थना करे— 'सर्वात्मन् सर्वभूतेश सर्वभूतेश सर्वव्यापिन् सनातन । परमान्न प्रदानेन सुप्रीतो भवमाधव ।" अर्थात्—हे भगवन् ! आप सबके आत्म स्वरूप वाले हैं और आप सभी भूतो के प्रभु हैं। हे सर्वव्यापक ! आप सनातन (सर्वदा से चले आने वाले) माधव हैं। इस परम श्रेष्ठ अन्न के प्रदान से आप मुझ पर प्रसन्न होइये। इसी मन्त्र को पढते हुए ब्राह्मण को क्षीर अर्पित करे। फिर यथा शक्ति ब्रह्मभोज करवावे और सबके पश्चात् स्वय भी अपने बांधवो के साथ बैठकर भोजन करे ।२३। २४ ॥ जो मनुष्य इस हरिपञ्चक नाम वाले व्रत को किया करता है वह ब्रह्मलोक से पुन यहाँ पर कभी भी वापिस नही आया करता है ॥ २५ ॥ हे द्विजवर ! जो मनुष्य परम श्रेष्ठ मोक्ष की प्राप्ति की अभिलाषा रखते हो उनको सब पापो के वन के दावानल स्वरूप इस व्रत को अवश्य ही करना चाहिए ॥ २६ ॥ दश अरब गौओ के दान से जो पुण्य–फल प्राप्त होता है वही पुण्य-फल इस उपवास के करने से प्राप्त हुआ करता है ।२७। जो कोई भगवद्भक्त इस उपवास करने के विधान

को सुनता है और भक्तिभाव स इसका श्रवण किया करता है वह कोटिश महापापो स विमुक्त हो जाता है ॥२८॥



॥ मासोपमास व्रत ॥

अन्यद् व्रतवर वक्ष्ये तच्छृणुष्व समाहित ।
सर्वपापहर पुण्य सर्वलोकोपकारकम ॥१
आषाढे श्राव ने वापि तथा भाद्रपदेऽपि च ।
तथैवाश्विनके मासे कुर्यादितद्व्र द्विज ॥२
एतेष्वन्यतमे मासे शुक्लपक्षे जितेन्द्रिय ।
पाशयेत्पञ्चगव्य च स्वपेद्विष्णुसमीपत ॥३
तत प्रात समुत्थाय नित्यकम समाप्य च ।
श्रद्धया पूजयेद्विष्णु वशी क्रोधविवर्जित ॥४
विद्वद्भि सहितो विष्णुमर्चयित्वा यथोचितम् ।
सकल्प तु तत कुर्यात्स्वस्तिवाचनपूवकम् ॥५
मासमेक निराहारो ह्यद्यप्रभृति केशव ।
मासान्तपारण कुर्वे देवदेव तवाज्ञया ॥६
तपारूप नमस्तुभ्य तपसा फलदायक ।
ममाभीष्टप्रद देहि सवविघ्नान्निवारय ॥७

श्री सनकाचाय ने कह —हे नारद । मैं इस समय मे एक अ य उत्तम व्रत के विषय मे वणन करके आपका सुनाता हूँ आप उसको समाहित होकर सुनिय । यह व्रत समस्त महान् से भी महान् पापो का विनाशक है और समस्त लोको का अत्यधिक उपचार किया करता है ॥ १ ॥ इस व्रत के करने का समय आषाढ श्रावण भाद्रपद और आश्विन मास होता है ॥ २ ॥ इन उक्त मासो म स किसी भी एक मास म स्वच्छया एव सुविधा के अनुसार शुक्लपक्ष म अपनी समस्त

इन्द्रियो पर नियन्त्रण करके पञ्चगव्य का प्राशन कर भगवान् विष्णु के समीप मे ही शयन करना चाहिए ॥ ३ ॥ प्रात काल मे उठकर अपने नित्य कृत्य से निपट कर बहुत ही श्रद्धा के साथ भगवान् विष्णु का अर्चन करे और इस व्रत के अनुष्ठान के समाचरण के समय मे अपनी सब इन्द्रियो पर पूर्ण नियन्त्रण रखते हुए क्रोध बिल्कुल भी नही करना चाहिए ॥४ ॥ विद्वानो को साथ मे रखकर विष्णु का पूजन कर स्वस्तिवाचन करे तथा सङ्कल्प करना चाहिए । इसके पश्चात् निम्नलिखित मन्त्र का उच्चारण करे—"मासमेक निराहारो ह्यद्य प्रभृति केशव । मासान्त पारणकुर्वे देवदेव तवाज्ञया ।" अर्थात्—हे देवो के देव ! हे केशव ! मैं आपसे आज्ञा प्राप्त करके एक मास पर्यन्त निराहार व्रत करने की अभिलाषा रखता हूँ और मास के अवसान मे मैं धारणा करूँगा ॥ ६ ॥ "तपोरूप नमस्तुभ्य तपसा फलदायक । ममभीष्ट पद देहि मर्व विघ्नान्निवारय ।" अर्थात् हे तप के ही नाम और स्वरूप वाले प्रभो ! मैं आपको प्रणाम अर्पित करता हूँ । आप ही सब तपश्चर्याओ के फल का प्रदान करने वाले हैं मुझे इस व्रत को पूर्ण करने की शक्ति प्रदान कीजिये और मेरे इस व्रत मे आने वाले विघ्नो को दूर करिये ॥ ७ ॥

एव समर्प्य देवस्यविष्णोर्मासव्रत शुभम् ।
तत प्रभृति मासान्त निवसेद्धरिमन्दिरे ॥८
प्रत्यह स्नापयेद्देव पञ्चामृतविधानत ।
दीप निरन्तर कुर्यात्तस्मिन्मासे हरेर्गृहे ॥६
प्रत्यह खादयेत्काष्ठ ह्यपामार्गममुद्भवम् ।
तत स्नायीत विधिन्नारायणपरायण ॥१०
तत सस्नापयेद्विष्णु पूर्ववत्प्रयतार्च्चयेत् ।
ब्राह्मणान्भोजयेच्छक्त्या भक्तियुक्त सदक्षिणाम् ॥११
स्वय च बन्धुभि सार्द्ध भुञ्जीत प्रयतेन्द्रिय ।

एव मासोपवासांश्च व्रती कुर्यात्त्रयोदश ॥१२
वर्षान्ते वेदविदुषे गा प्रदद्यात् सदक्षिणाम् ।
भोजयेद्ब्राह्मणांस्तत्र द्वादशैव विधानतः ।
शक्तचा च दक्षिणा दद्याद्ब्रह्मण्याभारणानि च ॥१३
मासोपवासत्रितय यः कुर्यात्सयतेन्द्रियः ।
आप्तोर्यामस्य यज्ञस्य द्विगुण फलमश्नुते ॥१४

इस प्रकार से भगवान् विष्णुदेव की सेवा मे परम शुभ मास व्रत का समर्पण करके उसी दिन से एक मास पर्यन्त भगवान् विष्णु के मन्दिर मे ही निवास करे ॥ ८ ॥ प्रति दिन भगवान् को पञ्चामृत से स्नान कराना चाहिए और उस पूरे मास मे देवालय मे अखण्ड दीपक को प्रज्वलित रखना चाहिये ॥ ९ ॥ प्रतिदिन चिरचिटा की दाँतुन करे और भगवान् नारायण की भक्ति में मग्न रहता हुआ स्नान करे ।१०। इसके अनन्तर भगवान् को स्नान करावे और पूर्ववत् परम समाहित होकर विष्णुदेव का अर्चन करना चाहिये । जब इस रीति से व्रत करते हुए मास का अन्त होवे तब उस अवसान काल में जितनी अपनी आर्थिक शक्ति हो उसी के अनुसार ब्राह्मणो को भोजन श्रद्धापूर्वक कराना चाहिए । तथा उचित दक्षिणा देवे । ब्रह्मभोज और दक्षिणा के बिना कोई भी अनुष्ठान सफल नही हुआ करता है । पुष्कल दक्षिणा देने मे कृपणता करना महान मूर्खता है ।११। अपनी समस्त इन्द्रियो को वश मे रखकर फिर स्वय भी बान्धवगण के साथ भोजन करना चाहिये । व्रतधारी पुरुष को तेरह मासोपवास (मास भर के व्रत) करने चाहिए ॥ १२ ॥ जब वर्ष पूर्ण हो जावे तो किसी वेदो के ज्ञाता विद्वान् ब्राह्मण को दक्षिणा के सहित गौ का दान देना चाहिये । इस समय मे सविधि बारह ब्राह्मणो को भोजन करावे तथा यथा शक्ति दक्षिणा तथा भूषण ब्राह्मणो को देवे ॥ १३ ॥ जो पुरुष तीन मास का व्रतोपवास करता है और इन्द्रियो पर पूर्ण विजय प्राप्त कर लेता

व्रती को नरमध यज्ञ का पाँच गुना पुण्य फल प्राप्त हुआ करता है ॥१६॥ जो पुरुष नौ वार इस व्रत को कर लेता है उस पुरुष को गोमेध यज्ञ का त्रिगुणित फल प्राप्त हुआ करता है ।२०। हे महान् श्रेष्ठ मुनिवर ! इस पराक व्रत का जो मनुष्य दस बार कर लिया करता है उस व्रतधारी पुरुष को ब्रह्ममेध यज्ञ का तिगुना पुण्य फल मिला करता है ।२१।

एकादश पराकाश्च य कुर्यात्सयतेन्द्रिय ।
स याति हरिसारूप्य सर्वभोगसमन्वितम् ॥२२
त्रयोदश पराकाश्च य कुर्यात्प्रयतो नर ।
स याति परमानन्द यत्र गत्वा न शोचति ॥२३
मासोपवासनिरता गङ्गास्नानपरायणा ।
धर्ममार्गप्रवक्तारो मुक्ता एव न सशय ॥२४
अवीराभिश्च नारीभिर्यतिभिर्ब्रह्मचारिभि ।
मासोपवास कर्त्तव्यो वनस्थैश्च विशेषत ॥२५
नारी वा पुरुषो वापि व्रतमेतत्सुदुर्लभम् ।
कृत्वा मोक्षमवाप्नोति योगिनामपि दुर्लभम् ॥२६
गृहस्थो वानप्रस्थो वा व्रती वा भिक्षुरेव वा ।
मूर्खो वा पण्डितो वापि श्रुत्वैतन्मोक्षभाग्भवेत् ॥२७
इद पुण्य व्रताख्यान नारायणपरायण ।
शृणुयाद्वाचयेद्वापि सर्वपापै प्रमुच्यते ॥२८

जो कोई सुदृढ मनुष्य इन्द्रिय जित होकर ग्यारह पराक व्रत कर लेता है वह सकल सुखोपभोगो से परिपूर्ण श्री हरि के सारूप्य को प्राप्त कर लिया करता है ।२२। जो कोई मनुष्य प्रयत्न पूर्वक तरह पराक व्रतो का साङ्गोपाङ्ग कर लता है। इसकी प्राप्ति करके फिर उसको कभी भी शोक करने का अवसर ही नही प्राप्त हुआ करता है ॥ २३ ॥ जो मासोपवास करते हैं गङ्गा स्नान म जो परायण रहते हैं

और धर्म का प्रचार करते हैं वे युक्त ही होते है।२४। पति-पुत्रादि से रहित नारी, सन्यासी, वानप्रस्थ और ब्रह्मचारी को यह व्रत ध्यानपूर्वक करना चाहिए।२५। कोई स्त्री हो या पुरुष हो जो इस महान् दुर्लभ एवं कठिन व्रत को कर लेता है उसको बड़े-बड़े योगाभ्यासियों को भी अति दुर्लभ मोक्ष प्राप्त हो जाया करता है ।।२६।। जो कोई गार्हस्थ्याश्रमी हो चाहे वानप्रस्थ हो अथवा भिक्षु (सन्यासी) हो या ब्रह्मचारी हो, मूर्ख हो अथवा विद्वान् हो इस व्रत के इस विधान एवं आख्यान को श्रवण करके ही मोक्ष की प्राप्ति कर लिया करता है ।। २७ ।। जो भगवान् की भक्ति मे परायण पुरुष इस परम पवित्र व्रत के आख्यान का श्रवण करता है अथवा इसका पठन किया करता है वह समस्त प्रकार के महापापो से भी मुक्त होजाया करता है तथा उसकी अन्त मे सद्गति हो जाती है ।।२८।।

गन्व ...

।। एकादशी व्रत—भद्रशील उपाख्यान ।।

इदमन्यत्प्रवक्ष्यामि व्रत त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
सर्वपापप्रशमन सर्वकामफलप्रदम् ।।१
ब्राह्मणक्षत्रियविशा शूद्राणा चैव योषिताम् ।
मोक्षद कुर्वता भक्त्या विष्णो प्रियतर द्विज ।।२
एकादशीव्रत नाम सर्वाभीष्टप्रद नृणाम् ।
कर्त्तव्य सर्वथा विप्र विष्णुप्रीतिकर यत ।।३
एकादश्या न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि ।
यो भुङ्क्ते सोऽत्र पापीयान्परत्र नरक व्रजेत् ।।४
उपवासफल लिप्सुर्जह्याद्भुक्तिचतुष्टयम् ।
पूर्वापरदिने रात्रावहोरात्र तु मध्यम ।।५

एकादशीदिने यस्तु भोक्तुमिच्छति मानव ।
स भोक्तु सर्वपापानि स्पृहयालुन सशय ॥६
भवेद्दशम्यामेकाशी द्वादश्या च मुनीश्वर ।
एकादश्या निराहारो यदि मुक्तिमभीप्सति ॥७

श्री सनकाचार्य महर्षि ने कहा—हे नारद ! अब मैं आपके समक्ष मे सम्पूर्ण पापो को शान्त करने वाले और सभी मनोकामनाओ को पूर्ण एव सफल करने वाले तथा त्रिलोकी मे परम प्रसिद्ध एक अन्य महा व्रत का वर्णन करता हूँ ॥१॥ यह महा व्रत भगवान् विष्णु को परम प्रिय है । स्त्री हो या पुरुष ब्राह्मण हो या क्षत्रिय वैश्य और शूद्र भी इस व्रत का बडी भारी निष्ठा एव भक्ति के साथ किया करता है उसको यह व्रत मोक्ष दे दिया करता है ॥२॥ यह व्रत मानवो की मन की कामनाओ को पूर्ण कर दिया करता है । इस व्रत का नाम एकादशी व्रत है । इस व्रत को सब प्रकार से प्रयत्न पूर्वक अवश्य ही करना चाहिये क्योकि यह व्रत भगवान विष्णु को अधिक प्रसन्न करने वाला बताया गया है ॥३॥ मास मे दो पक्षो मे एकादशी तिथि आया करती है । इस दिन भोजन बिल्कुल नही करना चाहिए । जो एकादशी के दिन भोजन किया करता है वह महा पापी कहा जाया करता है । परलोक मे उसे घोर नरक की यातना सहनी पडती है।४। इस उपवास के पूर्ण फल की इच्छा रखने वाले व्यक्ति को चार समय मे भोजन का त्याग करना पडता है । दशमी तिथि की रात्रि का भोजन, एकादशी मे दोनो समयो का भोजन और द्वादशी तिथि की रात्रि के समय का भोजन त्याग देना चाहिये ॥५॥ जो मनुष्य एकादशी तिथि के दिन भोजन करने की इच्छा किया करता है उसको मानो सभी पापो के भुगतने की भोगने का चाव है ॥६॥ हे मुनिवर ! यदि मुक्ति के प्राप्त करने की इच्छा हो तो दशमी और द्वादशी को

एक २ बार ही भोजन करे और एकादशी को निराहार रहना चाहिये ॥ ७ ॥

यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च ।
अन्नमाश्रित्य तिष्ठन्ति तानि विप्र हरेर्दिने ॥८
ब्रह्महत्यादिपापाना कथंचिन्निष्कृतिर्भवेत् ।
एकादश्या तु यो भुङ्क्ते तस्य नैवास्ति निष्कृति ॥६
महापातकयुक्तो वा युक्तो वा सर्वपातकै ।
एकादश्या निराहार स्थित्वा याति परा गतिम् ॥१०
एकादशी महापुण्या विष्णो प्रियतमा तिथि ।
ससेव्या सर्वथा विप्रै ससारच्छेदलिप्सुभि ॥११
दशम्या प्रातरुत्थाय दन्तधावनपूर्वकम् ।
स्नापयेद्विधिवद्विष्णु पूजयेत्प्रयतेन्द्रिय ॥१२
एकादश्या निराहारो निगृहीतेन्द्रियो भवेत् ।
शयीत सन्निधौ विष्णोर्नारायणपरायण ॥१३
एकादश्या तथा स्नात्वा सम्पूज्य च जनार्दनम् ।
गन्धपुष्पादिभि सम्यक् ततस्त्वेवमुदारयत् ॥१४

हे विप्रवर ! श्री हरि के दिन मे ब्रह्म हत्या प्रभृति सम्पूर्ण पाप अन्न का समाश्रय लेकर रहा करते हैं ॥ ८ ॥ ब्रह्महत्या आदि महापातकों से तो उपाय करने पर किसी प्रकार से छुटकारा प्राप्त हो भी सकता है किन्तु एकादशी के दिन अन्न का भोजन करने वाले को पापों से छुटकारा पाने का कोई भी प्रायश्चित्त नहीं होता है ।६। चाहे कोई कितना ही महा पातक करने वाला हो उसके सभी पातक एकादशी का निराहार व्रत करने से नष्ट होजाया करते हैं और वह व्रत करके परमगति को प्राप्त होजाया करता है ॥१०॥ यह एकादशी भगवान की परम प्रिय महा पुण्यमयी तिथि है अतः जो सांसारिक बन्धन काटना चाहते हैं उनको इस तिथि के दिन अवश्य ही व्र

रखना चाहिए ॥११॥ दशमी के दिन प्रात काल उठकर दातुन करे और सब इन्द्रियो को अपने वश मे करके भगवान् विष्णु को स्नान करवावे तथा स्वय प्रथम स्नान करके फिर भगवान् का षोडशोपचार विधि मे पूजन करना चाहिए ॥१२॥ एकादशी के दिन निराहार रह कर इन्द्रियजित रहे और भगवान के चरणो मे दृढ भक्ति रखता हुआ नारायण की प्रतिमा के समीप मे ही शयन करना चाहिए ॥ १३ ॥ एकादशी तिथि के दिन स्वय स्नान कर परम शुचि होकर जनार्दन भगवान का गन्ध पुष्पादि से भक्ति की भावना से पूजन कर फिर भगवान् से निम्न रीति से प्रार्थना करनी चाहिए ॥१४॥

एकादश्या निराहार स्थित्वाद्याह परेऽहनि ।
मोक्ष्यामि पुण्डरीकाक्ष शरण मे भवाच्युत ॥१५
इम मन्त्र समुच्चार्य देवदेवस्य चक्रिण ।
भक्तिभावेन तुष्टात्मा उपवास समर्पयेत् ॥१६
देवस्य पुरत कुर्याज्जागर नियतो व्रती ।
गीतैर्वाद्यैश्च नृत्यैश्च पुराणश्रवणादिभि ॥१७
तत प्रात समुत्थाय द्वादशीदिवसे व्रती ।
स्नात्वा च विधिवद्विष्णु पूजयेत्प्रयतेन्द्रिय ॥१८
पञ्चामृतेन सस्नाप्य एकादश्या जनार्दनम् ।
द्वादश्या पयसा विप्र हरिसारूप्यमश्नुते ॥१६
अज्ञानतिमिरान्धस्य व्रतेनानेन केशव ।
प्रसीद सुमुखो भूत्वा ज्ञानदृष्टिप्रदो भव ॥२०
एव विज्ञाप्य विप्रेन्द्र माधव सुसमाहित ।
ब्राह्मणान्भोजयेच्छक्त्या दद्याद्वै दक्षिणा तथा ॥२१

'एकादश्या निराहार स्थित्वाद्याह परेऽहनि । मोक्ष्यामि पुण्डरीकाक्ष शरण मे भवाच्युत' अर्थात् हे पुण्डरीकाक्ष ! मैं एकादशी के दिन निराहार रह कर फिर दूसरे दिन भोजन करूगा । हे अच्युत !

आप मुझे अपनी शरण में लीजिये अर्थात् आप मुझे इस व्रत को पूर्ण करने की शक्ति प्रदान कीजिये ॥१५॥ इस मन्त्र का उच्चारण कर अपने हृदय मे प्रसन्न होता हुआ चक्रधारी भगवान देवदेवेश्वर की सेवा मे भक्ति के साथ अपने उपवास को समर्पित कर देवे ॥१६॥ (व्रतधारी पुरुष का कर्त्तव्य है कि अपनी इन्द्रियो को वश मे रख कर भगवान के समक्ष मे गायन,वाद्य और नृत्य करते हुए पुराण श्रवण करके रात्रि मे जागरण करना चाहिये ॥१७॥) व्रती पुरुष को द्वादशी के दिन प्रातःकाल मे उठ कर स्नान करे और इन्द्रियो पर नियन्त्रण करते हुए विधि पूर्वक विष्णु का पूजन करे ॥१८॥ एकादशी मे जनार्दन भगवान् को पञ्चामृत से स्नान करावे और द्वादशी में दुग्ध से स्नान करावे। इस तरह करने से मनुष्य को सारूप्या मुक्ति प्राप्त हुआ करती है ॥ १९ ॥ इसके अनन्तर भगवान् से प्रार्थना करे—"अज्ञान तिमिरान्धस्य व्रतेनानेन केशव । प्रसीद सुमुखो भूत्वा ज्ञान दृष्टि प्रदो-भव" अर्थात् हे केशव ! मैं अज्ञान के अन्धकार होने के कारण अन्धा हो रहा हूँ। मेरे इस व्रत के समाचरण से आप प्रसन्न मुख होकर कृपया मुझको ज्ञान की दृष्टि प्रदान कीजिए ॥२०॥ हे विप्रप्रवर ! इस रीति से बहुत ही सावधानता के साथ माधव भगवान से प्रार्थना करनी चाहिए। इसके अनन्तर अपनी श्रद्धा एव शक्ति के अनुसार ब्राह्मणो को भोजन करावे और पुष्कल दक्षिणा समर्पित करे ॥२१

ततः स्वबन्धुभि. सार्द्धं नारायणपरायणः ।
कृतपञ्चमहायज्ञ. स्वय भुञ्जीत वाग्यतः ॥२२
एवं य प्रयत. कुर्यात्पुण्यमेकादशीव्रतम् ।
स याति विष्णुभवन पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥२३
उपवासव्रतपरो धर्मकार्यपरायण. ।
चाण्डालान्पतिताश्चैव नेक्षेदपि कदाचन ॥२४
नास्तिकान्भिन्नमर्यादान्निन्दकान्पिशुनांस्तथा ।

उपवासव्रतपरो नालपेच्च कदाचन ॥२५
वृपलीसूतिपोष्टार वृपलीपतिमेव च ।
अयाज्ययाजक चैव नालपेत्सर्वदा व्रती ॥२६
कुण्डाशिनं गायक च तथा देवलकाशिनम् ।
भिपज काव्यकर्त्तार देवद्विजविरोधिनम् ॥२७
परान्नलोलुप चैव परस्त्रीनिरत तथा ।
व्रतोपवासनिरतो वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत् ॥२८

इसके उपरान्त भगवान नारायण के ध्यान मे तत्परता रख कर पञ्च यज्ञ करे तथा इसके पश्चात अपने बन्धु-बांधवो के साथ बैठ कर स्वय भी भोजन करना चाहिए ॥२२॥ इस विधि से जो लोग सावधानी के साथ इस परम पवित्र एकादशी के महा व्रत को किया करते हैं वे सीधे विष्णु लोक को गमन किया करते हैं जहाँ से पुन. लौट कर वापिस भूलोक मे नही आते हैं ॥२३॥ इस उपवास के परम धार्मिक कृत्य मे सलग्न रहने वाले व्रतधारी पुरुष को चाहिए कि उसे चाडालो तथा पतितो को भी देखना नही चाहिए ॥ २४ ॥ उपवास करने वाले पुरुप को नास्तिको से, मर्यादा के भङ्ग करने वालो से, धर्म की निन्दा करने वालो से और जो चुगली किया करते हैं उन लोगो से कभी बात भी नही करनी चाहिए ॥२५॥ व्रती पुरुष को शूद्रा दाई के पति और वृपली पति यज्ञ न कराने के योग्य पात्र को यज्ञ कराने वाले पुरुष से भी बातें नही करनी चाहिये ॥२६॥ जो पति के जीवित रहने पर भी अन्य जार से समुत्पन्न पुत्र के घर मे भोजन किया करता है। गायन करने वाले भाड, जो केवल द्रव्य के लिये ही देव पूजा करता है उसके जो अन्न का सेवन करने वाला है, दया भाव से न करके केवल धन की कमाई के लिए वैद्य वृत्ति करता है, जो भाटो की वृत्ति किया करता है और जो देव और विप्रो से विरोध किया करता है, जिसका पराया अन्न खाने के लिये

लार टपका करती है और जो दूसरे की स्त्री से व्यभिचार करता है, इन सबके स थ उपवास करने वाले व्रतधारी पुरुष को वाणी मात्र से भी सत्कार नहीं करना चाहिए ।।२७।२८।।

इत्येवमादिभि शुद्धो वशी सर्वहिते रत ।
उपवासपरो भूत्वा प । सिद्धिमवाप्नुयात् ।।२६
नास्ति गङ्गासम तीर्थं नास्ति मातृसमो गुरु ।
नास्ति विष्णुसम दैव तपो नानशनात्परम् ।।३०
नास्ति क्षमासमा माता नास्ति कीर्तिसम धनम् ।
नास्ति ज्ञानसमो लाभो न च धर्मसम पिता ।।३१
न विवेकसमो वन्धुर्नैकादश्या पर व्रतम् ।
अत्राप्युदाहरतीममितिहास पुरातनम् ।।३२
सवाद भद्रशीलस्य तत्पितुर्गालवस्य च ।
✓पुरा हि गालवो नाम मुनि सत्यपरायण ।।३३
उवास नर्मदातीरे शान्तो दान्तस्तपोनिधि ।
वहुवृक्षसमाकीर्णे गजभल्लुनिषेविते ।।३४
सिद्धचारणगन्धर्वयक्षविद्याधरान्विते ।
कन्दमूलफलै पूर्णे मुनिवृन्दनिषेविते ।।३५
गालवो नाम विप्रेन्द्रो निवासनकरोच्चिरम् ।
तस्याभवद्भद्रशील इति ख्यात सुतो वशी ।।३६

इस विधि से परम शुद्ध होकर तथा इन्द्रियों को अपने वश में रखकर सब प्राणियों के हित में तत्पर रहने वाला पुरुष एकादशी का उपवास करके परमोत्तम सिद्धि का भोग किया करता है ।। २६ ।। गङ्गा के समान तीर्थ, माता के समान गुरु, विष्णु भगवान के समान देवता और अनशन अर्थात उपवास के समान तप कोई भी नहीं हाता है ।।३०।। माता क समान क्षमाशील अन्य काई भी क्षमा करने वाला नहीं होता हैं, कीर्त्ति के तुल्य इस जगत म अन्य कोई भी धन

सर्वेषा जगतां स्वस्ति भूयादित्यब्रवा दिदम् ॥४१
क्रीडाकाले मुहूर्तं वा मुहूर्तार्द्धं मयापि वा ।
एकादशीति सकल्य व्रतं यच्छति केशवे ॥४२

इस भद्रशील पुत्र को अपने पूर्व जन्म का हाल सब स्मरण था और महान भाग्य वाला बालक अहर्निश भगवान नारायण के ध्यान में ही तत्पर रहा करता था । महान मति वाला भद्रशील बालक अपनी शैशवावस्था मे ही बालोचित क्रीडा के समय मे भी मिट्टी की विष्णु की प्रतिमा का निर्माण कर उसका पूजन किया करता था और अपने समस्त साथियो से भी यही कहा करता था कि मानवो को भगवान् विष्णु देवेश्वर की पूजा सर्वदा और अवश्य ही करनी चाहिये ।३७।३८। हे मुनिवर ! यह एकादशी का महान व्रत पण्डितो को भी अवश्य करना चाहिए । इस प्रकार से महत्व समझा २ कर छोटे २ बच्चो मे भी ज्ञान का प्रसार कर दिया था ॥३९॥ इसका प्रभाव यह हुआ कि वे बालक भी विष्णु-भक्ति मे मग्न होकर पृथक् २ करके या सब मिलकर मिट्टी की प्रतिमा बना कर सानन्द उसका अर्चन करने लगे थे ॥४०॥ भद्रमति सर्वत्र व्यापक भगवान विष्णु का स्तवन करके कहा करता था । सर्व जगत् का कल्याण हो ॥४१॥ वह बालक अपने खेल के समय मे ही एक या आधे मुहूर्त के लिए एकादशी व्रत का सकल्प करके फिर भगवान के अर्पण करने का कर्म भी किया करता था ॥४२॥

एव सुचरित दृष्ट्वा तनय गालवो मुनिः ।
अपृच्छद्विस्मयाविष्ट समालिग्य तपोनिधि. ॥४३
भद्रशील महाभाग भद्रशीलोऽसि सुव्रत ।
चरित मगल यत्ते योगिनामपि दुर्लभम् ॥४४
हरिपूजापरो नित्य सर्वभूतहिते रत ।
एकादशीव्रतपरो निषिद्धाचारवर्जित. ।

निर्द्वन्द्वो निर्मम शातो हरिध्यानपरायण ॥४५
एवमेतादृशी बुद्धि कथ जातार्भकस्य ते ।
विनापि महता सेवा हरिभक्तिर्हि दुर्लभा ॥४६
स्वभावतो जनस्यास्यह्यविद्याकामकर्मसु ।
प्रवर्त्तते मतिर्वत्स कथ तेऽलौकिकी वृत्ति ॥४७
सत्सङ्गेऽपि मनुष्याणा पूर्वपुण्यातिरेकत ।
जायते भगवद्भक्तिस्तदह विस्मय गत ॥४८
पृच्छामि प्रीतिमापन्नस्तद्भवान्वक्तुमर्हति ।
भद्रशीलो मुनिश्रेष्ठ पित्रैव सुविकल्पित ॥४९
जातिस्मर सुकृतात्मा हृष्टप्रहसितानन ।
स्वानुभूत यथावृत्त सर्व पित्रे न्यवेदयत् ॥५०

तपोमूर्त्ति महर्षि गालव भी अपने छोटे से पुत्र के इस तरह के सुन्दर एव सत् चरित्र को देख कर परम विस्मित होकर उसका प्रेमालिङ्गन कर उससे पूछने लगे थे ॥४३॥ श्री गालव महर्षि ने कहा—हे सुव्रत महाभाग भद्रशील ! तुझ जैसा अतिशय माङ्गलिक चरित्र योगिराजो मे भी प्राप्त होना अति कठिन है॥४४॥ हम देखते हैं कि तू सर्वदा समस्त प्राणियो के हित मे सलग्न रहकर भगवान् विष्णु की पूजा करता है और एकादशी का व्रत किया करता है तथा कभी भी कोई निषिद्ध आचरण नही करता है । सासारिक ममता तथा द्वन्द्वो के बन्धन से अलग रहता हुआ परम शान्त भाव से भगवान का ध्यान किया करता है ॥४५॥ छोटे बालक की अवस्था मे ही तुझे ऐसी पारमार्थिक बुद्धि कहा से कैसे उत्पन्न हो गई है ? बडो की सेवा बिना श्री हरि की भक्ति अत्यन्त दुलभ हुआ करती है ॥४६॥ साधारणतया ससार मे मनुष्यो की बुद्धि तो स्वाभाविक रूप से अविद्या के कर्मो मे लगी रहा करती है किन्तु हम देखते हैं कि तेरी बुद्धि सदा सन्मार्ग की ओर ही जाया करती है—वह एक बहुत ही बडी अलौकिक बात

ही है ।।४७।। सत्पुरुषों का संग होने पर भी देखा जाता है कि पूर्व पुण्यों की अधिकता होने पर ही मानवों के हृदय में भगवद्भक्ति आकर निवास किया करती है अतएव मुझे आश्चर्य होरहा है ।।४८।। मैं अधिक प्रसन्न होकर ही तुझसे सब भेद की बात जानना चाहता हूँ। बेटा, तू मुझको यह सम्पूर्ण रहस्य खोलकर स्पष्ट बतला दे। मुनिश्रेष्ठ भद्रशील को तो अपने पूर्व जन्म का स्मरण बना ही था। अतः अपने पिता की ये बातें सुन कर मुस्कराते हुये वह पुण्यात्मा अपना अनुभव किया हुआ सम्पूर्ण वृत्त कहने लगा था ।।४९।५०।।

शृणु तात मुनिश्रेष्ठ ह्यनुभूत मया पुरा ।
जातिस्मरत्वाज्जानामि यमेन परिभाषितम् ।।५१
एतच्छ्रुत्वा महाभागो गालवो विस्मयान्वित ।
उवाच प्रीतिमापन्नो भद्रशील महामतिम् ।।५२
कस्त्वं पूर्वं महाभाग किमुक्त च यमेन ते ।
कस्य वा केन वा हेतोस्तत्सर्वं वक्तुमर्हसि ।।५३
अहमास पुरा तात राजा सोमकुलोद्भव ।
धर्मकीर्तिरिति ख्यातो दत्तादत्रेयेणशासित ।।५४
नववर्षसहस्राणि मही कृत्स्नामपालयम् ।
अधर्माश्च तथा धर्मा मया तु बहव कृता ।।५५
तत श्रिया प्रमत्तोऽहं बह्वधर्ममकारिषम् ।
पाषण्डजनससर्गात्पाषण्डचरितोऽभवम् ।।५६

भद्रशील ने कहा—हे पिताजी, हे मुनिश्रेष्ठ। मैंने जो भी कुछ अनुभव किया है वह मेरे पूर्व जन्म में यमराज के दिये हुये भाषण का ज्ञान पहिले जन्म की स्मृति बने रहने के कारण खूब अच्छी तरह याद है आप सुनिए।५१। महाभाग महर्षि गालव यह बात सुनकर अत्यधिक विस्मित हो गये थे। परम प्रसन्न होकर महामति भद्रशील से कहने लगे थे ।।५२।। श्री गालव मुनि ने कहा—हे महाभाग! तू पहिले

जन्म मे कौन था ? यमराज ने तुझसे क्या कहा था और किस कारण से कहा था ? तू पहिले किसका शिष्य था—ये सभी हमको सुनाओ ॥५३॥ भद्रशील ने उत्तर दिया कि हे तात ! मैं अपने पूर्व जन्म मे धर्मकीर्ति नामक सोमवश मे समुत्पन्न एक राजा था और महा महर्षि श्री दत्तात्रेयजी मुझे उस जन्म मे उपदेश दिया करते थे ॥५४॥ उस जन्म मे मैंने इस सम्पूर्ण भूमण्डल का परिपालन नौ सहस्र वर्ष तक किया था । उस इतने लम्बे समय मे मुझसे बहुत से धर्म अधर्म बन गये थे ॥५५॥ मैं उस समय मैं अपने अतुल ऐश्वर्य के मद मे मत्त होकर नाना प्रकार के अधर्म कर्म करने पर उत रू हो गया था । बहुत से पाखण्डी मनुष्यो के सङ्ग-सम्पर्क से मेरा चरित्र भी महान् पाखण्ड पूर्ण हो गया था ॥५६॥

पुरार्जितानि पुण्यानि मया तु सुबहून्यपि ।
पाषण्डैर्बाधितोऽह तु वेदमार्ग समत्यजम् ॥५७
मखाश्च सर्वे विध्वस्ता कूटयुक्तिविदा मया ।
अधर्मनिरत मा तु दृष्ट्वा मद्देशजा प्रजा ॥५८
सदैव दुष्कृत चक्रु षष्ठाशस्तत्र मेऽभवत् ।
एव पापसमाचारो व्यसनाभिरत सदा ॥५९
मृगयाभिरतो भूत्वा ह्येकदा प्राविश वनम् ।
ससैन्योऽह वने तत्र हत्वा बहुविधान्मृगान् ॥६०
क्षुत्तट्परिवृत श्रान्तो रेवातीरमुपागमम् ।
रविनीक्ष्णातपक्लान्तो रेवाया स्नानमाचरम् ॥६१
अदृष्टसैन्य एकाकी पीड्यमान क्षुधा भृशम् ॥६२
समेतास्तत्र ये केचिद्रेवानीरनिवासिन ।
एकादशीव्रतपरा मया दृष्टा निशामुखे ॥६३

इससे पूर्व पहिले मैंने बहुत सा पुण्य का सञ्चय किया था किन्तु फिर मैंने पाखडी पुरुषो की सङ्गति म पडकर उनके द्वारा

बाधायें उपस्थित करने के कारण वेद मार्ग का सर्वथा परित्याग ही कर दिया था ॥५७॥ मैं बहुत सी कूटयुक्तियों का ज्ञाता था अतएव सभी प्रकार के यज्ञादि उत्तम कर्मों का त्याग कर दिया था। मेरी प्रजा ने जब मुझे अधर्म परायण देखा था तो वह भी सर्वदा अधर्म मे ही निरत हो गयी थी और उसका छठवाँ भाग मुझ पर भी शास्त्र कथन के अनुसार पडने लग गया था। इस रीति से पाप कर्मों में डूबा हुआ मैं बहुत से दुष्कर्मों म रति रखने लग गया था। एक समय मे मैं अपन सैनिकों के साथ मृगया करता हुआ एक परम गहन वन मे प्रविष्ट हो गया था और बहुत से मृगो की शिकार की थी ॥५८-६०॥ इसके पश्चात महान बुभुक्षित एव तृसित होकर मैं थका हुआ रेवा नदी के तीर पर पहुँच गया था। उस समय में सूर्य के परम तीक्ष्ण आतप के ताप मे सतप्त हुए मैंने रेवा नदी म अवगाहन किया था ॥६१॥ उस समय मैं बिल्कुल एकाकी ही था। मरी सेना भी मुझे कही दिखाई नही दे रही थी। मैं क्षुधा से अत्यधिक बेचैन होकर तडफडा रहा था ॥ ६२ ॥ मध्या के समय मे मैंने वहाँ एकादशी का व्रत करने वाले, रेवा नदी के तीर पर निवास करने वाले लोगो को एकत्रित हुए देखा था ॥६३॥

निराहारश्च तत्राहमेकाकी तज्जनै सह।
जागर कृतवाश्चापि सेनया रहितो निशि ॥६४
अध्वश्रमपरिश्रात क्षुत्पिपासाप्रपीडित।
तत्रैव जागरान्तेऽह तात पचत्वमागत ॥६५
ततो यमभटैर्बद्धो महादष्ट्राभयकरै।
दष्ट्राकरालवदनमपश्य समवर्तिनम् ॥६६
अथ कालश्चित्रगुप्तमाहूयेदमभाषत।
अस्य शिक्षाविधान च यथावद्वद पण्डित ॥६७
एवमुक्तश्चित्रगुप्तो धर्मराजेन सत्तम।

चिर विचारयामास पुनश्चेदमभाषत ॥६८
अमी पापरतः सत्यं तथापि शृणु धर्मप ।
एकादश्या निराहारः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥६६
एप रेवातटे रम्ये निराहारो हरेर्दिने ।
जागरं चोपवासं च कृत्वा निष्पापता गतः ॥७०

उस समय मे मेरे समीप मे सैनिक लोग तो थे ही नही अत-एव मैंने भी उन लोगो के साथ वहाँ पर अकेला रह जाने के कारण विवश होकर रात्रि जागरण किया था ॥६४॥ मैं उस समय मे दिन भर इधर उधर वन मे भटकते रहने के कारण अधिक श्रान्त हो गया था और भूख-प्यास से भी अधिक पीडित था। अतएव हे तात ! मैं उस रात्रि जागरण के समाप्त होते ही वही पर मर गया था ॥६५॥ उस समय मे महान भीषण लम्बी २ दाढो वाले यमराज के दूतो ने आकर मुझे पाशो मे बद्ध कर लिया था और अत्यन्त पीडा देने वाले मार्ग मे होकर मुझे ले गये थे और यमराज के समीप मे पहुँचा दिया था। वहाँ पर मैंने भयङ्कर मुखाकृति वाले परम विकराल यमराज को देखा था ॥६६॥ उस समय मे उस काल पुरुष ने तुरन्त चित्रगुप्त को बुलाकर उससे पूछा था—हे पण्डित ! बतलाओ, इस दुष्ट को क्या शिक्षा देनी चाहिए ॥६७॥ हे तात ! धर्मराज के इस तरह से पूछने पर वह चित्रगुप्त बहुत समय तक विचारो मे निमग्न होकर उनसे कहने लगे थे ॥६८॥ हे धर्मराज ! निस्सन्देह यद्यपि यह प्राणी पहले बहुत ही अधिक पापो मे निरत रहता था तो भी यह घटना हुई कि जो भी कोई कैसा भी क्यों न हो एकादशी के दिन निराहार रहता है वह सभी पापो से छूट जाया करता है ॥६६॥ यह भी उस हरि के दिन मे परम रमणीय एव महान पावन रेवा के तट पर निराहार व्रत और रात्रि जागरण करके अब तो बिल्कुल निष्पाप होगया है ॥७०

यानि कानि च पापानि कृतानि सुबहूनि च ।

तानि सर्वाणि मष्टानि ह्यु पवासप्रभावतः ॥७१
एवमुक्तो धर्मराजश्चित्रगुप्तेन धीमता ।
ननाम दडवद्भूमौ ममाग्रे सोऽनुकंपित. ॥७२
पूजयामास मा तत्र भक्तिभावेन धर्मराट् ।
ततश्च स्वभटान्सर्वानाहूयेदमुवाच ह ॥७३
शृणुध्व मद्वचो दूता हित वक्ष्याम्यनुत्तमम् ।
धर्ममागरत्तान्मर्त्यान्मानयध्व ममान्तिकम् ॥७४
ये विष्णुपूजनरताः प्रयत।
कृतज्ञाश्चैकादशीव्रतपरा ।
नारायणाच्युत हरे शरणभवेति
शातावदन्ति सतत तरसात्यजध्वम् ॥७५
नारायणाच्युत जनार्दन कृष्ण विष्णो
पद्मेश. पद्मजपित. शिव शकरेति ।
नित्य वदत्यखिललोकहिताः प्रशान्ता
दूराद्भटास्त्यजत तान्तु ममैप शिक्षा ॥७६
नारायणार्पितकृतान्हरिभक्तिभाज.
स्वाचारमार्गनिरतान् गुरुसेवकाश्च ।
सत्पात्रदाननिरताश्च सुदीनपाला-
न्दूतास्त्यजध्वमनिश हरिनामसक्तान् ॥७७

इसने अपने पूरे जीवन काल मे जो भी महान घोरतम पाप किये थे वे सभी एक साथ एकादशी के प्रबल प्रभाव से नष्ट होगये हैं और यह अब पूर्णतया विशुद्धात्मा हो गया है ॥७१॥ महान मतिमान चित्रगुप्त के द्वारा ऐसा कथन किए जाने पर धर्मराज ने परम अनुकम्पित होकर भूमि मे मेरे समक्ष मे पात करके मुझे दण्डवत्प्रणाम किया था ॥७२॥ इसके पश्चात् बहुत ही अधिक भक्ति की भावना से धर्मराज ने मेरा सत्कार किया था और फिर उसने अपने दूतों को

बुलाकर यह आदेश दिया था कि हे दूतो ! अब तुम लोग अपने कान खोल कर भली भाँति मेरे हितप्रद वचनों का श्रवण कर लो। जो प्राणी किसी भी धर्म के मार्ग में चल रहे हों उनको कभी भूल कर भी मेरे पास मत लाया करो ॥७३॥७४॥ जो भगवान् विष्णु देवेश्वर की अर्चना में निरत रहा करते हों–जो संयम का पूर्ण पालन करते हों–जो किये हुए उपकार को मानते हों–जो एकादशी का व्रत किया करते हों–जो इन्द्रियों को अपने वश में रखते हों–जो परम शान्त भाव से अपने मुख से ऐसा कहा करते हों–"हे नारायण ! हे हरे ! हे अच्युत ! मुझे शरण प्रदान कीजिए" तुम्हारा यह उस समय पर आवश्यक कर्त्तव्य होना चाहिए कि ऐसे प्राणियों को तुरन्त ही छोड दो ॥७५॥ अरे दूतो ! मैं तुमको तुम्हारे ही कल्याण के लिये यह शिक्षा देता हूँ कि जो भी कोई प्राणी सबका हित चाहते हुए परम शान्त भाव से एकाग्र होकर हे नारायण ! हे जनार्दन ! हे अच्युत ! हे विष्णो ! हे पद्मा के ईश ! हे ब्रह्मा के जनक ! हे शिव ! हे शङ्कर ! इस तरह से नित्य ही अपने मुख से उच्चारण किया करते हों उनसे तुमको बहुत दूर से बचकर रहना चाहिये ॥ ७६ ॥ अरे दूतो ! आप अच्छी तरह समझ लो जिन प्राणियों ने अपने आपको भगवान् नारायण के चरणों में समर्पित कर दिया हो, जो विष्णु भक्ति में रत हों, जो सदा सदाचरण का पालन किया करते हों, जो अपने पूजनीय बड़ों का सदा सत्कार किया करते हों, जो सत्पात्र पुरुषों को सर्वदा दान दिया करते हों, जो दीन दुखियों का परिपालन किया करते हों अथवा श्रीहरि नाम में ही परायण किया करते हों उनको तुम लोग सदा ही छोड दिया करो ॥७७॥

> पापड्मद्रुहिनान्द्विजभक्तिनिष्ठान्म-
> रसगलोलुपरताश्च तथातिथेयान् ।
> धर्मौ हरौ च समबुद्धिमतस्तथैव दूतात्स्य-
> जध्वमुपकारपराञ्जनानाम् ॥७८

ये वर्जिता हरिकथामृतसेवनैश्च
नारायणस्मृतिपरायणमानसैश्च ।
विप्रेन्द्रपादजलसेचनतोऽप्रहृष्टास्ता-
न्पापिनो मम भटा गृहमानयध्वम् ॥७९
ये मातृतातपरिभर्त्सनशीलिनश्च
लोकद्विषो हितजनाहितकर्मणश्च ।
देवस्वलोभनिरतान्जनाशतुं नतानयध्वमपराधपराश्च दूता ॥८०
एकादशीव्रतपराङ्मुखप्रशील लोकापवादनिरत परनिंदक च ।
ग्रामस्यना शकरभुत्तमवैरयुक्त
दूता समानयत विप्रधनेपु लुब्धम् ॥८१
ये विष्णुभक्तिविमुखा प्रणमन्ति नैव
नारायण हि शरणागतपालक च ।
विष्णवालय च नहि याति नरा सुमूर्खा-
स्तानानयध्वमतिपापरतान्प्रसह्य ॥८२
एव श्रुत यदा तत्र यमेन परिभाषितम् ।
मयानुतापदग्धेन स्मृत तत्कर्म निंदितम् ॥८३
असत्कर्मानुतापेन सद्धर्मश्रवणेन च ।
तनैव सर्वपापानि नि शेषाणि गतानि मे ॥८४

जो मनुष्य पाखण्डियो की सङ्गति से दूर रहा करते हो, जो विप्रो के परम भक्त हो, जो सत्सङ्ग के लिए पद लोलुप रहने वालो मे हार्दिक प्रेम करते हो, जो सदा अतिथियो का सत्कार किया करते हो, जो भगवान विष्णु और शिव मे अभेद बुद्धि रखते हो अथवा जो सवदा मानवा के उपकार करन म उद्यत रहत हो एम जीवो स तुमको बहुत दूर बचकर ही रहना चाहिए ॥७८॥ यमराज ने फिर यह कहा- हे दूतो ! जो कभी भी श्री हरि की कथा रूपी अमृत का पान न किया करते हो, जो भगवान नारायण की स्मृति मे अपने चित्त को लगान

वालो से सदा दूर तथा बचकर रहा करते हो, ब्राह्मणो से अपने चरण धुलवाकर प्रसन्न हुआ करते हो तथा विप्रो के चरणो को धोने से जिनको अप्रसन्नता होती हो, उन महा पापात्मा लोगो को ही तुम पकड़ कर मेरी सभा मे उपस्थित किया करो ॥७९॥ जिनका स्वभाव ही ऐसा बन गया हो जो सदा अपने माता-पिता का तिरस्कार ही किया करें, जो हितैषी लोगो का अहित कर्म किया करते हो, जो देव धन मे भी लोभ रखते हो, जो बुरी २ बाते बताकर भोले-भाले लोगो को बिगाडते रहा करते हो, ऐसे महान् अपराध करने वालो को तुम लोग बन्धन बद्ध करके मेरे सामने उपस्थित किया करो ॥ ८० ॥ जो मनुष्य एकादशी के व्रत मे हटता हो, जो सदा ही मनुष्यो की निन्दा किया करते हो, जो बुरे कर्मो मे ही सदा रति रखते हो, जो ग्राम को उजाडता हो, जो सबके साथ कठोर व्यवहार किया करते हो, जो सज्जनो से दुश्मनी रखा करते हो, ब्राह्मणो के धन पर लालच किया करते हो उन महापापियों को तुम्हारा कर्तव्य है कि हठात् घसीट कर मेरे पास लाया करो ॥८१॥ जो विष्णु भक्ति से विमुख हो, जो सदा शरणागतो के पालक नारायण प्रभु को प्रणाम न किया करते हो और कभी भी विष्णु मन्दिर मे न झांकते हो,ऐसे पाप परायण पुरुषो को जबर्दस्ती पकड कर मेरी सभा मे ले आया करो ॥८२॥ उस समय मे जब मैंने यमराज का इस प्रकार का विस्तृत भाषण सुना तो मैंने अपने महान निन्दित दुष्ट कर्मो का स्मरण किया और बड़ा भारी मुझको पश्चाताप हुआ था ॥८३॥ अपने किये हुए पाप कर्मो का पश्चाताप करने से और सद्धर्मो का श्रवण करने से मेरे समस्त पाप वही पर विनष्ट हो गये थे ॥८४॥

पापशेषाद्विनिर्मुक्त हरिसारूप्यता गतम् ।
सहस्रसूर्यसकाश प्रणनाम यमश्च तम् ॥८५
एव दृष्ट्वा विस्मितास्ते यमदूता भयोत्कटाः ।
त्रिश्वास परम चक्रुर्यमेन परिभाषिते ॥८६

ततः संपूज्य मां काली विमानशतसंकुलम् ।
सद्य संप्रेषयामास तद्विष्णोः परमं पदम् ॥८७
विमानकोटिभिः सार्द्धं सर्वभोगसमन्वितैः ।
कर्मणा तेन विप्रर्षे विष्णुलोके मयोषितम् ॥८८
कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च ।
स्थित्वा विष्णुपदं पश्चादिन्द्रलोकमुपागमम् ॥८९
तत्रापि सर्वभोगाढ्यः सर्वदेवनमस्कृतः ।
तावत्कालं दिवि स्थित्वा ततो भूमिमुपागतः ॥९०
अत्रापि विष्णुभक्तानां जातोऽहं भवतां कुले ।
जातिस्मरत्वाज्जानामि सर्वमेतन्मुनीश्वर ॥९१

उसी समय में समस्त पापों से विमुक्त हुए श्री हरि के समान स्वरूप वाले और सहस्र सूर्यों के समान तेजस्वी मुझको यमराज ने स्वयं प्रणाम किया था ॥८५॥ उस समय में यमदूतों ने भी विस्मय और भय के साथ यमराज के भाषण पर विश्वास किया था ॥ ८६ ॥ उसी समय में यमराज ने मेरा सत्कार करके सैकड़ों विमानों से भरे हुये भगवान विष्णु के परम पद में मुझको भेज दिया था ॥ ८७ ॥ हे तात ! वहाँ पर सभी प्रकार के भोगों से परिपूर्ण करोड़ों विमानों के मध्य में मैं विष्णु लोक में रहा था। यह सब कुछ उसी कर्म का प्रभाव था ॥८८॥ मैं ग्यारह अरब कल्पों तक निवास कर फिर इन्द्र लोक में गया था। वहाँ पर भी समस्त देवगणों के द्वारा वन्द्यमान होकर सभी तरह के सुखोपभोगों का आनन्द पाकर उतने ही काल पर्यन्त मैंने निवास किया था। अब मैं इस भू लोक में आकर समुत्पन्न हुआ हूँ ॥८६।९०॥ यहाँ पर भी हे भगवन् ! अब आप जैसे परम पवित्र विष्णु के भक्तों के वंश में उद्भूत हुआ हूँ। हे मुनीश्वर ! इन समस्त रहस्यमयी कथा को मैं अपने पूर्व जन्मों के स्मरण बने रहने के कारण ही जानता हूँ ॥९१॥

तस्माद्विष्णवर्चनोद्योगं करोमि सह बालकै. ।
एकादशीव्रतमिदमिति न ज्ञातवान्पुरा ॥६२
जातिस्मृतिप्रभावेण तज्ज्ञात साप्रत मया ।
अव स्वेनापि यत्कर्म कृत तस्य फल त्विदम् ॥६३
एकादशीव्रत भक्त्या कुर्वता किमृत प्रभो ।
तस्माच्चरिष्ये विप्रेंद्र शुभमेकादशीव्रतम् ॥६४
विष्णुपूजा चाहरह परमस्थानकाक्षया ।
एकादशीव्रत यत्तु कुर्वंति श्रद्धया नराः ॥६५
तेषा तु विष्णुभवन परमानददायकम् ।
एव पुत्रवच श्रुत्वा सतुष्टो गालवो मुनि ॥६६
अवाप परमा तुष्टि मनसा चातिहर्षित ।
मज्जन्म सफल जात मद्वश पावनीकृत. ॥६७
यतस्त्व मद्गृहे जातो विष्णुभक्तिपरायणः ।
इति सतुष्टचित्तस्तु तस्य पुत्रस्य कर्मणा ॥६८
हरिपूजाविधान च यथावत्समवोधयत्
इत्येतत्ते मुनिश्रेष्ठ यथावत्कथित मया ।
सकोचविस्तराभ्या च किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥६९

यही कारण है कि मैं बालकों को अपने साथ मे लेकर भगवान् विष्णु की पूजा का उद्योग किया करता हूँ क्योंकि मुझको विष्णु पूजा की महिमा का पूर्ण ज्ञान यमराज की यकृता से हो गया था । पूर्व जन्म मे मुझको इसके महत्व का ज्ञान ही नहीं हुआ था कि यही एकादशी का व्रत होना है ॥६२॥ अब पूर्व जन्मो का स्मरण होने से ही मेरी भली भाँति समझ मे आ गया है कि अकस्मात् विवशता से बन जाने वाले एकादशी के व्रत के कर्म का इतना अद्भुत प्रभाव एव सुफल हुआ है तो फिर ज्ञान पूर्वक इसके करने मे कितना महान फल होता होगा ॥६३॥ हे प्रभो ! जो भक्ति भाव के साथ इस एकादशी के महा

व्रत को किया करते हैं । उनको प्राप्त हुए फल के विषय का क्या वर्णन किया जा सकता है । अतः हे विप्रेन्द्र ! मैं परम शुभ एवं पावन इस एकादशी के व्रत को अवश्य ही करता रहूँगा ॥६४॥ परम पद को प्राप्त करने की अभिलाषा से मैं प्रति दिन भगवान विष्णु की पूजा भी किया करूंगा । जो मनुष्य परम श्रद्धा के साथ एकादशी का व्रत किया करते हैं वे परम पद को प्राप्त होते हैं ॥६५॥ एकादशी के व्रत धारी पुरुष को विष्णु भवन परमानन्द दायक अवश्य ही मिला करता है इसमें तनिक भी संशय नहीं है । पुत्र के मुख से इस पूर्व जन्म के अद्भुत आख्यान का श्रवण कर गालव मुनि को परम प्रसन्नता हुई थी ॥६६॥ गालव महर्षि परमाधिक मन में सन्तुष्ट होकर विचार करने लगे कि मेरा जन्म आज सफल हो गया है । इस पुत्र ने मेरे घर में जन्म धारण कर मेरा कुल ही पवित्र कर दिया है ॥६७॥ ऐसा बचपन में ही परम विष्णुभक्त परम धर्मनिष्ठ पुत्र मुझको प्राप्त हुआ है । पुत्र के परम सत्कर्म से इस तरह से सन्तुष्ट होकर उन्होंने भगवान विष्णु के पूजन की यथार्थ विधि बतलाई थी । हे मुनीश्वर ! इस रीति से मैंने विस्तृत एवं संक्षिप्त रूप से यह सब वर्णन करके बतला दिया है । अब आगे आप क्या मुझसे श्रवण करना चाहते हैं ? ॥६८।६६॥



चारों वर्ण तथा स्त्रियों के सदाचार का वर्णन

एतन्निशम्य सनकोदितमप्रमेयं
पुण्यं हरेर्दिनभवं निखिलोत्तमं च ।
पापौघशान्तिकरणं व्रतसारमेव
ब्रह्मात्मजः पुनरभाषत हर्षयुक्तः ॥१
कथितं भवता सर्वं मुने तत्त्वार्थकोविद ।
व्रताख्यानं महापुण्यं यत्रार्द्धहरिभक्तिदम् ॥२

इदानीं श्रोतुमिच्छामि वर्णाचारविधिं मुने ।
तथा सर्वाश्रमाचारं प्रायश्चित्तविधिं तथा ॥३
एतत्सर्वं महाभाग सर्वतत्वार्थकोविद ।
कृपया परया मह्यं यथावद्वक्तुमर्हसि ॥४
शृणुष्व मुनिशार्दूल यथा भक्तप्रियंकर ।
वर्णाश्रमाचारपरैः पूज्यते हरिरव्ययः ॥५
मन्वाद्यैः रुदितं यच्च वर्णाश्रमनिबन्धनम् ।
तत्ते वक्ष्यामि विधिवद्भक्तोऽस्त्वमधोक्षजे ॥६
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चत्वार एवते ।
वर्णा इति समाख्याता एतेषु ब्राह्मणोऽधिकः ॥७
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या द्विजाः प्रोक्तास्त्रयस्तथा ।
मातृतश्चोपनयनाद् द्विजत्वं प्राप्यते त्रिभिः ॥८

महामहर्षि प्रवर श्री सूतजी ने कहा—समस्त पापों की शान्ति करने वाले व्रतोपवासों के सारभूत और परमोत्तम श्री हरि दिन से समुत्पन्न होने वाले और सनकाचार्य के द्वारा बताये हुए अपरिमित व्रत का वृत्तान्त श्रवण कर ब्रह्मा के आत्मज देवर्षि श्री नारदजी हर्षोल्लास से भरकर फिर कहने लगे थे ॥ १ ॥ श्री नारदजी ने कहा—हे मुने ! आप तो तात्त्विक अर्थों के परम विद्वान् हैं । आपने हरिभक्ति देने वाले महान् पुण्यमय इस एकादशी के महाव्रत का यथार्थ वर्णन किया है ।२। हे महामुने ! अब कृपा कर आप वर्णों की सदाचार पद्धति का श्रवण तथा समस्त आश्रमों के सदाचरण एवं प्रायश्चित्त पद्धति का श्रवण करने की उत्कट अभिलाषा रखता हूँ ॥ ३ ॥ हे सभी तत्वों के समझने में परम कुशल महाभाग ! इन सबका यथार्थ वर्णन करके सुनाइये । इसके लिए आपका परम अनुग्रह मुझ पर होगा ॥ ४ ॥ श्री सनकाचार्य ने कहा—हे नारद ! हे मुनिशार्दूल ! अब आप वर्णाश्रम धर्मों का यथार्थ पालन भक्तों के परम प्रिय एवं अभीष्ट करने वाले विष्णु भगवान्

का जिस रीति से पूजन किया करते हैं उसको सुनिए ॥ ५ ॥ आप तो भगवान् अधोक्षज के परम भक्त हो। अतएव भगवान् मनु आदि महर्षियो ने वर्णो और आश्रमो के धर्म बतलाये हैं उनका सविधि वर्णन करता हूँ। आप सावधानता से उनको अब सुनिये ॥ ६ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—ये ही चार वर्ण धर्मशास्त्रो मे बताये गये है। इनमे प्रथम तीनो का एक जन्म तो अपनी माता के उदर से हुआ करता है और दूसरा जन्म उपनयन सस्कार के द्वारा हुआ करता है। इसीलिये इनको द्विज या द्विजाति कहा जाता है ॥ ७। ८ ॥

एतैर्वर्णै सर्वधर्मा कार्या वर्णानुरूपत ।
स्ववर्णधर्मत्यागेन पाषड प्रोच्यते बुधै ॥६
स्वगृह्यचोदित कर्म द्विज. कुर्वन्कृती भवेत् ।
अन्यथा पतितो भूयात्सर्वधर्मबहिष्कृत. ॥१०
युगधर्म. परिग्राह्यो वर्णैरेतैर्यथोचितम् ।
देशाचारास्तथा ग्राह्या स्मृतिधर्माविरोधत. ॥११
कर्मणा मनसा वाचा यत्नाद्धर्म्मं समाचरेत् ।
अस्वर्ग्यं लोकविद्विष्ट धर्म्यमप्याचरेन्न तु ॥१२
समुद्रयात्रास्वीकार. कमण्डलुविधारणम् ।
द्विजानामसवर्णासु कन्यासूपयमस्तथा ॥१३
देवराच्च सुतोत्पत्तिर्मधुपर्के पशोर्वध ।
मासादन तथा श्राद्धे वानप्रस्थाश्रमस्तथा ॥१४
दत्ताक्षताया कन्याया. पुनर्दान वराय च ।
नैष्ठिक ब्रह्मचर्यं च नरमेधाश्वमेधकौ ॥१५
महाप्रस्थानगमन गोमेधश्च तथा मख ।
एतान्धर्मान्कलियुगे वर्ज्यानाहुर्मनीषिण ॥१६

इन सभी वर्णो को समस्त धर्म-कर्म अपने वर्ण के अनुसार ही

करने चाहिए। जो अपने वर्णाश्रमों के समुचित धर्म-कर्मों का त्याग कर दिया करता है उसको विद्वान् पुरुष पाखण्डी कहा करते हैं ॥ ९ ॥ द्विज अपने गृह्य सूत्र म कथित कर्मों के करने से ही कृतार्थ हो जाया करता है। इसके विपरीत अन्यथा आचरण से वह पतित हो जाया करता है फिर उसको किसी भी कर्म के करने का अधिकार नहीं रहा करता है ॥ १० ॥ इन सभी वर्णों के व्यक्तियों को अपने यथार्थ वर्ण-धर्म का ही पालन करना परमावश्यक होता है। जो स्मृति धर्म के अविरोधी देशाचार होते है उनका भी ग्रहण करना आवश्यक होता है ॥ ११ ॥ मन—कर्म और वचन से प्रयत्न पूर्वक धर्म का आचरण करना चाहिए। जो ऐसा कर्म है जिससे (धर्म कार्य से) स्वर्ग की प्राप्ति न होवे और जिसकी लोक में निन्दा होती हो उसको कभी भी नही करना चाहिये ॥ १२ ॥ समुद्र यात्रा की स्वीकृति—कमण्डलुका धारण (सन्यास ग्रहण)—द्विजो का असवर्ण कन्याओं के साथ विवाह, देवर से सन्तान की उत्पत्ति, मधुपर्क म पशुवध, श्राद्ध मे मास भक्षण, वानप्रस्थाश्रम, वाणी मात्र से दी हुई अक्षता कन्या का वर को पुनर्दान नैष्ठिक ब्रह्मचर्य, नरमेध, अश्वमेध, महाप्रस्थान, गोमेध इन शास्त्रोक्त धर्मों को भी विद्वान् पुरुषों ने इस कलियुग म वर्जित बताया गया है ॥ १३—१६ ॥

✓देशाचारा परिग्राह्यास्तत्तद्देशगतैर्नरै ।
अन्यथा पतितो ज्ञेय सर्वधर्मबहिष्कृत ॥१७
ब्राह्मणक्षत्रियविशा शूद्राणा च द्विजोत्तम ।
क्रिया सामान्यतो वक्ष्ये ताच्छृणुष्व समहित ॥१८
दान दद्याद् ब्राह्मणेभ्यस्तथा यज्ञैर्यजेत्सुरान् ।
वृत्त्यर्थ याजनेच्चैव अन्यानध्य पयेत्तथा ॥१९
याजयेद्यजने योग्यान्विप्रो नित्योदकी भवेत् ।
कुर्याच्च वेदग्रहण तथाग्नेश्च परिग्रहम ॥२०

ग्राह्ये द्रव्ये च पारक्ये समबुद्धिर्भवेत्तथा ।
सर्वलोकहितं कुर्यान्मृदुवाक्यमुदीरयेत् ॥२१

जो पुरुष जिस देश मे समुत्पन्न हुआ हो उसको उस देश के सदाचार का पालन अवश्य ही करना चाहिए अन्यथा करने से वह पुरुष सब धर्मों से बहिष्कृत एवं पतित हो जाया करता है ॥ १७ ॥ हे द्विज श्रेष्ठ ! अब मैं चारो वर्णों के साधारण कर्म्मों के विषय मे वर्णन करता हूँ । उनको आप परम समाहित होकर श्रवण करिए ॥ १८ ॥ ब्राह्मण का सामान्य कर्म है कि वह ब्राह्मणो को दान देवे —यज्ञो के यजन के द्वारा देवो का अर्चन करे और अपनी जीविका के लिये यज्ञ करावे तथा दूसरो को अध्ययन करावे ॥ १९ ॥ जो पुरुष यजन और पूजन के पात्र हो उनके द्वारा ही यज्ञो का यजन कराना चाहिए । विप्र को चाहिए कि वह नित्योदकी रहे, वेदो का अध्ययन करे और प्रति दिन अग्निहोत्र करे ॥ २० ॥ अपने ग्रहण करने के योग्य जो द्रव्य हो अथवा दूसरे के द्वारा ग्रहण करने के योग्य हो—इन दोनो मे समान बुद्धि ही रखनी चाहिए । समस्त प्राणियो के हितप्रद कार्य करने चाहिए । विप्र का कर्त्तव्य है कि वह सर्वदा अपने मुख से कोमल वचनो का ही उच्चारण किया करे और कभी भी कठोर वचन नही कहना चाहिये ॥२१॥

ऋतावभिगमः पत्न्या शस्यते ब्राह्मणस्य वै ।
न कस्याप्यहितं ब्रूयाद्विष्णुपूजापरो भवेत् ॥२२
दद्याद्दानानि विप्रेभ्यः क्षत्रियोऽपि द्विजोत्तम ।
कुर्याच्च वेदग्रहणं यज्ञैर्द्वा यजेत्तथा ॥२३
शस्त्रजीवी भवेच्चैव पालयेद्धर्मतो महीम् ।
दुष्टानां शासनं कुर्याच्छिष्टानां पालनं तथा ॥२४
पाशुपाल्यं च वाणिज्यं कृषिश्च द्विजसत्तम ।
वेदस्याध्ययनं चैव वैश्यस्यापि प्रकीर्त्तितम् ॥२५

कुर्याच्च दारग्रहण धर्माश्चैव समाचरेत् ।
क्रयविक्रयजैर्वापि धनै कारुक्रियोद्भवै ॥२६
दद्याद्दानानि शूद्रोऽपि पाकयज्ञैर्यजेन्न च ।
ब्राह्मणक्षत्रियविशा शुश्रूषानिरतो भवेत् ॥२७
ऋतुकालाभिगामी च स्वदारेषु भवेत्तथा ।
सर्वलोकहितैषित्व मङ्गल प्रियवादिता ॥२८
अनायासो मनोहर्यस्तितिक्षा नातिमानिता ।
सामान्य सर्ववर्णाना मुनिभि परिकीर्तितम् ॥२९

ब्राह्मण को चाहिए कि वह केवल ऋतु के समय मे ही अपनी पत्नी के साथ गमन करे— ऐसा करना ही प्रशसित होता है। जिस बात के कथन से किसी का भी अहित होवे ऐसी बात कभी भी विप्र को नही कहनी चाहिये। ब्राह्मण का निरन्तर भगवान् विष्णु की पूजा मे निरत रहना चाहिए ।। २२ ॥ हे उत्तम द्विज ! अब क्षत्रिय वर्ण का साधारण धर्म बतलाता हूँ—क्षत्रिय को ब्राह्मणो को दान देना चाहिए, वेदो का अध्ययन करे तथा यज्ञ के यजन के द्वारा देवो का अर्चन करे ॥ २३ ॥ शस्त्रो की वृत्ति से अपनी जीविका का अर्जन करे—धर्म के साथ पृथ्वी का परिपालन करे—दुष्टो को दण्ड देवे और साधु पुरुषो का सवताभाव से पालन एव रक्षण करना चाहिए ॥२४॥ वैश्य का सामान्य धर्म पशुओ का पालन, व्यापार, कृषिकर्म, वेदो का अध्ययन य वैश्य वर्ण के व्यक्तियो के धर्म हुआ करते हैं ॥ २५ ॥ अब शूद्र वर्ण के सामान्य धर्म बतलाये जाते हैं, शूद्र को भी विवाह करना चाहिए— सभी धर्मों का पालन करे—शिल्प के द्वारा प्रस्तुत वस्तुओ के विक्रय एव क्रय म जो धन प्राप्त हो उसका दान दवे किन्तु शूद्र को पाक यज्ञ करने का अधिकार शास्त्रो मे नही बताया गया है। शूद्र का कर्तव्य है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीनो वर्णों की सेवा म सलग्न रहना चाहिए ॥ २६ ॥ २७ ॥ ऋतुकाल म स्त्री गमन, सबके हित की

क्षत्रिय और वैश्य इन तीनों के लिये ही चार आश्रमो का विधान किया गया है और पाचवा आश्रम नही होता है। उन चारो आश्रमो के नाम ये होते हैं—ब्रह्मचर्य्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और चौथा आश्रम सन्यास होता है ॥३२॥३३॥ इन्ही चारो आश्रमो के द्वारा उत्तम धर्म की सिद्धि हुआ करती है। हे विप्रवर! जो सदा कर्मयोग म तत्परता रखता है—परम नि स्पृह होने के कारण जिसके मनमे पूण शान्ति विराजमान रहा करती है—जो नित्य ही अपन समुचित धर्म कर्मो मे सलग्नता रखता है उसीसे भगवान् विष्णु परम प्रसन्न रहा करते हैं और वह मर्यादा के पूर्ण रूप से परिपालन करने के कारण ऐसे उत्तम स्थान की अन्त समय मे प्राप्ति किया करता है जहा से फिर वापिस लौटकर यहा ससार मे नही आना होता है ॥३४॥३५॥



॥ स्मार्त धर्म वर्णन ॥

वर्णाश्रमाचारविधि प्रवक्ष्यामि विशेषत ।
शृणुष्व तन्मुनिश्रेष्ठ सावधानेन चेतसा ॥१
✓य स्वधर्मं परित्यज्य परधर्मं समाचरेत् ।
पाषड स हि विज्ञेय सर्वधर्म वहिष्कृत ॥२
गर्भाधानादिसस्कारा कार्या मन्त्रविधानत ।
स्त्रीणाममन्त्रत कार्या यथाकाल यथाविधि ॥३
सीमतकर्म प्रथम चतुर्थ मासि शस्यते ।
षष्ठे वा सप्तमे वापि अष्टमे वापि कारयेत् ॥४
जाते पुत्रे पिता स्नात्वा सचैल जातकर्म च ।
कुर्याच्च नादीश्राद्ध च स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ॥५
हेम्ना वा रजतेनापि वृद्धिश्राद्ध प्रकल्पयत् ।
अन्नेन कारयेद्यस्तु स चडालसमो भवेत् ॥६

कृत्वाभ्युदयिक श्राद्ध पिता पुत्रस्य वाग्यत: ।
कुर्वीत नामनिर्द्देश सूतकाते यथाविधि ।।७
✓अस्पष्टमर्थहीन च ह्यातगुर्वक्षरान्वितम् ।
न दद्यान्नाम विप्रेंद्र तथा च विषमाक्षरम् ।।८

श्री सनकाचार्य महर्षि ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठ ! अब मैं सब वर्णों और आश्रमों के सदाचार की विधि का विशेष रूप से वर्णन करके समझाता हूँ। हे मुनिवर! आप उसको विशेष सावधानी के साथ श्रवण करिये।१। जो मनुष्य अपने उचित धर्म का परित्याग करके दूसरों के धर्म का समाश्रय ग्रहण किया करता है उसको पाखण्डी ही समझना चाहिए चाहे वह कोई भी क्यों न हो। फिर उसका धर्माधिकार ही नष्ट होजाया करता है और किसी भी धर्म के करने का अधिकार नहीं रहा करता है ।।२।। समुचित समय पर विधि के अनुसार गर्भाधान आदि संस्कार मन्त्रों का उच्चारण करके ही करने चाहिए। स्त्रियों के संस्कारों में मन्त्रों का पाठ नहीं करना चाहिए ।।३।। सीमन्तोन्नयन संस्कार सर्व प्रथम गर्भाधान के चतुर्थ मास में परमश्रेष्ठ माना जाता है। यदि चौथे मास में किसी कारण वश इसको न कर सके तो फिर इस संस्कार को छटवें—सातवें या आठवें मास में अवश्य ही करना चाहिए ।। ४ ।। पुत्र की उत्पत्ति होने पर वस्त्रों के सहित स्नान करना चाहिए। फिर स्वस्ति वाचन के सहित नान्दीमुख श्राद्ध और जातकर्म संस्कार करें ।। ५ ।। इस वृद्धि सूचक श्राद्ध को चाँदी या सुवर्ण के साथ ही करे। जो केवल अन्न के द्वारा ही इस वृद्धि श्राद्ध को किया करते हैं उनमें और चाण्डाल में फिर कौन सा भेद रह जाया करता है ? ।। ६ ।। इसके अनन्तर पिता को अपनी वाणी का नियमन करते हुए पुत्र का आभ्युदयिक कर्म करना चाहिए। जातकाशौच के समाप्त हो जाने पर अन्त में विधि-विधान के अनुसार बालक का नामकरण करे। हे विप्रेन्द्र! नाम ऐसा ही होना चाहिए जो परम स्पष्ट हो —

सार्थक और स्वल्पाक्षरो वाला हो। इसके विपरीत नाम नही रखना चाहिये ॥७।८॥

तृतीयवर्षे चौलं च पंचमे षष्ठसम्मिते ।
सप्तमे चाष्टमे वापि कुर्याद् गृह्योक्तमार्गतः ॥९
दैवयोगादतिक्रान्ते गर्भाधानादिकर्मणि ।
कर्तव्यं पादकृच्छ्रो वै चौले त्वर्द्धं प्रकल्पयेत् ॥१०
गर्भाष्टमेऽष्टमे वाब्दे वटुकस्योपनायनम् ।
आषोडशाब्दपर्यंतं गौणं कालमुशन्ति च ॥११
गर्भैकादशमेऽब्दे तु राजन्यस्योपनायनम् ।
आद्वाविंशाब्दपर्यंतं कालमाहुर्विपश्चितः ॥१२
वैश्योपनयनं प्रोक्तं गर्भात् द्वादशे तथा ।
चतुर्विंशाब्दपर्यंतं गौणमाहुर्मनीषिणः ॥१३
एतत्कालावधेर्यस्य द्विजस्यातिक्रमो भवेत् ।
सावित्रीपतितं विद्यात्तु नैवालपेत्कदा ॥१४

गृह्यसूत्र धर्मग्रन्थ के अनुसार फिर बालक का चौल कर्म तीसरे पाँचवें, छठे, सातवें तथा आठवें वर्ष मे करे अर्थात् मुण्डन संस्कार करना चाहिए ॥ ६ ॥ यदि दैववशात् समुचित समय पर गर्भाधान आदि संस्कार न हो सके तो चतुर्थ भाग—कृच्छ्र व्रत का प्रायश्चित्त के रूप मे करना चाहिये और चूडाकर्म संस्कार समुचित समय पर नही किया जा सके तो आधा भाग कृच्छ्र व्रत का करना चाहिए तभी शुद्धि होती है ॥१०॥ गर्भाधान के समय से आठवें वर्ष मे बालक का यज्ञोपवीत संस्कार कराना चाहिए। यदि इस उचित समय पर यह संस्कार नही किया जाता है तो फिर सोलह वर्ष तक इस उपनयन संस्कार का गौण काल माना गया है ॥ ११ ॥ गर्भाधान से ग्यारहवें वर्ष मे क्षत्रिय का यज्ञोपवीत संस्कार कराना चाहिये। विद्वान् पुरुष क्षत्रिय गौणकाल बाईस वर्ष तक कहा करते हैं। गर्भ से बारहवें वर्ष मे वैश्य का उप-

नयन कराना चाहिए। विद्वान् पुरुष चौबीस वर्ष तक वैश्य के इस संस्कार का गौण काल कहा करते है ॥ १२ । १३ ॥ जिस द्विज का मुख्य और गौण दोनो ही काल व्यतीत हो जावे तो वह फिर सावित्री पतित माना जाया करता है और फिर उससे बात भी किसी को नही करनी चाहिए ॥१४॥

द्विजोपनयने विप्र मुख्यकालव्यतिक्रमे ।
द्वादशाब्द चरेत्कृच्छ्र पश्चाच्चान्द्रायण तथा ।
सातपनद्वय चैव कृत्वा कर्म समाचरेत् ॥१५
अन्यथा पतित विद्यात्कर्त्तापि ब्रह्महा भवेत् ।
✓मौजी विप्रस्य विज्ञेया धनुर्ज्या क्षत्रियस्य तु ॥१६
ᴗ आवी वैश्यस्य विज्ञेया श्रूयतामजिन तथा ।
विप्रस्य चोक्तमैणय रौरव क्षत्रियस्य तु ।१७
आज वैश्यस्य विज्ञेय दडान्वक्ष्ये यथाक्रमम् ।
✓पालाश ब्राह्मणस्योक्त नृपस्यौदुम्बर तथा ॥१८
वैल्व वैश्यस्य विज्ञेय तत्प्रमाण शृणुष्व मे ।
विप्रस्य केशमान स्याद्राललाट नृपस्य च ॥१९
नासाग्रसमित दण्ड वैश्यस्याहुर्विपश्चित ।
तथा वासासि वक्ष्यामि विप्रादीना यथाक्रमम् ॥२०
कषाय चैव माजिष्ठ हारिद्र च प्रकीर्तितम् ।
उपनीतो द्विजो विप्र परिचर्यापरो गुरो ॥२१

हे विप्रवर ! द्विज के उपनयन संस्कार का मुख्य काल व्यतीत होजावे तो फिर उसको बारह वर्ष तक कृच्छ व्रत प्रायश्चित के लिये करना चाहिए। इसके बाद दो चान्द्रायण व्रत और इसके पीछे दो सन्तापन व्रत करके ही कर्म करे ॥१५॥ ऐसा न करने पर यह सर्वथा पतित समझा जाता है और उस दशा मे वह कर्म करके भी ब्रह्म हत्यारा ही कहा जाया करता है। उपनयन संस्कार मे ब्राह्मण की

मेखला मूँज की होनी चाहिये। क्षत्रिय की मेखला धनुष की डोरी की, वैश्य की मेखला भेड के ऊन की होनी चाहिए। अब उनके चर्म धारण के विषय मे भी श्रवण करिये। ब्राह्मण के लिये ऐण मृग का चर्म होना चाहिये। क्षत्रिय के लिये रुद्र मृग की होवे और वैश्य के लिये बकरे का चर्म होना चाहिये। इसी प्रकार से भिन्न २ वर्णों के दण्ड भी भिन्न होते है। ब्राह्मण वटु के लिये ढाक का दण्ड होना चाहिए और क्षत्रिय वर्ण के वटु के लिये उपनयन सस्कार के समय मे धारण करने के लिये गूलर वृक्ष का दण्ड होना चाहिये ॥ १७।१८ ॥ वैश्य वर्ण के लिये विल्व वृक्ष का दण्ड होना चाहिये। इन दण्डो की ऊँचाई भी भिन्न २ होती है। ब्राह्मण का दण्ड केशो तक ऊँचा होवे, क्षत्रिय का दण्ड ललाट तक ऊँचा होवे और विद्वान् पुरुष वैश्य का दण्ड नासिका तक ऊँचा कहा करते हैं। इसके अनन्तर ब्राह्मणादि के वस्त्रो का वर्णन किया जाता है ॥१९।२०॥ ब्राह्मण वर्ण के बालक के वस्त्रो का रङ्ग गेरुआ होना चाहिये, क्षत्रिय का मँजीठ का रङ्ग और वैश्य के बालक का रङ्ग पीला होना चाहिए। हे विप्रेन्द्र ! उपवीत हुए द्विज को गुरु की सेवा करते हुए वेदो को ग्रहण करने के समय पर्यन्त गुरु के ही यहाँ रहना चाहिए ॥२१॥

वेदग्रहणपर्यंत निवसेद्गुरुवेश्मनि ।
प्रात स्नायी भवेद्वर्णी समित्कुशफलादिकान् ॥२२
गुर्वर्थमाहरेन्नित्य कल्ये कल्ये मुनीश्वर ।
यज्ञोपवीतमजिन दड च मुनिसत्तम ॥२३
नष्टे भ्रष्टे नव मत्राद् धृत्वा भ्रष्ट जले क्षिपत् ।
वर्णिनो वर्त्तन प्राहुर्भिक्षान्नेनैव केवलम् ॥२४
भिक्षा च श्रोत्रियागारादाहरेत्प्रयतेद्रिय ।
भवत्पूर्वं ब्राह्मणस्य भवन्मध्य नृपस्य च ॥२५
भवदत्य विश प्रोक्त भिक्षाहरणक वच ।

सायप्रातर्वह्निकार्य यथाचार जितेंद्रिय ॥२६
कुर्यात्प्रतिदिन वर्णी ब्रह्मयज्ञ च तर्पणम् ।
अग्निकार्यपरित्यागी पतित प्रोच्यते बुधै ॥२७
ब्रह्मयज्ञविहीनश्च ब्रह्महा परिकीर्तित ।
देवताभ्यर्च्चन कुर्याच्छुश्रूषानुपद गुरो ॥२८

गुरु के घर मे ही निवास करने वाले ब्रह्मवादी को प्रात काल में स्नान करना चाहिए । हे मुनीश्वरो! प्रात काल म गुरुदेव के लिए नित्य पुष्प, समिधा, फल आदि आवश्यक वस्तुये लाना चाहिये। यदि ब्रह्मचारी के चर्म, यज्ञोपवीत, दण्ड आदि नष्ट या भ्रष्ट होजावें तो मन्त्रो का वाचन कर पुन नवीन धारण करे । जो भ्रष्ट हो जावे तो उसको किसी पवित्र जलाशय मे छोड देना चाहिये । ब्रह्मचर्य की अवस्था में रहने वाले ब्रह्मचारी की जीविका केवल भिक्षा अन्न से ही होनी चाहिये ॥२२-२४॥ इन्द्रियो पर पूर्ण सयम रखते हुये केवल वेद पाठी ब्राह्मण के यहाँ से ही भिक्षान्न प्राप्त करे जब भिक्षा याचना करे तो ब्राह्मण द्विज को भवत् शब्द का पूर्व में प्रयोग करना चाहिए । यथा—'भवति ! भिक्षा देहिमात' अर्थात् आप हे माता भिक्षा दो । क्षत्रिय यदि भिक्षा की याचना करे तो उसको भवत् शब्द का प्रयोग मध्य मे करना चाहिए । यथा—'भिक्षा भवति ! देहिमात' । यदि वैश्य द्विजाति भिक्षा की याचना करे तो उसे अन्त मे भवत् शब्द का प्रयोग करना चाहिए । यथा—'भिक्षा देहि भवति मात' । ब्रह्मचारी को प्रति दिन प्रात और सायङ्काल दोनो वक्त अग्निहोत्र करना आवश्यक होता है और आचार के अनुसार ब्रह्म यज्ञ तथा तर्पण भी करना चाहिए । विद्वान् पुरुष अग्निहोत्र न त्याग करने वाले पुरुष को पतित बताया करते हैं ॥२२-२७॥ जो ब्रह्म यज्ञ नही किया करता है उसको ब्रह्म हत्या करने वाला बताया गया है । ब्रह्मचारी का कर्त्तव्य है कि अपने आचार्य गुरुदेव की सेवा करते हुए देवपूजा भी प्रति दिन करना चाहिए ॥२८॥

भिक्षान्नं भोजयेन्नित्यं नैकान्नाशी भवेद् व्रती ।
ब्राह्मणानिन्द्यविप्राणां गृहाद्भिक्षा जितेन्द्रियः ॥२९
निवेद्य गुरवेऽश्नीयाद्वाग्यमस्तदनुज्ञया ।
मधु स्त्रीमांसलवणं ताम्बूलं दन्तधावनम् ॥३०
उच्छिष्टभोजनं चैव दिवास्वापं च वर्जयेत् ।
छत्रपादुकगन्धांश्च तथा माल्यानुलेपनम् ॥३१
जलकेलिं नृत्यगीतवाद्यं तु परिवर्जयेत् ।
परिवादं चोपतापं विप्रलापं तथाञ्जनम् ॥३२
पाषण्डजनसंयोगं शूद्रसङ्गं च वर्जयेत् ।
अभिवादनशीलः स्याद् वृद्धेषु च यथाक्रमम् ॥३३
ज्ञानवृद्धास्तपोवृद्धा वयोवृद्धा इति त्रयः ।
आध्यात्मिकादिदुःखानि निवारयति यो गुरुः ॥३४
वेदशास्त्रोपदेशेन तं पूर्वमभिवादयेत् ।
असावहमिति ब्रूयाद् द्विजो वै ह्यभिवादने ॥३५

ब्रह्मचारी को नित्य भिक्षा का लाया हुआ ही अन्न खाना चाहिए और एक ही अन्न नित्य नहीं खाना चाहिए । ब्रह्मचारी को इन्द्रियजित होना परमावश्यक है । उसको अनिन्दित ब्राह्मणों के यहाँ से ही भिक्षा मांगनी चाहिए और उसे लाकर सर्व प्रथम गुरु को समर्पित करना चाहिए । गुरुदेव का आदेश प्राप्त करके ही मौन होकर भोजन करना चाहिए । ब्रह्मचारी को मधु, स्त्री, मांस, लवण, पान, दातुन, उच्छिष्ट भोजन और दिन में शयन का परित्याग कर देना चाहिए ।(ब्रह्मचारी को छाता, खड़ाऊँ, गन्ध माल्य, अनुलेपन, जल-विहार, नृत्य-गान, वाद्य, निन्दा, उपताप, बकवाद और अञ्जन का भी त्याग कर देना चाहिए ॥२९॥३०॥)ब्रह्मचारी को पाषण्ड करने वाले तथा शूद्रों का सङ्ग कभी नहीं करना चाहिए । जो भी अपने से वृद्ध हों उनको क्रमशः प्रणाम करना चाहिए । वृद्ध भी तीन तरह के

बताये गये है—ज्ञानवृद्ध वयोवृद्ध और तपोवृद्ध ये तीन भेद वृद्धो के होते है। जो वेद और शास्त्र का उपदेश देकर आध्यात्मिक और आधिभौतिक आदि दु खो का निवारण करने वाले है उनको सब प्रथम प्रणाम करना चाहिये। वृद्धो को अभिवादन करने के समय मे द्विज को इस विधि से कहकर प्रणाम करना चाहिए कि प्रणाम ग्रहण करने वाले को उसका परिचय भी प्राप्त हो सके। मैं अमुक गोत्र मे समुत्पन्न अमुक नाम वाला आपका प्रणाम करना चाहता हूँ ॥३१—३५॥

नाभिवाद्याश्च विप्रेण क्षत्रियाद्या कथचन ।
नास्तिक भिन्नमर्याद कृतघ्न ग्रामयाजकम् ॥३६
स्तेन च कितव चैव कदाचिन्नाभिवादयेत् ।
पाषण्ड पतित व्रात्य तथा नक्षत्रजीविनम् ॥३७
तथा पातकिन चैव कदाचिन्नाभिवादयेत् ।
उन्मत्त च शठ धूर्त्त धावन्तमशुचि तथा ॥३८
अभ्यक्तशिरस चैव जपन्त नाभिवादयेत् ।
विवादशीलिन चड वमत जलमध्यगम् ॥३९
भिक्षान्नधारिण चैव शयान नाभिवादयेत् ।
भर्तृघ्नी पुष्पिणी जारा सूतिका गर्भपातिनीम् ॥४०
कृतघ्नी च तथा चाण्डी कदाचिन्नाभिवादयेत् ।
सभाया यज्ञशालाया देवतायतनेष्वपि ॥४१
प्रत्येक तु नमस्कारो हन्ति पुण्य पुराकृतम् ।
श्राद्ध व्रत तथा दान देवताभ्यर्चन तथा ॥४२
यज्ञ च तर्पण चैव कुर्वंत नाभिवादयेत् ।
कृतेऽभिवादे यस्तु न कुर्या प्रतिवादनम् ॥४३

एव उस व्यक्ति का जो ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि किसी को भी प्रणाम न करे ईश्वर की सत्ता का जो न मानता हो, जो बँधी हुई मर्यादा को तोड़ दे, जो किसी के उपकार को भी न माने। चोर,

जुआरी, ग्रामयाजक, पतित, पाखण्ड करने वाला, व्रात्य और जो नक्षत्र-जीवी हो, इनको भी प्रणाम ब्रह्मचारी को नहीं करना चाहिये ॥३६। ३७॥ महापातकी, उन्मत्त, शठ, धूर्त और जो भाग रहा हो अथवा अपवित्र हो उसको भी प्रणाम नहीं करना चाहिए ॥३८॥ जो शिर मलकर प्रक्षालन कर रहा हो, जो मन्त्र का जाप कर रहा हो । जो झगड़ा और कलह करने के स्वभाव से युक्त हो, क्रोधशील, जो वमन करन वाला हो और जो जल के मध्य में हो उसको कभी प्रणाम नहीं करना चाहिये ॥३९॥ जिसके पास में भिक्षा से प्राप्त अन्न हो और जो शय्या पर लोट लगा रहा हो उसको भी कभी भूल कर भी प्रणाम नहीं करना चाहिए । जो नारी अपने ही पति की ताड़ना किया करती है अथवा जो स्त्री ऋतुमती हो, सूतिका, गर्भपात कर देन वाली, कृतघ्नी और क्रोध करने के स्वभाव वाली हो, उस नारी को भी अभिवादन करन का निषेध होता है । सभा, यज्ञशाला अथवा देवालय मे उपस्थित प्रत्येक का अभिवादन करना भी उचित नहीं होता है क्योंकि ऐसा करने से पूर्वकृत समस्त पुण्य का विनाश करने वाला हुआ करता है । जो कोई पुरुष चाहे वह नमन करने के योग्य क्यों न हो यदि वह श्राद्ध, व्रत, दान, देवार्चन यज्ञों का यजन और तर्पण करने मे मग्न हो तो उसको अभिवादन नहीं करना चाहिए और उसको कभी प्रणाम न करे और जो प्रणाम करने पर कुछ भी आशीर्वाद न देने के स्वभाव वाला हो ॥४०-४३॥

नाभिवाद्याश्च स विज्ञेयो यथा शूद्रस्तथैव स ।
प्रक्षाल्य पादावाचम्य गुरोरभिमुख सदा ॥४४
तस्य पादौ च सगृह्य अधीयीत विचक्षण ।
अष्टम्यां चतुदश्यां प्रतिपत्पर्वणोस्तथा ॥४५
महाभरण्यां विप्रेंद्र श्रवणद्वादशीदिने ।
भाद्रपदापरपक्षे द्वितीयायां तथैव च ॥४६

माघस्य शुक्लसप्तम्यां नवम्यामाश्विनस्य च ।
परिवेष गते सूर्ये श्रोत्रिये गृहमागते ॥४७
वधिते ब्राह्मणे चैव प्रवृद्धकलहे तथा ।
सध्याया गजिते मेघे ह्यकाले परिवर्षगे ॥४८
उल्काशनिप्रपाते च तथा विप्रेऽवमानिते ।
मन्वादिषु च देवर्षे युगादिषु चतुर्ष्वपि ॥४६
नाधीयीत द्विजः कश्चित्सर्वकर्मफलोत्सुक. ।
तृतीया माधवे शुक्ला भाद्रे कृष्णा त्रयोदशी ॥५०
कार्त्तिके नवमी शुद्धा माघे पञ्चदशी तिथि ।
एता युगाद्या. कथिता दत्तस्याक्षयकारिकाः ॥५१

ऐसे पुरुषों को अभिवादन करने का पात्र नहीं समझना चाहिये क्योंकि जैसा शूद्र होता है वैसे ही ऐसे पुरुष भी हुआ करते है। चतुर ब्रह्मचारी का कर्त्तव्य है कि अपने पैरों का प्रक्षालन कर आचमन करे और इसके पीछे अपने गुरुदेव के समक्ष मे जाकर उनके चरणों का स्पर्श करे और फिर अध्ययन किया करे। कुछ दिन वेद शास्त्रों के अनध्याय दिवस माने जाते हैं उन दिनो मे कभी पढ़ना नही चाहिये। जैसे—अष्टमी, चतुर्दशी, प्रतिपत्, पर्व तिथि, महा भरणी नक्षत्र, श्रवण नक्षत्र से संयुत द्वादशी, भाद्रपद मास स्थित शुक्ल पक्ष की द्वितीया तिथि, माघ शुक्ला सप्तमी, आश्विन मास की नवमी, सूर्य ग्रहण का दिन अथवा वह दिन जिस दिन कोई श्रोत्रिय का घर मे समागमन हो। ये अनध्याय दिन बताये गये हैं ॥४४–४७॥ हे द्विजवर! जो द्विज सब कर्मों के पुण्य फल प्राप्त करने की उत्सुकता रखता है उसको अधोलिखित दिवसों मे भी अध्ययन नही करना चाहिए—किसी ब्राह्मण के कारावास होने वाले दिन, कलह की वृद्धि वाले दिन, सन्ध्या समय मेघ गर्जन, असमायिक वर्षा वाले दिन, मन्वादि की तथा युगादि की तिथियों में अध्ययन का निषेध बताया गया है।

वैशाख मास की शुक्ल पक्ष की तृतीया (अक्षय तृतीया)—भाद्रपद कृष्णा त्रयोदशी, कार्तिक शुक्ला नवमी (अक्षय नवमी), माघ मास की पूर्णिमा मे युग के आरम्भ होने वाली तिथियाँ है । इन तिथियो मे दिया हुआ दान अक्षय हुआ करता है ।।४८–५१।।

मन्वादीश्च प्रवक्ष्यामि शृणुष्व सुसमाहित ।
अश्वियुक्छुक्लनवमी कार्तिके द्वादशी सिता ।।५२
तृतीया चैत्रमासस्य तथा भाद्रपदस्य च ।
आषाढशुक्लदशमी सिता माघस्य सप्तमी ।।५३
श्रावणस्याष्टमी कृष्णा तथाषाढी च पूर्णिमा ।
फाल्गुनस्य त्वमावास्या पौषस्यैकादशी सिता ।।५४
कार्तिकी फाल्गुनी चैत्री ज्यैष्ठी पञ्चदशी सिता ।
मन्वादय समाख्याता दत्तस्याक्षयकारिका ।।५५
द्विजै श्राद्ध च कर्त्तव्य मन्वादिषु युगादिषु ।
श्राद्धे निमन्त्रितेचैव ग्रहणे चन्द्रसूर्ययो ।।५६

अब मन्वादि तिथियो को बतलाया जाता है अब आप परम समाहित होकर सुनिये—आश्विन मास की शुक्ल पक्ष की नवमी, कार्तिक शुक्ला द्वादशी, चैत्र मास की तृतीया, भाद्रपद की तृतीया, आषाढ शुक्ला दशमी, माघ शुक्ला सप्तमी, श्रावण कृष्णा अष्टमी, आषाढ मास की पूर्णिमा, फाल्गुन की अमावस्या,पौष शुक्ला एकादशी । कार्तिक, फाल्गुन, चैत्र और ज्येष्ठ—इन मासो की पूर्णिमा तिथि–ये सब मनुओ के आरम्भ होने वाली आदि तिथियाँ कही जाती है । इन तिथियो को महा पुण्यमयी माना जाता है और इनमे दिये हुये दान का अक्षय पुण्य हुआ करता है ।।५२–५५।। द्विज का कर्त्तव्य है कि मन्वादि और युगादि तिथियो मे श्राद्ध कर्म करे । श्राद्ध के निमन्त्रण वाले दिन मे और चन्द्र एव सूर्य के ग्रहण वाले दिना मे अध्ययन नही करना चाहिए ।।५६

अयनद्वितये चैव तथा भूकंपने मुने ।
गलग्रहे दुर्दिने च नाधीयीत कदाचन ॥५७
एवमादिषु सर्वेषु अनध्यायेषु नारद ।
अधीयता सुमूढाना प्रजा प्रज्ञा यशः श्रियम् ॥५८
आयुष्य बलमारोग्य निकृन्तति यमः स्वयम् ।
अनध्याये तु योऽधीते त विद्याद् ब्रह्मघातकम् ॥५६
न त सभापयेद्विप्र न तेन सह सवसेत् ।
कु डगोलकयो. केचिज्जडादीना च नारद ॥६०
वदति चोपनयन तत्पुत्रादिषु केचन ।
अनधीत्य तु यो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् ॥६१
शूद्रतुल्य. न विज्ञेयो नरकस्य प्रियोऽतिथि ।
अनधीतश्रुतिर्विप्र आचार प्रतिपद्यते ॥६२
नाचारफलमाप्नोति यथा शूद्रस्तथैव स· ।
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं यच्चान्यत्कर्म वैदिकम् ॥६३
अनधीतस्य विप्रस्य सर्व भवति निष्फलम् ।
शब्दब्रह्ममयो विष्णुर्वेद. साक्षाद्धरि. स्मृतः ॥६४
वेदाध्यायी ततो विप्रः सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥६५

जिस दिन मे उत्तरायण या दक्षिणायन आरम्भ हो उसमे—भूकम्प वाले दिन मे आठ (वर्णोक्त) गलग्रह दिनो मे तथा मेघा च्छन्न दुर्दिन मे अध्ययन करना वर्जित होता है अत. वह नही करना चाहिये ॥५७॥ हे नारद ! जो महामूढ इन दिनो मे अर्थात् शास्त्रोक्त अनाध्यायों के दिनो मे भी अध्ययन किया करता है उसके आयु, बल और आरोग्य का छेदन स्वय यमराज कर दिया करते हैं। जो उपर्युक्त अनाध्याय दिवसों मे भी पढ़ता है उसको ब्रह्म हत्यारा ही समझना चाहिए ॥५८।५६॥ हे विप्रवर ! ऐसे पुरुष के साथ भाषण और सङ्ग भी नही करना चाहिये । कोई २ विद्वान् कुण्ड और गोलकों का भी

उपनयन संस्कार या ऐसों के पुत्रों का संस्कार भी निन्दित बताया करते हैं यह अनुचित ही है। जो बिना वेदों के पढे ही स्वयं ही पुस्तकें लेकर पढ़ने में श्रम करता है वह शूद्रवत् ही होता है ।।६०।६१।। ऐसे पुरुष को चाहे द्विज ही क्यों न हों शूद्र ही समझना चाहिये। ऐसा पुरुष तो नरकों का परम प्रिय अतिथि हुआ करता है। हे विप्र ! बिना वेदों के अध्ययन के सदाचार का पालन भी निष्फल ही होता है ।।६२।। इस प्रकार के सदाचरण का कोई भी फल नहीं प्राप्त हुआ करता है क्योंकि वह पुरुष बिल्कुल शूद्र के ही समान माना जाया करता है। जो ब्राह्मण अनधीत है अर्थात् जिसने वेदों का अध्ययन नहीं किया है उसके नैत्यिक, नैमित्तिक और काम्य सभी प्रकार के कर्म तथा अन्य वैदिक कर्म सभी निष्फल हुआ करते हैं। विष्णु शब्द ब्रह्ममय है। वेद साक्षात् विष्णु भगवान ही हैं ।।६३।६४।। अतएव वेदों के अध्ययन करने वाले ब्राह्मण के सभी मनोरथ परिपूर्ण हुआ करते हैं ।।६५।।



।। वेदध्ययनादि धर्म वर्णन ।।

वेदग्रहणपर्यंत शुश्रूषानियतो गुरोः ।
अनुज्ञातस्ततस्तेन कुर्यादग्निपरिग्रहम् ।।१
वेदाश्च धर्मशास्त्राणि वेदाङ्गान्यपि च द्विज ।
अधीत्य गुरवे दत्वा दक्षिणा सविशेद गृहम् ।।२
रूपलावण्यसपन्ना सगुणा सुकुलोद्भवाम् ।
द्विज समुद्वहेत्कन्या सुशीला धर्मचारिणीम् ।।३
मातृत पञ्चमी धीमान्पितृत सप्तमी तथा ।
द्विज समुद्वहेत्कन्यामन्यथा गुरुतल्पग ।।४
रोगिणो चैव वृत्ताक्षा सरोगकुलसभवाम् ।
अतिकेशामकेशा च वाचाला नोद्वहेद बुध. ।।५

कोपना वामना चैव दीर्घदेहा विरूपिणीम् ।
न्यूनाधिकाङ्गीमुन्मत्ता पिशुना नोद्वहेद् बुध ॥६
स्फूलगुल्फा दीर्घजघा तथैव पुरुषाकृतिम् ।
श्मश्रु व्यजनसयुक्ता कुब्जा चैवोद्वहेन्न च ॥७

श्री सनकदेवाचार्य ने कहा—ब्रह्मचारी व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि अपने गुरु की सेवा करते हुये वेदो के अध्ययन को साङ्गोपाङ्ग समाप्त करके ही फिर अग्नि को धारण करे ॥१॥ ब्रह्मचारी का कर्त्तव्य है कि वेद धर्मशास्त्र और वेदो के अङ्ग शास्त्रो को पढकर ही गुरुदेव को दक्षिणा अर्पित करके फिर गार्हस्थ्य मे प्रवेश करे अर्थात् ब्रह्मचर्य से गृहस्थ बन जावे ॥२॥ उस गृहस्थाश्रमी होने की इच्छा वाले द्विज को ऐसी ही कन्या से विवाह करना चाहिये जो रूप लावण्य से युक्त, गुणवती, सत्कुल समुत्पन्न, शीलवती और धर्म का आचरण करने वाली हो, विद्वान् द्विज को, अपने मातृ कुल मे पाँचवी पीढी की और पितृ कुल म सातवी पीढी की कन्या से विवाह करना चाहिए अर्थात् मौसी, मामी, भूआ आदि की कन्या से नही करे अन्यथा गुरुतल्पगामी महा पापी होता है ॥४॥ रोगिणी, गोल नेत्रो वाली, रोगी के कुल म समुत्पन्न, अधिक घन केशो वाली, गञ्जी, अधिक बोलने वाली कन्या से विद्वान् को कभी विवाह नही करना चाहिए ॥५॥ विद्वान् को क्रोध करने के स्वभाव वाली, बहुत लम्बी, बौनी, विरूपा, अधिक अङ्गो वाली, विकलाङ्गी (कानी या छङ्गी) कन्या के साथ कभी भी विवाह नही करना चाहिये । जो अन्युन्मत्त अथवा चुगली करने के स्वभाव वाली कन्या हो उमस भी विवाह न करे ।६। मोटे टखनो से युक्त शरीर वाली, लम्बी जाँघो वाली, पुरुष के समान आकृति वाली, दाढ़ी-मूछा वाली हो और जो कुबडी हो ऐसी कन्या से भी विवाह नही करना चाहिये ॥७॥

वृथाहास्यमुखी चैव मदान्यगृहवासिनीम् ।

विवादशीलां भ्रमिता निष्ठुरां नोद्वहेद् बुधः ॥८
बह्वशिनी स्थूलदता स्थूलोष्ठी घुर्घुरस्वनाम् ।
अतिकृष्णा रक्तवर्णां धूर्ता नैवोद्वहेद् बुध ॥६
सदा रोदनशीला च पाण्डुराभा च कुत्सिताम् ।
कासश्वासादिसंयुक्ता निद्राशीला च नोद्वहेत् ॥१०
अनर्थभाषिणी चैव लोकद्वेषपरायणाम् ।
परापवादनिरता तस्करा नोद्वहेद् बुध ॥११
दीर्घनासा च कितवा तनूरुहविभूषिताम् ।
गर्विता बकवृत्ति च सर्वथा नोद्वहेद् बुध ॥१२
बालभावादविज्ञातस्वभावामुद्वहेद्यदि ।
प्रगल्भा वाग्गुणा ज्ञात्वा सर्वथा ता परित्यजेत् ॥१३
भर्त्तृपुत्रेषु या नारी सर्वदा निष्ठुरा भवेत् ।
परानुकूलिनी या च सर्वथा ता परित्यजेत् ॥१४

बिना ही किसी कारण के व्यर्थ ही मे हँसने वाली, दूसरो के घर मे निवास करने की इच्छा या रुचि रखने वाली, झगडा करने के स्वभाव से सयुत भ्रम से युक्त और अति निष्ठुर स्वभाव की कन्या से भी विवाह नही करना चाहिये ॥८॥ विद्वान् पुरुष को चाहिये कि वह अधिक खाने वाली, बडे दाँतो वाली, घुर्घुर ध्वनि करने वाली, अत्यधिक काले वर्ण वाली, रक्त वर्ण से युक्त और जो धूर्त्ता हो ऐसी कन्या के साथ विवाह न करे ॥६॥ जो सदा ही रोते रहने के स्वभाव वाली हो,पाण्डुर वर्ण की आभा से युक्त कास और श्वास रोग वाली, कुत्सित, सदा शयन ही करने वाली कन्या के साथ भी विवाह नही करना चाहिये ॥१०॥ अनर्थक एव असम्बन्धित बातें करने वाली, सभी से द्वेष भाव रखने वाली, दूसरो की निन्दा मे निरत रहने वाली, चोरी करने वाली कन्या से भी विवाह नही करना चाहिये ॥११॥ जो लम्बी नासिका से युक्त हो, द्यूत क्रीडा करने वाली हो, सर्वाङ्ग मे

लम्बे केशो वाली, अभिमान से भरी हुई, देखने मे सीधी मगर मन से चालाक कन्या मे भी विवाह नही करना चाहिए। यदि बालभाव वश अथवा स्वभाव का ठीक ज्ञान न होने पर ऐसी कन्या से विवाह भी हो जावे तो उसको अति प्रगल्भ और गुणहीन मानकर उसका त्याग कर देना चाहिए ॥१३॥ जो नारी सदा ही अपने स्वामी और पुत्रो से निष्ठुरता का व्यवहार किया करती हो अन्यो के अनुकूल रहा करती हो उसका सर्वथा त्याग कर देना चाहिए ॥१४॥

विवाहाश्चाष्टधा ज्ञेया ब्रह्माद्या मुनिसत्तम ।
पूर्व पूर्वो वरो ज्ञेय पूर्वाभावे पर पर ॥१५
ब्राह्मो दैवस्तथैवार्प प्राजापत्यस्तथासुर ।
गाधर्वोराक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमो मत ॥१६
ब्राह्मे ण च विवाहेन वैवाह्यो वै द्विजोत्तम ।
दैवेनाप्यथवा विप्र केचिदाप प्रचक्षते ॥१७
प्राजापत्यादयो विप्र विवाहा पच गर्हिता ।
अभावेपु तु पूर्वपा कुर्यादेव परान्बुध ॥१८
यज्ञोपवीतद्वितय सोत्तरीय च धारयेत् ।
सुवर्णकुण्डले चैव धौतवस्त्रद्वय तथा ॥१९
अनुलोपनलिप्ताग कृत्तकेशनख शुचि ।
धारयेद्वैणव दड सोमक च कमडलुम् ॥२०
उष्णीषममल छत्र पादुके चाप्युपानहौ ।
धारयेत्पुष्पमाल्ये च सुगध प्रियदर्शन ॥२१

हे परमश्रेष्ठ मुने ! विवाह भी ब्राह्मणादि आठ प्रकार के होते हैं। इन आठो मे प्रथम विवाह ही श्रेष्ठ विवाह माना गया है। यदि प्रथम न बन सके तो इसके अभाव मे दूसरा विवाह करे। इसी क्रम से एक दूसरे से निम्न श्रेणी के विवाह हैं जो अभाव मे ही करने चाहिए अन्यथा न्यूनतम विवाह कभी न करे ॥१५॥ आठ तरह के विवाहो के

नाम ये हैं—ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्रजापात्य, आसुर,गान्धर्व, राक्षस और पैशाच। ये आठ विवाह के भेद हुआ करते हैं ॥१६॥ श्रेष्ठ ब्राह्मण को ब्राह्म विवाह ही करना चाहिये। हे विप्रवर! कोई २ आचार्य दैव और आर्ष विवाह करने की भी आज्ञा दिया करते हैं ॥१७॥ प्राजापत्य से लेकर अन्य जो पाँच प्रकार के विवाह होते हैं वे इन तीनो की समानता रखने वाले नही माने जाया करते हैं। यदि प्रथम श्रेष्ठ विवाह नहीं हो सके तो अगले दो विवाहो मे जो भी बन सके विवाह विद्वान पुरुष को करना अवश्य ही चाहिए ॥१८॥ ब्रह्मचर्य को त्याग कर गृहस्थ होने पर द्विज को दो यज्ञोपवीत, दो अङ्गो का, सुवर्ण के दो कुण्डल और धोती जोड़ा अवश्य ही अपने समीप मे रखना चाहिए ॥१६॥ इसको फिर उबटना, तैल और चन्दनादि का प्रयोग भी अवश्य करना चाहिए। अपने केश और नखो को कटवा कर परम पवित्र रहे तथा सदा अपने पास एक बाँस की यष्टि और जलसे परिपूर्ण कमण्डलु रखना चाहिए ॥२०॥ मस्तक पर स्वच्छ शिरोवेष्टन (पगडी आदि) छाता, खड़ाऊँ या पादत्राण (जूत) आदि पहिनना चाहिए। परम सुन्दर वस्तुओ को धारण किया करे। इस विधि से गृहस्थाश्रमी को परम प्रिय दर्शन होकर ही रहना चाहिये ॥२१

नित्य स्वाध्यायशील स्याद्यथाचार समाचरेत्।
परान्न नैव भुञ्जीत परवाद च वर्जजेत् ॥२२
पादेन नाक्रमेत्पादमुच्छिष्ट नैव लघयेत्।
न सहताभ्या हस्ताभ्या कडयेदात्मन शिर ॥२३
पूज्य देवालय चैव नापसव्य व्रजेद् द्विज।
देवार्चाचमनस्नानव्रतश्राद्धक्रियादिषु ॥२४
न भवेन्मुक्तकेशश्च नैकवस्त्रधरस्तथा।
नारोहेद् दुष्टयान च शुष्कवाद च वर्जयेत् ॥२५
अन्यस्त्रिय न गच्छेच्च पैशुन्य परिवर्जयेत्।

नापसव्यं व्रजेद्विप्र गोश्वत्थानलपर्वतान् ॥२६
चतुष्पथं चैत्यवृक्षं देवखातं नृपं तथा ।
असूयां मत्सरत्वं च दिवास्वापं च वर्जयेत् ॥२७
न वदेत्परपापानि स्वपुण्यं न प्रकाशयेत् ।
स्वकं नाम स्वनक्षत्रं मानं चैवातिगोपयेत् ॥२८

गृहस्थी को भी सदा स्वाध्याय करते रहना चाहिए और अपने वर्णाश्रम धर्म के ही अनुसार आचरण करे, भरसक दूसरों के अन्न का सेवन करने से बचता रहे और कभी भी अन्य लोगों की निन्दा न करे चाहे कोई बुरे से भी बुरा क्यों न हो ॥२२॥ अपने पैर से पैर को कभी नहीं दबाना चाहिए। उच्छिष्ट पदार्थ का उल्लंघन न करे, दोनों हाथों को एक साथ मिलाकर अपना शिर कभी नहीं खुजलाना चाहिए। ये सब बुरे लक्षण घातक हुआ करते हैं ॥२३॥ द्विज को चाहिए हमेशा पूज्य देवालय को दाईं ओर करके ही गमन किया करे। देवार्चन, स्नान, आचमन, व्रत और श्राद्धकर्मादि के करने के समय में अपनी शिखा और केशों को खुला हुआ नहीं रक्खे या एक ही वस्त्र भी पहिन कर नहीं रहना चाहिए। कभी भी बुरी सवारी पर आरोहण न करे तथा व्यर्थ प्रयोजनशून्य विवाद भी न करे ॥२४।२५॥ व्यभिचार, चुगली कभी भी नहीं करे। हमेशा इसका ध्यान रक्खे कि गमन के समय में यदि गौ, पीपल का वृक्ष, अग्नि और पर्वत पड़े तो इनको अपने वाम भाग में करके गमन नहीं करना चाहिए ॥२६॥ इसी विधि के अनुसार चौराह (चतुष्पथ) चैत्यवृक्ष और देव स्थान को सदा अपने दक्षिण भाग में लेता हुआ ही गमन करना चाहिए। गृहस्थी को असूया, मत्सरता, दिवा शयन का सर्वथा त्याग कर देना चाहिए ॥२७॥ भूल कर भी दूसरे के द्वारा किये हुए पाप कर्मों का अपने मुख से वर्णन नहीं करे और अपने द्वारा कृत पुण्य कर्मों का भी अपने मुँह से प्रकट नहीं करना चाहिए। सर्वदा अपना नाम, नक्षत्र तथा धन बल का मान गुप्त रखना चाहिए ॥२८॥

न दुर्जनै सह वसेन्नाशास्त्र शृणुयात्तथा ।
आसवद्यूतगीतेषु द्विजस्तु न रति चरेत् ॥२६
आर्द्रास्थि च तथोच्छिष्ट शूद्र च पतित तथा ।
सर्प च श्वपच स्पृष्ट्वा सचैल स्नानमाचरेत् ॥३०
चिति च चितिकाष्ठ च यूप चाडालमेव च ।
स्पृष्ट्वा देवलक चैव सवासा जलमाविशेत् ॥३१
दीपखट्वातनुच्छाया केशवस्त्रकटोदकम् ।
अजामार्जनिमार्जाररेणुर्दैव शुभ हरेत् ॥३२
शूर्प्पवात प्रेतधूम तथा शूद्रान्नभोजनम् ।
वृषलीपतिसङ्ग च दूरत परिवर्जयेत् ॥३३
असच्छास्त्रार्थमनन खादन नखकेशयो ।
तथैव नग्नशयन सर्वदा परिवर्जयेत् ॥३४
शिरोभ्यगावशिष्टेन तैलेनाङ्ग न लेपयेत् ।
ताम्बूलमशुचि नाद्यात्तथा सुप्त न बोधयेत् ॥३५

दुष्ट लोगों के पड़ोस में कभी निवास न करे। अशास्त्रीय बातें
हो उन पर अपना कान श्रवण करने के लिए नहीं लगावे तथा द्विज
को आसव, द्यूत, मादक पदार्थ और गीतों में प्रेम कभी न करे ॥२६॥
आर्द्र अस्थि, उच्छिष्ट, शूद्र, पतित, सर्प, श्वान इनमें यदि स्पर्श होजावे
तो वस्त्रों के सहित स्नान करना चाहिए ॥३०॥ चिता और चिता की
लकड़ी, यूप, चाण्डाल और देवलक का स्पर्श होने पर भी अवश्य ही
स्नान करना चाहिए।३१।दीपक और शरीर की छाया,केशवस्त्र कटोदक
बकरी,बुहारी, बिलाव के नीचे की धूलि ये सभी पदार्थ प्रारब्ध का का
नाश करने वाले हुआ करते हैं। सूप की हवा, प्रेत का चिता का
धूम, शूद्रान्न का आहार, शूद्रा स्त्री के पति का सङ्ग इनका त्याग दूर
ही से कर देना चाहिए ॥३२।३३॥ कुत्सित ग्रन्थों का मनन, नखों
और केशों को दाँतों से काटना, नग्न होकर शयन करना आदि मूल-

क्षणो का भी अवश्य ही परित्याग कर देना चाहिए। इनके करने से धर्म नाश के साथ बुरा प्रभाव भी हुआ करता है ॥३४॥ शिर में डालन से अवशिष्ट तैल को शरीर पर कभी नही मलना चाहिए। अपवित्र ताम्बूल का चवण भी कभी न करे और कोई भी शयन कर रहा हो तो विना किसी कारण के उस न जगावे ॥३५॥

नाशुद्धोऽग्नि परिचरेत्पूजयेद्गुरुदेवता ।
न वामहस्तेनैकेन पिवेद्वक्त्रेण वा जलम् ॥३६
न चाक्रमेद गुरोश्छाया तदाज्ञा च मुनीश्वर।
न निंदेद्योगिनो विप्रान्व्रतिनोऽपि यतीस्तथा ॥३७
परस्परस्य मर्माणि न कदापि वदेद् द्विज ।
दर्शे च पौर्णमास्या च याग कुर्याद्यथाविधि ॥३८
उपासन च होतव्य साय प्रातर्द्विजातिभि ।
उपासनपरित्यागो सुरापीत्युच्यते बुधै ॥३९
अयने विपुवे चैव युगादिपु चतुर्ष्वपि ।
दर्शे च प्रेतपक्षे च श्राद्ध कुर्याद् गृही द्विज ॥४०
मन्वादिपु मृताहे च अष्टकासु च नारद ।
नवधान्ये समायाते गृही श्राद्ध समाचरेत् ॥४१
श्रोत्रिये गृहमायाते ग्रहणे चन्द्रसूर्ययो ।
पुण्यक्षेत्रेपु तीर्थेपु गृही श्राद्ध समाचरेत् ॥४२

अपवित्र अथवा अशुद्ध अवस्था मे रहकर कभी अग्नि सेवा गुरु और देवो का यजन नही करना चाहिए। अकेले अपने वाम कर से पशु के समान पात्र म मुख डाल कर मुख से जल का पान नही करना चाहिए ॥३६॥ हे मुनिवर। अपने गुरुदेव की छाया और उनकी आज्ञा का कभी भी उल्लघन नही करना चाहिए ॥३७॥ द्विज को चाहिए कि आपस के मर्मो का उद्घाटन न करे। अमावस्या और पूर्णिमा तिथियो मे शास्त्रोक्त विधान से यज्ञ करे ।३८। द्विजातियो को चाहिए कि नित्य ही नियम पूवक प्रात व साय दानो

कालो मे देवोपासना तथा हवन करना चाहिए। जो द्विज अपनी उचित उपासना का त्याग कर दिया करता है विद्वान लोग उसको सुरापी के समान ही समझा करते हैं ॥३६॥ गार्हस्थ्य आश्रम मे रहने वाले द्विज को चाहिये कि वह दक्षिणायन और उत्तरायण के आरम्भ मे विषुव काल मे तुला तथा मेष की सक्रांति के अवसर पर चारो युगो की तिथियो मे जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है—अमावस्या और पितृ पक्ष मे श्राद्ध करे ॥४०॥ हे नारद! गृहस्थी द्विज को मन्वादिको तिथियो मे, मृताह मे, अष्टका तथा नूतन धान्य के आने पर श्राद्ध अवश्य ही करना चाहिये ॥४१॥ किसी श्रोत्रिय ब्राह्मण के घर मे समागत होने पर चन्द्र-सूर्य की ग्रहण वेला मे पवित्रतम क्षेत्रो तथा धामो और तीर्थ स्थलो मे गृहस्थी को अवश्य ही श्राद्ध करना चाहिए ॥४२॥

यज्ञो दान तपो होम स्वाध्याय पितृतर्पणम् ।
वृथा भवति तत्सर्वमूर्द्ध्वपुण्ड्र विना कृतम् ॥४३
उर्द्ध्वपुण्ड्र च तुलसी श्राद्धे नेच्छन्ति केचन ।
पराचार परित्याज्यस्तस्माच्छ्रेयोऽर्थिभिर्द्विजै ॥४४
इत्येवमादयो धर्मा स्मृतिमार्गप्रचोदिता ।
कार्या द्विजातिभि सम्यक्सर्वकर्मफलप्रदा ॥४५
सदाचारपरा ये तु तेषा विष्णु प्रसीदति ।
विष्णौ प्रसन्नता याते किमसाध्य द्विजोत्तम ॥४६

द्विज का मस्तक कभी भी शून्य नही रहना चाहिए। तिलक करने की बहुत बडी महिमा है। वैष्णवो के मतानुसार बिना ऊर्ध्व-पुण्ड्र के यज्ञ, दान, तप, होम, स्वाध्याय और पितृ तर्पण सब व्यर्थ ही जाया करता है ॥४३॥ शैव, शाक्त आदि लोग ऊर्ध्व पुण्ड्र और तुलसी की श्राद्ध में कोई आवश्यकता नहीं समझा करते हैं ये लोग अपने २ सम्प्रदाय के अनुसार त्रिपुण्ड धारण किया करते है। अत-

एव परमाधिक श्रेय के अभिलाषी द्विज को दूसरो के आचार को त्याग कर अपने ही कुल क्रमागत आचार का पालन करना चाहिए ।।४४।। स्मृति ग्रन्थो मे वर्णित इस सदाचरण के नियमो का पालन द्विजो को करना ही चाहिए । ये सदाचरण सभी कर्मों का फल दिया करते हैं ।।४५।। जो द्विजगण सदा सदाचरणो का पालन किया करते हैं उन पर भगवान विष्णु की अधिक प्रसन्नता हुआ करती है । जब भगवान विष्णु प्रसन्न होजाया करते हैं तब फिर कोई भी कर्म असाध्य नही रहा करता है ।।४६



।।गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी के धर्म।।

गृहस्थस्य सदाचार वक्ष्यामि मुनिसत्तम ।
यद्वता सर्वपापानि नश्यत्येव न सशय: ।।१
ब्राह्मे मुहूर्ते चेत्त्थाय पुरुषार्थाविरोधिनीम् ।
वृत्ति सचितयेद्विप्र कृतकेशप्रसाधन. ।।२
दिवासध्यासु कर्णस्थब्रह्मसूत्र उदड् मुख: ।
कुर्यान्मूत्रपुरीषे तु रात्रौचेद्दक्षिणामुख. ।।३
शिर प्रावृत्य वस्त्रेण ह्य तर्द्धाय तृणैर्महीम् ।
वहन्काष्ठं करेणैक तावन्मौनी भवेद् द्विज. ।।४
पथि गोष्ठे नदीतीरे तडागगृहसन्निधौ ।
तथा वृक्षस्य च्छायाया कातारे वह्निसन्निधौ ।।५
देवालये तथोद्याने कृष्टभूमौ चतुष्पथे ।
ब्राह्मणाना समीपे च तथा गोगुरुयोषिताम् ।।६
तुषागारकपालेषु जलमध्ये तथैव च ।
एवमादिषु देशेषु मलमूत्र न कारयेत ।।७

श्री सनक महर्षि ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठ ! अब मैं गृहस्थ के सदाचरणो का विस्तृत वर्णन करता हूँ—इन सदाचारो का पालन करने वालो के समस्त पाप नष्ट हो जाया करते हैं ॥ १ ॥ हे विप्रवर ! गृहस्थी द्विज व्यक्ति को ब्राह्म मुहूर्त्तों म ही शय्या से उठकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष म बाधा पहुँचाने वाली आजीविका के विषय मे विचार करना चाहिए। उसी समय म अपने केशों को भी सम्हाल लेवे ॥२॥ दोनों समयो मे मूत्र–पुरीपोत्सर्ग करने के समय मे यज्ञोपवीत को कान पर चढ़ाकर उत्तर की ओर मुख करके ही करना चाहिए। रात्रि के समय म दक्षिण दिशा की ओर मुख करके ही मल मूत्र का त्याग करना चाहिए ॥ ३ ॥ मल मूत्र के त्याग करने के समय म शिर को समावृत रखे और भूमि पर तृण बिछाकर जिससे भूमि का साक्षात् मल का स्पर्श न होवे एक हाथ से दण्ड को ग्रहण किये हुए ही मौन होकर मल का उत्सर्ग करना चाहिए ॥ ४ ॥ निम्नलिखित स्थलो पर मल का त्याग कभी नहीं करे—मार्ग, गोठ, नदी तट, तालाब का तीर, वृक्षों की छाया, उपवन, अग्नि की सन्निधि देवालय, जुती हुई भूमि, चतुष्पथ, ब्राह्मण, गौ, गुरु और स्त्रियो के समीप मे भुस, अङ्गार, ठीकरी का ढेर, जल का मध्य ये सभी स्थल मल त्याग के लिये वर्जित हैं ॥५–७॥

शौचे यत्न सदा कार्यं शौचमूलो द्विजः स्मृतः ।
शौचाचारविहीनस्य समस्तं कर्म निष्फलम् ॥८
शौचं तु द्विविधं प्रोक्तं बाह्यमाभ्यन्तरं तथा ।
मृज्जलाभ्यां बहिः शुद्धिर्भावशुद्धिस्तथान्तरम् ॥९
गृहीतशिश्नश्चोत्थाय शौचार्थं मृदमाहरेत् ।
न मूषकादिखनिता फालोत्कृष्टा तथैव च ॥१०
वापीकूपतडागेभ्यो नाहरेदपि मृत्तिकाम् ।
शौचं कुर्यात्प्रयत्नेन समादाय शुभां मृदम् ॥११
लिंगे मृदेका दातव्या तिस्रो वा हस्तयोर्द्वयोः ।

एतन्मूत्रसमुत्सर्गे शौचमाहुर्मनीषिणः ॥१२
एका लिंगे गुदे पंच दश वामे तथोभयोः ।
सप्त तिस्रः प्रदातव्या. पादयोर्मृत्तिकाः पृथक् ॥१३
एतच्छौचं विड्‌त्सर्गे गन्धलेपापनुत्तये ।
एतच्छौचं गृहस्थस्य द्विगुणं ब्रह्मचारिणाम् ॥१४
त्रिगुणं तु वनस्थानां यतीनां तच्चतुर्गुणम् ।
स्वस्थाने पूर्णशौचं स्यात्पथ्यर्द्धं मुनिसत्तम ॥१५

गृहाश्रमी को सदा परम पवित्र रहने का उद्योग एवं प्रबल प्रयत्न करना चाहिये क्योंकि द्विजत्व का मूल पवित्रता ही होती है। जो पवित्रता और सदाचरणों से शून्य रहता है उसके द्वारा विहित सभी कर्म निष्फल हो जाया करते हैं ॥ ८ ॥ यह पवित्रता बाह्य और आभ्यन्तर के भेदों से दो प्रकार की हुआ करती है। मिट्टी और जल से बाहिरी शुद्धता हुआ करती है तथा मानसिक भावों की शुद्धि से आन्तरिक पवित्रता हुआ करती है ॥ ९ ॥ फिर लिङ्ग को हाथ में थामे हुए उठकर शौच के लिये मिट्टी लेवे। जहाँ से मृत्तिका का ग्रहण करे उस स्थान को भी पहिले विचार कर देख लेना चाहिए—चूहों तथा अन्य प्राणियों के द्वारा खोदी हुई मिट्टी न लेवे—हलकी नोक से उखड़ी हुई मिट्टी, बावड़ी, कूप और तालाब की मिट्टी का भी इस कर्म के लिये कभी ग्रहण नहीं करना चाहिए। अच्छी और शुद्ध मिट्टी लेकर ही प्रयत्नपूर्वक स्वच्छता का सम्पादन करे अर्थात् पवित्र होना चाहिये ॥ १० । ११ ॥ उपस्थ में एक बार—दोनों हाथों में दो बार मृत्तिका लगाकर ही मूत्र के उत्सर्ग करने पर विद्वान पुरुष शुद्धता बतलाया करते हैं ॥१२॥ मलोत्सर्ग करने पर दुर्गन्ध का निवारण करने के लिये एक बार लिङ्ग पर—पांच बार गुदा में—दश बार वाम कर में—दोनों हाथों में सप्त बार पैरों में तीन बार मृत्तिका लगानी चाहिये। यह शुचिता गृहस्थों की कही है। ब्रह्मचारी की शुचिता इससे दुगुनी मृत्तिका

ृ लगाने से होती है—वानप्रस्थियो की तिगुनी क्रिया करने से ही शुद्धि हुआ करती है। हे मुनिवर! अपन स्थान पर पूर्ण शुचिता जैसी कि शास्त्र म बताई गयी है करनी चाहिए तथा मार्ग म इससे आधी करे ॥१३-१५॥

आतुरे नियमो नास्ति महापदि तथैव च।
गन्धलेपक्षयकर शौच कुर्याद्विचक्षण ॥१६
स्त्रीणामनुपनीताना गन्धलेपक्षयावधि।
व्रतस्थाना तु सर्वेषा यतिवच्छौचमिष्यते ॥१७
विधवाना च विप्रेंद्र एतदेव निगद्यते।
एव शौच तु निर्व य पश्चाद्वै सुसमाहित ॥१८
प्रागास्य उदगास्यो वाप्याचामेत्प्रयतेंद्रिय।
त्रिश्चतुर्वा पिवेदापो गन्धफेनादिवर्जित ॥१९
द्विर्मार्जयेत्कपोल च तलेनोष्ठौ च सत्तम।
तर्जन्यगुष्ठयोगेन नासारन्ध्रद्वय स्पृशत् ॥२०
अगुष्ठानामिकाभ्या च चक्षु श्रोत्रे यथाक्रमम्।
कनिष्ठागुष्ठयोगेन नाभिदेशे स्पृशेद् द्विज ॥२१

रुग्णावस्था म और परम घोर आपत्ति के समय मे शुचिता जितनी भी वन पडे करे वहा पर कोई भी नियम नही बताया गया है। चतुर पुरुष को दुर्गन्ध के निवारण करने तक शुद्धि अवश्य ही करनी चाहिये ॥१६॥ स्त्रियो का और ऐसे बालको का जिनका उपवीत नही हुआ हो इतनी ही शुचिता पर्याप्त है जिससे गन्ध का निवारण हो जावे। जो व्रत करे उनका सन्यासियो के तुल्य ही शुद्धि करनी चाहिए ॥ १७ ॥ हे विप्रवर! विधवा स्त्रियो की शुचिता के लिये यही नियम होते है। इस रीति से शुचिता करके परम समाहित होकर उत्तर अथवा पूर्व की ओर मुख करके गन्ध–फेन आदि से रहित विशुद्ध निर्मल जल को तीन चार बार पीकर आचमन करे ॥ १८, १९ ॥ हे मुनि सत्तम! इसके उपरान्त दो बार जल से कपालो को धोवे तथा दो बार ही अपने होंटो का प्रक्षालन करे। पीछे तर्जनी अंगुलि और अँगूठे से नासिका के छिद्रो को साफ करे ॥२०॥ अंगुष्ठ और अनामिका अगुलि की सहायता

से क्रम से नेत्रों और कानों का स्पर्श कर शुद्ध करे। इसके पश्चात् द्विज का कर्त्तव्य है कि कनिष्ठिका अँगुली और अँगूठे से नाभि देश का स्पर्श करना चाहिए ॥२१॥

तलेनोरःस्थलं चैव अगुल्यग्रैः शिरः स्पृशेत् ।
तलेन चाङ्गुलाग्रैर्वा स्पृशेदंसौ विचक्षणः ॥२२
एवमाचम्य विप्रेन्द्र शुद्धिमाप्नोत्यनुत्तमाम् ।
दन्तकाष्ठं ततः खादेत्सत्वचं शस्तवृक्षजम् ॥२३
विल्वासनापामार्गाणां निम्बाम्रार्कादिशाखिनाम् ।
प्रक्षाल्य वारिणा चैव मन्त्रेणाप्यभिमन्त्रितम् ॥२४
आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजा पशुवसूनि च ।
ब्रह्म प्रज्ञां च मेधां च त्वन्नो धेहि वनस्पते ॥२५
कनिष्ठाग्रसमं स्थौल्ये विप्रः खादेद्दशाङ्गुलम् ।
नवाङ्गुलं क्षत्रियश्च वैश्यश्चाष्टाङ्गुलोन्मितम् ॥२६
शूद्रो वेदाङ्गुलमितं वनिता च मुनीश्वर ।
अलाभे दन्तकाष्ठानां गण्डूषैर्द्वादशमितैः ॥२७
मुखशुद्धिर्विधीयेत तृणपत्रसमन्वितैः ।
करेणादाय वामेन सचर्वेद्द्वातदंष्ट्रया ॥२८

हाथ की हथेली से द्विज को अपने वक्ष स्थल का स्पर्श करना चाहिये—अँगुलियों के अग्रभाग से अपने शिर का स्पर्श करे फिर चतुर पुरुष को अपनी अँगुलियों के अग्रभाग से दोनों कन्धों का स्पर्श करना चाहिए ।२२। हे विप्रवर ! इस विधि से सम्पूर्ण अङ्गों का स्पर्श करके तथा आचमन करके श्रेष्ठ शुचिता हुआ करती है। इसके उपरान्त किसी श्रेष्ठ वृक्ष की छालदार दातुन करे। दन्त धावन करने के लिए बेल, विजयसार, चिरचिटा, नीम आम्र और मदार की टहनी को पहिले प्रक्षालित करे और फिर निम्न मन्त्र पढ़कर अभिमन्त्रित करे— 'आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजा पशु वसूनिच। ब्रह्म प्रज्ञां च मेधां च त्वन्नो देहि वनस्पते। अर्थात् हे वनस्पते ! तुम मुझको आयु, बल, यश, तेज सन्तति पशु धन, वेद ज्ञान, बुद्धि और मेधा दो। इस से पढ़ करके अभिमन्त्रण करके फिर दातुन का ग्रहण करना चाहिए ॥२३—२५॥ ब्राह्मण को कनिष्ठिका के तुल्य स्थूल दश अङ्गुल

प्रणाम करे। फिर रविमण्डल से भगवान् का आवाहन करके गन्धादि से मण्डल की रचना करता हुआ जनार्दन भगवान् का सस्मरण करके गङ्गा आदि तीर्थों के पावन शुभ नामो का समुच्चारण करते हुए स्नान करे ।।३१—३२।। तीर्थों के स्मरण करने के मन्त्रो का निम्न रीति से ही पाठ करते हुए स्नान करने का विधान है। मन्त्र ये हैं—'गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति। नर्मदे सिन्धु कावेरि जले ऽस्मिन्सन्निध कुरु। पुष्कराद्यानि तीर्थाणि गङ्गायाः सरितस्तथा। आगच्छन्तु महाभागा स्नान काले सदा मम। अयोध्या मथुरा माया काशी-काञ्ची अवन्तिका। पुरी द्वारावती ज्ञेयाः सप्तैता मोक्ष दायिका।' अर्थात् हे गङ्गा, यमुना, गोदावरी, नर्मदा, सिन्धु और कावेरी! आप सब इस जल मे सन्निधान करिये और अपना पुण्य प्रभाव इसमे डालिये। मेरे इस स्नान-काल मे गङ्गा प्रभृति समस्त पावन नदियाँ तथा पुष्कर आदि महाभाग समस्त तीर्थ सर्वदा यहाँ पदार्पण करे। अयोध्या, मथुरा, माया (हरिद्वार), काशी, काञ्ची, अवन्तिका (उज्जैन) और द्वारका इन सातो पुरियो को मोक्ष देने वाली कहा गया है ।।३३—३५।।

ततोऽघमर्षण जप्त्वा यतासुर्वारिसप्लुत ।
स्नानाग तर्पण कृत्वाचम्यार्घ्य भानवेऽर्पयेत् ।।३६
ततो ध्यात्वा विवस्वत जलान्निर्गत्य नारद ।
परिधायाहत धौत द्वितीय परिवार्य च ।।३७
कुशासने समाविश्य सध्याकर्म समारभेत् ।
ईशानाभिमुखो विप्र गायत्र्याचम्य वै द्विज ।।३८
ऋतमित्यभिमन्त्र्याथ पुनरेवाचमेद् बुध ।
ततस्तु वारिणात्मान वेष्टयित्वा समुक्ष्य च ।।३९
सकल्प्य प्रणवान्ते तु ऋषिच्छन्द सुरान्स्मरन् ।
भूरादिभिर्व्याहृतिभि. सप्तभि प्रोक्ष्य मस्तकम् ।।४०

न्यास समाचरेन्मन्त्री पृथगेव करागयो ।
विन्यस्य हृदये तार भू शिरस्यथ विन्यसेत् ॥४१
भुव शिखाया स्वश्चैव कवचे भूर्भु वोऽक्षिपु ।
भूर्भु व स्वस्तक्षात्रास्त्र दिक्षु तालत्रय न्यसेत् ॥४२

इसके अनन्तर अघमर्षण मन्त्र का जप करे—प्राणायाम करे और जल से आर्द्र रहते हुये ही स्नानाङ्ग तर्पण करे । इसके उपरान्त आचमन करके सूर्य देव को अर्घ्य देव ॥३६॥ हे नारद ! जल से निकलकर सूर्य देव का ध्यान करके शाटी धारण करे और दूसरा वस्त्र भी समीप रखकर दर्भासन पर स्थित होकर सन्ध्या कर्म करे । हे द्विजवर्य ! ईशान कोण त्रिदिशा की ओर मुँह करके आचमन न करे ॥३७—३८॥ 'ऋत च सत्यम्' इत्यादि मन्त्रो का उच्चारण करके विद्वान् पुरुष को पुन आचमन करना चाहिए । इसके पश्चात् अपने चारो ओर जल से घेरा देकर ममुक्षण करे ॥ ३६ ॥ इसके पश्चात् सकल्प करे । प्रणव के अन्त मे ऋषि छन्द और देवता का स्मरण करता हुआ भू —भुव —स्व –मह जन –तप —सत्यम्—इन सात महाव्याहृतियो से अपने शिर पर प्रोक्षण करना चाहिए ॥ ४० ॥ इसके उपरान्त मन्त्रो के साथ करन्यास और अङ्गन्यास करे । ओर के साथ— ॐ भू '–ऐसा उच्चारण करता हुआ हृदय का हृदयाय नम ' कहकर स्पर्श करे । ॐ भुव ' यह बोलता हुआ 'शिर स स्वाहा —कहकर शिर पर न्यास करे । 'ॐ स्व '—देवायै वषट् कहकर शिखा का स्पर्श करे ।' 'ॐ भूर्भु व स्व ' इसका उच्चारण करते हुए दोनो भुजाओ का स्पर्श करना चाहिए । इसी रीति से ॐ भू भुव स्व ' कहकर दोनो नत्रो का स्पर्श करे और अन्त म 'ॐ अस्त्राय फट्' यह कह कर दिशाओ म तीन तालियाँ बजावे ॥४१॥४२॥

✓ तत आवाहयेत्सध्या प्रात वीक्नदस्थिताम् ।
आगच्छ वरदे देवि त्र्यक्षरे ब्रह्मवादिनि ॥४३

गायत्रि च्छन्दसां मातर्ब्रह्मयोने नमोऽस्तु ते ।
मध्याह्नेवृषभारूढा शुक्लाम्बरसमावृताम् ॥४४
सावित्री रुद्रयोनिं चावाहयेद्रुद्रवादिनीम् ।
साय तु गरुडारूढा पीताम्बरसमावृताम् ॥४५
सरस्वती विष्णुयोनिमाह्वयेद्विष्णुवादिनीम् ।
तारं च व्याहृतीः सप्तत्रिपदा च समुच्चरन् ॥४६
शिर' शिखा च सपूर्य कु भयित्वा विरेचयेत् ।
वाममध्यात्परैर्वायु क्रमेण प्राणसयमे ॥४७
द्विराचामेत्तत पश्चात्प्रातः सूर्यश्चमेति च ।
आप पुनन्तु मध्याह्ने सायमग्निश्चमेति च ॥४८
आपो हिष्ठे ति तिसृभिर्मार्जन च ततश्चरेत् ।
सुमित्रिया न इत्युक्त्वा नासास्पृष्टजलेन च ॥४६
द्विपद्वर्ग समुत्सार्य द्रुपदा शिरसि क्षिपेत् ।
ऋत च सत्यमेतेन कृत्वा चैवाघमर्षणम् ॥५०

इसके अनन्तर प्रातःकाल की सन्ध्या के अवसर पर रक्त वर्ण के कमल पर विराजमान श्री गायत्री माता का आवाहन निम्न लिखित मन्त्र को पढते हुए करना चाहिये । 'आगच्छ वरदे देवि । त्र्यक्षरे ब्रह्मवादिनि । गायत्रि छन्दसा मातर्ब्रह्म योते नमोऽस्तुते' अर्थात् हे गायत्री माता ! आपका समुत्पत्ति स्थान वेद है, आप समस्त छन्दो की जननी हैं तथा तीन अक्षरो वाली हैं और ब्रह्म आदि को भी वरदान प्रदान करने वाली हैं । ऐसी गायत्री देवी यहाँ पधारिये आपकी सेवा मे मेरा प्रणाम अर्पित है । तीनो कालो मे तीन रूपो का पृथक ध्यान होता है । मध्याह्न के समय मे वृषभ पर चढी हुई–शुक्ल वस्त्रों को धारण करने वाली–रुद्रयोनि–रुद्रवाहिनी तथा सावित्री के रूप वाली देवी का आवाहन करना चाहिए, सायङ्काल के समय मे गरुड पर समारूढ–पीताम्बर धारण करने वाली–विष्णु योनि एव विष्णु वाहिनी

सरस्वती के स्वरूप वाली देवी को आवाहन करे। इसके उपरान्त उच्च स्वर मे सात महाव्याहृतियो वाली त्रिपदा गायत्री का उच्चारण करते हुए शिर और शिखा पर्यन्त प्राणवायु को चढाकर विरेचन करे। प्राणायाम मे वायु का पूरण—कुम्भन और विरेचन करना चाहिए। प्रात काल मे 'सूर्यश्च या' इत्यादि मन्त्र को उच्चरित करते हुए आचमन करना चाहिए। मध्यान्ह वेला मे 'आप. पुनन्तु' इत्यादि मन्त्र से दो बार आचमन करे तथा सारा मन्त्रोपासना के अवसर पर आश्चश्चया' इत्यादि मन्त्र से आचमन करे ।।४३–४८।। इसके पश्चात् 'आपोहिष्ठा' इत्यादि तीन ऋचाओ से मार्जन करे और पीछे 'सुमत्रिया न आप ' इत्यदि मन्त्र को पढ कर नाक से स्पर्श कर शत्रु वर्ग का समुत्सारण करे। पीछे 'दुपदादिव' इत्यादि मन्त्र को पढ कर शिर पर जल के छीटे देवे। फिर 'ऋत च सत्यम्' इत्यादि मन्त्र से अघमर्पण करे ।।४६।५०।।

अन्तश्चरसि मंत्रेण सकृदेव पिवेदप ।
तत सूर्यायविधिवदगध पुष्प जलाजलिम् ।।५१
क्षिप्त्वोपतिष्ठेद्देवर्षे भास्कर स्वस्तिकाजलि ।
ऊद्र्ध्ववाहुरधोवाहु क्रमात्कल्यादिके त्रिके ।।५२
उदुत्य चित्र तच्चक्षुरित्येतत्त्रितय जपेत् ।
तेजोऽसि गायत्र्यसीति प्रार्थयेत्सवितुर्मह ।
ततोऽङ्गानि त्रिरावर्त्य ध्यायेच्छक्तीस्तदात्मिका ।।५४
ब्रह्माणी चतुराननाक्षवलया कुम्भ कर. स्रुक्स्रवौ
विभ्राणा त्वरुणेन्दुकान्तिवदना ऋग्रूपिणी वालिका।
हसारोहणकेलिखण्खण्मणेर्विवार्चिता भूपिता
गायत्री परिभाविता भवतु न सम्पत्समृद्धयै सदा ।।५५
रुद्राणी नवयौवना त्रिनयना वैयाघ्रचर्माम्वरा
खट्वाङ्गत्रिशिखाक्षसूत्रवलयाऽभीतिश्रियै चास्तु न.।

विद्युद्दामजटाकलापविलसद्बालेंदुमौलिर्मुदा
सावित्री वृषवाहना सिततनुर्ध्येया यजुरूपिणी ॥५६

इसके अनन्तर 'अन्तश्चारसि'—इत्यादि मन्त्र को पढ करके आचमन करे और फिर विधि पूर्वक गन्ध-पुष्प से समन्वित जलाजलि सूर्य देव को देनी चाहिए। हे देवर्षे ! स्वस्तिकाजलि करके सूर्य का उपस्थान करना चाहिए। मध्यान्ह के समय मे ऊर्ध्वबाहु रहे और सायङ्काल के समय मे अधोबाहु रहे ॥५१।५२॥ 'उदुत्यम्'—'चित्रम्'—'तच्चक्षु०' इत्यादि तीन ऋचाओ को जपता हुआ हे नारद ! उस समय मे सूर्य, शिव और विष्णु सम्प्रदायो के अन्य मन्त्रो का भी उच्चारण करना चाहिए ॥५३॥ फिर 'तेजोऽसि गायत्र्यसीति' इस मन्त्र को पढ कर सूर्य भगवान के अपरिमित तेज का ध्यान करे। इसके पश्चात् ब्रह्म के अङ्गो का तीन नामोच्चारण करे और उसकी शक्तियो का ध्यान करना चाहिए ॥५४॥ ध्यान के मन्त्र ये हैं—'ब्रह्माणी चतुराननाक्षवलया कुम्भ करै स्रुक्स्रुवौ बिभ्राणा त्वरुणेन्दु कान्तिवदना ऋग्रूपिणी बालिका। हंसारोहण केलि खणखणमणेर्बिम्बाचिता भूपिता। गायत्री परिभाविता भवतु न.सम्पत्समृद्धयै सदा'—अर्थात् चौमुखी रुद्राक्षो की माला को हाथ मे धारण करने वाली, दोनो करो मे स्रुव और स्रुवा और कुम्भ को धारण करने वाली, अरुण चन्द्र के समान मुख कान्तिमती, ब्रह्मा के तुल्य रूप वाली बालिका—ऋग्रूपिणी, हंस पर समारूढ, खनखनाहट करती हुई मणियों के प्रतिबिम्ब से अर्चित ऐसी परम विभूपित गायत्री देवी ध्यान करने पर हमारी सम्पत्ति की समृद्धि करें ॥५५॥ अब मध्याह्नकालीन ध्यान बताया जाता है—'रुद्राणी नवयौवना त्रिनयना वयाघ्रचर्माम्बरा खट्वाङ्गत्रिशिखाक्षसूत्रवलयाऽभीतिश्रिये चास्तु नः। विद्युद्दामजटा कलाप विल सद्बालेन्दुमौलिर्मुदा सावित्रीवृषवाहना सिततनुर्ध्येया यजु रूपिणी ॥' अर्थात् रुद्र के सदृश स्वरूप से समन्वित, नूतन यौवन

से भूषित, तीन नेत्र धारण करने वाली, व्याघ्र चर्म (बाघम्बर) को ओढे हुए, खाट का एक पाया, त्रिशूल अक्ष सूत्र अर्थात् रुद्राक्ष माला तथा कङ्कण धारण करने वाली, विद्युत के समान कान्तिमती, अपनी जटाजूट में बाल चन्द्र को मस्तक पर सानन्द धारण करने वाली, वृषभ के वाहन वाली, गौर वर्ण से युक्त, यजुर्वेद में वर्णित रूप वाली, ऐसी सावित्री देवी ध्यान में लाने पर हमारी सम्पत्ति को बढ़ावे और अभीप्सित हमको प्रदान करे ॥५६॥

ध्येया सा च सरस्वती भगवती पीताम्बरालङ्कृता
श्यामा श्यामतनुर्जरोपरिलसद् गात्राचिता वैष्णवी ।
तार्क्ष्यस्थामणिनूपुरांगदलसद्ग्रैवेयभूषोज्ज्वला
हस्तालङ्कृतशङ्खचक्रसुगदा पद्मा श्रियै चास्तु नः ॥५७

एवं ध्यात्वा जपेत्तिष्ठन्प्रातर्मध्याह्नके तथा ।
सायंकाले समासीनो भक्त्या तद्गतमानसः ॥५८
सहस्रपरमां देवीं शतमध्यां दशावराम् ।
त्रिपदां प्रणवोपेतां भूर्भुवःस्वरुपक्रमाम् ॥५९
षट्तारं संपुटो वापि प्रतिशश्च यतेर्जपः ।
गृहस्थस्य सतारः स्याज्जप्य एवंविधो मुने ॥६०
ततो जप्त्वा यथाशक्ति मवित्रे विनिवेद्य च ।
गायत्र्यै च सवित्रे च प्रक्षिपेदञ्जलिद्वयम् ॥६१
ततो विसृज्य तां विप्र उत्तरे इति मन्त्रतः ।
ब्रह्मगेशेन हरिणानुज्ञाता गच्छ सादरम् ॥६२
दिग्भ्यो दिग्देवताभ्यश्च नमस्कृत्य कृताञ्जलिः ।
प्रातरादि परं कर्म कुर्यादपि विधानतः ॥६३

अब मध्याह्नकालीन ध्यान का वर्णन किया जाता है। मध्याह्न के समय में गायत्री का ध्यान करना चाहिए। 'ध्येया सा च सरस्वती भगवती पीताम्बरालङ्कृता, श्यामा श्याम तनुर्जरोपरिलसद् गात्राञ्चिता

गौष्णवी । तार्क्ष्यस्यामणिन् पुराङ्गदलसद्ग्रैवेयभूषोज्ज्वला, हस्तालङ्कृत शख चक्र सुगदा पद्मा श्रियै चास्तुन.' । अर्थात् सन्ध्या समय भगवती गायत्री देवी के स्वरूप का ध्यान विष्णु के समान रूपवती सरस्वती के तुल्य जैसा ध्यान करना चाहिए। भगवती गायत्री देवी पीत वर्ण के वस्त्रो को धारण करने वाली हैं। आप श्यामा हैं और श्याम ही आपका स्वरूप है अर्थात् शरीर है, वृद्धता की आभा से गरुड पर समारूढ हैं । मणियो से निर्मित नूपुर और बाजूबन्दो से देदीप्यमान तथा हार के भूषण से समुज्वल, हाथो मे शख, चक्र, गदा और पद्म धारण करने वाली ऐसी जगन्माता देवी हमारी सम्पत्ति के वर्धन के लिये पधारें ।।५७।। तीनो कालो मे भिन्न रूपो का ध्यान करके गायत्री मे भक्ति युक्त होकर मन को लगा कर अपने आसन पर शान्त भाव से बैठ कर जाप करना चाहिये ।।५८।। हे मुनिवर ! गायत्री मन्त्र का एक सहस्र जाप उत्तम कहा जाता है । एक माला का जाप मध्यम कोटि का जाप कहा जाया करता है तथा दश बार का जाप साधारण होता है । इस तीन पदो वाली गायत्री को प्रणव (ॐ) 'ओ३म् भू-भुंव स्व' पहिले जोड कर जाप करना चाहिये । जो ब्रह्मचारी या सन्यासी हो उनको आदि अन्त दोनो ओर उक्त प्रणव सहित व्याहृतिया छोड कर जाप करना चाहिये । गृहस्थी द्विज उक्त रीति से सम्पुटित न करके भी जाप कर सकता है ।।५६—६०।। यथा शक्ति जप करके भगवान् सूर्य देव की सेवा मे समर्पित कर देवे । इसके अनन्तर गायत्री देवी और सूर्य भगवान को दो अञ्जलि देनी चाहिए ।।६१।। इसके पश्चात् 'उत्तरे शिखरे' इत्यादि मन्त्र के द्वारा गायत्री का विसर्जन करे । उस समय मे यह प्रार्थना करे कि अब तो आप पधारें किन्तु त्रिदेव(ब्रह्मा-विष्णु)मे हमारे कर्म वर्णन कर उनसे अनुमत होकर पुन पधारियेगा ।।६२।। फिर इसके अनन्तर दिशा विदिशाओ के लिए हाथ जोड कर अर्थात् दिग्देवो को साञ्जलि प्रणाम करना

चाहिए । इसके बाद में प्रातःकाल में होने वाले अन्य कृत्यों का सम्पादन करना चाहिए ॥६३॥

प्रातर्मध्यदिने चैव गृहस्थः स्नानमाचरेत् ।
वानप्रस्थश्च देवर्षे स्नायात्त्रिषवणं यतिः ॥६४
आतुराणां तु रोगार्द्यैः पान्थानां च सकृन्मतम् ।
ब्रह्मयज्ञं ततः कुर्याद्दर्भपाणिर्मुनीश्वर ॥६५
दिवोदितानि कर्माणि प्रमादादकृतानि चेत् ।
शर्वर्याः प्रथमे यामे तानि कुर्याद्यथाक्रमम् ॥६६
नोपास्ते यो द्विजः सन्ध्यां धूर्तबुद्धिरनापदि ।
पाषण्डः स हि विज्ञेयः सर्वधर्मबहिष्कृतः ॥६७
यस्तु सन्ध्यादिकर्माणि कूटयुक्तिविशारदः ।
परित्यजति तं विद्यान्महापातकिनां वरम् ॥६८
ये द्विजा अभिभाषन्ते त्यक्तसन्ध्यादिकर्मणः ।
ते यान्ति नरकान्घोरान्यावच्चन्द्रार्कतारकम् ॥६९
देवार्चनं ततः कुर्याद्वैश्वदेवं यथाविधि ।
तत्रत्यमतिथिं सम्यगन्नाद्यैश्च प्रपूजयेत् ॥७०

हे देवर्षे ! गृहस्थी और वानप्रस्थी को प्रातः मध्य इन दो बार नित्य स्नान करना चाहिए किन्तु सन्यासी को तीनों उपासना के समय कालों में अवश्य ही नित्य स्नान करना चाहिए ॥६४॥ जो रोगादि में पीड़ित हों और यात्रा में हों तो उनका एक ही बार स्नान करने का सिद्धान्त है। हे मुनिवर ! इसके उपरान्त हाथ में दर्भ ग्रहण करके ब्रह्म यज्ञ करना चाहिए ॥६५॥ यदि कोई कर्म ऐसा है जिसका दिन के ही समय में पूर्ण कर देना आवश्यक है और किसी कारण से उस दिन में पूरा नहीं किया जा सका हो तो उसको त्याग न करके रात्रि के ही प्रथम याम में कर डालना चाहिए ॥६६॥ बिना किसी विशेष आपदा के समाक्रान्त हुए धूर्तता से अथवा प्रमाद के वशीभूत होकर कोई

सन्ध्यापासना नहीं किया करता है तो उस व्यक्ति को महान् पाखडी और धर्म के कर्मों का अनाधिकारी ही जान लेना चाहिए ॥६७॥ जो अपने मनम अनेक कूटयुक्तियों का विचार कर सन्ध्यादि परमावश्यक नित्य के कर्तव्यों का त्याग कर दिया करता है उसको महान् घोर पापात्मा पुरुष ही समझ लेना चाहिए ॥६८॥ जो ऐसे धूर्त लोगों से जिनका कि सन्ध्यावन्दन जैसे अवश्यकरणीय कर्मों का भी त्याग कर दिया करते हैं, भाषण भी करते है तो वे भी सूर्य चन्द्र के रहने तक घोर नरकों मे निवास किया करते हैं ॥६९॥ इस सन्ध्योपासना कर्म के करने के पश्चात् देवार्चन और वैश्वदेव करे। उसी समय मे कोई अतिथि का समागमन हो जावे तो उसका भी अन्नादि समर्पण के द्वारा स्वागत-सत्कार सविधि करना चाहिये ॥७०॥

वक्तव्या मधुरा वाणी तेष्वप्यभ्यागतेषु तु ।
जलान्नकन्दमूलैर्वा गृहदानेन चार्चयेत् ॥७१
अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते ।
स तस्मै दुष्कृत दत्त्वा पुण्यमादाय गच्छति ॥७२
अज्ञातगोत्रनामानमन्यग्रामादुपागतम् ।
विपश्चितोऽतिथिं प्राहुर्विष्णुवत्त प्रपूजयेत् ॥७३
स्वग्रामवासिन त्वेक श्रोत्रिय विष्णुतत्परम् ।
अन्नाद्यं प्रत्यह विप्र पितॄनुद्दिश्य तर्पयेत् ॥७४
पचयज्ञपरित्यागी ब्रह्महेत्युच्यते बुधै ।
कुर्यादहरहस्तस्मात्पचयज्ञान्प्रयत्नत ॥७५
दवयज्ञो भूतयज्ञ पितृयज्ञस्तथैव च ।
नृयज्ञो ब्रह्मयज्ञश्च पचयज्ञान्प्रचक्षते । ७६
भृत्यमित्रादिसयुक्त स्वय भुञ्जीत वाग्यत ।
द्विजानाभोज्यमश्नीयात्पात्र नैव परित्यजेत् ॥७७

जो महा पुरुष अभ्यागत स्वरूप म समागत हुये हो उनसे

अत्यधिक मधुर और विनयान्वित वाणी से भाषण करना चाहिए और समय पर अनुपस्थित अन्न, जल, कन्द फलादि के द्वारा शक्ति के अनुसार उनका सत्कार करके ठहरने के लिये स्थानादि की व्यवस्था कर देनी चाहिये ॥७१॥ जिस गृहस्थी के घर पर से कोई भी आशा रहित होकर योंही निराश वापिस चला जाया करता है तो वह अपना सम्पूर्ण उसे देकर उसके सम्पूर्ण सञ्चित पुण्य को लेकर चला जाया करता है ॥७२॥ भारतीय संस्कृति में आतिथ्य सत्कार की विशेष महिमा गाई गई है। जो किसी अन्य ग्राम या नगर से आया हो और जिसके गोत्र तथा नाम का भी ज्ञान न हो उसको ही विद्वज्जन अतिथि कहा करते हैं। अतिथि का सत्कार एवं समर्चन भगवान् साक्षात् विष्णु के ही तुल्य करना चाहिये ॥७३॥ हे विप्र ! अपने ही ग्राम में निवास करने वाले किसी एक भगवान् के परम भक्त श्रोत्रिय का पितरों की तृप्ति के निमित्त मे प्रतिदिन अन्नादि के दान द्वारा सत्कार करना चाहिये ॥७४॥ विद्वान लोग पञ्च यज्ञों का त्याग कर देने वाले ब्राह्मण को शब्द ब्रह्म की हत्या करने वाला कहा करते हैं। अतएव प्रयत्न पूर्वक पञ्च यज्ञ अवश्य ही करने चाहिए ॥७५॥ देव यज्ञ, भूत यज्ञ, पितृ यज्ञ, ब्रह्म यज्ञ और नृयज्ञ—इनको ही यज्ञायज्ञों के नाम से कहा जाया करता है ॥७६॥ इन समस्त कर्मों के करने के पश्चात् मौन होकर मित्र एवं भृत्य आदि सबको साथ लेकर स्वयं आहार को ग्रहण करे। किसी भी भोजन के पात्र का त्याग न करे उसको अवश्य ही भोजन देना चाहिये ॥७७

संस्थाप्य स्वासने पादौ वस्त्रार्द्धं परिधाय च ।
मुखेन वमितं भुक्त्वा सुरापीत्युच्यते बुधैः ॥७८
खादितार्द्धं पुनः खादेन्मोदकांश्च फलानि च ।
प्रत्यक्षं लवणं चैव गोमांसाशीति गद्यते ॥७९
अपोशाने चाचमने अद्यद्रव्येषु च द्विज ।

शब्द न कारयेद्विप्रस्त कुर्वन्नारकी भवेत् ।।८०
पथ्यमन्न प्रभुञ्जीत वाग्यतोऽन्नमकुत्सयन् ।
अमृतोपस्तरणमसि अपोशान भुजे पुर ।।८१
अमृतापिधानमसि भोज्यान्तेऽप्र सकृत्पिबेत् ।
प्राणाद्या आहुतीर्दत्वाचम्य भोजनमाचरेत् ।।८२
ततश्चाचम्य विप्रेंद्र शास्त्रचिंतापरो भवेत् ।
रात्रावपि यथाशक्ति शयनासनभोजनै ।।८३
एव गृही सदाचार कुर्यात्प्रतिदिन मुने ।
यदाऽऽचारपरित्यागी प्रायश्चित्ती तदा भवेत् ।।८४

भोजन करने के समय मे जो आसन पर पैरो को फैला कर बैठता है और आधा वस्त्र धारण करके भोजन करता है तथा मुख से उगले हुये को खाता है उसको विद्वान् लोग मद्यपी कहा करते है ।।७८।। जो एक बार आधा खाकर छोडे हुए मोदक एव फल को तथा लवण को पुन खाया करता है उसको गोमास भक्षी ही कहा जाया करता है ।।७९।। द्विज को चुल्लू भर के आचमन करने मे तथा भक्ष्य पदार्थो के खाने मे शब्द नही करना चाहिए । ऐसा करने से वह नरकगामी हुआ करता है ।।८०।। भोजन करने के समय मे मौन रह कर ही अन्नादि का आहार करना चाहिए । ऐसा शास्त्र का सिद्धान्त है । भोजन मे जो भी अन्न प्राप्त हो उसकी निन्दा न करते हुये सदा पथ्यान्न का ही सेवन करे । भोजन करनेके पूर्व 'अमृतोपस्तरणमसि'— यह कहकर एक चुल्लू भर जल छिडके ।। ८१।। भोजन की समाप्ति होने पर भी 'अमृतापिधानमसि'—यह उच्चारण कर एक बार जल का पान करना चाहिए । प्राणाय स्वाहा' आदि आहुतियाँ देकर आचमन करने के पश्चात भोजन का समारम्भ करना चाहिए । रात्रि के समय मे भी इसी भाँति शयन, भोजन एव आसन आदि के द्वारा अतिथि का समादर सत्कार करे ।।८३।। हे मुनिवर ! इसी रीति से गृह-

श्याश्रमी को पुरुष को प्रतिदिन सदाचरण का प्रतिपादन करना चाहिए। गृहस्थी यदि इस तरह के सदाचरण का त्याग कर देता है तो उसको प्रायश्चित करना बहुत ही आवश्यक हो जाया करता है ॥८४॥

दूषितां स्वतनुं दृष्ट्वा पलितार्थैश्च सत्तम।
पुत्रेपु भार्यां निःक्षिप्य वनं गच्छेत्सहैव वा॥८५
भवेत्त्रिषवणस्नायी नखश्मश्रुजटाधरः।
अधः शायी ब्रह्मचारी पञ्चयज्ञपरायणः॥८६
फलमूलाशनो नित्यं स्वाध्यायनिरतस्तथा।
दयावान्सर्वभूतेषु नारायणपरायणः॥८७
वर्जयेद् ग्रामजातानि पुष्पाणि च फलानि च।
अष्टौ ग्रासाश्च भुञ्जीत न कुर्याद्रातिभोजनम्॥८८
अत्यन्तं वर्जयेत्तैलं वानप्रस्थसमाश्रमी।
व्यवायं वर्जयेच्चैव निद्रालस्ये तथैव च॥८९
शंखचक्रगदापाणिं नित्यं नारायणं स्मरेत्।
वानप्रस्थः प्रकुर्वीत तपश्चान्द्रायणादिकम्॥९०
सहेत शीततापादिवह्निं परिचरेत्सदा।
यदा मनसि वैराग्यं जातं सर्वेपु वस्तुपु॥९१
तदैव सन्यसेद्विप्रपतितस्त्वन्यथा भवेत्।
वेदान्ताभ्यासनिरतः शान्तो दान्तो जितेन्द्रियः॥९२
निर्द्वन्द्वो निरहंकारो निर्ममः सर्वदा भवेत्।
शमादिगुणसंयुक्तः कामक्रोधविवर्जितः॥९३

हे सज्जन महानुभाव! जब गृहस्थी पुरुष अपने शरीर में झुर्रियाँ आदि चिह्नों को देखे तो उसका कर्तव्य है कि वह अपनी भार्या को पुत्रों के सुपुर्द करके या अपने ही साथ में लेकर वन में चला जावे अर्थात् वानप्रस्थ आश्रम को ग्रहण कर लेना चाहिये ॥८५॥ वन में

तीनों कालो में स्नान करे तथा दाढी, नख और जटायें धारण करके नियम से रहे। भूमि शयन, ब्रह्मचर्य पालन करके यज्ञ महायज्ञो को वहाँ पर भी अवश्य किया करे ॥८६॥ सदा फल-मूलो का आहार करे तथा निरन्तर स्वाध्याय मे परायण रहना चाहिये। सब प्राणियो पर परिपूर्ण दया का भाव बनाये रख कर भगवद्भक्ति में ही तत्पर रहना चाहिए ॥८७॥ उस अवस्था मे ग्राम के अन्दर निपजे हुए फल पुष्पों का उपयोग नहीं करना चाहिए। केवल वन्य फल-पुष्पो को काम मे लावे। केवल आठ ग्रास भोजन करे और वह भी रात्रि के समय मे नहीं करना चाहिए ॥८८॥ जो वानप्रस्थ आश्रम मे रहे उसको तैल का अधिक उपयोग नही करना चाहिये। उस दिशा मे निन्दा, मैथुन, और आलस्य नही करना चाहिये ॥७६॥ वानप्रस्थ आश्रम मे जाकर तो सदा शख, चक्र धारण करने वाले भगवान् नारायण का ही नित्य स्मरण करना चाहिये तथा चान्द्रायण महाव्रत आदि की तपश्चर्या अवश्य ही करनी चाहिये ॥६०॥ शीतोष्णादि द्वन्द्वो को सहन करने का अभ्यास करता रहे। अग्नि की सेवा निरन्तर करता रहे। जिस समय मे सभी पदार्थों के सेवन मे निर्वेद की भावना जाग्रत होने लगे तो उसी समय मे सन्यास ग्रहण कर लेना चाहिये अन्यथा सन्यास ग्रहण न करने पर वह पतित हो जाया करता है। सन्यास होने पर परम शान्त, दयनशील और जितेन्द्रिय रहकर वेदान्त शास्त्र के अभ्यास मे निरन्तर परायण रहना चाहिये ॥६१॥६२॥ सन्याश्रम मे प्रवेश करके सर्वदा द्वन्द्व, अहङ्कार और ममता से रहित होकर ही शमादि गुणो से सयुत होकर काम, क्रोध आदि का पूर्णतया त्याग कर देना चाहिए ॥६३॥

नग्नो वा जीर्णकोपीनो भवेन्मुण्डो यतिर्द्विजः।
सम शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयो. ॥६४
एकरात्रं वसेद् ग्रामे त्रिरात्रं नगरे तथा।

भैक्षेण वर्त्तयेन्नित्यं नैकान्नादी भवेद्यति. ।।६५
अनिंदितद्विजगृहे व्यगारे भुक्तिवर्जिते ।
विवादरहिते चैव भिक्षार्थं पर्यटेद्यति. ।।६६
भवेत्त्रिपवणस्नायी नारायणपरायण. ।
जपेच्च प्रणव नित्य जितात्मा विजितेंद्रिय ।।६७

जो द्विज सन्यासी होजावे उसको नग्न रहना चाहिये या फटे, पुराने वस्त्र की एक लँगोटी लगा कर रहे । सन्यासी का सिर मुण्डित रहना चाहिये । सँन्यासी को सदा शत्रु, मित्र और मानापमान मे सदा समान भावना रखनी चाहिये ।।६४।। सन्यासी के लिये शास्त्रानुसार नियम है कि उसे किसी ग्राम मे एक रात्रि तथा नगर म तीन रात निवास करना चाहिये । सदा भिक्षा मे निर्वाह चलावे । सन्यासी को सर्वदा एक मे अन्न का सेवन नही करना चाहिये ।६५। सन्यासियो क लिये भिक्षा करने के भी नियम हैं । ऐसे जो द्विज निन्दित न हो उन्ही के घर से भिक्षा लेनी चाहिये । जिस समय मे अग्नि बुझ गई हो और भोजन का समय व्यतीत हो तभी विवाद रहित समय मे सन्यासी को भिक्षा के लिये भ्रमण करना चाहिय ।। ६६ ।। सन्यासी तीनो कालो म स्नान किया करे । सदा भगवान नारायण के ध्यान मे निमग्न रहे । चित्त एव सब इन्द्रियो को वश मे रखकर प्रणव (ॐ) का जाप निरन्तर ही सन्यासी को करते रहना चाहिये ।।६७।। जो सन्यास धारण करके भी लम्पट रहकर किसी एक ही गृहस्थी के अन्न का सेवन किया करता है वह अपने आश्रम के नियमो को भङ्ग किया करता है उसकी शुद्धि दस सहस्र प्रायश्चित्तो के करने पर भी कभी नही हो सकती है ।।६७।।

एकान्नादी भवेद्यस्तु कदाचिल्लपटो यति ।
न तस्य निष्कृतिर्दृष्टाप्रायश्चित्तायुतैरपि ।।६८
लोभाद्यदि यतिर्विप्र तनुपोषपरो भवेत् ।
स चडालसमो ज्ञेयो वर्णाश्रमविगर्हित ।।६९

आत्मानं चिंतयेद्देवं नारायणमनामयम् ।
निर्द्वद्व निममं शांत मायातीतममत्सम् ॥१००
अव्यय परिपूर्ण च सदानन्दैकविग्रहम् ।
ज्ञानस्वरूपममल परं ज्योति. सनातनम् ॥१०१
अविकारमनाद्यन्तं जगच्चैतन्यकारणम् ।
निर्गुण परम ध्यायेदात्मान परतः परम् ॥१०२
पठेदुपनिपद्वाक्यं वेदातार्थाश्च चिंतयेत् ।
सहस्रशीर्ष देव च सदा ध्यायेज्जितेंद्रिय. ॥१०३
एव ध्यानपरो यस्तु यतिर्विगतमत्सरः ।
स याति परमानन्द पर ज्योतिः सनातनम् ॥१०४
इत्येवमाश्रमाचारान्य करोति द्विजः क्रमात् ।
स याति परम स्थान यत्र गत्वा न शोचति ॥१०५
वर्णाश्रमाचाररताः सर्वपापविवर्जिताः ।
नारायणपरा याति तद्विष्णो. परम पदम् ॥१०६

हे विप्र ! यदि कोई भी सन्यासी होकर लोभ के वशीभूत हो कर अपने इस विनाशशील अनित्य शरीर के पोषण मे लग जाया करता है तो वह वर्णाश्रम से महान निन्दित होकर एक—चाण्डाल के ही समान हो जाया करता है ॥ ९९ ॥ सन्यासी का कर्तव्य है कि आत्मा या अनामय नारायण देव, निर्द्वन्द्व, निर्मम, मायातीत, शान्त, अव्यय, अमत्सर, सच्चिदानन्द स्वरूप, परिपूर्ण, निर्मल, ज्ञानरूप परम ज्योति, सनातन विकार तथा शान्त से रहित, जगत् के चैतन्य कारण, निर्गुण परम ब्रह्म के ध्यान में मग्न रहे ॥१००—१०२॥ सन्यासी को सदा उपनिषद् के वाक्यों का पाठ करना चाहिए। उसे सर्वदा वेदान्त के अर्थों का गहन विचार करना चाहिये । अपनी इन्द्रियों को नियन्त्रित रखते हुए सहस्र फनों से युक्त शेष भगवान् का ध्यान करना चाहिए॥१०३॥ जो यति मात्सर्य दोष से रहित होकर

इस विधि से भगवान का ध्यान किया करता है वह परम ज्योतिस्वरूप, परमानन्दमय, सनातन ब्रह्म म लीन हो जाया करता है ।।१०४।। जो द्विन इस उपर्युक्त विधि क क्रम से आश्रमा के धर्मों का परिपालन किया करता है वह ऐस परम पद को प्राप्त करता है जहां पर पहुँच कर कोई भी शोक नही करना पडता है ।।१०५।। जो व्यक्ति वर्णाश्रम के धर्मों का यथावत् पालन किया करते हैं व समस्त पापों से मुक्त हो कर नारायण भगवान् के परम पद की प्राप्ति किया करते हैं जहां पर सदैव भगव न् क चरणा मे ही मग्न रहते हैं ।।१०६।।



।। श्राद्ध कृत्य विवरण ।।

शृणुष्व मुनिशार्दूल श्राद्धस्य विधिमुत्तमम् ।
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र सशय ।।१
क्षयाहपूर्वदिवसे स्नात्वा चैकाशनो भवेत् ।
अध शायी ब्रह्मचारी निशि विप्रान्निमन्त्रयेत् ।।२
दन्तधावनताम्बूले तैलाभ्यंग तथैव च ।
रत्योषधिपरान्नानि श्राद्धकर्त्ता विवर्जयेत् ।।३
अध्वान कलह क्रोध व्यवाय च धुर तथा ।
श्राद्धकर्त्ता च भोक्ता च दिवास्वाप च वर्जयेत् ।।४
श्राद्धे निमन्त्रितो यस्तु व्यवाय कुरुते यदि ।
ब्रह्महत्यामवाप्नोति नरक चापि गच्छति ।।५
श्राद्धे नियोजयेद्विप्र श्रोत्रिय विष्णुतत्परम् ।
यथास्वाचारनिरत प्रशान्त सत्कुलोद्भवम् ।।६
रागद्वेषविहीन च पुराणार्थविशारदम् ।
त्रिमधुत्रिसुपर्णज्ञ सर्वभूतदयापरम् ।।७

श्री सनकाचार्यजी ने कहा—हे मुनि शार्दूल ! अब आप श्राद्ध करने की परम श्रेष्ठ विधि का श्रवण कीजिए। इसके सुनने वाला सभी पापों से मुक्त हो जाया करता है। फिर इसमें कोई भी पाप का निवास नहीं रहता है ।।१।। जिस दिन पितृ गण का श्राद्ध करना है उसके पूर्व दिन में स्नानादि करके केवल एक ही बार भोजन करना चाहिए। भूमि शयन और ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए रहना चाहिए। प्रथम दिन में ही ब्राह्मण को श्राद्ध के लिए निमन्त्रित कर देवे ।।२।। श्राद्ध के करने वाले पुरुष को दाँतुन, तैल मर्दन, ताम्बूल, तर्पण, रति, औषध और पराये अन्न से बचाव रखना परम आवश्यक है ।। ३ ।। श्राद्ध के करने वाले और श्राद्ध में भोजन करने वाले दोनों के लिए नियमों का पालन करना अत्यावश्यक है। इनको कलह, क्रोध, मैथुन और बोझ का त्याग कर देना चाहिए।। ४ ।। जो ब्राह्मण श्राद्ध का निमन्त्रण स्वीकार करके भी रति क्रिया करता है वह भी ब्रह्महत्या के पाप में लिप्त होकर नरकगामी हुआ करता है। ।५।। श्राद्ध में भोजन करने वाले ब्राह्मण में विशेष गुणों का होना अत्यावश्यक है। वह विष्णु का भक्त, श्रोत्रिय, स्वधर्म पालक, सम युक्त, राग द्वेष विहीन, सत्कुल समुत्पन्न, पुराणार्थ ज्ञाता, त्रिमधु और त्रिसुपर्ण के जानने वाला और समस्त प्राणियों पर दयालु होना चाहिए ।।६।७।।

देवपूजारत चैव स्मृतितत्त्वविशारदम् ।
वेदान्ततत्त्वसम्पन्न सर्वलोकहितेरतम् ।।८
कृतज्ञ गुणसम्पन्न गुरुशुश्रूषणे रतम् ।
परोपदेशनिरत सच्छास्त्रकथनैस्तथा ।।६
एते नियोजितव्या वै श्राद्धे विप्रा मुनीश्वर ।
श्राद्धे वर्ज्यान्प्रवक्ष्यामि शृणु तान्सुसमाहित. ।।१०
न्यूनागश्चाधिकागश्चकदर्यो रोगितस्तथा ।
कुष्ठी च कुनखी चैव लवकर्ण क्षतव्रतः ।।११

क्षत्रपाठजीवी च तथा च शवदाहक ।
कुवादी परिवेत्ता च तथा देवलक खल ॥१२
निंदकोऽमपणो धूर्तस्तथैव ग्रामयाजक ।
असच्छास्त्राभिनिरत परान्ननिरतस्तथा ॥१३
वृपलीसूतिपोष्टा च वृपलीपतिरेव च ।
कुण्डश्च गोलकश्चैव ह्ययाज्याना च याजक ॥१४

श्राद्ध भोजी ब्राह्मण मे देवार्चन की तत्परता, स्मृतियो के गूढार्थ का ज्ञान, वेदान्त के तात्विक ज्ञान से युक्त, सबके हित साधन मे परायण, कृतोपकार का ज्ञाता, गुणगण समन्वित, गुरु सेवा निरत और सद्‌शास्त्रो का दूसरे को सदुपदेश प्रदान, ये गुण अवश्य होने चाहिये । ऐसे ही ब्राह्मण को खोज कर श्राद्ध मे निमन्त्रित करना चाहिए ॥८।६॥ हे मुनिवर ! जिस प्रकार के ब्राह्मण को श्राद्ध मे निमन्त्रण दिया जावे यह बतलाने के पश्चात् अब यह बतलाता हूँ कि किन २ ब्राह्मण को श्राद्ध मे निमन्त्रित नही करना चाहिये । आप परम समाहित होकर सुनिये । श्राद्ध के योग्य ब्राह्मण विरले ही मिला करते हैं । केवल ब्राह्मण वर्ण से इस कर्म मे कार्य नहीं चला करता है ॥१०॥ जिसका अङ्ग विकल हो अर्थात् अधिक या न्यून हो वह श्राद्ध के योग्य नही होता है । कायर, रोगी, काढ़ी, बुरे नखो वाला, लम्बे कानो वाला, भ्रष्टव्रती, नक्षत्र पाठ जीवी, द्रव्य ग्रहण कर शव दाह करने वाला, कुत्सित वचनो का वक्ता, परिवेत्ता देवलक, निन्दक, खल, असहिष्णु धूर्त, ग्राम याजक, असत् शास्त्र पढ़ने वाला पराग्न भोजी, वृपली एव सूतिका के अन्न से पुष्ट शूद्रा स्त्री का पति, कुण्ड, गोलक और यजन के यजन करने के अयोग्य व्यक्तियो का यजन करने वाले ब्राह्मण को कभी भूल कर भी श्राद्ध मे निमन्त्रित नही करना चाहिए क्योंकि ऐसे ब्राह्मण श्राद्ध मे भोजन करने के पात्र नहीं हुआ करते हैं ॥११—१४॥

दंभाचारो वृथामुण्डी ह्यन्यस्त्रीधनतत्पर ।
विष्णुभक्ति विहीनश्च शिवभक्तिपराड्मुख ॥१५
वेदविक्रयिणश्चैव व्रतविक्रयिणस्तथा ।
स्मृतिविक्रयिणश्चैव मन्त्रविक्रयिणस्तथा ॥१६
✓गायका काव्यकर्त्तारो भिषक्छास्त्रोपजीविन ।
वेदनिंदापरश्चैव ग्रामारण्यप्रदाहक ॥१७
तथातिकामुकश्चैव रसविक्रयकारक ।
कूटयुक्तिरतश्चैव श्राद्धे वर्ज्या प्रयत्नत ॥१८
निमन्त्रयीत पूर्वेद्यु स्तस्मिन्नेव दिनेऽथवा ।
निमन्त्रितो भवेद्विप्रो ब्रह्मचारी जितेंद्रिय ॥१९
श्राद्धे क्षणस्तु कर्त्तव्य प्रसादश्चेति सत्तम ।
निमन्त्रयेद् द्विज प्राज्ञ दर्भपार्णिजितेंद्रिय ॥२०
तत प्रात समुत्थाय प्रात कृत्य समाप्य च ।
श्राद्ध समाचरेद्विद्वान्काले कुतपसंज्ञिते ॥२१

जो सवदा दम्भाचरण करने वाला हो वह भी अयोग्य होता है। निष्प्रयोजन शिर को मुण्डित कराने वाला, पराई स्त्री और धन को तकने वाला, विष्णु और शिव की भक्ति से रहित, वेद, स्मृति और व्रत का विक्रय करने वाला, भाँड और भाट जैसी वृत्ति रखने वाला, चीर फाड के कर्म को करने वाला, वेद का निन्दक, ग्राम मे अग्नि लगाने वाला अत्यधिक काम वासना वाला, रसो को बेचने का कर्म करने वाला तथा कूटयुक्तियो के करने वाले ब्राह्मण को कभी भी आमन्त्रित नही करना चाहिये क्योकि ये परम निषिद्ध बताये गए हैं ॥१५—१८॥ श्राद्ध के पूर्व दिन म अथवा प्राय उसी दिन ब्राह्मण को निमन्त्रण देना चाहिए। निमन्त्रित विप्र भी जितेन्द्रिय और ब्रह्मचर्य पालक होकर रहे ॥१९॥ हे श्रेष्ठ मुनिवर ! श्राद्ध म विशेष उत्साह और पूर्ण प्रसन्नता के साथ ही रहकर इसको करे।

श्राद्धकर्त्ता इन्द्रियों को वश में रखकर हाथ में डाभ लेकर ब्राह्मण को निमन्त्रण देने के लिए उसके घर पर जावे ॥२०॥ श्राद्ध के दिन प्रातःकाल में उठकर प्रातःकाल के समस्त दैनिक कृत्यों से छुटकारा पाकर विद्वान् पुरुष को श्रद्धा के सहित उस कर्म को आरम्भ करना चाहिये ॥२१

दिवसस्याष्टमे काले यदा मदायते रविः ।
स कालः कुतपस्तत्र पितृणां दत्तमक्षयम् ॥२२
अपराह्णः पितृणां तु दत्तः कालः स्वयम्भुवा ।
तत्काल एव दातव्यं कव्यं तस्माद् द्विजोत्तमैः ॥२३
यत्कव्यं दीयते द्रव्यैरकाले मुनिसत्तम ।
राक्षसं तद्धि विज्ञेयं पितृणां नोपतिष्ठति ॥२४
कव्यं प्रत्तं तु सायाह्ने राक्षसं तद्भवेदपि ।
दाता नरकमाप्नोति भोक्ता च नरकं व्रजेत् ॥२५
क्षयाहस्य तिथेर्विप्र यदि दण्डमितिर्भवेत् ।
विद्धापराह्णे कार्यं तु श्राद्धं कार्यं विजानता ॥२६
क्षयाहस्य तिथिर्या तु ह्यपराह्णद्वयं यदि ।
पूर्वा क्षये तु कर्तव्या वृद्धौ कार्या तथोत्तरा ॥२७
मुहूर्तद्वितयं पूर्वदिने स्यादपरेऽह्नि ।
तिथिः सायाह्नगा यत्र परा कव्यस्य विश्रुता ॥२८

दिवस के आठवें भाग में अर्थात् बारह बजने के पश्चात् जिस

मिलकर राक्षसो को ही प्राप्त हुआ करता है ॥२४॥ जो कव्य सायङ्काल के समय मे दिया जाता है वह भी राक्षसो का ही भाग हो जाया करता है । इससे दाता और भोक्ता दोनो नरको मे जाया करते हैं ॥२५॥ हे विप्र ! यदि श्राद्ध की तिथि एक ही दण्ड भर हो तो श्राद्ध के कर्त्ता को अपराह्नविद्धा तिथि का ही ग्रहण करना चाहिए ॥२६॥ यदि क्षय दिन की तिथि दोनो ही अपराह्नो मे हो तो पहिली को क्षय कर्म मे प्रयुक्त करे और दूसरी को वृद्धि कर्म मे प्रयुक्त करना चाहिए ॥२७॥ यदि वह तिथि प्रथम दिन ४ घडी होवे और शेष दूसरे दिन मे होवे तो सायाह्न व्यापिनी अगली तिथि को ही कव्य के लिए काम मे लेनी चाहिए ऐसा ही प्रसिद्ध विधान है ॥२८

किंचित्पूर्वदिने प्राहुर्मु मूर्त्तद्वितये सति ।
नैतन्मत हि सर्वेषा कव्यदाने मुनीश्वर ॥२६
निमन्त्रितेपु विप्रेपु मिलितेपु द्विजोत्तम ।
प्रायश्चित्तविशुद्धात्मा तेभ्योऽनुज्ञा समाहरेत् ॥३०
श्राद्धार्थं समनुज्ञातो विप्रान् भूयो निमन्त्रयेत् ।
उभौ च विश्वेदेवार्थं पित्र्यर्थं त्रीन यथाविधि ॥३१
देवतार्थं च पित्र्यर्थमेकैकं वा निमन्त्रयेत् ।
श्राद्धार्थं समनुज्ञात. कारयेन्मण्डलद्वयम् ॥३१
चतुरस्र ब्राह्मणस्य त्रिकोण क्षत्रियस्य वै ।
वैश्यस्य वर्तु ल ज्ञेय शूद्रस्याभ्युक्षण भवेत् ॥३३
ब्राह्मणानामभावे तु भ्रातर पुत्रमेव च ।
आत्मान वा नियुञ्जीत न विप्र वेदवर्जितम् ॥३४
प्रक्षाल्य विप्रपादाश्च ह्याचान्तानुपवेश्य च ।
यथावदर्चन कुर्यात् स्मरन्नारायण प्रभुम् ॥३५

कुछ विद्वानो का मत है कि यदि प्रथम दिन मध्याह्न मे चार घड़ी तिथि हो तो प्रथम दिन ही श्राद्ध मे ग्रहण करना चाहिए किन्तु

यह मत सर्व सम्मत नहीं है ॥२६॥ हे द्विजोत्तम ! निमन्त्रित किए जाने के योग्य ब्राह्मणों के मिल जाने पर प्रायश्चितों के द्वारा शुद्ध आत्मा वाले यजमान के सर्व प्रथम उन विप्रों से श्राद्ध कर्म को करने की आज्ञा प्राप्त कर लेनी चाहिए ॥३०॥ जब वे आज्ञा दे देवें तभी उन विप्रों को सविधि निमन्त्रण देना चाहिए । विधि यही है कि विश्वेदेवाओं के लिए दो ब्राह्मणों को निमन्त्रण देवे और तीन विप्रों को पितरों के निमित्त में निमन्त्रित करना चाहिए ॥३१॥ अथवा देवों और पितरों के लिए एक २ को ही निमन्त्रित करे । श्राद्ध करने की आज्ञा प्राप्त हो जाने पर दो मण्डल बनाने चाहिये ॥ ३२ ॥ ब्राह्मण के मण्डल चौकोर, क्षत्रिय का त्रिकोण, वैश्य को गोल मण्डप बनावे । शूद्र का मण्डल जल के छिड़क देने मात्र से ही मान लिया जाता है ॥३३॥ यदि पूर्व में बतलाये हुये युक्त ब्राह्मण श्राद्ध के लिए न प्राप्त होवे तो भाई, पुत्र अपने ही लोगों को श्राद्ध के योग्य ब्राह्मण समझ लेना चाहिये किन्तु वेद विहीन ब्राह्मण को भूल कर भी कभी निमन्त्रित नहीं करना चाहिये । इससे विधि का विनाश होता है । सर्व प्रथम ब्राह्मण के चरणों का प्रक्षालन करे और जिस समय भ व आसनों पर समुपस्थित हो जावें और आचमन कर लेवें तब भगवान नारायण का स्मरण करते हुए उनका समुचित सत्कार करना चाहिए ॥३५

ब्राह्मणाना तु मध्ये च द्वारदेशे तथैव च ।
अपहता इत्यृचा वै कर्ता तु विकिरेत्तिलान् ॥३६
यवैर्दर्भैश्च विश्वेषा देवानामिदमासनम् ।
दत्वेति भूयो दद्याच्च देवे क्षणप्रतीक्षणम् ॥३७
अक्षय्यामनयो षष्ठी द्वितीयावाहने स्मृता ।
अन्नदाने चतुर्थी स्याच्छेषा सम्बुद्धय स्मृता ॥३८
आसाद्य पात्रद्वितय दर्भशाखासमन्वितम् ।

तत्पाने सेचयेत्तोय शन्नो देवीत्यृचा तत ॥३६
यवोऽसीति यवान् क्षिप्त्वा गन्धपुष्पे च वाग्यत ।
आवाहयेत्ततो देवान् विश्वे देवा स इत्यृचा ॥४०
या दिव्या इति मन्त्रेणा दद्यादर्घ्य समाहित ।
गन्धैश्च पत्रपुष्पैश्च धूपदीपैर्यजेत्तत ॥४१
देवैश्च समनुज्ञातो यजेत् पितृगणास्तथा ।
तिलसयुक्तदर्भैश्च दद्यातेपा मदासनम् ॥४२

श्राद्ध करने वाले पुरुप का कर्त्तव्य है कि वह ब्राह्मणो को अपने मध्य म तथा द्वार का देहली पर 'अपहता ' इत्यादि ऋचा का पाठ करते हुए तिलो को बखेर देवे ॥३६॥ यवो और कुशा को विश्वे देवाओ को सम्मुख रखकर उनसे प्रार्थना करे कि यह आपके लिए आसन है। आसन समर्पित करने के पश्चात् यवो का अर्पण कर इन विश्वेदेवाओ के समागमन के लिए क्षण भर प्रतीक्षा करे॥ ३७॥ 'शिवा आप सन्तु इत्यादि पढे तथा अक्षय और आसन के सङ्कल्प मे षष्ठी विभक्ति का 'अमुक गोत्रस्य अमुक नाम्न 'प्रयोग करना चाहिए तथा आवाहन मे द्वितीया विभक्ति का ही प्रयोग अमुक गोत्रमुक नामानम्' करना चाहिए तथा अन्न दान के समय म चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग 'अमुक गोत्रायाममुक नाम्ने करना चाहिए। शप सर्वत्र सम्बुद्धि का प्रयोग करें। जैसे—अमुक गोत्र, अमुक नाम आदि ॥३८॥ इसके अनन्तर दो पात्रो को रखकर उनम डाभ प्रक्षिप्त करके 'शन्नो देवी०' इत्यादि मन्त्र के द्वारा उन पात्रो म जल भर देवे ॥३६॥ फिर 'यवोऽसि' इत्यादि मन्त्र को उच्चारण करते हुए जो डाल कर मौन होते हुए गन्ध और पुष्प चढावे। इसके पश्चात् 'विश्वे देवा इत्यादि ऋचा से विश्व देवाओ का आवाहन करना चाहिए ॥४०॥ या दिव्या इत्यादि मन्त्र के साथ सावधानी के साथ अर्घ्य देना चाहिए फिर 'या दिव्या' इस मन्त्र से सावधानी से अर्घ, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप आदि से विश्व

देवाओं का अर्चन करना चाहिए ॥४१॥ इसके पश्चात् विश्वेदेवाओं से सम्मति प्राप्त करके अपने पितृगणों का पूजन करे। पितरों को सर्वदा तिल और कुशा का आसन ही समर्पित करना चाहिए ॥४२॥

पात्राण्यासादयेत् त्रीणि ह्यर्घार्थपूर्ववद् द्विजः।
शन्नो देव्या जलं क्षिप्त्वा तिलोऽसीतिक्षिपेत्तलता ॥४३
उशन्त इत्यृचावाह्य पितृन् विप्र. समाहितः।
या दिव्या इति मन्त्रेण दद्यादर्घ्यं च पूर्ववत् ॥४४
गन्धैश्च पत्रपुष्पैश्च धूपैर्दीपैश्च सत्तम।
वासोभिर्भूषणैश्चैव यथाविभवमर्चयेत् ॥४५
ततोऽन्नाग्रं समादाय घृतयुक्तं विचक्षण।
अग्नौ करिष्य इत्युक्त्वा तेभ्योऽनुज्ञां समाहरेत् ॥४६
करवै करवाणीति चापृष्टा ब्राह्मणा मुने।
कुरुष्व क्रियतां वेति कुर्विति ब्रूयुरेव च ॥४७
उपासनाग्निमाधाय स्वगृह्योक्तविधानत।
सोमाय च पितृमते स्वधा नम इतीरयेत् ॥४८
अग्नये कव्यवाहनाय स्वधा नम इतीह वा।
स्वाहान्तेनापि वा प्राज्ञो जुहुयात् पितृयज्ञवत् ॥४९

इसके अनन्तर ब्राह्मणों को पूर्व के ही समान अर्घ के लिए तीन पात्र रखने चाहिये और 'शन्नो देवी' इत्यादि मन्त्र का उच्चारण कर पात्रोंमें जल भर देवे और 'तिलोऽसीति' इत्यादि मन्त्र से तिलों का प्रक्षेप करे ॥४३॥ इसके अनन्तर बहुत ही सावधानता से 'उशन्त' इत्यादि ऋचा से अपने पितृगणों का आवाहन करना चाहिए तथा 'या दिव्या' इत्यादि मन्त्रों से पूर्ववत् अर्घ का समर्पण करे ॥४४॥ हे सज्जन! इसके उपरान्त अपने धन विभव की शक्ति अनुसार ही गन्ध, धूप, दीप, वस्त्र, भूषण और द्रव्य से पितृगणों का भली भाँति अर्चन करना चाहिए ॥४५॥ इसके अनन्तर कुशल पुरुष को घृत से अन्न के

ग्रास को ग्रहण कर इसकी मैं अग्नि मे आहुति दूँगा 'अग्नौ करिष्ये' इत्यादि मन्त्र से आज्ञा प्राप्त करे । ब्राह्मणो को इसके उत्तर मे कहना चाहिए कि—हां, करिये अर्थात् अग्नि मे आहुति दीजिए ॥४७॥ फिर अपने गृह्य सूत्र के विधान के अनुसार उपासना कर अग्नि की स्थापना करके 'सोमाय पितृमते स्वधानम' इसका उच्चारण करके इस पितृयज्ञ की दो समान आहुतियां देनी चाहिए अथवा विद्वान् व्यक्ति को अन्त मे 'स्वाहा' यह कहकर ही आहुति देनी चाहिए ॥४८–४६॥

आभ्यामेवाहुतिभ्या तु पितृणा तृप्तिरक्षया ।
अग्न्यभावे तु विप्रस्य पाणौ होमो विधीयते ॥५०
यथाचार प्रकुर्वीत पाणावग्नौ च वा द्विज ।
न ह्यग्निदूँरग कार्यं पार्वजे समुपस्थिते ॥५१
सधायाग्नि तत कार्यं कृत्वा त विसृजेत् ।
कृती यद्यग्निदूँरगो विप्र पार्वणे समुपस्थिते ॥५२
भ्रातृभि कारयेच्छ्राद्ध साग्निकैर्विधिवद् द्विजैं ।
क्षयाहे चैव साप्राप्ते स्वस्याग्निदूँरगो यदि ॥५३
तथैव भ्रातरस्तत्र लौकिकाग्नावपि स्थिता ।
उपासनाग्नौ दूरस्थे समीपे भ्रातरि स्थिते ॥५४
यद्यग्नौजुहुयाद्वापि पाणौ वा स हि पातकी ।
उपासनाग्नौ दूरस्थे केचिदिच्छन्ति वै द्विजा ॥५५
तच्छेष विप्रपात्रेषु विकिरेत् सस्मरन् हरिम् ।
भक्ष्यैर्भोज्यैश्च लेह्यैश्च स्वाद्यैर्विप्रान्प्रपूजयेत् ॥५६

इन आहुतियो के देने मे पितृगण की अक्षय तृप्ति हुआ करती है । यदि यजमान अग्नि होत्र करने वाला न होवे और वहां पर उस समय म अग्नि का अभाव हो तो उस समय ब्राह्मण के हाथ मे ही अर्पण करना रूपी ही होम करना पर्याप्त होता है । हे द्विज ! आचार के अनुरूप ही कर या अग्नि मे आहुतियाँ देनी चाहिये । पार्वण श्राद्ध के समय मे अग्नि को दूर नही रखना चाहिए ॥५१॥ पार्वण के समय

मे यदि अग्नि दूर हो अर्थात् पत्नी अपनी माता के यहाँ (मायके मे) चली गयी हो तो कुशल पुरुष को नूतन अग्नि की स्थापना करनी चाहिये और उसमे ही आहुतियां देवे । श्राद्ध के समाप्त होने पर उस नवीन सस्थापित अग्नि को विसर्जित कर देना चाहिये ॥५२॥ यदि श्राद्ध के समय की तिथि उपस्थित होजावे और अग्नि दूर हो तो अग्निहोत्र करने वाले अपने जो दूसरे भाई हों उनमे श्राद्ध करवाना चाहिए ॥५३॥ यदि अपनी अग्नि जो उपासना करने की हुआ करती है कहीं दूर देश मे हो और समीप मे ही कोई लौकिक अग्नि वाले भाई विद्यमान हों तो उस दिशा मे नवीन अग्नि की स्थापना करना या ब्राह्मण के कर मे ही आहुति का समर्पण करना बहुत ही अनुचित है क्योंकि ऐसा करने पर वह पातकी होजाया करता है ॥ ५४।५५ ॥ इस विधि से आहुति अर्पण कर जो शेष अन्न बच जावे उसको भगवान् का स्मरण करता हुआ ब्राह्मणो के रक्खे हुये पात्रों मे परिवेषण कर देवे । इसके पश्चात परम स्वादिष्ट भक्ष्य-भोज्य, लेह्य आदि पदार्थों से ब्राह्मणों को भोजन करावे ॥५६॥

अन्नत्याग ततः कुर्य्यादुभयत्र समाहित ।
आगच्छन्तु महाभागा विश्वे देवा महाबलाः ॥५७
ये यत्र विहिता श्राद्धे सावधाना भवन्तु ते ।
इति सप्रार्थयेद्देवान्ये देवास ऋचा नु वै ॥५८
तथा सप्रार्थयेद्विप्रान्ये च हेति ऋचा पितॄन् ।
अमूर्तानां च मूर्तानां पितॄणां दीप्ततेजसाम् ॥५६
नमस्यामि सदा तेषां ध्यानिनां योगचक्षुषाम् ।
एवं पितॄन्नमस्कृत्य नारायणपरायण ॥६०
दत्त हविश्च तत्कर्म विष्णवे विनिवेदयेत् ।
ततस्ते ब्राह्मणाः सर्वे भुञ्जीरन्वाग्यता द्विजाः ॥६१
हसते वदते कोऽपि राक्षस तद्भवेद्धवि ।
यथाकार प्रदेयं च मधुमासादिकं तथा ॥६२
पाकादि न प्रशसेरन् वाग्यता घृतभाजना ।

यदि पात्रं त्यजेत्कोऽपि ब्राह्मणः श्राद्धयोजितः ॥६३
श्राद्धहता स विज्ञेयो नरकायोपपद्यते ।
भुञ्जातेषु च विप्रेषु ह्यन्योन्यं सस्पृशेद्यदि ॥६४

इसके अनन्तर दोनो स्थानो पर अर्थात् विश्वेदेवा और पितृगण के स्थानो पर अन्न के स्वादिष्ट पदार्थो का परिवेक्षण कर सावधान हो प्रार्थना करे। हे महाबलवान् हे महाभाग विश्वेदेवाओ ! इस श्राद्ध मे जिनका आवाहन किया गया है वे आप अब सावधान होजावे। 'येदेवासः०' इत्यादि ऋचा से विश्वेदेवाओ की प्रार्थना करे तथा 'मया चेह' ऋचा से पितरो और तत्स्थानीय ब्राह्मणो की प्रार्थना करे और यह कहे कि—जो इस समय मे यहाँ पर गुप्त अथवा प्रकट रूप से प्रकाशवान् तेजस्वी पितर विद्यमान हैं उन योग दृष्टि वाले ध्यान मे स्थित पितृगणो की सेवा मे मैं प्रणाम करता हूँ। इस विधि से पितरो का अभिवादन कर भगवान नारायण के ध्यान मे तत्पर होजाना चाहिए ॥५७—६०॥ इस अर्पित हवि, कर्म को विष्णु भगवान् की सेवा मे समर्पित कर देना चाहिए। इसके पश्चात् वे सभी ब्राह्मण मौन होकर भोजन करें ॥६१॥ उस समय किसी को भी हँसी और बातचीत नही करनी चाहिए। यदि ऐसा उस समय मे किया जाता है तो वे सभी हवि राक्षस हो जाया करते हैं। फिर देशाचार के अनुकूल मधु मास का परिवेषण करे। पत्तलो पर बैठे हुये ब्राह्मणो को एक दम मौन रहना चाहिये और पाक आदि की प्रशंसा नही करनी चाहिये। यदि श्राद्ध मे समागत ब्राह्मण पत्तल का त्याग कर उठ जाता है तो उसको श्राद्ध का हनन करने वाला ही समझना चाहिए वह निश्चय ही नरकगामी होता है। भोजन करते हुए ब्राह्मण परस्पर मे एक दूसरे का स्पर्श नही करे ॥६२—६४॥

तदन्नमत्यजन्भुक्त्वा गायत्र्यष्टशत जपेत् ।
भुज्यमानेषु विप्रेषु कर्त्ता श्रद्धापरायणः ॥६५
स्मरेन्नारायण देवमनन्तमपराजितम् ।
रक्षोघ्नान्वैष्णवाश्चैव पैतृकाश्च विशेषतः ॥६६

जपेच्च पौरुष सूक्तं नाचिकेतत्रयं तथा ।
त्रिमधु त्रिसुपर्णं च पावमान यजूंषि च ॥६७
सामान्यपि तयोक्तानि वदेत्पुण्यप्रदास्तथा ।
इतिहासपुराणानि धर्मशास्त्राणि चैव हि ॥६८
भुञ्जीरन्ब्राह्मणा यावत्तावदेनाञ्जपेद् द्विज ।
ब्राह्मणेषु च भुक्तेषु विकिर विक्षिपेत्तथा ॥६९
शेषमन्न वदेच्चैव मधुसूक्त च वै जपेत् ।
स्वयं च पादौ प्रक्षाल्य सम्यगाचम्य नारद ॥७०

उस अन्न को न छोडे तो उनको आठसो गायत्री मन्त्र का जाप करना चाहिए । तभी उनकी वि द्धि हुआ करती है । जिस समय मे ब्राह्मण भोजन कर रह हो उस समय मे परम श्रद्धालु श्राद्धकर्त्ता का कर्तव्य है कि वह अनन्त, अपराजित श्री नारायण देव का सस्मरण करे और उस समय मे राक्षसो के नाशक मन्त्रो का, विष्णु के स्तोत्रो का और पितृ सम्बन्धी मन्त्रो का पाठ करना चाहिए ॥६४—६६॥ इसके साथ २ पुरुष सूक्त और यजुर्वेद के मन्त्रो का जाप करना चाहिये ॥६७॥ पुण्य प्रदान करने वाले साम वेद के मन्त्रो का तथा इतिहास, पुराण और धर्म शास्त्र का भी पाठ करे ॥६८॥ जिस समय तक ब्राह्मण भोजन करते रहें तभी तक इन उपर्युक्त मन्त्रादि को निरन्तर पढते रहना चाहिए । जब ब्राह्मण भोजन समाप्त कर चुकें तब कुशो को पृथक् करके शेष अन्न खाने का विप्रो से अनुरोध करे 'मधुवाता ऋतायते' मधु सूक्त का जाप करना चाहिये । इसके अनन्तर अपने आप पैरों को धोकर भली भांति आचमन करना चाहिये ॥६९-७०॥

आचान्तेषु च विप्रेषु पिण्ड निर्वापयेत्तत ।
स्वस्तिवाचनक कुर्यादक्षय्योदकमेव च ॥७१
दत्वा समाहित कुर्यात्तथा विप्राभिवादनम् ।
असानयित्वा पात्र तु स्वस्मि कुर्वंति ये द्विजा ॥७२
वत्सर पितरस्तेषा भवत्युच्छिष्टभोजिन ।
दातारो नोऽभिवर्द्धन्तामित्याद्यं स्मृतिभाषितं ॥७३
आशीर्वचो स्वभेदोऽस्यो नमस्कार वदेत्तत ।

दद्याच्च दक्षिणां शक्त्या ताम्बूलं गन्धसंयुतम् ॥७४
न्युब्जपात्रमथानीय स्वधाकारमुदीरयेत् ।
वाजेवाजे इति ऋचा पितॄन्देवान्विसर्जयेत् ॥७५
भोक्ता च श्राद्धकृत्तस्यां रजन्यां मैथुनं त्यजेत् ।
तथा स्वाध्यायमध्वानं प्रयत्नेन परित्यजेत् ॥७६
अध्वगश्चातुरश्चैव विहीनश्च धनैस्तथा ।
आमश्राद्धं प्रकुर्वीत हेम्ना वास्पृश्यभार्यकः ॥७७

ब्राह्मणों के द्वारा आचमन किये जाने पर पिण्ड दान करे। स्वस्तिवाचन बोले और अटूट जल धारा (अक्षय्योदक) करे। इस विधि से बहुत ही सावधानी के साथ श्राद्ध समर्पित करके ब्राह्मणों का अभिवादन करना चाहिए। जो विप्र पात्रों का परिचालन किये ही बिना तात्पर्य यह है कि पात्रों को सीधान करके ही स्वस्ति करते हैं उनके एक वर्ष तक उच्छिष्ट भोजी रहा करते हैं। इसके पश्चात्—'दातारो नोऽभिवर्धन्ताम्' इत्यादि स्मृति के वचनों के द्वारा आशीर्वाद ग्रहण करे। पुनः ब्राह्मणों को प्रणाम करके दक्षिणा देवे और सुगन्धित ताम्बूल अर्पित करना चाहिए ॥७१-७४॥ इसके पश्चात् औंधे पात्र लाकर स्वधा कहे और 'वाजे वाजे' इत्यादि के द्वारा पितृजनों का विसर्जन कर देवे ॥७५॥ श्राद्ध कर्त्ता और श्राद्ध भोक्ता को कभी भी मैथुन नहीं करना चाहिए तथा उस दिन भर्ता से गमन और स्वाध्याय भी नहीं करे ॥७६॥ जो कोई यात्रा में हो, रोग युक्त हो, धनहीन हो वह कच्चा सीधा देकर ही श्राद्ध कर देवे जिसकी पत्नी रजस्वला हो गई हो उसे सुवर्ण के द्वारा श्राद्ध कर देना चाहिए ॥७७

द्रव्याभावे द्विजाभावे ह्यन्नमात्रं च पाचयेत् ।
पैतृकेन तु सूक्तेन होमं कुर्याद्विचक्षणः ॥७८
अत्यन्तद्रव्यशून्यश्चेद्यथाशक्त्या तु तृणं गवाम् ।
स्नात्वा च विधिवद्विप्र कुर्याद्वा तिलतर्पणम् ॥७९
अथवा रोदनं कुर्यादत्युच्चैर्विजने वने ।
दरिद्रोऽहं महापापो वदन्निति विचक्षणः ॥८०

परेद्यु श्राद्धकृन्मर्त्यो यो न तर्पयते पितृन् ।
तत्कुल नाशमायाति ब्रह्महत्या च विंदति ॥८१
श्राद्ध कुर्वंति ये मर्त्याः श्रद्धावन्तो मुनीश्वर ।
न तेषा सततिच्छेद सम्पन्नास्ते भवन्ति च ॥८२
पितृ न्यजंति ये श्राद्धे तैस्तु विष्णु प्रपूजित ।
तस्मिस्तुष्टे जगन्नाथे सर्वास्तुष्यति देवता ॥८३
पितरो देवताश्चैव-गन्धर्वाप्सरसस्तथा ।
यक्षाश्च सिद्धा मनुजा हरिरेव सनातन ॥८४

यदि द्रव्य का अभाव हो अथवा श्राद्धोचित द्विजो का अभाव हो तो श्राद्ध करने वाले को केवल अन्न का दान करके पैतृक सूक्त से पितृगण की तृप्ति के उद्देश्य से अग्नि मे होम करना चाहिए ॥६८॥ हे विप्रवर ! यदि बहुत ही अधिक द्रव्य का अभाव हो तो अपनी शक्ति के अनुसार गायो को घास उनको देनी चाहिए अथवा स्नान करके विधि पूर्वक तर्पण कर देवे ॥७६॥ कुशल पुरुष को चाहिये कि निर्जन वन मे जाकर उच्च स्वर से, मैं महाम् पापात्मा हूँ और बहुत ही दरिद्र हूँ यह कहकर उच्च स्वर से रो देना चाहिए ॥८०॥ यदि श्राद्ध करने वाला अगले दिन म पितृ तर्पण नहीं किया करता है तो उसे ब्रह्म हत्या का पाप लगता है और अन्त मे उसका कुल ही नष्ट हो जाया करता है ॥८१॥ हे मुनिवर ! जो परम श्रद्धा से समन्वित होकर श्राद्ध किया करता है ।।८२॥ जो श्राद्ध म अपने पितृगणो का अर्चन किया करते हैं वे मानो साक्षात् भगवान् विष्णु का पूजन कर लिया करते हैं और भगवान जगत के स्वामी विष्णु के परम सन्तुष्ट होने पर सभी देवता सन्तुष्ट हो जाया करते हैं ॥८३॥ पितृगण, देववृन्द, गन्धर्वगण, यक्षसमूह, अप्सरा वृन्द सिद्ध और मनुष्य इन सबमे सनातन प्रभु श्री हरि हरि भगवान ही व्याप्त रहा करते हैं ॥८४॥

येनदमखिल जात जगत्स्थावरजगमम् ।
तस्माद्दाता च भोक्ता च सर्वं विष्णु सनातन ॥८५
यदस्ति विप्र यन्नास्ति दृश्य चादृश्यमेव च ।
सर्वं विष्णुमय ज्ञेय तस्मादन्यन्न विद्यते ॥८६

आधारभूतो विश्वस्य सर्वभूतात्मकोऽव्यय ।
अनौपम्यस्वभावश्च भगवान्हव्यकव्यभुक् ॥८७
परब्रह्माभिधेयो य एक एव जनार्दन ।
कर्त्ता कारयिता चैव सर्वं विष्णु सनातन ॥८८
इत्येव ते मुनिश्रेष्ठ श्राद्धस्य विधिरुत्तम ।
कथित कुर्वतामेव पाप सद्यो विलीयते ॥८६
य इद पठते भक्तया श्राद्धकाले द्विजोत्तम ।
पितरस्तस्य तुष्यति सततिश्चैव वर्धते ॥६०

उन्ही भगवान् विष्णु से यह सब स्थावर और जङ्गम जगत् प्रकट हुआ है अत दाता और भोक्ता सबमे वही सनातन विष्णु विराजमान रहा करते हैं ॥८५॥ हे विप्रवर ! इस विश्व मे जो कुछ भी दिखलाई दे रहा है तथा जो नही दिखाई देता है अर्थात् स्थूल सूक्ष्म सत् असत् जड चेतन सबको विष्णुमय ही समझना चाहिये क्योंकि विष्णु से परे कुछ भी नही होता है ॥ ८६ ॥ भगवान् विष्णु ही इस सम्पूर्ण विश्व के आधार स्वरूप हैं सब प्राणी उनके ही रूप हुआ करते हैं और यह भगवान् अपने कर्त्तृत्व रूप से कभी भी वे च्युत नही हुआ करते हैं भगवान् का स्वभाव ऐसा अद्भुत है कि उनकी किसी से भी उपमा नही दी जा सकती है और वे ही हव्य-कव्य सबके भोक्ता हुआ करते हैं ॥८७॥ जिनका परम ब्रह्म नाम है वही एक जनार्दन हैं। वे ही कर्त्ता और कराने वाले हैं। यह प्रपञ्च विष्णु का ही स्वरूप है ॥८८॥ हे मुनि श्रेष्ठ ! इस रीति से आपके समक्ष म यह श्राद्ध का पूरा विधान वर्णित कर दिया है जोकि अत्युत्तम है। जो इस श्राद्ध को किया करते हैं उनके समस्त पापो का समूह तुरन्त ही नष्ट हो जाया करता है।८६। हे द्विजोत्तम ! जो मनुष्य श्राद्ध करने के समय म इस श्राद्ध विधान के अध्याय का भक्तिसहित पाठ किया करता है उसके पितृगण परम सन्तुष्ट होजाया करते हैं और उसकी सम्पत्ति की वृद्धि हुआ करती है ॥६०॥

॥ नारद पुराण (प्रथम खड) समाप्त ॥